शारीरिक-मानसिक-आध्यात्मिक स्वास्थ्य के विविध आयाम

लेखक
वैज्ञानिक धर्माचार्य श्री कनकनंदी

वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दी गुरूदेव ससंघ सज्जनता एवं एकता की पुण्य भूमि-सागवाडा में द्वितीय बार **2006** के पावन वर्षायोग के अवसर पर

वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दी गुरूदेव ससंघ को द्वितीय बार वर्षायोग **2006** स्थापना के हेतु श्रीफल अर्पण करते हुए सज्जनवाडा (सागवाडा) के सज्जन महानुभाव

शारीरिक-मानसिक-अध्यात्मिक स्वास्थ्य के विविध आयाम

पावन प्रसंग

आचार्य श्री कनकनंदी जी ससंघ सानिध्य में एवं निर्देशन में ''जैन एकता-सर्वधर्म समताभाव एवं विश्वशांति -अष्ठम अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक संगोष्ठी'' निमित्त आगामी वर्ष 2007 को ''जैन एकता वर्ष'' की घोषणा एवं प्रचार-प्रसार के शुभारंभ- सागवाडा दिनांक 30-8-2006 को लोकार्पण

लोकार्पण कर्ता - श्री किरीट भाई दफ्तरी - अध्यक्ष JAINA अमेरीका
पद्मश्री डॉ. कुमारपाल देसाई - निदेशक
Instutitute of Jainology - अहमदाबाद

-: सौजन्य :-

मोहनलाल चन्द्रवती जैन चैरिटेबल ट्रस्ट

W 11/4, वेस्टर्न एवेन्यू, सैनिक फार्म,
नई दिल्ली - 110062

-: प्रकाशक :-

धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान (बडौत)
धर्म दर्शन सेवा संस्थान (उदयपुर)

लेखक :- वैज्ञानिक धर्माचार्य श्री कनकनंदीजी

शारीरिक-मानसिक-अध्यात्मिक स्वास्थ्य के विविध आयाम

लेखक :- वैज्ञानिक धर्माचार्य श्री कनकनंदी जी गुरुदेव

ग्रंथाङ्क - 159

प्रथम संस्करण - 2006

प्रतियाँ - 1000

मूल्य - 101/- रुपये (पुनः प्रकाशनार्थे)

मुखपृष्ठ एवं मुद्रांकन :- मुनि सच्चिदानंद

मुद्रांकन सहायक :- मुनि तीर्थनंदी,
बा.ब्र. प्रज्ञाश्री, सुश्री समीक्षा संघवी (सागवाडा)

-: मुद्रक शोधन एवं लेखन सहायक:-

मुनि श्रुतनंदी, मुनि चिन्मयानंद, आर्यिका सत्यमती, आर्यिका जिनवाणी, आर्यिका गुरुवाणी, आर्यिका सकलमती, आर्यिका किर्तीवाणी, ब्र. प्रकाश जी,बा.ब्र. विद्याश्री (सभी संघस्थ आचार्य श्री कनकनंदी जी) बा.ब्र. आभा (श्राविकाश्रम सागवाडा) प. रजनीश शास्त्री (भगवाँ), सुश्री सुहानी नोगामिया, सुश्री मोनिका कोठारी, सुश्री नेहा पालविया, सुश्री उर्वी कोठारी, सुश्री हिना जैन, सुश्री मोनम जैन (सागवाडा)

प्राप्ति स्थान :- धर्म दर्शन सेवा संस्थान, द्वारा - छोटूलाल चित्तौडा,
चंद्रप्रभ दि. जैन मंदिर आयड, आयड बस-स्टॉप के पास, उदयपुर - 313001 (राज.)
फोन नं. :- (0294) 2413565, 5561114

-: प्रस्तावना :-

शारीरिक-मानसिक-आध्यात्मिक स्वास्थ्य के रहस्य

स्व-स्व शुद्ध स्वरूप ही स्व-स्व परम स्वास्थ्य है; क्योंकि इस अवस्था में द्रव्य स्व-शुद्ध अवस्था/गुण-धर्म में स्थित होता है। इस अवस्था में किसी भी प्रकार की विकृतियाँ नहीं होती हैं जिसके कारण अन्य द्रव्य भी उससे विकृत नहीं होते हैं। इस दृष्टि से जीव की शुद्धावस्था/मुक्तावस्था/निर्वाणावस्था ही जीव की परम-स्वास्थ्यावस्था है। इसी ही अवस्था को परमात्मा,भगवान्, चिदानन्द, सच्चिदानन्द, ज्ञानानन्द, सत्यं-शिवं-सुन्दरम्, विज्ञानघन-स्वरूप, नित्यानन्द-स्वरूप आदि विशेषणों से अभिहित किया जाता है। अनादि- अनन्त काल से जीव कर्म-परतंत्रता/कर्मबन्ध/कर्माधीन के कारण अशुद्ध होकर;विकृतावस्था को प्राप्त करके परमस्वास्थ्य से वंचित है। इस अवस्था में प्राप्त यथा योग्य शरीर-इन्द्रियाँ-मन भी उस विषमावस्था से अनुसृत हैं, प्रभावित हैं। जिस प्रकार की अशुद्ध स्वर्ण से निर्मित विविध प्रकार के पशु-पक्षी, मनुष्य, देवी-देवता आदि की मूर्तियों में वही अशुद्ध सुवर्ण ही रहेगा। कर्म बन्ध के कारण अशुभ-शुभ भाव एवं परिस्पन्दन है। अशुभ (अन्ध विश्वास, मोह, राग-द्वेष, संक्लेश आदि) भाव से पाप बन्ध होता है जिस से जीव को विविध प्रकार के दुःख, कष्ट, रोग, संकट प्राप्त होते हैं। इससे जीव को शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, रोग(अस्वास्थ्य) भी होते हैं। शुभ भाव (दया, परोपकार, स्वाध्याय, अहिंसादि पांच व्रत, क्षमादि दस धर्म, सरल-सहजता आदि) से पुण्य बंध होता है जिससे जीव को विविध प्रकार के सुख-सुविधा, वैभव, प्रशंसा, सम्मान आदि प्राप्त होते हैं। इससे जीव को शरीरिक-मानसिक-निरोगता (स्वास्थ्य) भी प्राप्त होती है। जीव अशुभ-शुभ को पार करके जब पाप-पुण्य से रहित होकर परमात्मावस्था को प्राप्त करता है तब उसे अक्षय-अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य की उपलब्धि होती है। इससे जीव केवल शारीरिक-मानसिक-आध्यात्मिक रोग-दुःख से ही शाश्वतिक रूप से मुक्त नहीं हो जाता है परन्तु शारीरिक, इन्द्रियज, मानसिक स्वास्थ्य तथा सुख से भी परे हो जाता है। यही अवस्था ही परम-स्वास्थ्य-अवस्था है। ऐसे समस्त शारीरिक-मानसिक-आध्यात्मिक स्वास्थ्य का शोध-बोध-उपलब्धि-प्रचार-प्रसार भारतीय प्राचीन महापुरूषों ने किया था। इसके लिए उन्हों ने शुभ-शुद्ध भाव, वचन, व्यवहार, दिनचर्या, रात्रीचर्या, भोजन-पानी, आवास, पर्यावरण, वस्त्र, प्राणवायु, मल शुद्धि, अष्टाङ्गयोग, परोपकार, औषधि, मंत्र आदि को अपनाने के लिए उपदेश दिया, ग्रन्थ लिखा। उपर्युक्त भाव से

लेकर मंत्र को भी धर्म रूप में अभिहित/संबोधित किया। धर्म के अर्थ है जो धारण/पालन करने योग्य हो या जो समस्त सुख में धारण कराने वाला हो। इसलिए भारतीय संस्कृति के हर भाव, व्यवहार, वचन धर्ममय है, परन्तु कालक्रम से उपर्युक्त सत्य-तथ्य, रहस्य, उद्देश्य, शिक्षा से रहित होकर भारत के लोग धर्म को पंथ-मत-रूढि रूप से मानने लगे और अभी भी बहुअंश में मान रहे हैं।

जिस प्रकार कि जीवन के लिए वस्त्र, आवास, भोजन, पानी, प्राणवायु, आयुकर्म, आत्मतत्व उत्तरोत्तर महत्वपूर्ण है उसी प्रकार शारीरिक-मानसिक-आध्यात्मिक (भावात्मक) स्वास्थ्य उत्तरोत्तर महत्वपूर्ण है और इन स्वास्थ्य के लिए कारण भूत बाह्य साधन सामग्री, औषधि, भोजन, पानी, प्राणवायु, भाव आदि उत्तरोत्तर महत्वपूर्ण है क्योंकि भाव के कारण अनन्तानन्त कर्म परमाणुओं का आस्रव, बन्ध या संवर, निर्जरा, मोक्ष होता है। जिसके कारण पुनः जीव के तज्योग्य भाव होते हैं तथा शरीर, वातावरण, भौतिक सामग्री, परिवार, सेवक, वैद्य, औषधि, भोजन, पानी आदि की उपलब्धि होती हैं। इस के साथ-साथ शरीर के ग्रन्थिओं के स्राव होता है, रोग प्रतिरोधक शक्ति बनती है, ओरा बनता है, शरीर, मन में परिवर्तन होता है जिस के कारण शारीरिक-मानसिक-आध्यात्मिक-स्वास्थ्य प्रभावित होते हैं। आधुनिक विज्ञान के जिनोम (D.N.A., R.N.A.) सिद्धान्त के अनुसार जो विभिन्न जीव के विभिन्न शरीर, व्यवहार, रोग के कारण विभिन्न जिनोम माना गया है उस जिनोम के कारण भी है द्रव्य कर्म (कर्म परमाणु) और उस द्रव्य कर्म के कारण है भाव कर्म (जीव के शुभ- अशुभ भाव)। इन सब कारणों से समस्त स्वास्थ्य एवं अस्वास्थ्य के लिए मूलभूत प्रधान तथा प्रथम कारण है भाव/आध्यात्मिकता है। इसलिए प्राचीन भारत में समस्त सुख का कारण धर्म (उत्तम भाव, व्यवहार, वचन, पूजा, प्रार्थना, तीर्थयात्रा, स्वाध्याय, सत्-संगति, भोजन, वसन आदि) को माना गया है, तो समस्त दुःखों का कारण अधर्म (निकृष्ट भाव, व्यवहार, वचन, भोजन, फैशन-व्यसन, वसन आदि) को माना गया है। आधुनिक मनोवैज्ञानिक-चिकित्सा, भावात्मक-चिकित्सा, प्राकृतिक-चिकित्सा, योग-चिकित्सा तो बहुअंश में उपर्युक्त धर्म में अन्तर्गत है तथा कुछ अंश में होमियोपैथि तथा आधुनिक मेडिकल साइन्स भी इसे मान्यता दे रहे हैं। भारतीय प्राचीन साहित्यों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस समय के महापुरुष, धार्मिक जन, साधु-संत-तपस्वी आदि स्वस्थ्यमय दीर्घ जीवन जीते थे; क्योंकि वे धर्ममय जीवन यापन करते थे। आधुनिक विज्ञान के अनुसंधान से यह सब विषय सत्य सिद्ध होता जा रहा है।

योग्य, शुद्ध पर्यावरण, भोजन, पानी, परिवार, परिकर, औषधि, निवास, वस्त्र आदि का भी उपर्युक्त तीनों स्वास्थ्य के ऊपर अनुकूल प्रभाव पडता है तो अयोग्य, अशुद्ध

पर्यावरण आदि का तीनों स्वास्थ्य के ऊपर प्रतिकूल प्रभाव पडता है; क्योंकि शरीर, इंद्रियाँ, मस्तिष्क आदि भी भौतिक तत्त्व से निर्मित है तो अनादि कर्म सम्बन्ध से संसारी जीवात्मा भी भाव, बुद्धि से कथञ्चित् भौतिक है। इसलिए तो मीठा पानी पीने से प्यास बुझती है तो खारा पानी पीने से प्यास बढती है तथा विष पीने से मृत्यु तक होती है। इसी प्रकार शुद्ध प्राणवायु (ऑक्सिजन) स्वास्थ्य, जीवन के लिए कारण है तो अशुद्धवायु अस्वास्थ्य, मृत्यु के लिए भी कारण है। इसी प्रकार भोजन आदि के लिए भी जान लेना चाहिए। क्योंकि योग्य-शुद्ध भोजन आदि से शरीर आदि को पोषक तत्त्व मिलते हैं, सुरक्षा मिलती है, वृद्धि होती है, रोग से लडने की शक्ति मिलती है, क्षतिपूर्ति होती है तो अयोग्य-अशुद्ध भोजनादि से उपर्युक्त गुणों के विपरीत हानियाँ होती है, कमियाँ होती है। इसलिए भारत में शुद्ध, सात्विक, अहिंसक शाकाहार, दुग्धाहार, फलाहार को ग्राह्य माना गया है तो मांसाहार, मद्यपान, धूम्रपान, चोरी-अन्याय से उपार्जित धन से प्राप्त भोजन आदि को अग्राह्य बताया गया है। पर्यावरण शुद्धि के लिए वृक्षारोपण, शिकार निषेध, जहाँ-तहाँ मल-मूत्र विसर्जन-त्याग निषेध किया है। धूप जलाना, औषधि-घी से होम करना, घण्टी बजाना, भजन, संगीत, नृत्य, तीर्थयात्रा, मंदिर की परिक्रमा, स्वच्छ पानी को छानकर-गरम करके प्रयोग करना, परस्पर प्रेम-सहयोग-सेवा-उपकार, अतिथि सेवा, आहारदान, औषधि दान, अभयदान, वसतिकादान, ज्ञानदान, चंदन आदि प्राकृतिक अहिंसक लेप-उपटन-प्रसाधन सामग्रियों का प्रयोग, शारीरिक श्रम, नौलिक्रिया, वस्तिक्रिया, उपवास, रसत्याग, मौन, एकान्तवास, स्वच्छ सूतीवस्त्र, स्नान, मालीश, शीघ्र सोना, ब्रह्ममुहूर्त में जगना तथा शौचक्रियादि से निवृत्त होकर योगासन-प्राणायाम, स्वाध्याय, ध्यान, जप, स्तोत्र, पूजा-पाठ आदि करना, साधु-संतों के प्रवचन सुनना, माता-पिता-रोगी-बालक-पशु-पक्षियों की यथायोग्य सेवा-व्यवस्था करना, न्याय से जीविकार्जन करना, दिन में शुद्ध-सात्विक भोजन करना, सन्ध्याकालीन धार्मिक क्रियायें करना आदि सब शारीरिक-मानसिक-आध्यात्मिक स्वास्थ्य सम्पादन के लिए किया जाता था। इस में किसी भी प्रकार के अतिक्रम-व्यतिक्रम, कमियों को दोषकारक माना जाता था और प्रायश्चित्त लिया जाता है। प्रायश्चित्त भी एक प्रकार की मानसिक-आध्यात्मिक-चिकित्सा पद्धति है। तीनों स्वास्थ्य के लिए सादाजीवन उच्च विचार, सदाचार, सात्विक आहार एवं प्राकृतिक वातावरण महत्वपूर्ण उपाय है।

आचार्य कनकनंदी
मुकुट सप्तमी - 2006
सागवाडा - (राज.)

हमारे विचार

परमपूज्य वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दी जी गुरूदेव ने इस पुस्तक के माध्यम से एक नई दिशा प्रदान की है जिसमें मनुष्य का शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास करने हेतु स्वस्थ्य के विभिन्न आयामों को दर्शाया है। वर्तमान समय में मनुष्य के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्रों में निरन्तर गिरावट आ रही है और उस गिरावट एवं पतन को इस पुस्तक के माध्यम से रोक कर धर्म के माध्यम से समाज को नई दिशा प्रदान करने का प्रयास किया गया है जो कि अत्यन्त ही सराहनीय एवं अनुकरणीय है।

जीव इस संसार में शारीरिक एवं मानसिक रूप में स्वस्थ नहीं है और खान-पान आचरण और आहार-विहार संयमित नहीं होने से कई त्रासदियाँ एवं बिमारियाँ जन्म ले लेती हैं जिसके परिणाम स्वरूप स्वस्थ व्यक्ति भी कई बारे बाहरी रूप से तो स्वस्थ्य दिखता है किन्तु अन्दर ही अन्दर मानसिक रूप से अस्वस्थ एवं अशांत रहता है और वर्तमान समय में उपलब्ध किसी भी प्रकार की चिकित्सा पद्धातियों को अपनाता है किन्तु फिर भी वह अपने आप को पूर्ण रूप से स्वस्थ महसूस नहीं करता है। वर्तमान समय की महती आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए आचार्य श्री ने आध्यात्म के माध्यम से शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य को सुधारने एवं विकृतियों को दूर करने का सार्थक प्रयास किया है।

इस पुस्तक के माध्यम से प्राचीन एवं परम्परावादी चिकित्सा पद्धति में आधुनिक एवं नवीनतम पद्धतियों का समावेश करते हुए आध्यात्म के माध्यम से शारीरिक एवं मानसिक स्वस्थता का मार्ग प्रशस्त किया गया है। वर्तमान समय में व्यक्ति सांसारिक एवं दैहिक सुख एवं तात्कालिक आराम प्राप्त करने के लिए मानसिक रूप से अस्वथ होता जा रहा है और धर्म तथा आध्यात्म को छोडकर अल्पकालिन सुख प्राप्त करने के लिए पतन की और अग्रसर हो रहा है, उसी पतन और गिरावट को रोक कर समाज को एक नई दिशा, सोच इस पुस्तक के माध्यम से दिये जाने का सार्थक प्रयास किया गया है। जैन धर्म अपने आप में वैज्ञानिक धर्म है जो शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से अपने आप में परिपूर्ण है जिस में तप, त्याग, संयम, आहार-विहार आदि ऐसी अनेक महत्व पूर्ण बातें हैं जिनसे न केवल शारीरिक एवं मानसिक लाभ ही प्राप्त होता है, वरन् आध्यात्म के माध्यम से व्यक्ति आत्म कल्याण कर मोक्ष प्राप्त करता है। क्योंकि स्वस्थ तन में ही स्वस्थ मन निवास करता है और स्वस्थ मन में ही स्वस्थ चिरकालिन आध्यात्मिक शांति प्राप्त होती है। स्वास्थ्य के विभिन्न आयाम शारीरिक, मानसिक, एवं आध्यात्मिक क्षेत्र में जो व्यक्ति के समग्र विकास हेतु आवश्यक होते हैं उनको इस पुस्तक के माध्यम से धर्म में

विज्ञान का समावेश करते हुए प्रस्तुत किया गया है जो कि व्यक्ति, समाज और देश को नई दिशा प्रधान करेगा।

आचार्य श्री द्वारा रचित 156 ग्रंन्थों में स्वास्थ्य संबंधी पूर्व में भी निम्न तीन ग्रंन्थों के माध्यम से स्वस्थ रहने की कला सिखाई गई है।

1) धर्म एवं स्वास्थ्य विज्ञान भाग-1, 2) धर्म एवं स्वास्थ्य विज्ञान भाग -2, 3) आर्दश आहार, विहार, विचार।

फिर भी इस ग्रंथ में और भी व्यापक दृष्टिकोण से आधुनिक चिकित्सा को लेकर विस्तार से बताने का प्रयास किया गया है।

भाव शुद्धि से जिस प्रकार रोगों को पार कर सकते हैं उससे भव को भी पार किया जा सकता है।

महेन्द्रकुमार मेहता
सिविल न्यायाधीश (वरिष्ठ खण्ड)
एवं अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट
सागवाडा - जिला डूँगरपुर (राजस्थान)
डॉ कैलाश चन्द जैन
दन्त चिकित्सक, सागवाडा राजस्थान

-: विषय सूची :-

अध्याय - 1

समग्र स्वास्थ्य-अस्वास्थ्य के कारण एवं निवारण

1) शारीरिक-मानसिक-आध्यात्मिक स्वास्थ्य के स्वरूप एवं कारण - 11
2) जीवन, भोजन, औषधि एवं ज्ञान की आवश्यकता - 12
3) स्वास्थ्य कर विचार-विहार-आहार - 16
4) आयुर्वेदानुसार रोग के कारण - 19
5) क्यों होते हैं जैन संत भी अस्वस्थ्य ? कारण एवं निवारण - 21
6) स्वास्थ्य के लिए निद्रा भी आवश्यकता - 26
7) प्रदूषण से सम्बन्धित बीमारियाँ - 29
8) गैस से बना हुआ भोजन क्या साधु एवं गृहस्थ योग्य है ? - 38
9) भावनाओं का दबाना या सोचने का ढंग खततरनाक हो सकता है - 40
10) विविध रोग के कारण विविध कर्म - 49
11) जीनोम सिद्धान्त, भोजन एवं रोग - 64
12) धर्म एवं आयुर्वेदानुसार स्वास्थ्य के नियम - 68
13) अनेकान्त की दृष्टि से विचार, विहार, आहार - 80
14) आदर्श आहार-प्रणाली - 86
15) साधुओं के अस्वास्थ्य होने के कारण एवं निवारण - 93
16) साधुओं के योग्य एवं अयोग्य विहार - 96
17) साधुओं के द्वारा साधुओं की सेवा - 99
18) उत्सर्ग एवं अपवाद की मैत्री - 104
19) योग्याहारी-उपवासी (अनाहारी) - 112

अध्याय - 2

भोजन एवं स्वास्थ्य

1) जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन - 117
2) कोलीन तथा लेसिथिन खाएं बुद्धि, धृति, मेधा एवं स्मरण शक्ति बढाएं 119
3) टायरोसिन खाएं - डिप्रेशन से मुक्त हो जाएं - 121
4) पानी है स्वस्थ रहने की संजीवनी - 121
5) सम्पूर्ण भोजन है दुग्ध - 126
6) औषधिय पेय - 129

7) विटामिन की आवश्यकता - 131
8) कैल्शियम की आवश्यकता - 135
9) औषधिय गुणों से भरपूर है मसाले - 137
गुणकारी लौंग (140), काली मिर्च (141), औषधि भी है हल्दी (142)
इलायची के औषधिय गुणधर्म (144)
10) संतुलित स्वास्थ्य के लिए सब्जियों की उपयोगिता - 145
सब्जियों का महत्व (146), सब्जियों से रोगोपचार (147)
11) किस बीमारी में कौनसा जूस लें - 148
12) विभिन्न फलों की उपयोगीता - 149
नींबू का विविध रोगों में प्रयोग (153)
13) फल एवं सब्जियों से रोगोपचार - तालिका - 157
सब्जि से रोगोपचार (157), फलों से रोगोपचार (158)
14) विभिन्न प्रकार के वेगों को रोकने से रोग - 161
15) हरित्याग की यथार्थता - 163
साधु भी सोंठ, हल्दी सेवन कर सकते हैं (166)

अध्याय - 3

रोग एवं उसके उपचार

1) विभिन्न रोगों के उपचार - 167
2) रोगों से बचाव - 191
3) विष चिकित्सा - 195
4) स्त्री रोग चिकित्सा - 196
5) निषेध - 197
6) विशेष नुस्खे प्रयोग संग्रह - 198
7) औषधिय वनस्पति, तेलादि से रोगोपचार - 200
8) स्वास्थ्य के योग्य योगासनादि - 209

अध्याय - 4

मनोवैज्ञानिक चिकित्सा

1) आधुनिक मनोवैज्ञानिक चिकित्सा - 212
2) अन्तस्रावी तंत्र की कार्यिकी - 220

3) मनुष्य शरीर की कुछ विशेषतायें - 224
4) मानव की कार्य करने की शक्ति का आधार स्तंभ पेशियाँ हैं - 227
5) विश्वासं फलदायकम् (भावात्मक चिकित्सा) - 229
6) मुक्त वार्तालाप - उपचार - 235
7) आत्म विश्वास का अभाव - 236
8) तनाव और थकान - 237
9) स्वास्थ्य का रहस्य - 238
10) मस्तिष्क का प्रभाव स्वास्थ्य के ऊपर - 247
12) जैसा मन वैसा शरीर - 252
13) व्यग्रता को दूर करने के उपाय - 263
14) कुंठा की प्रतिक्रियाएं - 265
15) फोबिया (डर) का कारण एवं निवारण - 268
16) खुश रहिए, रोग भगाइए - 269
17) गम दूर करने के उपाय - 270

अध्याय - 5

आध्यात्मिक स्वास्थ्य

1) आध्यात्मिकता से सम्पूर्ण स्वास्थ्य लाभ - 272
2) जैन धर्म में वर्णित आध्यात्मिक स्वास्थ्य के उपाय - 284
3) गीता में वर्णित आध्यात्मिक स्वास्थ्य - 310
4) महाभारत में वर्णित मनोवैज्ञानिक-आध्यात्मिक चिकित्सा - 312
5) अष्टावक्र गीता में वर्णित आध्यात्मिक स्वास्थ्य - 330
6) वैशेषिक दर्शन में वर्णित आध्यात्मिक स्वास्थ्य - 347
7) सांख्य दर्शन में वर्णित आध्यात्मिक स्वास्थ्य - 348
8) न्याय दर्शन में वर्णित आध्यात्मिक स्वास्थ्य - 352
8) चाणक्य नीति में वर्णित आध्यात्मिक स्वास्थ्य - 362
9) बौद्ध धर्म में वर्णित आध्यात्मिक स्वास्थ्य - 364
10) योग (ध्यान) से समग्र स्वास्थ्य लाभ - 368
11) मंत्र-स्तोत्र-प्रार्थना चिकित्सा - 394

संदर्भ ग्रंथ सूची - 399

अध्याय 1

समग्र स्वास्थ्य-अस्वास्थ्य के कारण एवं निवारण

शारीरिक-मानसिक-आध्यात्मिक स्वास्थ्य के स्वरूप एवं कारण

प्रत्येक मनुष्य शरीर, मन एवं आत्मा से युक्त है। शरीर अष्ट अंग एवं उपांगों से युक्त होता है तो संकल्प-विकल्प, विचार, स्मरण आदि मानसिक होते हैं तथा सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा होता है। शरीर, मन, आत्मा उत्तरोत्तर सूक्ष्म होते हुए भी उत्तरोत्तर अधिक गुणवान्, शक्ति-शाली, प्रभाव शाली होते हैं। इसलिए तीनों परस्पर को प्रभावित करते हुए भी शरीर का प्रभाव मन एवं आत्मा के ऊपर पडता है। उससे भी अधिक मन का प्रभाव शरीर एवं आत्मा के ऊपर पडता है तथा इससे भी अधिक आत्मा का प्रभाव शरीर एवं मन के ऊपर पडता है। इस सिद्धन्त के अनुसार सुख-दुःख, रोग- निरोग आदि के बारे में जान लेना चाहिए । इसलिए शारीरिक स्वास्थ्य चाहने वाले को शारीरिक स्वास्थ्य के उपायों से भी अधिक मानसिक स्वास्थ्य के कारणों को तथा इससे भी अधिक आध्यात्मिक स्वास्थ्य के कारणों को अपनाना चाहिए। जिस प्रकार से चक्षु के स्वास्थ्य के लिए पलक आदि बाह्य अंगों से भी महत्वपूर्ण है रेटेनिया आदि तथा इस से भी अधिक महत्वपूर्ण है दृष्टि-शक्ति।

अन्य दृष्टिकोण से शारीरिक स्वास्थ्य के लिए अन्तरंग कारण शुभ शरीर-नाम कर्म, सातावेदनीय कर्म आदि हैं तो बाह्य कारण योग्य-उत्तम भोजन, पानी, वातावरण, निवास, औषधि, आदि। इसी प्रकार मानसिक स्वास्थ्य के लिए अन्तरंग कारण पुण्यकर्म, शुभलेश्या आदि हैं तो बाह्य कारण अन्य जीव या भौतिक वस्तु प्रति आकर्षण-विकर्षण, राग-द्वेष, ईर्ष्या-घृणा, संक्लेश-तनाव नहीं करना। आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिए उपर्युक्त कारणों के साथ-साथ ध्यान, भाव की पवित्रता, समता, अहिंसादि पंचव्रत, क्षमादि दस धर्म, रत्नत्रय आदि। शास्त्रों में वर्णन पाया जाता है ध्यानादि के कारण जीव को अनेक ऋद्धि-सिद्धि की उपलब्धि हो जाती हैं; उनके शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक स्वास्थ्य की उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है। उनके शरीर से स्पर्शित वायु, जल, भोजन आदि भी औषधमय, अमृतोपम बन जाते हैं। आधुनिक विज्ञान में भी सिद्ध हो रहा है कि जिसके भाव, व्यवहार उत्तम होते हैं उनकी रोग प्रतिरोधक-शक्ति बढती है, जिससे उन्हें रोग नहीं होता है, होने पर प्रभाव कम पडता है, और रोग शीघ्र दूर हो जाता है। जिस प्रकार कि नाईटेंगले, मदर टेरसा, नेताजी सुभाष चन्द्र, महात्मा गांधी, विनोबा भावे, बाबा आप्टे, सेवाभावी नर्स, माता, परोपकारी-रोगीयों की सेवा करने वालों को रोगीयों के सम्पर्क में

रहते हुए भी संक्रामक रोग तक नहीं होता है, ऐसे व्यक्तियों से रोगीयों के रोग भी शीघ्र दूर होते हैं, उनके द्वारा दिया हुआ दवा एवं दुआ का भी प्रभाव अच्छा पडता है। प्राचीन देश-विदेश के साहित्यों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि तीर्थंकर, बुद्ध, ऋषि, मुनि, संत, सज्जनों, मीराबाई, ईसा मसीह के ऊपर विष का भी प्रभाव नहीं पडता था, उनके द्वारा दूसरों के रोग भी दूर हो जाते थे। आधुनिक वैज्ञानिकों ने भी सिद्ध किया है कि अनेक शारीरिक रोग यथा-हार्ट एटेक, सिरदर्द, शरीरदर्द, ब्लडप्रेसर, अल्सर, खुजली आदि भी प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से मानसिक रोग से जायमान है।

मानसिक रोग के कारणभूत है क्रोध, ईर्ष्या, भय, घृणा, चिंता, हीनग्रन्थी, अहंग्रन्थी आदि। इससे शारीरकि, मानसिक रोग के साथ-साथ आध्यात्मिक अस्वस्थ्यता भी होती है। जिस माता का दूध शिशु के लिए अमृत समान है वहाँ क्रोधादि से आवेशित माता का दूध विष तुल्य हो जाता है। इसलिए आधुनिक चिकित्सा विज्ञान द्वारा आविष्कृत औषधि से लेकर शल्य-क्रिया से भी अनेक रोग दूर नहीं होने के कारण अभी देश-विदेश में आयुर्वेद, प्राकृतिक चिकित्सा, योग-चिकित्सा, मनोवैज्ञानिक चिकित्सा, संगीत चिकित्सा, हिलिंग, एक्यूप्रेसर, एक्यूपंचर आदि का प्रचलन दिनों दिन बढ रहा है। इसके कारण विदेश के लोग भारतीय संस्कृति, ज्ञान-विज्ञान, आयुर्वेद, योग आदि को श्रेष्ठ मानकर अपनाते जा रहे हैं।

जीवन, भोजन, औषधी एवं ज्ञान की आवश्यकता

अभयान्नौषधज्ञान भेद तस्तश्चतुर्विधं।
दानं निगद्यते सद्भिः प्राणिनामुपकारकं ॥ 83 अ. श्रावकाचार

1) अभयदान 2) अन्नदान 3) औषधदान 4) ज्ञानदान इन भेदों से प्राणियों का उपकार करने वाला दान संतों के द्वारा कहा हुआ चार प्रकार का है।

अभयदान :-

धर्मार्थकाममोक्षाणां जीवितव्ये यतः स्थितिः।
तद्दानतस्तो दत्तास्ते, सर्वे। संति देहिनां ॥ 84

जिस कारण से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि स्थिति जीवों के जीवित रहने पर संभव हैं इसलिए जीवों को अभयदान देना मानों धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सब कुछ देना है अर्थात् जीवों को मारना उनके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि सब को नष्ट करना है।

देवैऊक्तो वृणीष्वैकं त्रैलोक्यप्रणितव्ययोः।
त्रैलोक्यं वृणुते कोऽपि, न परित्यज्य जीवितम् ॥ 85

एक और तीन लोक की सम्पत्ति और एक और जीवनदान में से कोई एक को किसी को ग्रहण करने के लिए कहा जायेगा तो क्या कोई जीव जीवन को त्यागकर तीन लोक की सम्पत्ति को ग्रहण करेगा? अर्थात् नहीं करेगा। इसका रहस्य यह है कि तीन लोक की सम्पत्ति से भी अधिक मुल्यवान लोगों का जीवन है क्योंकि जीवित रहने पर ही वह कुछ भोगोपभोग कर सकता है परन्तु जीवन के अभाव से तीन लोक की सम्पत्ति उपलब्ध होने पर भी वह कुछ भी सुख आंनद अनुभव नहीं कर सकता।

त्रैलोक्यं न य तो मूल्यं, जीवितव्यस्य जायते ।
तद्रक्षता ततो दत्तं प्राणिनां किं च कांक्षितम् ॥ 86

जीवों के जीवन के मूल्य की तीन लोक की सम्पत्ति से भी तुलना नहीं की जा सकती है इसलिए जो जीवों के जीवन की रक्षा करता है वह प्राणियों को कौन सी इच्छित वस्तु प्रदान नहीं करता है ? अर्थात् सभी इच्छित वस्तुयें प्रदान करता है।

नाभीति दानतो दानं, समस्ताधारकारणम् ।
महीयो निर्मलं नित्यं, गगनादिव विद्यते ।। 87

जिस प्रकार आकाश सबसे महान् द्रव्य है व सभी का आधारभूत है इसी प्रकार अभयदान अर्थात् प्राणियों को किसी प्रकार का कष्ट नहीं देना यह सबसे बडा दान है।

आहारदान

आहारेण बिना पुंसां, जीवितव्यं न तिष्ठति ।
आहारं यच्छता दत्तं, ततो भवति जीवितम् ॥ 88

आहार के बिना पुरूषों का जीवित रहना संभव नहीं है। इसलिए जो आहारदान देता है वह मानो जीवन ही देता है।

नेत्रानंदकरं सेव्यं, सर्वचेष्टाप्रवर्तिनम् ।
अन्धासा धार्यते देहं, जीवितेनेव जन्मिनाम् ॥ 89

जिस प्रकार नेत्र के सद्भाव से नेत्र को आनंदकारी चेष्टाओं का सेवन होता है उसी प्रकार भोजन के सद्भाव से जीवों की आयु धारण होती है।

कांतिः कीर्तिर्मतिः क्षांतिः शांतिर्नीतिर्गतीः रतिः ।
उक्ति शक्तिर्धुति प्रीतिः प्रतीतिः श्रीर्च्यवस्थितिः ॥ 90
आहारवर्जितं देहं सर्वे मुचन्ति जन्तवः ।
द्राविणा पाकृतं मर्त्यं वेश्या इव मनोरमाः ॥ 91

कांति, कीर्ति, बुद्धि, क्षमा, शांति, नीति, गति, रति, वाणी, शक्ति, दीप्ति, प्रीति, प्रतीति, लक्ष्मी, स्थिरता ये सब आहार से रहित शरीर को निश्चय से छोड देती हैं जिस प्रकार कि मनोरमा वेश्या भी द्रव्य से रहित पुरूष को छोड देती है। अर्थात् भोजन से

जो रस, रूधिर, मांस, मेदा, अस्थि, वीर्य, ओज आदि धातुऐं उपधातुऐं बनती हैं उससे मनुष्य की उपरोक्त कांति, बुद्धि, क्षमा, नीति, वाणी आदि गुण प्रकट होते हैं या स्थिर रहते या उनमें वृद्धि होती है। इस प्रकरण का वर्णन इस कृति में अनेकों स्थलों पर किया गया है इसलिए विस्तार से यहाँ वर्णन नहीं किया गया है।

शमो दमो दया धर्मः संयमो विनयो नयः।
तपो यशो वचोदाक्ष्यं दीयतेऽन्न प्रदायिना ॥ 92

कषायों की मंदता (शम) इंद्रियों का निग्रह रूपी दम, दया, धर्म, संयम, विनम्रता, नय, तप, वचन का चतुरपना यह सब अन्न देने वाले अन्नदाता अन्नदान के माध्यम से पात्र को देता है। अर्थात् जो आहारदान देता है वह उपरोक्त गुणों को भी साथ–साथ धारण कराता है।

क्षुद्रोगेण समो व्याधिराहारेण समौषधिः ।
नासीन्नास्ति न चाभावि, सर्वव्यापारकारिणी ॥ 93

तीन काल में क्षुधा रोग के समान दूसरा कोई रोग नहीं है और भोजन के समान दूसरी औषधि नहीं है।

दुर्गन्धिकुथितं शीर्णं, विवर्णं नष्टचेष्टितम् ।
भोजनैन बिना गात्रं, जायते मृतकोपमम् ॥ 94

जिस प्रकार शव दुर्गन्धयुक्त, सडागला विवर्ण को प्राप्त होकर नष्ट होता है उसी प्रकार भोजन के बिना यह शरीर मृतक के समान हो जाता है।

न पश्यति न जानाति, न श्रृणोति न जिघ्रति।
न स्पृशति न वा वक्ति, भोजनेन बिना जनः ॥ 95

भोजन के बिना मनुष्य न देख सकता है, न जान सकता है, न सुन सकता है, न सूँघ सकता है, न स्पर्श कर सकता है, न बोल सकता है, अर्थात् इन क्रियाओं के लिए जो ऊर्जा चाहिए वह ऊर्जा भोजन से प्राप्त होती है और भोजन के बिना उस शक्ति के अभाव से उपर्युक्त कार्य नहीं हो सकते हैं।

यश्चैवाहारमात्रेण शरीरं, रक्ष्यते नृणां।
चामीकरस्य, कोटिभिर्वहीभिरपि नो तथा।। 98

जिस प्रकार आहार से शरीर की रक्षा होती है उसी प्रकार अनंत कोटि सुवर्ण से शरीर की रक्षा नहीं हो सकती है। इसलिए सुवर्ण आदि से भी अधिक भोजन का मुल्य है।

क्षिप्रं प्रकाश्यते सर्वमाहारेण कलेवरम् ।
नभो दिवाकरेणैव, तमोजालवगुंठितं ।। 99

जिस प्रकार अंधकार से व्याप्त आकाश सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है

उसी प्रकार शरीर भी आहार से प्रकाशित होता है अर्थात् शरीर को ऊर्जा, कार्य क्षमता भोजन के द्वारा प्राप्त होती है।

बिना भोगोपभोगेभ्यश्चिरं जीवति मानवः।
न बिनाऽऽहारमात्रेण तुष्टि पुष्टि प्रदायिन ॥ अ. 11 श्लोक 24

भोगोपभोग के बिना तो मनुष्य बहुत काल तक जीवित रह सकता है परन्तु संतोष और पुष्टता को देने वाले भोजन के बिना जीवित नहीं रह सकता है।

हीयंते निखिलाचेष्टा बिनाभोजनमात्रया ।
गुप्तयो व्यवतिष्ठते बिना कुत्र तितक्षया ॥ 27

भोजन रूपी मात्रा के बिना समस्त चेष्टायें नाश को प्राप्त हो जाती हैं। जिस प्रकार कि क्षमा के बिना मन, वचन, काय की गुप्ति कहाँ रह सकती है ? उसी प्रकार भोजन के बिना शरीर की चेष्टायें नहीं हो सकती है। प्राणी शरीर भोजन के बिना शीघ्र ही नष्ट हो जाता है जिस प्रकार जल के बिना कोमल सस्य स्थिर नहीं रह सकता है।

औषधिदान

न शक्नोति तपः कर्तुं सरोगः संयतो यतः ।
ततो रोग पहारार्थं देयं, प्रासुकमौषधं ।। 100

जो रोग से युक्त संयमी है, वह तप करने में समर्थ नहीं होता है इसलिए रोग निवारण करने के लिए शुद्ध, प्रासुक औषधि का दान देना चाहिए।

न देहेन बिना धर्मो न धर्मेण बिना सुखं ।
यतोऽतो देहरक्षार्थं, भैषज्यं दीयते यते ॥ 101

देह के बिना धर्म नहीं है और धर्म के बिना सुख नहीं है। इसलिए देह की रक्षा के लिए साधुओं को औषधिदान देना चाहिए।

शरीरं संयमाधारं रक्षणीयं तपस्विनां ।
प्रासुकैरोषधैः पुसां, यत्नतो मुक्तिकांक्षिणा।। 102

मुक्ति को चाहने वाले संयमियों को औषधि के द्वारा शरीर की रक्षा करनी चाहिए क्योंकि शरीर संयम का आधार है। शरीर की रक्षा से संयम की रक्षा होती है और संयम से मुक्ति भी मिलती है।

रोगैर्निपीडितो योगी न शक्तो व्रतरक्षणे।
नास्वस्थैः शक्यते कर्तुं स्वस्थकर्म कदाचन ॥ 35

रोगों से पीडित साधु व्रतों की रक्षा करने में असमर्थ हो जाता है। क्योंकि आकुलता सहित जीव के द्वारा निराकुल कार्य कदापि नहीं हो सकता है अर्थात् आकुलता में वह निराकुल कार्य करने में समर्थ नहीं होता है।

चारित्रं दर्शनं ज्ञानं स्वाध्यायो विनयो नयः ।
सर्वेऽपि विहितास्तेन दत्तं येनौषधं सताम् ॥ 41

जिसने साधुओं को औषधिदान दिया उसने मानो साधुओं को चारित्र, दर्शन, ज्ञान, स्वाध्याय, विनय, नीति ये सब कुछ दान में दिया।

ज्ञानदान

विवेको जन्यते येन संयमो येन पाल्यते।
धर्म प्रकाश्यते येन मोहो येन विहन्यते।। 103
मनो नियम्यते येन रागो येन निकृत्यते।
तद्देयं भव्यजीवानां शास्त्रं निधूतकल्मषं ॥ 104

जिसके द्वारा विवेक उत्पन्न होता है और जिस के द्वारा संयम का पालन होता है और जिस के द्वारा धर्म प्रकाशित होता है, जिस के द्वारा मोह का नाश होता है और जिस के द्वारा मन निश्चल होता है और जिस के द्वारा राग को नाश किया जाता है ऐसा पापनाशक ज्ञानदान करने योग्य है।

विवेको न बिना शास्त्रं नमृते न तपो यतः।
तपस्तपोविधानाय देयं, शास्त्रमनिंदितं ॥ 105

शास्त्रों के बिना विवेक नहीं है और विवेक के बिना तप नहीं है इसलिए तप करने के लिए पाप रहित शास्त्रदान देना चाहिए।

स्वास्थ्य कर विचार-विहार-आहार

मनुष्य जन्म मिलना इस संसार में अत्यंत दुर्लभ है क्योंकि अच्छी चीज की उपलब्धि कठिनाई से होती है और मनुष्य जन्म स्वयमेव दुर्लभ है। मनुष्य और भी अनेक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। क्योंकि इस ही मनुष्य अवस्था में जीव स्वयं में निहित अनंत शक्तियों को एवं सम्भावनाओं को पूर्ण विकसित कर सकता है, प्राप्त कर सकता है जिससे मानव से महामानव एवं महामानव से भगवान् बन सकता है। परन्तु पूर्व संचित कुसंस्कार के कारण विपरीत एवं असम्यक् विचार-विहार-आहार के कारण मानव, सच्चा मानव न बनकर इसके विपरीत दानव बन जाता है। इसलिए गणधर देव ने तीर्थंकर परमदेव से प्रश्न किया था कि हे भगवन्! किस प्रकार आहार-विहार-विचार करने से पाप बंध नहीं होगा ? तीर्थंकर परमदेव ने कहा था कि समीचीन आहार-विहार-विचार करने से पाप बंध नहीं होता है। उनका प्रश्न-उत्तर निम्नप्रकार है।

कधं चरे कधे चिट्ठे कधमासे कथं सये ।
कधं भुंजेज्ज भासिज्ज कधं पांव ण बज्झदि ॥ मूलाचार 1014

हे भगवन्! कैसा आचरण करें, कैसे ठहरें, कैसे बैठें, कैसे सोवें, कैसे भोजन करें एवं किस प्रकार बोलें कि, जिससे पाप से पाप-बंध नहीं हो?

आदर्श जीवन-चर्या :-

जदं चरे जदं चिट्ठे जदमासे जदं सये ।
जदं भुजेज्ज भासे एवं पावं ण बज्झइं ॥ 1015

यत्नपूर्वक गमन करें, यत्नपूर्वक खडेहों, यत्नपूर्वक बैठें, यत्नपूर्वक सोवें, यत्नपूर्वक आहार करें और यत्नपूर्वक बोलें, इस तरह करने से पाप का बंध नहीं होगा।

जदं तु चरमाणस्स दयापेहुंस्स भिक्णुणो ।
णवं ण बज्झदे कम्मं पोराणं च विधूयदि।। 1016

यत्नपूर्वक चलते हुए दया से जीवों को देखने वाले साधु के नूतन कर्म नहीं बँधते हैं और पुराने कर्म झड जाते हैं। साधारणतः जीव भोजन के कारण, असम्यक् प्रवृति के कारण, अयत्न पूर्वक उठने, बैठने, बोलने के कारण पाप कर्म को बाँधता है परन्तु वही कार्य यदि सावधानी पूर्वक विवेक सहित जीवों की रक्षा करते हुए करता है तो पाप बंध कम होता है। नारायण कृष्ण ने भी गीता में कहा है।

युक्ताहारविहारस्य युक्ताचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वाजावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥

जो मनुष्य आहार-विहार में दूसरे कार्मो में, सोने जागने में परिमित रहता है, उसका योग दुःख भंजन हो जाता है।

नात्यश्नतस्तु योगेऽस्ति न चैकान्तमनश्यतः ।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रता नैव चार्जुन ॥

हे अर्जुन ! यह समत्वरूप योग न तो ठूंसकर खाने वाले को, न उपवासी को, वैसे ही, वह बहुत सोने वाले या बहुत जागने वाले को भी प्राप्त नहीं होता।

युक्त आहार-विचार-उच्चार आदि से केवल हमारा परलोक ही सुखमय नहीं बनता परन्तु वर्तमान जीवन भी सुखमय बनता है। क्योंकि योग्य आहार-विहार से न मानसिक रोग होता है, न शारीरिक रोग होता है। इसके साथ-साथ उसको समाज में परिवार में आदर भी मिलता है। इसके विपरीत असम्यक् आहार-विहार करने वाला व्यक्ति शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से अस्वस्थ रहता है। उसका जीवन भार स्वरूप हो जाता है। वह न स्वाभिमान से जी सकता है और न गौरवमय बन सकता है। आधुनिक चिकित्सा-मनोविज्ञान में सिद्ध किया गया है कि अयोग्य आचार-विचार से अनेक मानसिक रोग हो जाते हैं, जिसके कारण अनेक शारीरिक रोग भी हो जाते हैं। मनोविज्ञान के अनुसार अनेक शारीरिक रोगों के मूल कारण मानसिक रोग ही हैं। यह आधुनिक मनोविज्ञान

का सिद्धान्त भारतीयों के लिए नवीन नहीं है। परन्तु यह सिद्धान्त अत्यन्त प्राचीन एवं अतिपरिचित भी है। आधुनिक चिकित्सा की विभिन्न शाखाएँ एवं उपशाखाएँ भारतीय जन–जीवन में धार्मिक शास्त्र में, धार्मिक क्रियाकाण्डों में एवं आयुर्वेद में यत्र–तत्र बिखरी पडी हुई हैं। निम्न में एक आयुर्वेद का सूत्र प्रस्तुत कर रहा हूँ–

नित्यं हिताहार विहार समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्ताः।
दाता समः सत्य परः क्षमावनाप्तोपसेवी च भवत्यरोगः।। अष्टांग 36

जो सतत् हितकर आहार, योग्य विहार करता है, विवेकपूर्वक परिणाम से विचार करके प्रत्येक कार्य करता है, पंचेन्द्रियजनित विषय में आसक्त नहीं होता है, यथायोग्य पात्र को यथायोग्य दान देता है, लाभ–अलाभ, शत्रु–मित्र में समता भाव धारण करता है। सत्य ग्राही, क्षमावान, देव-शास्त्र-गुरू, गुणीजन-वृद्धजनों की सेवा करता है, वह निरोग होता है।

जैनधर्मानुसार रोग होने का मूल कारण पूर्व उपार्जित पाप कर्म का कारण खोखा आचार–विचार है। इसलिए शारीरिक स्वास्थ के साथ– साथ मानसिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिए सम्पूर्ण पाप कर्मों से निवृत्त होना आवश्यक है। इसलिए जैन आयुर्वेद कल्याण–कारक में जैनाचार्य उग्रादित्य ने सम्पूर्ण स्वास्थ्य के लिए पाप कर्मों से निवृत्त होने पर जोर दिया है। यथा–

कर्मों के उदय के लिए निमित्त कारण

जीवस्वकर्मार्जितपुण्यपाप। फलं प्रयत्नेन विनापि भुंक्ते ॥
दोषप्रकोपोपशमौ च ताभ्या। मुदाहृतौ हेतुनिबंधनौ तौ॥ 10 क.का.

यह जीव अपने कर्मोपार्जित पुण्य–पाप फल को बिना प्रयत्न के ही अवश्य अनुभव करता है। वात्तपित्तादि दोषों के प्रकोप और उपशम पाप कर्म व पुण्यकर्म के फल को देने में निमित्त कारण है।

रागोत्पति के हेतु -

सहेतुकास्सर्वविकारजाता। स्तेषां विवेको गुणमुख्यभेदात्॥
हेतुः पुनः पूर्वकृतं स्वकर्म। ततः परे तस्य विशेषणानि ॥ 11

शरीर में सर्व विकार (रोग) सहेतुक ही होते हैं। परन्तु उन हेतुओं को जानने के लिए गौण और मुख्यविवक्षा से विवेक से काम लेने की जरूरत है। रागादि विकारों के मुख्य हेतु अपने पूर्व कृत कर्म हैं। बल्कि वे सब उसके विशेषण हैं अर्थात् निमित्त कारण है, गौण हैं।

आयुर्वेदानुसार रोग के कारण

कार्य की निष्पत्ति-समवायी, निमित्त तीन कारणों से होती है। ये ही तीनों रोग रूपी कार्य बनने में भी आवश्यक होते हैं जैसे दोष-प्रकोप (समवायों) तथा उस दोष का विशिष्ट स्थान में होने वाला संयोग-संप्राप्ति रूप (असमवायों) और दोषों को प्रकोपक कारण मिथ्याहार-विहारादि निमित्त कारण होते हैं।

निमित्त कारण के भेद :-निमित्त कारण सामान्य तथा विशेष भेद से 2 प्रकार के हैं। जैसे केवल मात्र वातादि दोषों को कुपित करने वाले कारणों को सामान्य निमित्त कारण कहा जाता है। क्योंकि ये वायु, पित्त, कफ आदि दोषों को समान रूप से कुपित करने वाले कारण हैं अतः इन्हें सामान्य निमित्त कारण नाम से संबोधित किए जाते हैं।

1) वात प्रकोप के कारण:-रूक्ष गुण वाली ठंडी वस्तुओं का सेवन अल्प मात्रा में लघु अन्न का सेवन अधिक मैथुन अधिक रात्रि जागरण, पंचकर्मों का अनुचित प्रयोग, विरूद्ध आहार का प्रयोग, दोष ओर रक्त का अधिक स्राव, लंघन अधिक, तैरना अधिक, चलना अधिक, व्यायाम अधिक, धातु क्षय, चिन्ता, क्रोध, शोक, लम्बी बीमारी, सोने का कष्ट, बैठने का कष्ट, दिन में सोना, भय, मल-मूत्रादि वेगों को रोकना, आम दोष, चोट लगना, भोजन न करना, मर्म स्थानों का अभिघात, शीघ्र गति वाली सवारी से गिरना, कटु कषाय तिक्त रसों का प्रयोग, शुष्क-साग, माँस, जङ्गली कोदों, श्यामा, मटर, चवला, ठंडा, मेघों का समय, अधिक हवा चलना, वर्षा ऋतु, प्रातः काल-अपराह्न अन्न जीर्ण काल।

2) पित्त प्रकोप के कारण:- क्रोध, शोक, भय, परिश्रम, विदग्ध पदार्थों का सेवन, मैथुन, कडवे, खट्टे, नमकीन, तीक्ष्ण, उष्ण, दाहोत्पादक वस्तुओं का सेवन, तिल तैल, खली, कुलथी, सरसों, अलसी तैल, हरे शाक, गोधा, मछली, बकरी, भेड का माँस, दही, मट्ठा, कूर्चिका, कांजी, सुरा, खट्टे फल, कट्वर, उष्ण पदार्थ गर्मी के दिनों में शरद ऋतु, मध्यान्ह, अर्द्धरात्रि, अन्न पचन काल।

3) कफ प्रकोप के कारण :- दिन में सोना, श्रम-व्यायाम न करना, आलस्य, मधुर, अम्ल, लवणरस, शीत, स्निग्ध, गुरू गुण, चिपचिपे, अभिष्यन्दी जौ, इत्कट, उडद, गेहूँ, तिल, महीन आटा, दही, दूध,खीर, खिचडी, गुड, खाण्ड, आनूप प्राणियों का माँस, जलीय प्राणियों का माँस, चरबी, कमल नाल, कसेरू, सिंघाडा, नारियल, वल्ली फल, लौकी, मद्यपान, शीतपान , शीत काल, बसंत ऋतु, पूर्वाह्न, प्रदोष, भोजन करते ही।

विशेष निमित्त कारण - कुछ निमित्त कारण ऐसे भी होते है जिनसे केवल मात्र दोष ही नहीं होता अपितु उस दोष प्रकोप के साथ स्रोतों से दुष्टी होकर स्थान वैगुण्य भी बन जाता हैं तत्पश्चात् यह स्थान रसादि धातु, पुरीषादिमल, आशय, स्रोत आदि बन जाता है इन्हें हेतु- विशेष या समुत्थान विशेष नाम दिया जाता है।

स उव कुपितो दोषः समुत्थान विशेषतः। बुद्धाहेतु विशेषांश्य -

विशिष्ट रोगोत्पादक रूप स्थानदुष्टी करना यह किन्हीं द्रव्यों का विशिष्ट प्रभाव होता है वाग्भट, चरक, सुश्रुत आदि आर्ष ग्रन्थों में रोग निदान प्रकरण में प्रत्येक रोग के साथ इन रोगोत्पादक हेतु विशेषों की सारणी दी हुई है। चिकित्सा की दृष्टि से इन हेतु विशेषों का बडा महत्व है 'संक्षेपतः क्रिया योगो निदान परिवर्जनम्' जिन रोगों के हेतु विशेषों का निर्णय नहीं हो सका वे रोग आज भी वैज्ञानिकों के लिए पहेली बने हुए है। जैसे कैंसर, यह सर्वविदित है। बीजदुष्टी जिससे कि स्रोतोंवैगुण्य बनता है और अंतर्भाव भी विशेष विभिन्न कारण में होता है कारण शुक्र व रज में नाना प्रकार के शरीर के अवयवों को बनाने वाले बीजभूत परमाणु रहते हैं उनमें जिस अवयव का बीजभूत परमाणु वहाँ रहने वाले दोषों से दूषित या उपतप्त हो जाता है उस स्थान की दुष्टि हो जाती है। कभी-कभी बिना कारणों के ही भयंकर रोगोत्पत्ति हो जाती है जबकि ऐसे रोग मातृवंश या पितृवंश में किसी को नहीं होते अतः उनके लिए 'पापकर्म च दुकृतम्' या 'काश्चित्पूर्वापराधजः।' इस प्रकार बीज दुष्टी या पाप कर्म अथवा रोगोत्पादक विशेष आहार-विहार इन कारणों से कुपित दोष इसमें बलवान् तथा प्रभावी हो जाते हैं कि उनसें विशिष्ट रोग को पैदा करने वाला स्रोतोवैगुण्य बन जाता है अतः उन्हें प्रकृत्यारंभक दोष कहते हैं। हेतु विशेष से कुपित हुए प्रकृत्यारंभक दोष कपोतन्याय से अकस्मात् विशिष्ट स्थान पर आघात कर शरीर की धातुसाम्यता को नष्ट कर देते हैं, जो कि अभिव्यक्ति हो दोष विशिष्ट स्थानों में धावन करने लगते हैं।

विकृत्यारंभक दोषों की स्थिति उपरोक्त से भिन्न होती है। इस के अनुसार लक्षण भी दोषलक्षण, रोगलक्षण, भेद से दो प्रकार के हैं। जिनसे केवल मात्र दोष का ज्ञान हो उन्हें दोषलक्षण कहते हैं। तथा रोग लक्षण प्रतिरोग के साथ बतलाया गया है। दोष लक्षण -

वायु लक्षणः-स्रंस (अंग का अपने स्थान से थोडा हट जाना), भ्रंश (अंग का अपने स्थान से दूर हट जाना), प्यास (अंग का अपने स्थान से थोडा विस्तार हो जाना), सङ्ग (मल-मूत्रावरोध), भेद (चीरने के समान पीडा), अवसाद, शरीर में हर्ष (रोमांच होना), प्यास लगना, शरीर काँपना, वर्त्त (मल का गोला बनना), चाल (स्पंदन होना), सुई चुभना दबाने की सी पीडा, देह में चंचलता, खुरदरा, टेढामेडा, विषद, छेदवाला (सुषिर), गुलाबी रंग, कषाय रस, मुख वैरस्य, मुख शोष, शरीर में शूल, शून्यता, संकोच, जकडाहट, लंगडापन।

पित्त लक्षणः- शरीर में जलन, ताप में वृद्धि, व्रण आदि पकना, स्वेदाधिक्य, क्लेद, सडन, खुजली, स्राव, लालिमा, पीला वर्ण, उष्णता, तीक्ष्णता, सरलता, द्रवाधिक्य,कच्चे माँस के समान गंध, कटु अम्ल रस।

कफ लक्षणः- स्नेहपन (चिकना), शीतलपन (ठंडा), श्वेतपन (सफेदी), भारीपन, मीठापन, स्थिरपन, पिच्छीलपन, मसृणपन, खुजली, शून्यता, क्लेद, मल लिपटा हुआ, बंध, मीठापन, चिरकारी रोग।

इत्यरशेषामव्यापी यदुक्तं दोष लक्षणम्। इस प्रकार जब सामान्य दोष का स्थान संश्रय हो जाता है तो संचम, प्रकोप, प्रसर स्थान संश्रय केदार कुल्या न्याय से होकर एक धातु से दूसरे धातु तक या एक स्रोत से दूसरे स्रोत तक प्रवेश व संचार होकर वैगुण्य बनाता है। परन्तु जब तक अभिव्यक्ति नहीं होती तब तक रोग नहीं होता हैं केवल भिन्न-भिन्न दोष लक्षण होते हैं और हेतु विशेष से यदि दोष को स्त्रोत वैगुण्य मिल जाता है वहीं स्थान संश्रय कर वातज, पित्तज, कफज आदि भेद अवस्था बना कर रोग की अवस्था रूप विकृति नाम से पुकारा जाता है। अतः इन्हें विकृत्यारंभक नाम देना सार्थक प्रतीत होता है। इनका नामकरण का यह भेद तत्व से न होकर औपाधिक है।

रोग निर्माण की प्रक्रिया में केवल मात्र दोष को कारण नहीं कहाँ जा सकता क्योंकि दोष दूष्य संमूर्च्छना हि रूजा लक्षण वाले रोग को बनाती है।

कुपितानां हि दोषाणां शरीरे परिधावताम्।
यत्र संगः खवैगुण्याद् व्याधिस्तत्रोपजायते।
व्यानेन रसधातुहि विक्षेपोचित कर्मणा।
क्षिप्यमाणः खवैगुण्याद्रसः सज्जति यत्र सः।

इस प्रकार में खवैगुण्यता का महत्व बताया गया है- अपने-अपने कारणों से कुपित हुए दोष प्रकृत्यारंभक मार्गों से बने मार्ग से उसी स्थान मे प्रवेश करते है इस कारण दोष भेद या अवस्था भेद से रोग के सामान्य रूप में परिवर्तन होना विकृति कहलाती है।

(वैद्य औमप्रकाश शर्मा)

क्यों होते हैं जैन संत भी अस्वस्थ्य ? कारण एवं निवारण।

''स्व में स्थित हो जाना, लीन हो जाना, रम जाना ही स्वास्थ्य है।''

इसलिए स्वास्थ्य जीव की स्वाभाविक प्राकृतिक अवस्था है। स्व से विचलित हो जाना, च्युत हो जाना, बिखर जाना अस्वास्थ्य होने से जीव की अस्वाभाविक, अप्राकृतिक-विकृत/विकार अवस्था ही अस्वास्थ्य है। समस्त शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक या अधिभौतिक, अधिदैविक अथवा जन्म, जरा, मरण रूपी विकार अवस्थाओं से पूर्ण रूप से निवृत्त होकर ''सच्चिदानन्द'' या ''सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम्'' स्वरूप निज प्राकृतिक-

सहज-नित्यानन्दमय निराकुल, अजर-अमर-अक्षय अमृतावस्था की उपलब्धि ही यथार्थ से परम स्वास्थ्य है। परंतु अविद्या, कुसंस्कार से प्रेरित होकर यह मोही जीव सहज प्राकृतिक अवस्था को त्यागकर मन-वचन-काय से अप्राकृतिक आहार-विचार-उच्चार-आचार करने से आधि-व्याधि-उपाधि रूपी विकारों से विकृत होकर अस्वस्थ अवस्था को प्राप्त होकर आकुल-व्याकुल होता है।

''वत्थु सहावो धम्मो'' अर्थात् वस्तु का अपना प्राकृतिक भाव ही धर्म होने से परम स्वास्थ्य ही जीव का धर्म है एवं अप्राकृतिक, अस्वस्थ भाव ही अधर्म है। स्वास्थ्य अपना धर्म होने से प्रत्येक जीव का परम कर्तव्य एवं पवित्र अधिकार है- स्वास्थ्य को प्राप्त करना। अस्वास्थ्य जीव का अपना धर्म न होने के कारण अस्वस्थ अवस्था में आकुलता-व्याकुलता प्राप्त होती है। इसलिए प्रत्येक जीव का प्रधान एवं प्रथम कर्तव्य है कि अस्वस्थता को साधिकारपूर्वक स्वयं से दूर हटाये।

धर्म के लिए परिशुद्ध मन चाहिए एवं परिशुद्ध मन के लिए परिशुद्ध शरीर तथा आहार चाहिए। यथा -

"Healthy mind in a healthy body." Or "A sound mind in a sound body." "Our Body is what we eat." "Diet cures more then doctors."

सारांश यह है कि शुद्ध आहार-विचार-आचार-उच्चार-स्वास्थ्य ये सब परस्पर अनुपूरक-परिपूरक हैं। इनमें से एक के लिए भी अन्य की नितान्त आवश्यकता है। इसमें से एक में भी असन्तुलन पैदा होने से अन्य में भी असन्तुलन पैदा हो जाता है।

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् -प्रत्येक जीव का परम लक्ष्य सुख एवं शान्ति प्राप्त करना है। शाश्वतिक सुख-शान्ति प्राप्त करने के लिए प्रबल पुरूषार्थ चाहिये। पुरूषार्थ के लिए मानसिक एवं शारीरिक शक्ति चाहिए। इस शक्ति के लिए निरोग स्वास्थ युक्त शरीर चाहिए और शरीर को दृढ, कार्यक्षम, निरोग रखने के लिए भी स्वास्थ्य चाहिए।

चतुः प्रकाराः प्रतिपादिता इमे। समस्तरोगास्तनुविघ्नकारिणः ॥
ततश्चतुर्वर्गविधानसाधनं । शरीरमाद्यं परिरक्ष्यते बुधैः ॥ 61

''कल्याणकारक'' अध्याय - 7

चार प्रकार के रोग होते हैं। यह सम्पूर्ण रोग शरीर को बाधा पहुँचाने वाले हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी चार पुरूषार्थ के लिए शरीर प्रधान साधन-भूत है। शरीर के बिना चारों पुरूषार्थ सिद्ध नहीं हो सकते हैं। कहा है- **''धर्मार्थकाममोक्षाणम्, आरोग्यं मूलमुत्तमम्।''** धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष के लिए आरोग्य उत्तम मूल कारण है। इसलिए नीतिकारों ने यथार्थ से कहा है-

''शरीरमाद्यं खलुधर्मसाधनम्'' निश्चय से धर्म साधन के लिए शरीर प्रथम एवं प्रधान माध्यम है। इसलिए ऐहिक एवं पारलौकिक सुख-शांति के लिए स्वास्थ्य परम आवश्यक है।

आरोग्यकी आवश्यकता -

न धर्मस्य कर्ता न चार्थस्य हर्ता न कामस्य भोक्ता न मोक्षस्य पाता।
नरो बुद्धिमान् धीरसत्वोऽपि रोगी यतस्तद्विनाशद्धवेन्नैव मर्त्य : ॥ 90

मनुष्य बुद्धिमान, दृढमनस्क होने पर भी यदि रोगी हो तो वह न धर्म कर सकता है, न धन कमा सकता है और न मोक्ष साधन कर सकता है। अर्थात् रोगी धर्मार्थकाममोक्षरूपी चतुःपुरुषार्थ की साधना नहीं कर सकता। जो पुरुषार्थ को प्राप्त नहीं कर पाता है वह मनुष्यभव में जन्म लेने पर भी मनुष्य कहलाने योग्य नहीं है क्योंकि मनुष्यभव की सफलता पुरुषार्थ प्राप्त करने से ही होती है।

रोगों का कारण पूर्वार्जित कर्म - प्रत्येक कार्य के लिए अंतरङ्ग (उपादान-मुख्य) तथा बहिरङ्ग (निमित्त-गौण) कारण चाहिए। दोनों कारणों के समुदाय से ही कार्य सम्पादन होता है। उपादान कारण को कार्यरूप से परिणमन करने के लिए निमित्त कारण की आवश्यकता होती है परंतु उपादान कारण के अभाव से निमित्त कारण कार्य करने के लिए अकिञ्चित्कर (कुछ नहीं करने वाला) उदासीन होता है। रोग उत्पत्ति के लिए वात, पित्त, कफ की विकृति, असम्यक् आहार, अयोग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, रोगाणु, दूषित वायु, रोग संक्रामक कारण आदि बाह्य कारण हैं। परंतु मुख्य कारण पूर्वोपार्जित असातावेदनीयकर्म (पापकर्म, जिनोम, D.N.A., R.N.A.) है। आयुर्वेद मर्मज्ञ जैनाचार्य श्री उग्रादित्य जैन आयुर्वेद ''कल्याण कारक'' में रोग उत्पत्ति के कारण बताते हुए वर्णन करते हैं कि -

सहेतुकस्सर्वविकारजाता। स्तेषां विवेको गुणमुख्यभेदात् ॥
हेतुः पुनः पूर्वकृतं स्वकर्म। ततः परे तस्य विशेषणानि ॥ 11

शरीर में सर्वविकार (रोग) सहेतुक ही होते हैं, परंतु उन हेतुओं को जानने के लिए गौण और मुख्य विवक्षा रूपी विवेक से काम लेने की जरुरत है। रोगादि विकारों का मुख्य हेतु अपने पूर्वकृत कर्म हैं बाकी के सब उनके विशेषण हैं अर्थात् निमित्त/गौण कारण है।

रोग कारक बाह्य निमित्तों का प्रभाव :- धवला, जयधवला, गोम्मटसार कर्मकाण्ड आदि शास्त्रों से ज्ञात होता है कि कर्म के उदय एवं फल दान के लिए भी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की आवश्यकता पडती है। प्रशस्त, अनुकूल, शुभ द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव से अशुभ/पाप/रोग कारक कर्म भी पूर्ण क्षय हो जाते हैं या पुण्य रूप से परिवर्तित हो

जाते हैं या मंद फल देते हैं। इसलिए शुद्ध, प्रशस्त, प्रदूषण रहित, अनुकूल द्रव्य (भोजन, पानी), क्षेत्र (निवास, विहार स्थल), काल (ऋतु, समय), भाव (विचार, उद्देश्य, भावना तथा व्यवहार भी) से शारीरिक, मानसिक, आध्यत्मिक स्वास्थ्य सही रहते हैं और इससे विपरीत द्रव्यादि से स्वास्थ्य सही नहीं रहते हैं।

1) योग्य एवं अयोग्य द्रव्य :- भले जैन संत दिन में एक बार शाकाहार ग्रहण करते हैं परंतु बहुत बार साधुओं को अपने स्वास्थ्य, आयु, आवश्यकता, स्वाध्याय, श्रम के अनुकूल ताजा, पौष्टिक, पर्याप्त, ऋतु अनुकूल आहार नहीं मिलता है जिसके कारण साधुओं के अस्वस्थ होने का कारण बनता है। इसके साथ-साथ एक बार आहार लेने से पानी का अनुपात कम होता है, विरोध रसों का एक साथ सेवन होता है, पानी लेने के आयुर्वेदीय नियम का पालन नहीं होता है। अन्तराय होना अस्वास्थ्य के लिए बडा कारण बन जाता है। इन सब कारणों से पोषक तत्त्वों तथा पानी की कमी से शारीरिक-शक्ति तथा रोग-प्रतिरोधक शक्ति कम हो जाती है, शारीरिक गर्मी बढ जाती है, पित्त की वृद्धि तथा विकृति हो जाती है, वमन, सिरदर्द, पेट विकार आदि हो जाते हैं।

2-3) योग्य एवं अयोग्य क्षेत्र एवं काल :- आगमानुसार चातुर्मास में कम से कम चार महिना से लेकर 5½ महिना तथा गर्मी में एक महिना तथा शीत में एक महिना विहार नहीं करना चाहिये। योग्य एक स्थान में ही रहना चाहिये। इसके मुख्य कारण है- अहिंसा का पालन एवं स्वास्थ्य के सम्पादन। परंतु पंचकल्याणक, विधान, धार्मिक कार्यक्रम, प्रभावना, श्रावकों के आग्रह आदि के कारण साधुओं के विहार, निवास, आहार, चातुर्मास आदि भी अयोग्य क्षेत्र, काल आदि में होते हैं। नग्न शरीर-पैर, एक बार आहार या अन्तराय अथवा कभी-कभी अस्वस्थ अवस्था की समस्या उत्पन्न होती है। विशेषत: नगर में जल-वायु-मृदा-शब्द-भोजन प्रदूषण अधिक होता है। इसलिए नगर के विहार-निवास-चातुर्मास स्वास्थ्य की दृष्टि से योग्य नहीं है।

4) योग्य एवं अयोग्य भाव एवं व्यवहार :- भाव का प्रभाव स्वास्थ्य एवं व्यवहार के ऊपर सबसे अधिक पडता है। पवित्र, सरल-सहज भाव का प्रभाव उपर्युक्त कारकों के ऊपर अनुकूल प्रभाव डालता है तो इससे विपरीत भाव का प्रभाव प्रतिकूल पडता है। अनेक साधु या संघस्थ साधु अथवा श्रावकों के भाव तथा व्यवहार सरल-सहज-पवित्र नहीं होने से भी स्वास्थ्य के ऊपर प्रतिकूल प्रभाव पडता है।

5) योग्य एवं अयोग्य श्रम :- उपर्युक्त कारणों के साथ-साथ शारीरिक श्रम की कमी भी अनेक रोग के लिए कारण है। अत: साधुओं को प्राणायाम, योगासन के साथ-साथ ग्राम या नगर के बाहर शौच क्रिया करने के लिए जाने पर समिति, अहिंसा के पालन स्वावलंबन, स्वच्छता के साथ-साथ स्वास्थ्य लाभ में सहयोगी बनता है। शारीरिक श्रम के अभाव से

मंदाग्नि, डायबिटीज, मोटापा, हार्टअटैक, आलस्य, गैस ट्रबल, वातरोग आदि होने की अधिक सम्भावना होती है। इसलिए आयुर्वेद, प्राकृतिक चिकित्सा, योग चिकित्सा के साथ-साथ भगवती आराधना ग्रंथ में स्वास्थ्य लाभ के लिए विहार का भी विधान है। परंतु अत्याधिक श्रम, विहार, अनिद्रा आदि भी स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। कहा भी है -

नित्य हिताहारविहार सेवी समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्ता:।
दाता सम: सत्य पर: क्षमावानाप्तोपसेवी च भवत्यरोग:।। अष्टांग 36

जो सतत् हितकर आहार, योग्य विहार करता है, विवेक पूर्ण परिणाम को विचार करके प्रत्येक कार्य करता है, पञ्चेन्द्रिय जनित विषय में आसक्त नहीं होता है, यथा योग्य पात्र को यथायोग्य दान देता है, लाभ-अलाभ, शत्रु-मित्र में समता भाव धारण करता है - सत्यपरायण, क्षमावान्, देव, शास्त्र, गुरु, गुणीजन, वृद्धजनों की सेवा करता है वह निरोगी होता है।

6) योग्य एवं अयोग्य आहार :- साधुओं को विशेषत: प्रासुक, अहिंसक, शुद्ध आहार के अन्तर्गत भी प्राकृतिक ताजा फल, हरी सब्जी, दूध, घी, मूंग, गेहुँ, चावल, नारियल पानी अधिक से अधिक पर्याप्त मात्रा में लेना चाहिये परंतु उडद, मक्का, लाल मिर्ची, तेल, ग्वार की फल्ली, सेंगरी (मोगरी), टिंडोरी, मटर, चने का बेसन, खट्टे फल, अमचूर, इमली, अधिक नमक-मसाला, गैस-स्टोव से बना हुआ भोजन आदि नहीं लेना चाहिये।

उपर्युक्त प्रकार से सतत् सावधानी पूर्वक द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के अनुकूल बर्ताव करते हुये भी यदि पूर्व कर्म के उदय से किसी प्रकार से रोग हो जाता है तो उसकी भी समुचित चिकित्सा करनी चाहिये। औषध एवं पथ्य सेवन करना चाहिये। संघस्थ साधु एवं श्रावक को भी समस्त उपर्युक्त व्यवस्थायें एवं सेवा करनी चाहिए। यह सब होते हुए भी अस्वस्थ साधु को समता से धैर्य पूर्वक विचार, व्यवहार, कथन करना चाहिए, संक्लेश नहीं करना चाहिये क्योंकि संक्लेश करने से रोग की वृद्धि अधिक हो जाती है या रोग की पीडा अधिक हो जाती है , उपचार एवं सेवा करने वाले वैद्य या संघस्थ साधु भी दु:खी एवं विचलित हो जाते हैं। समता पूर्वक धीरता एवं स्थिरता से आत्म चिंतन, आत्म-ज्ञान, ध्यान से अधिकांश रोग दूर हो जाते हैं या क्षीण हो जाते हैं अथवा उसकी पीडा कम होती है। आगम एवं प्रायश्चित्त ग्रंथ के अनुसार रोगादि विशेष परिस्थिति में साधुओं के लिए उत्सर्ग सहित अपवाद मार्ग का भी विधान है। इसलिए इस परिस्थिति में यदि रोगी, सेवा करने वाले साधु, वैद्य या श्रावक से यदि किसी प्रकार कमी या गलती हो जाती है तो भी अधिक दोष कारक नहीं है, निंदनीय नहीं है, अधिक प्रायश्चित्त योग्य नहीं है। निंदादि से तनाव होता है जिससे रोग में और भी वृद्धि होती है।

स्वास्थ्य के लिए निद्रा की भी आवश्यकता

मानसिक स्वास्थ्य विश्वकोश में निद्रा की परिभाषा इस प्रकार दी हुई है- ' निद्रा प्राणी के शरीर और मन के विश्राम के लिए स्वभावत:घटित होने वाली वह नियत कालीन अवस्था है, जिसके अंर्तगत उसकी चेतना तथा क्रियावाही समर्थताएँ बहुत हद तक अपना कार्य स्थगित कर देती हैं। अनेक वैज्ञानिकों ने इस विषय पर खोज की है और उनके भी मत अलग-अलग हैं। परन्तु सभी जिस एक बात पर सहमत हैं, वह यह कि नींद में सक्रिय गति अनुपस्थित रहती है और चेतना लुप्त हो जाती है, फिर भी केवल ऐसा ही नहीं होता। इसके अलावा उपापचय नाडी गति, रक्त दबाव, शरीरिक तापमान और तंत्रिका तंत्र की क्रियाओं में भी परिवर्तन होते हैं। सोने के दौरान ये परिवर्तन एक निश्चित क्रम में होते हैं। यह क्रिया सभी जीवों में यहाँ तक कि पादपों में भी होती है।

हमें नींद क्यों आती है? :- ऐसा अनुमान लगाया गया है कि जागने के दौरान तंत्रिका तंतु धीरे-धीर सिकुडते रहते हैं। एक स्थिति ऐसी आती है कि इन तंतुओं का सम्बन्ध टूट जाता है, तब हम सो जाते हैं। जागते समय कुछ विष (Toxin) हमारे शरीर में एकत्र हो जाते हैं। ये विष तंत्रिका तंत्र को प्रभावित करते हैं जिससे हमें नींद आती है। परन्तु सर्वमान्य सिद्धान्त वह है (Cerbral anemia theory) जिसमें मस्तिष्क को रक्त की आपूर्ति का कम हो जाना नींद लाने का कारण बताया जाता है।

अब यह भी उतना विश्वसनीय सिद्धान्त नहीं रह गया है, क्योंकि आधुनिक अध्ययन यह कहते हैं कि 'सोते समय मस्तिष्क में रक्त प्रभाह कम हो जाता है'। सन् 1920 के लगभग बारोन कांसटेंरीन वान इकोनोमो ने खोज की कि मस्तिष्क में नींद आने और जागने का केंद्र मस्तिष्क के निचले हिस्से में हाइपोथेलमस में होता है। मस्तिष्क में नींद आने और जागने के समय कुछ विद्युत् तरंगें पैदा होती हैं। ये तरंगें जागने और सोने के समय अलग-अलग विभवांतर और दैर्ध्यता की होती हैं। यह भी पाया गया है कि सोते समय उत्पन्न होने वाली तरंगें जीवन के प्रथम दस वर्षो में बाद के आने वाले वर्षों की अपेक्षा भिन्न होती है तथा कुछ बूढे व्यक्तियों के मस्तिष्क की तरंगें बालकों की तरह होती है, इसलिए बूढे अधिक सोते हैं।

सर्व प्रथम आदमी का पैर सोता है :-हम बिस्तर पर लेटते ही नहीं सो जाते, इस के लिए हमें तैयारी करनी होती है। इसमें सर्व प्रथम पैर की पेशियों में चेतना शून्यता पैदा होती है, इसलिए कहा जाता है कि सर्व प्रथम आदमी का पैर सोता है। यह शून्यता धीरे-धीरे भुजाओं,गरदन और अंतत: जबडे तथा चेहरे पर अपना प्रभाव दिखाती है और व्यक्ति सो जाता है। जब हम उठते हैं तो ठीक इसका उलटा होता है। सर्व प्रथम हमारा सिर गतिशील होता है, उसके बाद हाथ, और पैर तो सबसे बाद में गति शील होते हैं। हम यह कह सकते हैं कि यदि आप सोना नहीं चाहते है तो पैरों को तनाव की मुद्रा में रखिए । सोने

से पहले मनुष्य लगभग सम्मोहन की मुद्रा में होता है तथा 2/3 सोता रहता है तथा 1/3 जागता रहता है। सोते समय स्वप्न की मुद्रा में मनुष्य में संदिग्ध चेतना होती है। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि सम्मोहन की मुद्रा में दिखाई देने वाले सपने याद रहते हैं। बाद कि स्थितियों में दिखाई देने वाले सपने याद नहीं रहते।

आवाज से नींद की गहराई जानी जा सकती है:- नींद कितनी गहरी या तीव्र है इसकी माप उस अवाज से कि जाती है जो मनुष्य को जगाने के लिए पर्याप्त होती है। गहरी नींद में जो व्यक्ति होते हैं वे कहते हैं कि सोने के दौरान वे अपना शरीर इधर उधर नहीं घुमाते। परन्तु प्रयोग बताते हैं कि ऐसा नहीं है, लोग कई बार अपना शरीर घुमाते हैं।

निद्रा में आन्तरिक परिवर्तन होते हैं ? :- निद्रा में आंतरिक परिवर्तन भी होते हैं मांस पेशियाँ शिथिल हो जाती हैं, उपापचयी क्रियाएँ मंद पड जाती हैं तथा सोते समय ये लगभग 10% धीमी हो जाती है। नाडी गति भी धीमी हो जाती है। सोने के प्रथम घंटे में रक्त दबाव भी कम हो जाता है। ऐसा देखा गया है कि सोते समय त्वचा जैसे बाहरी अंगों में रक्त का प्रवाह बढ जाता है, जिससे शारीरिक गरमी का अधिक ह्रास होता है। यदि सोते समय शरीर को ठीक से न ढका जाए तो शारीरिक ऊष्मा का ह्रास अधिक होता है यही कारण है कि सोते समय हमें अधिक ठंडक का आभास होता है। सोते समय शरीर का आंतरिक तापमान भी कम हो जाता है । मनुष्य की श्वास लेने की क्रिया में भी परिवर्तन हो जाता है। सोते समय मनुष्य गहरी साँस नहीं ले पाता जैसा कि वह जागते समय करता है। ये सब कुछ परिवर्तन होने वाली क्रियाएँ मस्तिष्क के अन्दर उपस्थित हाइ पोथैलमस द्वारा ही नियंत्रित होती हैं।

नींद की अवधि में व्यवधान:- साधारण व्यक्तियों को नींद प्रतिदिन लगभग एक नियत समय पर नियत अवधि के लिए आती है। इस अवस्था में शारीरिक क्रियाएँ मंद पड जाती है। इस अचेतनवास्था में भी शरीर में कभी-कभी हरकत होती है। निंद्रावस्था में होने वाली यह गति इस बात का संकेत देती है कि किसी व्यक्ति की नींद शांत या गहरी है अथवा अशांत है और बेचैन।

चिंता उद्विग्नता तथा अन्य मन: अवस्थाओं का निंद्रा पर अवांछनीय प्रभाव पडता है। उदाहरण के लिए, विभिन्न अवस्थाओं में मापी गई नींद की गहराई निम्न प्रकार है-

	निद्रा में क्रियाशील मिनटों की संस्था	
घटना	सामान्य	घटना के बाद
पिता द्वारा दूसरी शादी कर लेने पर	68	120
साइकिल चोरी चले जाने पर	72	110
घर में चोरी हो जाने पर	70	140

कितनी नींद ?

नींद से मुख्यत: पुन स्फूर्ती मिलती है, परन्तु इसमें कौन सी प्रक्रिया होती है ये अभी अज्ञात है। ऐसा भी देखा गया है कि जिन लोगों को नींद से वंचित कर दिया जाता है वे अगले दिन अपने को बेचैन महसूस करते हैं। एक दिन में नींद की औसत आवश्यकता शिशु को 18-20 घंटे, स्कूल जाने वाले बच्च को 12-14 घंटे एवं प्रौढ को 7- 9 घंटे होती है।

स्वास्थ्य के लिए निद्रा की आवश्यकता:- जीवन में निद्रा का भी विशेष महत्व है। थकान मिटाने और शक्ति संचय के लिए पर्याप्त नींद लेना आवश्यक है। एक ऐतिहासिक प्रसंग है- सिकंदर का सेनापति सेल्यूकस युद्ध की थकान के बाद रात्रि को प्रगाढ निद्रा में मग्न था। सिकंन्दर ने उसे आवश्यक कार्यवश बुलाया, पर गहरी निद्रा में होने के कारण वह उठा नहीं। प्रात: काल वह सम्राट से मिलने गया । अन्य दरवारी सोच रहे थे कि सिकंदर उसे प्राण दंड देगा, पर सिकंदर ने कहाँ -''सेल्यूकस ! मेरा सारा साम्राज्य तुम ले लो और अपनी नींद मुझे दे दो।''

सम्राट नेपौलियन युद्ध क्षेत्र में भी भोजन के उपरांत आधा घंटा सोता था। पत्रकार व लेखक पं. वनारसीदास चतुर्वेदी का नियम था, भोजन के पश्चात् दो घंटे तक सोना। इस कार्य में वे कभी भी अनियमित न रहे। नींद मनुष्य की चिरसंगिनी है, जीवन दायिनी है। प्रत्येक प्राणी के लिए निद्रा आवश्यक है। नींद आने की शिकायत करने वाले व्यक्ति के चेहरे के भावों को ध्यान से देखने पर आपको पता चलेगा कि उसके मुख मंण्डल पर कितना सुस्ती एवं दीनता छा जाती है।

सचमुच नींद सबको प्यारी लगती है। नींद स्फूर्ति का संचार करती है। हम अपने जीवन का एक तिहाई भाग निद्रा देवी को समर्पित करते हैं। विज्ञान वेत्ता संसार के अन्य रहस्यों की तरह नींद के रहस्य का भी धीरे-धीरे पता लगा रहे हैं।

नींद के शत्रु :- चिंता और मानसिक तनाव निद्रा के प्रबल शत्रु हैं। चिंता केवल मानसिक क्रिया ही नहीं वरन् उसका शारीरिक पहलू भी है। चिंता स्नायुओं में तनाव उत्पन्न करती है । चिंता से ही अनिद्रा का रोग उत्पन्न होता है। बहुत से व्यक्ति नींद की गोलियाँ खाकर चिंता व तनाव से मुक्त होकर सुख की नींद सोना चाहते हैं। पर यह ठीक नहीं है। गोलियों के नशे से मनुष्य सो जायेगा, पर गोलियों का हल्का विष शरीर को मानसिक व शारीरिक रूप से अवश्य निर्बल करेगा। इसके लिए यह उपाय ठीक है कि आप स्नायुओं को शिथिल छोड दें, मस्तिष्क को विचार मुक्त कर दें चिंता व तनाव स्वत: कम हो जाएँगे और आप सुख की नींद सो सकेंगे।

नींद में दिल की धडकन प्राय: प्रति मिनट 54 होती है। गहरी निद्रा में आदमी

साँस गहरी लेता है उस समय उसका रक्तचाप भी कम हो जाता है। नींद से उठने पर दिल की धडकन रक्तवाहिनियों पर रक्त का दबाव बढने लगता है। साथ ही शरीर की उष्णता भी बढने लगती है। तब उठने का समय आता है तो पहले के अवयव धीरे-धीरे सक्रिय होने लगते हैं। यह प्रक्रिया सोने की प्रक्रिया से उल्टे क्रम में होती है। मस्तिष्क सबसे बाद में चैतन्य होता है। इंद्रियाँ भी धीरे-धीरे जागती हैं। पहले स्पर्श शक्ति आती है, फिर श्रवण, घ्राण शक्ति जाग्रत होती हैं।

विभिन्न प्रकार के निद्राप्रेमी :- शिकांगों विश्वविद्यालय के निद्रा विशेषो डॉ. नैथानील क्लीट मैन ने मनुष्यों को दो वर्गों में बाँटा है-
1)प्रभात प्रिय और 2) संध्याप्रिय

प्रभात प्रिय व्यक्ति शीघ्र उठते हैं और स्फूर्ति से कार्य करते हैं। इसका कारण यह है कि जिन व्यक्तियों का शरीर शीघ्र गरम होकर दिन के मध्य भाग उष्णता की सीमा पर पहुँच जाता है, वे शीघ्र उठते हैं और जो व्यक्ति देर से उठते हैं उनका शरीर देर से उष्णता को प्राप्त करता है।

ब्राह्ममूहुर्त में नींद खुलने से शरीर को शुद्ध ऑक्सीजन प्राप्त होती है और शरीर चुस्त रहता है। यदि आपका तापमान दिन के बारह बजे से तीन बजे तक सर्वाधिक रहता है तो आप प्रभातप्रिय हैं और यदि आपके शरीर के तापमान शाम के पाँच बजेसे आठ बजे तक सर्वाधिक रहता है तो आप संध्याप्रिय है।

सुबह उठना सामाजिक व पारिवारिक दृष्टि से उत्तम है। सोने के पूर्व हाथ-पैर धोकर सोना चाहिए। स्वच्छ बिस्तार पर भी सोना चाहिए । सोते समय चिंता मुक्त होना चाहिए । रात्रि को हल्का भोजन लेना चाहिए। इससे निद्रा गहरी आयेगी और चित्त हल्का रहेगा। जीवन का 1/3 भाग निद्रा में व्यतीत होता है, इसलिए इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती है। गहरी व स्वस्थ नींद मनुष्य को स्वस्थ और दीर्घायु बनाती है।

प्रदूषण से सम्बन्धित बीमारियाँ

अ) प्रदूषण (Pollution)एक परिचय - प्राथमिक दृष्टिकोण से औद्योगिकरण एवं नगरीकरण की प्रक्रिया ने पर्यावरण के प्राकृतिक स्त्रोतों को दूषित किया है। पर्यावरण को दूषित करने की इस परिघटना का नाम ही है - प्रदूषण (Pollution)।

प्रदूषण का शाब्दिक अर्थ है।- to make or render unclean. मानवीय गतिविधियों के फलस्वरूप वातावरण (पर्यावरण) में हानिकर पदार्थ का युक्त होना प्रदूषण कहलाता है। प्रसिद्ध पारिस्थितिकी वैज्ञानिक (Ecologist) के शब्दों में " हमारी पृथ्वी के वायु अथवा जल के भौतिक, रासायनिक अथवा जैविक लक्षणों में अनैच्छिक बदलाव जो सम्पूर्ण

जैवमण्डल (Biosphere) के लिए हानिकारक हो प्रदूषण कहलाता है।

ब) प्रदूषक (Pollutants)ऐसे पदार्थ जो वातावरण (पर्यावरण) में प्रदूषण का कारण बनते हैं प्रदूषक कहलाते हैं। उदाहरणार्थ- उद्योगों से निकले उत्सर्जक पदार्थ वाहितमल, कीटनाशक इत्यादि ।

स) प्रदूषकों का वर्गीकरण (Classification of pollutants)

अ)पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण के आधार पर दो प्रमुख भागों में विभाजन

(A)अक्षयकारी प्रदूषक (Non deghadable pollutants)- 1) इनका अपघटन नहीं होता है। 2) ये वातावरण में लम्बे काल तक अपना अस्तित्व बनाए रखते हैं। 3) ये पर्यावरण के लिए हानिकारक होते हैं, क्योंकि अपघटित नहीं होने के कारण ऊर्जा की प्राप्ति नहीं होती है। उदाहणार्थ- डाइक्लोरो डाइफिनाइल, ट्राइक्लोरो इथेन (DDT) मैटेलिक ऑक्साइडस पारद लवण (Mercury salts). ऐल्यूमीनियम केन्स इत्यादि।

(B)क्षयकारी प्रदूषण (Degradable pollutants)1) इनका अपघटन होता है । 2) वातावरण में इनकी उपस्थिति अल्प कालतक ही रहती है ।3) ये पर्यावरण के लिए कम हानिकारक होते है क्योंकि ये जल्द अपघटित हो जाते हैं एवं इनके अपघटित होने से ऊर्जा भी प्राप्त कर सकते हैं। उदाहरणार्थ - वाहितमल (Sewage) उष्मा, शोर इत्यादि।

1) ठोस प्रदूषक अथवा कूडा करकट (Garbage)उदाहरणार्थ-रसोई का कचरा, इमारतों का मलबा, प्लास्टिक, पॉलीथिन की थैलियाँ, मृत जंतुओं के कंकाल इत्यादि ।

2) जलीय प्रदूषक :- उदाहरणार्थ -घरों से निकला हुआ जल, मल मूत्र, उद्योगों से निकला अम्लीय, क्षारीय द्रव इत्यादि।

3) गैसीय प्रदूषक :- उदाहरणार्थ - कार्बनमोनो ऑक्साइड CO, कार्बन डाइऑक्साइड CO_2, सल्फर डाइऑक्साइड SO_2, धूम कोहरे SMOG, मिश्रित हाइड्रोकार्बन गैसे इत्यादि ।

4) भार विहीन प्रदूषक अथवा अदृश्य ऊर्जा अपशिष्ट (Non- visible energy waste)उदाहणार्थ- रेडियोधर्मी अपशिष्ट ताप, ध्वनि अपशिष्ट इत्यादि।

विभिन्न प्रकार के प्रदूषण ओर उनसे सम्बन्धित बिमारियाँ-

I वायु प्रदूषण (Air pollution)-विश्व स्वास्थ्य संगठन (World Health Organization-W.H.O) के अनुसार वायु प्रदूषण उन परिस्थितियों तक सीमित रहता है, जहाँ बाहरी वायु मण्डल में दूषित पदार्थों की मात्रा मानव तथा पर्यावरण को हानि पहुँचाने की सीमा तक बढ जाती है। सर्वाधिक वायु प्रदूषण जीवाश्मी ईंधन (Fossil

fuel) के दहन से होता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.O) के अनुसार विश्व की जनसंख्या का पांचवां भाग अत्याधिक घातक प्रदूषित वायु में सांस ले रहा है।

वायु प्रदूषण से सम्बन्धित प्रमुख बीमारियों का विवेचन अग्र प्रकार है -

1) ऐस्बेटोसिस- यह रोग ऐस्बेटॉस (ऐसा पदार्थ जो आग में भी नहीं जलता है) के खनन में लगे श्रमिकों को होता है। ऐस्बेटॉस फेफडों में घाव उत्पन्न करके उसे कैंसर में बदल देता है।

2) सिलिकोसिस- यह फेफडो का प्रमुख व्यावसायिक रोग है, जो खनन पत्थर कटाव, बालू विस्फोटन तथा सिरेमिक उद्योग में कार्य करने वाले श्रमिकों में होता है। यह रोग सिलिकॉन डाइ-ऑक्साइड के कणों के फेफडों में पहुँचने के परिणामस्वरूप होता है।

3) बेरीलियोसिस- यह रोग नाभिकीय ऊर्जा, अंतरिक्ष उद्योग तथा वायुयान में कार्य करने वाले श्रमिकों में होता हे। यह रोग बेरिलियम के कणों तथा इसके ऑक्साइडों के श्वसनीय मार्ग में पहुँचने पर होता है तथा फेफडों के भीतर कणिकामय घाव (Granulomatous lesious)उत्पन्न करता है।

4) न्यूमोकोनियोसिस- यह कोयले की खानों (Coaj-mines) में कार्यरत कोल श्रमिकों में होता है। इस रोग के दोरान फेफडों में कार्बन कणों को एकत्रिकरण के फलस्वरूप चकत्ते(Macules)तथा गांठे (Nodules)प्रकट हो जाते हैं; जिसकी परिणिती खाँसी तथा प्रदाह (Inflammation)के रूप में होता है।

5) लकवा- पैट्रोल दहन से निकला सीसा जब वायु के माध्यम से मनुष्य के शरीर में प्रवेश करता है तो यह लकवे का कारण बन सकता है।

6) हृदय रोग-वायु प्रदूषण भी हृदय रोग का कारण बन सकता है। सदर्न केलिफोर्निया विश्वविद्यालय के ऐसोसिएट प्रोफेसर नीनो क्यूएनजिल के मतानुसार वाहनों तथा कारखानों की चिमनियों से निकलने वाले धुएँ में उपस्थित सूक्ष्मकण हृदय पर वैसा ही दुष्प्रभाव डालते है जैसा कि धूम्रपान के कारण पडता है। वातावरण में मिले ये प्रदूषणकारी तत्व श्वसन के द्वारा फेफडों में पहुँचते हैं और यहाँ से रक्त वाहिनियों में पहुँच जाते हैं। इन तत्वों के कारण रक्तवाहिनियाँ संकरी हो जाती है और स्ट्रोक का खतरा पैदा हो जाता है। प्रोफेसर नीनो ने अपने परीक्षणों में पाया कि यदि कोई व्यक्ति श्वसन के द्वारा प्रतिदिन 10 माइक्रोग्राम तक प्रदूषणकारी तत्व ग्रहण करता है, तो उसकी रक्तवाहिनियों की मोटाई में 3.9 से 4.3 प्रतिशत तक की वृद्धि हो जाती है। उनके अनुसार वायु प्रदूषण से हृदय रोग होने की आशंका 60 वर्ष से अधिक उम्र की तथा कोलेस्ट्रॉल कम करने वाली दवाओं पर निर्भर महिलाओं को ज्यादा होती है।

7) एम्फाइसीमा अथवा क्रॉनिक बोंकाइटिस (Emphysema or chronic

bronchitis)-इस रोग में वायु कोष तथा वायुमार्ग स्थाई रूप से फैल जाते है तथा साथ ही साथ अनेक वायुकोष नष्ट भी हो जाते हैं। फेफडे की प्रत्यास्थता (Elasticity) कम हो जाती है, फलस्वरूप श्वसनीय क्षमता का ह्रास होता है। इससे खाँसी, छींक, थकान उत्पन्न होती है तथा ज्यादा प्रभाव में शरीर नीला पड जाता है। यह रोग सामान्यत: सिगेरट पीने वाले व्यक्तियों को होता है।

अन्य-दमा (Asthma), श्वसनीय शोथ (Bronchitis), गले का दर्द, निमोनिया, त्वचा तथा आँखों में जलन, सिरदर्द, अनिद्रा, चिडचिडापन इत्यादि।

वायु प्रदूषण से सम्बंधित कुछ घटनाएँ

अ) मीठी नींद में मौत-शीत ऋतु में बंद कमरे में अंगीठी जलाकर सोने पर मीठी नींद में मौंत हो जाती है। इसका कारण यह है कि बंद कमरे में पर्याप्त ऑक्सीजन (O_2) गैस न मिलने के कारण कार्बनडाइऑक्साइड (CO) के स्थान पर कार्बनमोनो ऑक्साइड (CO) निर्मित होने लगती है। (CO)हीमोग्लोबीन (श्वसन वर्णक से (O_2) की तुलना में 200 गुणा ज्यादा क्रिया करके कार्बोक्सी हीमोग्लोबिन बना लेती है। परिणाम स्वरूप सम्बन्धित मनुष्य के फेफडों को आवश्यक ऑक्सीजन एवं रक्त नहीं मिल पाता है और वह मीठी नींद में मृत्यु के आगोश में समा जाता है।

ब) भोपाल गैस दुखांतिका- 2अक्टूबर 1984 को भोपाल (मध्य प्रदेश) में यूनियन कार्बाइड के कीटनाशक कारखाने से स्रावित ''मेथिल आइसो साइनेट''(मिक गैस) नामक जहरीली गैस के प्रभाव से एक ही रात्रि में लगभग 300 मनुष्य मृत्यु को प्राप्त हो गए तथा हजारों की संख्या में पशु,पक्षी, कुत्ते, बिल्लियाँ इत्यादि भी काल के ग्रास में समा गये।

II) **जल प्रदूषण** (Water pollution)- मानवीय क्रियाकलापों से जल के भौतिक, रासायनिक तथा जैविक गुणों में होने वाले परिवर्तनों को ही ''जल प्रदूषण'' के नाम से निरूपित किया जाता है। जल प्रदूषण आधुनिक समय की एक चिंताजनक पर्यावरणीय समस्या है क्योंकि जैसा कहा भी गया है-नीर (जल) बिन सब सून। जल प्रदूषण का प्रभाव भू सतही जल स्त्रोतों के साथ-साथ भूमिगत जल स्त्रोतों तथा समुद्रों में भी दृष्टिगोचर हो रहा है।

जल प्रदूषण से संबंन्धित प्रमुख बीमारियाँ

1) फ्लारोसिस- मनुष्य के पेय जल में फ्लोराइड की अधिक मात्रा उसके दाँतों में कुर्वरित (Molted) रूप से दिखाई देती है। इसके कारण सम्पूर्ण दाँत का रंग स्थायी रूप से पीला,लाल हो जाता है। हड्डियों में फ्लोराइड की अधिक सान्द्रता से हाथ पैर टेढे मेढे हो जाते हैं तथा रीढ की हड्डी में भी टेढापन आ जाता है।

2) हैजा (Cholera)- साफ पानी नहीं पीने से इस रोग का संक्रमण होता है। इस रोग

में रोगी को पतली दस्त, उल्टियाँ होती हैं जिसके कारण संबंधित रोगी के शरीर में निर्जलीकरण (पानी की कमी)की स्थिति बन जाती है। मरोड व मांसपेशियों में जकडन आना भी इस रोग का अन्य महत्पूर्ण लक्षण है।

3) अमीबायसिस (Amoebosis)- इस रोग का स्वस्थ मनुष्य में संक्रमण एण्टअमीबा हिस्टोलाइटिका (Entamoeba histolytica) नामक प्रोटोजोआ की एक विशेष प्रावस्था जिसे पुटी (Cyst) कहते है, से होता है। पुटी दूषित जल के माध्यम से शरीर में प्रवेश करती है। इस रोग के प्रमुख लक्षण हैं- लगातार कब्ज रहना, पेचिश, मल के साथ लगातार श्लेष्मा (Mucus) का आना इत्यादि।

4) जियारडिएसिस (Ziardiasis)-दूषित पानी के सेवन के साथ इस रोग का स्वस्थ मनुष्य में संक्रमण जिआरडिया इन्टेस्टाइनेलीस (Ziardia intetinalis) नामक प्रोटोजोआ की एक विशेष प्रावस्था ''पुटी'' के द्वारा होता है। अत: यह परजीवी आश्रय के द्वारा पाचित के अवशोषण को रोक देता है परिणाम स्वरूप संक्रमित व्यक्ति को दस्त होने लगते हैं।

5) संक्रामक पीलिया अथवा हैपेटाइटिस (Hepatitis)- यह संक्रामक बीमारी प्रमुख रूप से बच्चों एवं वयस्कों में होती है। यह रोग दो प्रकार के विषाणुओं द्वारा फैलता है। प्रथम Infectious hepapitis virus तथा द्वितीय serumhepapitis birus buls इनसे उत्पन्न hepatitis को Viral hepatitis A VWm Viralhepatitis B कहते है। इस रोग से ग्रसित मानव को यकृत में जलन महसूस होती है।

6) अन्य -टाइफाइड, विभिन्न प्रकार के चर्म रोग जैसे खुजली इत्यादि।

7) जल प्रदूषण से सम्बन्धित घटनाएँ :- अ) मिनिमाटा रोग (Minimata disease)- मिनिमाटा एक जापानी शहर का नाम है , जो समुद्र के तट पर स्थित है। विशेष- तौर पर मिनिमाटा रोग, पारद- विषमयता(Mercury toxicity) का नाम है, जो मिथाईल मर्करी के द्वारा होता है। मिथाइल मर्करी मिनिमाता खाडी के घोघों (Snails) एवं मछलियों में प्रचुर मात्रा में पाया गया है वहाँ के जिन निवासियों ने उपरोक्त उल्लेखित जीवों को खाद्य के रूप में भक्षण व उपभोग किया, वे सभी मिथाइल मर्करी के विषैले प्रभाव से नहीं बच सके । इस रोग से संक्रमित लगभग 70 व्यक्ति काल के ग्रास बने तथा लगभग 600 व्यक्ति अत्यधिक रूप से प्रभावित हुए । मिथाइल मर्करी के तंत्रिका-तंत्र के प्रभाव के फल स्वरूप संबंधित व्यक्तियों में कम्पन (Trembling) अंधापन तथा अपंगता उजागर हुई।

मर्करी (पारा) एक संचयी विष (Cumulative poison)है। फल स्वरूप

शरीर इसका उत्सर्जन करने में असमर्थ होता है। उच्चस्तर पर भी इसका सर्वाधिक सान्द्रण होता है। ऐसी परिघटना (Phenomemon) को जैविक आर्वधन (Biological magnification) कहते हैं।

ब) जैव - विविधता का ह्रास-सन् 1991 में खाडी युद्ध (gulf war) के दौरान इराक द्वारा कुवैत के तेल कूपों (कुओं) में आग लगा दी गई थी। परिणाम स्वरूप फारस की खाडी में जैव-विविधता (Biodiversity) का ह्रास हुआ।

(III) **मृदा प्रदूषण** (Soil pollution)- इसे भूमि प्रदूषण भी कहते है। भूमि की सबसे ऊपरी परत को मृदा कहते हैं। भूमि के भौतिक, रासायनिक अथवा जैविक गुणों में ऐसे अवांछनीय परिवर्तन का होना, जिनका प्रभाव जीवधारियों पर दृष्टिगोचर हो तथा परिणाम स्वरूप भूमि की प्राकृतिक उपयोगिता समाप्त हो, मृदा प्रदूषण कहलाता है।

मृदा प्रदूषण से संबन्धित बीमारियों का लेखा जोखा निम्न अनुसार है -

1) डायरिया, टाइफाइड, टी.बी. (Tuberculosis) **तथा आंत्रशोध** -पृथ्वी पर कूडे-करकट का ढेर दुर्गन्ध तथा बीमारियाँ फैलाता है। मच्छर, मक्खी तथा कीटाणु कूडे-करकट में तीव्रता से अपनी वंश- वृद्धि करते हैं। जिस के कारण डायरिया, टायफाइड, टी. बी. (तपेदिक)तथा आंत्रशोध जैसी बीमारियाँ फैलने की सम्भावना प्रबल हो जाती है।

2) मलेरिया, डेंगु- घरों का पानी सडक पर बहकर पंक (कीचड) तथा गंदगी को जन्म देता है। इसमें मच्छर तथा उनके लार्वा पनपते है , जो मलेरिया, डेगु नामक बिमारियों का कारण बनते है।

3) **धूल एलर्जी (Dust allergy)**- मिट्टी के प्रदूषित होने के कारण मनुष्यों में धूल एर्लजी का रोग पनपता है।

4) अन्य- आँखों के रोग, पौलियो इत्यादि।

VI) शोर प्रदूषण अथवा ध्वनि प्रदूषण (Noise pollution):- शोर जिसे आग्ल भाषा में "Noise " कहते हैं लैटिन भाषा के शब्द " Nausea "से बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ है- "अप्रिय" (Unpleasnt) अथवा अवांछनीय (Umwanted)ध्वनि (Sound)।

शोर की परिभाषा 1980 में विश्व- स्वास्थ्य संगठन (W.H.O.)द्वारा निम्न शब्दो में दी गई है - "गलत स्थान पर, गलत समय में गलत ध्वनि" को शोर के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। आवाज (Voice) ही ध्वनि प्रदूषण का मुख्य प्रदूषक है।

ध्वनि का मापन "डेसीबेल" (dB) में किया जाता है। यह दो शब्दों से मिलकर बना है, प्रथम डेसी = 10 तथा द्वितिय "बेल"- ए ग्राहम बेल के नाम पर।

ध्वनि प्रदूषण से होने वाली बीमारियों का विवरण निम्नानुसार प्रस्तुत किया जा सकता है-

1) बहरापन- ध्वनि प्रदूषण से श्रवण शक्ति कमजोर होती है तथा कभी-कभी ध्वनि इतनी उच्च होती है कि बहरापन आ जाता है । 2)दृष्टि (Vision) का कमजोर होना - ध्वनि प्रदूषण से आँखों की पुतली फैल जाती है, जिससे दृष्टि कमजोर हो जाती है।

3)सिरदर्द- ध्वनि प्रदूषण से मस्तिष्क की रक्त वाहिनियाँ (blood vessels) फैल जाती है , जिससे तीव्र (तेज) सिरदर्द रहने लगता है। **4) न्यूरोटिक** मेण्टल डिसार्डर (Neurtoit mental disorder)-दीर्घ अवधि तक ध्वनि प्रदूषण के सम्पर्क में रहने के कारण होता है। 5) **प्रेसबाइकुसिस** (Presbycusis)- महानगरों में जहाँ ध्वनि प्रदूषण का असर जाता है , वहाँ के मनुष्यों में ध्वनि प्रदूषण जनित रोग "पेसबाइकुसिस" (Presbycusis) बढ रहा है। **6) अन्य** - चिडचिडापन, अनिद्रा (Insomnia), हृदयघात (Heart attack), उच्च रक्त चाप (High Blood pressure). मानसिक अस्थिरता, पागलपन, दुश्चिंता, उद्वेग, स्मरण शक्ति का ह्रास (Memory power). समय से पूर्व बुढापा इत्यादि।

7)शोर प्रदूषण से सम्बन्धित तथ्य- 1) टिनीटस (Tinnitus)- तेज ध्वनि वाली मशीनों के नजदीक कार्यरत व्यक्तियों दुकानदारों तथा परिचालको को प्रतिदिन तेज ध्वनि का सामना करना पडता है, इसे ही "टिनीटस" (Tinnitus) कहते हैं।

2) 120 डेसीबेल से अधिक शोर (ध्वनि)गर्भस्थ शिशु को नेत्र हीन बना सकती है। अधिक शोरे के वातावरण से अथवा अचानक विस्फोट सुनने पर गर्भवती स्त्री (महिला)का गर्भ गिर भी सकता है - उदाहरणार्थ- श्रीलंका प्रवास के दौरान हनुमान जी की गर्जना (ध्वनि) से अनेक राक्षसियों के गर्भ गिर गए थे।

चलत महाधुनि गर्जेसी भारी।
गर्भ स्रवहिं सुनि निसिचर नारी ॥

शोर एक मीठे विष के रूप में मानव शरीर को प्रभावित करते हुए उसके कर्ण, नेत्र, हृदय , दिमाग, वृक्क की रक्त वाहिनियों तथा फेफडों में धीरे-धीरे रक्त के प्रवाह को कम करता है। फलस्वरूप गुर्दे (वृक्क) खराब हो सकते हैं तथा मनुष्य को लकवा (Paralysis) भी हो सकता है।

(त) रेडियोधर्मी प्रदूषण अथवा परमाणु प्रदूषण (Radioacrive pollution or nuclear pollutuon) "नाभिकीय पदार्थों की सक्रियता से सम्पादित प्रदूषण को रेडियोधर्मी प्रदूषण कहते हैं।"

रेडियोधर्मी प्रदूषण से जनित बिमारियाँ-

1) विकलांगता/अपंगता - रेडियोधर्मी प्रभाव से जीन तथा गुणसूत्रों के लक्षणों में परिवर्तन होता है। जीन उत्परिवर्तन के कारण विकलांग/अपंग बच्चे जन्म लेते हैं।

2) कैंसर - रेडियोधर्मी के कुप्रभाव से कैंसर जैसा घातक रोग हो जाता है। उदाहरणार्थ -जब मनुष्य के शरीर में रेडियोधर्मी सक्रिय पदार्थ स्ट्राँशियम 90 की मात्रा सीमा से ज्यादा हो जाती है तो उस स्थिति में यह शरीर के ऊतकों को नष्ट करने लगता है। वह ऐसा करते हुए कैंसर रोग का कारण बनता है।

3) अन्य - शरीर में रक्त की कमी, बालों का झढना, गर्भाशय में शिशुओं की मृत्यु असमय में बुढापा (Premaature aging). जनन क्षमता का ह्रास (Reproductive power). विभिन्न प्रकार के त्वचीय (चर्म) रोग, हाथ- पैरों में जलन, थकान, दांतों का गिरना, आँखों के लैंस को हानि इत्यादि ।

4) रेडियोधर्मी प्रदूषण से सम्बन्धित तथ्य - यदि निकट भविष्य में विश्व के किसी भी भू -भाग में परमाणु युद्ध होता है तो ''रेडियोधर्मी प्रदूषण'' से महाविनाश होना निश्चित है।

धर्म एवं आयुर्वेदानुसार आयु क्षय के कारण

जैन धर्म एवं आयुर्वेद के अनुसार भी बाह्य विरोध या प्रतिकूल कारणों से पूर्ण आयुक्षय का भी वर्णन पाया जाता है। विचारणीय विषय यह है कि जब पूर्ण आयुक्षय हो जाती है तो रोग होना, आयु की कमी होना भी स्वाभाविक है, स्वत: सिद्ध है। संभाव्य है, जिस प्रकार आधुनिक वैज्ञानिकों ने तम्बाखु सेवन, तनाव, प्रदूषण, मांस सेवन, अव्यवस्थित दिनचर्या आदि कारणों को रोग कारक, आयु क्षय कारक, मृत्यु कारक, आयु की कमी के कारण रूप में सिद्ध कर रहे हैं यह सब विषय हमारे भारतीय साधु-संत, आचार्य, वैज्ञानिकों ने हजारों वर्ष पहले सिद्ध कर लिए थे। कुछ प्रकरण निम्न में प्रस्तुत है-

भूदं तु चुदं चयिदं चत्तंति तिधा चुदं सपाकेण।
पडिदं कदलीघादपरिच्चागेणूणयं होदि॥ 56 गो.क.भा. 1

ज्ञायक का भूत शरीर च्युत, च्यावित, त्यक्त के भेद से तीन प्रकार के है। उनमें-से च्युत शरीर स्वयं पक कर अपने समय से छूटता है। वह कदलीघात और सन्यास इन दोनों से रहित होता है।

विसवेयणरत्तक्खय भयसत्थग्गहण संकिलेसेहिं ।
उस्सासाहाराणं णिरोहदो छिज्जदे आऊ ॥ 57

विष भक्षण से अथवा विषवाले जीवों के काटने से, रक्त क्षय अर्थात् लहू (खुन) जिसमें सूखता जाता है ऐसे रोग से अथवा रक्त क्षय सें, (उपचार से-लहू के सम्बन्ध से यहाँ धातु क्षय भी समझना चाहिए) भयंकर वस्तु के दर्शन से या उसके बिना भी उत्पन्न हुए भय से, शास्त्रों (तलवार आदि हथियारों) के घात से संक्लेश अर्थात् शरीर, वचन

तथा मन द्वारा आत्मा को अधिक पीडा पहुँचाने वाली क्रिया होने से, श्वासोच्छ्वास के रूक जाने से, और आहार (खाना-पीना) नहीं करने सें इस जीव की आयु कम हो जाती है । इन कारणों से जो मरण से अर्थात् शरीर छूटे उसे कदलीघात मरण अथवा अकाल मृत्यु कहते हैं।

कदलीघाद समेदं चागविहीणं तु चइदमिदि होदि।
घादेण अघादेण व पडिदं चागेण चत्तमिदि॥ 58

ज्ञायक का जो भूत शरीर कदलीघात् पूर्वक छूटता है किन्तु सन्याय से रहित होता है वह च्यावित होता है। कदलीघात से या उस के बिना किन्तु संन्यास पुर्वक छूटा शरीर त्यक्त होता है। अकाल मृत्यु किनकी नही होती? **औपपादिक चरमोत्तमदेहासंख्येय वर्षायुषोऽनपवर्त्यायुष:** । उपपाद जन्म वाले, चरमोत्तम देह वाले और असंख्यात वर्ष की आयु वाले जीव अनपवर्त्य आयु वाले होते है।

उपपाद जन्म देव नारकी, होते हैं। इसलिए देव नारकियों के अकाल मरण नहीं होता है अर्थात् इनकी आयु अनवर्त्य आयु नहीं है।

चरम शब्द अन्तवाची है, इसलिए उसी जन्म में निर्वाण के योग्य हो उसको ग्रहण करना चाहिए । चरम अन्त का है शरीर जिनका वे चरम देह कहलाते हैं। परीत संसारी उसी भव में निर्वाण प्राप्त करने योग्य को चरम शब्द से ग्रहण किया जाता है। उत्तम शब्द उत्कृष्ट वाची है। इससे चक्रवर्ती आदि का ग्रहण होता है। यह उत्तम शब्द उत्कृष्ट वाची है। उत्तम शरीर जिनका हो वे उत्तम देह कहलाते है। इस उत्तम शब्द से चक्रवर्ती आदि का ग्रहण करना पल्यादि के द्वारा गम्य आयु जिसके है वह असंख्येय वर्षा युष वाले कहलाते हैं । वे उत्तर कुरु आदि भोग भूमि में उत्पन्न होने वाले हैं। आयु लेकर जन्म लेता है। बाह्य कारणों के कारण आयु का ह्रास होना अपवर्त है। बाह्य उपघात के निमित्त विशेष शस्त्रादि के कारण आयु का ह्रास होता है। वह अपवर्त है। अपवर्त आयु जिनके है वे अपवर्त आयु वाले और जिनकी आयु का अपवर्त नहीं होता वे अनपवर्त आयु वाले देव और नारकी, चरम शरीरी और भोगभूमियाँ जीव हैं- बाह्य कारणों से उसका अपवर्तन नहीं होता ।

चरम शब्द उत्तम का विशेषण है। चरम ही उत्तम देह जिसका वह चरमोत्तम देह अर्थात् अन्तिम उत्तम देह वाले को चरमोत्तम देह कहते हैं।

चक्रवर्ती आदि का देह उत्तम होते हुए भी जो चक्रवर्ती आदि तद्भव में मोक्ष नहीं जाते हैं उनका अकाल मरण भी शास्त्र में पाया जाता है जैसे - सुभौम चक्रवर्ती, ब्रह्मदत्त, चक्रवर्ती, नारायण श्री कृष्ण आदि की अपमृत्यु हुई है। इस से सिद्ध होता है कि उत्तम शरीर धारी के चरम शरीर धारी की अपमृत्यु नहीं होती है।

गैस से बना हुआ भोजन क्या साधु एवं गृहस्थ योग्य है?

(रसोई गैस के दुष्प्रभाव)

जैन धर्मानुसार प्रत्येक द्रव्यों का परस्पर निमित्त-नैमित्तिक प्रभाव पडता है। इसके साथ-साथ पुण्य-पाप, धर्म-अधर्म, मन- वचन- काय, कृत-कारित-अनुमोदना से होता है। मन-वचन-काय से करना, करवाना या अनुमोदना पुण्य-पाप के लिए कारक है। हिंसा/कष्ट/दुःख/रोगकारक उपाय से प्राप्त या तैयार किया गया भोजन भी पुनः हिंसा, कष्ट, दुःख, रोग उत्पादक होता है। रसोई गैस (प्रायमेस से भी) से भोजन बनाने से और उस भोजन से क्या हानि है उसका कुछ दिग्दर्शन निम्नोक्त है-

आधुनिक शिक्षा,फैशन, आलस्यपना, दिखावा, स्टेटस् सिम्बल, शहरीकरण, घर गन्दा न हो, आपाधापी जीवन, समयाभाव, जगह की कमि, विज्ञापन के मायावी प्रभाव, समाजिक प्रभाव (गैस प्रयोग नहीं करने वालों को सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से पिछडा माना जाना और उनसे बेटी का भी लेन-देन तक नहीं करना) प्राकृतिक ईन्धन की दुर्लभता आदि के कारण अधिकांश लोग रसोई गैस का प्रयोग करते हैं। प्रथमतः प्राकृतिक ईधन (लकडी, कोयला आदि) से बना हुआ भोजन स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण एवं पौष्टिकता की दृष्टि से गैस से बने हुए भोजन से श्रेष्ठ होता है; यह अनुभव उसे हो सकता है जिसने दोनों प्रकार के ईंधन से बना हुआ भोजन किया हो। यहाँ तक कि अनुभव में आता है कि देशी चुल्हे से बना हुआ भोजन सिगडी से बना हुआ भोजन से हर दृष्टि से उत्तम है। प्राकृतिक रूप से शुष्क, जीव-जंतु से रहित लकडी या उससे प्राप्त कोयले से तो विशेष हिंसा, प्रदूषण आदि नहीं होता है परन्तु गैस की प्राप्ति से लेकर प्रयोग तथा प्रयोग के बाद भी हिंसा, प्रदूषण, रोग आदि होते हैं। यथा गैस-कुआँ खोदने से लेकर उसके पैकिंग, निर्यात, जलना, विस्फोट आदि से एकेन्द्रिय पृथ्वीकायिक जीव से लेकर मनुष्य तक की हिंसा, प्रदूषण, रोग आदि होते हैं।

कैसे बनती है नाइट्रोजन डाई आक्साइड

रसायन शास्त्र के नियमों के अनुसार नाइट्रोजनडाईआक्साइड गैस का निर्माण उच्च ताप पर दहन क्रिया होने से होता है। एल.पी.जी.गैस में प्रयोग होने वाली प्रोपेन और ब्यूटेन गैसें चूंकि पेट्रोलियम गैसें हैं। अतः इनका दहन 800 से 1200 डिग्री सेल्सियस के तापक्रम पर होता है। नाइट्रोजन डाई आक्साइड बनने लिए 400 डिग्री सेल्सियस से अधिक तापक्रम चाहिए। रसोई गैस के जलने पर वातावरण में मौजूद नाइट्रोजन आक्सीजन के साथ मिलकर नाइट्रोजन आक्साइड गैस बनती है। यह नाइट्रोजन आक्साइड पुनः आक्सीजन के साथ क्रिया करती है और नाइट्रोजनडाईआक्साइड का निर्माण करती है। इस दौरान नाइट्रोजन का एक अणु आक्सीजन के एक अणु के साथ क्रिया करता है फिर ये दोनों अणु पुनः

आक्सीजन के एक अणु के साथ क्रिया करती है और नाइट्रोजनडाईआक्साइड का निर्माण करती है। इस दौरान नाइट्रोजन का एक अणु पुनः आक्सीजन के एक अणु के साथ क्रिया करता है और नाइट्रोजन डाई आक्साइड बनती है। इसे $N_2+O_2=2NO$, $2No+O_2=2NO_2$ के सूत्र के रूप में व्यक्त किया जाता है।

विभिन्न स्थानों में कई घरों में हुए शोध के हाल ही जारी आंकडों के अनुसार घरों में गैस के कारण प्रतिघन मीटर क्षेत्र में 311 माइक्रोग्राम तक नाइट्रोजन डाई आक्साइड गैस वातावरण में घुलकर साँसों में जहर घोलती है। प्रदूषण नियंत्रण मण्डल के निर्धारित मानकों में प्रतिघन मीटर क्षेत्र में 80 माइक्रोग्राम से ज्यादा नाइट्रोजन डाई आक्साइड की मौजूदगी को खतरनाक माना गया है। राजस्थान की राजधानी जयपुर में भी छोटी चोपड पर 84 रामबाग सर्किल पर 120 और अजमेरी गेट पर 161 माइक्रोग्राम प्रतिघनमीटर इस गैस की मौजूदगी पायी गई है। इतना ही नहीं मानकों के अनुसार धूल के कणों (आरएसपीएम) की मात्रा 0.75 मानी गई है। लेकिन शोध में रसोई घर में इनकी मात्रा दुगुने से अधिक 1.6 मायक्रोग्राम प्रतिघनमिटर पाई गयी है। इसीसे अंदाज लगाया जा सकता है कि घर की महिला बेहद विषम परिस्थितियों में अपने परिवार को भोजन पकाकर देती है। वातावरण में मौजूद 70 फीसदी नाइट्रोजन चारसौ डिग्री सेल्सियस से आधिक तापमान में ही आक्सीजन से क्रिया करके नाइट्रोजन डाई आक्साइड बनाती है । आमतौर पर रसोई गैस में बर्नर 800-1200 डिग्री सेन्टीग्रेट पर (चार से छःघण्टे तक) जलता है। बर्नर का यही उच्च तापमान रसोई घर के वायु प्रदूषण का जनक है। उच्च तापमान मिलने के कारण ही रसोई के वातावरण में मौजूद आक्सीजन गैस में तेजी से कमी होती है और नाइट्रोजन डाई आक्साइड का उत्सर्जन बढता है। यह बढी हुई गैस ही मूल खतरा है। गैस के अतिरिक्त रसोई के वातावरण में अल्प मात्रा में सल्फर डाई आक्साइड और कार्बन मोनोआक्साइड भी उत्पन्न होती है। वैज्ञानिकों ने रसोई गैस में जलने वाली गैस में मानकों से अधिक वायु प्रदूषण को मापने के लिए गृहणियों के कंधे पर प्रदूषण संवेदी यंत्र लगाया और प्रदूषण की जाँच की । नाइट्रोजन डाई आक्साइड नाक से श्वास नली के रास्ते फेफडों में जाती है। फेफडों की ऊपरी सतह पर लगी एक पतली सी झिल्ली पर नाइट्रोजन डाई आक्साइड छोटे-छोटे घाव कर देती है। नाइट्रोजन डाई आक्साइड श्वास के माध्यम से फेफडो में पहुँचती है और फेफडे आक्सीजन के साथ इसे भी हृदय के पास भेजती है।

उपर्युक्त कारणों से गैस से भोजन बनाने वाली (वाला भी) अस्थमा, एलर्जी सरीखे श्वास सम्बन्धी खतरनाक रोग,फेफडों के रोग, खांसी , रक्ताल्पता, घुटन, सांस फूलना, लगातार छींक आना , त्वचा में एलर्जी, स्मृति लोप,चक्कर, बेहोशी, मूर्च्छित होकर गिरजाना आदि रोग होते हैं। विषाक्त गैस के कारण और भी अनेक

कीट-पतंग,जीव जन्तु रोगी होते हैं, मरते हैं, गैस से आग लगने से या विस्फोट से मनुष्य तक जलते हैं; या मरते हैं, पर्यावरण प्रदूषित होता हैं, गरमी बढती है , ग्रीन हाउस इफेक्ट बढता है। गैस से बना हुआ भोजन से रूचि नहीं आती है, पित्त, वायु की वृध्दि होती है जिससे उल्टी हाती है, वातरोग होता है।

उपर्युक्त समस्त दृष्टिकोण से गैस से भोजन बनाना, उस भोजन को ग्रहण करना भी दोषकारक है,हिंसा कारक है, रोग कारक है। अतःगृहस्थों को गैस का प्रयोग नहीं करना चाहिए और साधु-सन्तों को गैस से बना हुआ भोजन ग्रहण नहीं करना चाहिए । क्योंकि साधुओं के आहार समस्त प्रकार के उद्गम, उत्पादन,अंगार दोष एवं अन्तराय से रहित होना चाहिए। इन उद्गमादि दोष में मुख्यतः स्व-पर के कष्ट कारक तत्व, उपाय अन्तर्गत हैं। रोगी से आहार लेना, रोग कारक आहार लेना, पशु, मनुष्य आदि की रोने की आवाज सुनने के बाद या देखने के बाद आहार लेना, अग्नि कायिक जीव (अग्नि) का बुझते देखने पर , धुआँ होने पर, दुर्गन्ध, ग्लानि होने पर, मार-काट आदि शब्द सुनने पर भी यदि साधु आहार ग्रहण नहीं कर सकते हैं तब उपर्युक्त गैस के दोष के होते हुए भी साधु क्या गैस से बना हुआ आहार कर सकते हैं? अर्थात् नहीं कर सकते हैं, नहीं करना भी चाहिए। यह साधुओं के लिए ही अयोग्य नहीं है परन्तु श्रावकों के लिए भी अयोग्य है। आचार्य समंतभद्र स्वामी ने श्रावको के भोगोपभोग परिमाणव्रत के प्रकरण में कहा है-

यदनिष्ठ तद्व्रतयेद्यच्चानुपसेव्यमेतदपि जह्यात्।
अभिसंन्धिकृता विरतिविषयाद्योग्यात् व्रतं भवेत्॥

जो पदार्थ अनिष्ट (प्रकृति विरूध्द, स्वास्थ्य के लिए अहितकर) है उसको त्याग देना चाहिए। और अनुपसेव्य (लार, मूत्र, झूठन आदि) है उसे भी छोड देना चाहिए; क्योंकि संकल्प पूर्वक त्याग करने को व्रत कहते हैं।

भावनाओं का दबाना या सोचने का ढंग खतरनाक हो सकता है

एक फुटबॉल प्रशिक्षक जानता है कि उसकी टीम के प्रंशसक उसको मैच हारने के लिए दोषी ठहराएँगे। उसे यह भी डर है कि उसे गोली से मार डाला जाएगा। ऐसा होने से उसके अल्सर से खून बहना आरम्भ हो जाता है।

एक डॉक्टर ट्रेफिक जाम में फँस जाता है। उसे यह सोच है कि एक घायल मरीज उसका इंतजार कर रहा है। यह सोचकर ही उसका रक्त दबाव बढ जाता है।

एक बालक जो अपने बडे भाई से घृणा करता है, परन्तु अपनी भावनाओं को दबाकर चेहरे पर मुसकान लाता है। भविष्य में चालीस वर्ष बाद प्रौढ होने पर उसे आर्थ्राइटिस

जैसी बिमारी हो सकती है।

अल्सर, उच्च रक्तचाप, आर्थ्राइटिस, गठिया शारीरिक बीमारियाँ हैं, परन्तु इनका सम्बन्ध मानसिक अवस्था से है। एलर्जी, सिरदर्द, डायरिया - ये सब भी भावात्मक समस्याओं से उत्पन्न हो सकते हैं। ऐसे रोगों को 'साइकोमेटिक' बीमारियाँ कहा जाता है।

दीर्घावस्था के रहस्य :- मनुष्य को कितने वर्षो तक जीवित रहना चाहिए,इस विषय में विज्ञान मौन है; किन्तु उसे यह पता है कि कुछ जीव, पेड तथा पौधे अत्यन्त दीर्घजीवी हैं। उदाहरणार्थ, कछुआ 300 वर्षो तक ह्वेल 400 वर्षों तक तथा कुछ पौधे भी सैकडों वर्ष जीवित रहते हैं। ऐसा क्यों है? क्या मनुष्य दीर्घजीवी नहीं बन सकता ?

भारतीय मनीषियों ने दीर्घायु प्राप्त करने की कामना ही नहीं की, वरन् जी करके दिखला भी दिया है। भारतीय विचारकों के अनुसार ब्रह्मचर्य के द्वारा मृत्यु पर विजय प्राप्त की जा सकती है। ब्रह्मचर्य ऐसा संयमित जीवन है, जिसके विषय में भारतीय विचार धारा अत्यन्त से स्पष्ट है। जब तक ऋषि-मुनियों द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर लोग चलते रहे, तब तक वे दीर्घजीवी होते रहे; किन्तु विदेशी आक्रमणों के फलस्वरूप देश में विलासिता का उदय हुआ और अकबर सम्राट् के काल में औसतन आयु काफी घट गई थी।

इधर कुछ वर्षों से न केवल भारत में वरन् अमेरिका तथा अन्यत्र भी योग के ऊपर काफी बल दिया जाने लगा है और उन अनेक रोगों के समझने का प्रयास किया जा रहा है, जो मनुष्य को दीर्घजीवी होने में बाधक हैं। रूस में वृद्धावस्था तथा दीर्घायु के सम्बन्ध में अनेकानेक शोध हो रहे हैं। वहाँ पर जनसंख्या का एक काफी बडा अंश दीर्घजीवी है। वैज्ञानिकों ने ऐसे अनेक व्यक्तियों से उनकेअनुभव एवं उनकी जीवन चर्याओं का संकलन किया है, जिस के आधार पर उन्होंने महत्वपूर्ण बातें बतलाई हैं। दीर्घायु के जिन मूलभूत रहस्यों का उन्होंने उद्घाटन किया है, उनमें से प्रमुख है- संतुलित भोजन, धूम्रपान न करना, शराब न पीना। इनके अतिरिक्त कार्य तथा विश्राम में समन्वय, शारीरिक स्नायविक नियत्रंण तथा पास पडोस से मृदुता के व्यवहार को भी दीर्घायु के लिए आवश्यक बताया गया है।

यह सर्व विदित है कि मानसिक परिश्रम करने वालों को नाना प्रकार के रोग होते हैं, किन्तु जो लोग मानसिक परिश्रम के साथ शारीरिक परिश्रम का ताल मेल बैठा सकते हैं, दीर्घजीवी होते हैं। उदाहरणार्थ रूस में 60 वर्ष से 75 वर्ष की आयु वाले 400 वैज्ञानिकों का परिक्षण करके यह ज्ञात किया गया कि इतनी बडी उम्र के बाद भी वह सक्रिय हैं, क्योंकि वह नित्य प्रति 10 घटें से अधिक कार्य नहीं करते रात्रि में बिल्कुल कार्य नहीं करते और 7 घटें से कम नित्य प्रति नहीं सोते। अत: अधिक घंटे तक कार्य करते रहना रात्रि में भी कार्य करना तथा अपर्याप्त-निद्रा ये ही अल्पजीवी होने के लिए उत्तरदायी हैं।

यदि मानसिक परिश्रम करने वाले लोग नित्य प्रति शारीरिक व्यायाम करते रहें, सक्रिय विश्राम लें और कार्य तथा विश्राम के बीच समन्वय स्थापित करते रहें, तो वे दीर्घजीवी बन सकते हैं।

स्पष्ट है कि दीर्घाजीवी बनने के लिए किसी औषधि का उपचार न बताकर नैतिक जीवन को संयमित बनाने पर बल दिया गया है। वास्तव में यही प्राकृतिक जीवन है। विश्व के महान् विचारकों में से दीर्घयु प्राप्त करने वाले पुरूष पैदल चलने, सवारी करने या घूमने पर बल देते थे। उदाहरणार्थ, गेटे का कथन है कि घूमते समय ही उनमें उत्तम विचारों का उदय हुआ। टॉलस्टाल को 81 वर्ष की आयु में मीलों घोडों पर चढे-चढे घूमना अथवा पैदल टहलना प्रिय था।

दीर्घायु के प्रबल शत्रु रोग हैं। रोग हृदय या यकृत से सम्बन्धित होते हैं। यह रोग शारीरिक चयापचय क्रियाओं के शिथिल पडने के कारण आ घेरते हैं, अत: शरीर को सक्रिय रखा जाए तो रोगों को अपने पास फटकने नहीं दिया जा सकता है।

कहते है कि जीवन कार्य शीलता का दूसरा नाम है। प्रत्येक व्यक्ति की आयु उसकी स्वयं की अर्जित सम्पत्ति है। आर्थिक सम्पन्नता, कार्य की मात्रा, व्यायाम, घरेलु आदतें- ये सभी मिलकर आयु का निर्धारण करते हैं। जो जितना ही तत्पर रहता है वह उतना ही दीर्घजीवी रह सकता है।

जीवन एवं क्रिया शीलता के पारस्परिक सम्बन्ध को दिखाने के लिए एक महत्वपूर्ण प्रयोग का उल्लेख आवश्यक है। प्रयोगशाला में कुछ चूहे पाले गये, जिनमें से आधों को एक ऊँचे लट्ठे पर बार-बार चढने-उतर ने के लिए प्रेरित किया गया और शेष जमीन पर रखे गए। कुछ दिनों के पश्चात् सभी चूहों को घातक विकिरणों से प्रभावित किया गया। परिणाम स्वरूप जो चूहे लट्ठे पर चडने-उतरने का कार्य कर रहे थे वे तो बच गए , किन्तु जो कार्य शील नहीं थे उन पर बुरा प्रभाव पडा। सारांश यह है कि सक्रिय जीवन मनुष्य को दीर्घायु बना सकता है। इसलिए यह कहना उचित होगा कि दीर्घायु स्वयं ही नहीं प्राप्त होती, वरन् उसे अर्जित करना पडता है। इसका एक उपाय है- शारीरिक परिश्रम। शिक्षा संस्थाओं में खेलों के महत्व को इसी से आँका जा सकता है। जो विद्यार्थी इस विचार धारा के हैं कि खेलने से समय का अपव्यय होता है, वे नितान्त अंधकार में हैं। उन्हें आज से ही व्यायाम अथवा खेल प्रारम्भ कर देना चाहिए ।

मानसिक कार्य करने वालों के लिए स्वच्छ वायु में घूमना अत्यन्त आवश्यक है। इससे अधिकाधिक ऑक्सीजन ग्रहण होती हैं और शारीरिक क्रियाएँ ठीक से चालू रहती हैं।

यहीं पर हमें इस प्रश्न का उत्तर मिल जाता हैं कि कुछ रोग तरूण अवस्था में क्यों

मर जाते हैं? इसका मूल कारण यही हो सकता है कि उन्होंने अवश्य ही मानसिक तथा शारीरिक परिश्रम के मध्य सन्तुलन नहीं रखा होगा। उन्होंने इस शरीर रूपी बैटरी को आवेशित करते रहना जाना ही नहीं। यह अज्ञान के कारण होता है। अथवा मानसिक कार्य को शारीरिक कार्य की अपेक्षा महत्ता प्रदान करने के कारण।

वह समय आ गया है जब हम दीर्घजीवी होने के सम्बन्धों में व्यवस्थित रूप से विचार करें। रोगों के कारण मृत्यु पर विजय प्राप्त करके जीवन की औसत अवधि को बढा दिया गया है। भविष्य में मनुष्य और अधिक वर्षो तक जीवित रहेगा, अत: यदि वह दीर्घजीवी होने की कला को सीख ले तो सुखमय जीवन बिता सकेगा।

रूस में दीर्घजीवी होने के नुक्शे रखे (बताये)गये हैं। वे आहार से सम्बन्धित हैं, अत: अनुकरणीय हैं-

1) नित्य प्रति के भोजन में वसा तथा कार्वोहाइड्रेट की मात्रा घटा दी जाए, किन्तु प्रोटीन की मात्रा को स्थिर रखा जाए। प्रोटीन की आवश्यक मात्रा 80-90 ग्राम प्रतिदिन है।

2) भोजन में लवण की मात्रा पर नियंत्रण रखा जाए। किसी भी दशा में दो से लेकर चार ग्राम से अधिक लवण न खाया जाए। जल तथा लवण की मात्रा के मध्य एक निश्चित अनुपात आवश्यक है।

मानव शरीर में वृद्धि, विकास और क्षय :- मानव शरीर में वृद्धि जन्म से आरम्भ नहीं होती, वरन् तभी से आरम्भ हो जाती है जब अंडाणु, शुक्राणु से निषेचित हो जाता है। वैसे भी यह वृद्धि तो आनुवांशिकता द्वारा निश्चित हो जाती है कि कौन कितना छोटा या लंबा होगा।'वृद्धि का तात्पर्य है शरीर में पहले से उपस्थित जीवित पदार्थ में और अधिक जीवित पदार्थ का शामिल होना।' यह तो ज्ञात है कि कौशिकाओं की वृद्धि एक से दो, दो से चार..... की तरह होती है। इस प्रकार अंडाणु के निषेचित होने के समय से लेकर पैदा होने तक मानव शरीर की कोशिका 2.5 अरब से गुणित हो चुकी होती है। लेकिन उस के बाद नवजात शिशु से लेकर प्रौढ होने तक केवल 20 गुणा ही बढती है। मस्तिष्क और मांसपेशियाँ जन्म से पहले गर्भाशय में पूर्णरूपेण विकसित हो चुकी हैं। जन्म के बाद किसी अन्य नई पेशी या मस्तिष्क के भाग का विकास नहीं होता, न ही किसी के समाप्त होने पर उस स्थान पर दूसरी का प्रतिस्थापन होता है। केवल त्वचा और रक्त कणिकाओं की कोशिकाएँ ही गुणन करती रहती है।

जीवित रहने के लिए ऑक्सीजन आवश्यक है। क्या आप को पता है कि माँ के गर्भाशय में ऑक्सीजन कहाँ से प्राप्त होती है? जरायु द्वारा ऑक्सीजन तथा अन्य पोषक पदार्थ माता से गर्भाशय में पल रहे बच्चे को प्राप्त होते हैं। पैदा होने के बाद साँस लेना आवश्यक है। क्योंकि माँ से ऑक्सीजन की पूर्ति रूक जाती है। जन्म लेने से पहले ही

बच्चे के साँस लेने वाले अंगों-छाती, डायाफ्रॉम की पेशियाँ सिकुडने और फूलने का अभ्यास करने लगती हैं। माँ के शरीर से निकलते ही बाहर की ठंडी हवा का झटका फेफडों पर लगता है, जिससे बच्चे के तीव्रगति से रोने की आवाज आती है।

मांस पेशियों में कोई नई पेशी तो नहीं बनती है, शारीरिक वृद्धि में मांसपेशियों का सुगठित होना तंतुओं की वृद्धि और विकास के कारण होता है। हड्डियों की लम्बाई बढ जाती है। इसी का ही परिणाम विकास होता है।

मानव शरीर के कुछ हिस्से का क्षय होना तो जन्म लेने के साथ ही आरम्भ हो जाता है। उदाहरण के लिए आँखों की समंजन क्षमता जन्म लेने के साथ ही धीरे-धीरे 50 वर्ष की उम्र तक कम होती जाती है। उसके बाद लगभग स्थिर रहती है। थाइमस ग्रंथि 10-12 वर्ष की आयु तक अधिकतम आकार की होती है तथा उस के बाद तीव्रता से क्षयित होकर 20 वर्ष की उम्र में अपने अधिकतम आकार की लगभग आधी हो जाती है। व्यक्ति जैसे-जैसे बूढा होता जाता है वैसे-वैसे उसकी जीभ पर उपस्थित स्वाद कलिकाएँ तथा गंध की संवेदना कम होती जाती है। धीरे-धीर उम्र बढने पर तंत्रिका तंत्र, श्वसन तंत्र और परिसंचरण तंत्रमें भी रूकावट आ सकती है। लगभग सभी मामलों में सीखने की क्षमता 20 वर्ष की उम्र के बाद कम होने लगती है। ये सारी बातें अंततः मृत्यु का कारण बनती है।

क) प्रतिक्षण विनाशः- यह अति महत्वपूर्ण बात हैं कि पूर्ण वृद्धि को प्राप्त मानव शरीर में कोशिकाओं की टूट-फूट की मरम्मत होती रहती हैं। हजारों की संख्या में मृत कोशिकाएँ स्नान करते समय हमारे शरीर से बाहर निकल जाती है। यह भी अनुमान लगाया गया है कि हमारे जीवन के हर सेकण्ड में एक करोड लाल रक्त कणिकाएँ मर जाती हैं। और नई कणिकाएँ प्रति स्थापित हो जाती हैं।

ख)वार्द्धक्य यानि बुढापाः- मनुष्य उतना ही बूढा, है जितनी उसकी धमनियाँ। कवि रॉबर्ट ब्राउनिंग ने लिखा है- "Grow old along with me, the best is yet to be " एक तरफ तो इस उम्र को युवा पीढी द्वारा सम्मान मिलता है, वहीं दूसरी तरफ इसे बीमारी, कमजोरी आदि होने के कारण वेकार माना जाता है। हम जन्म से या उसके पहले से ही बूढे होने लगते हैं, परन्तु यह सब बहुत धीमे-धीमे होता है।

कहा जाता है, बच्चा जन्म लेकर बाल्यावस्थाको प्राप्त होता है, फिर युवा होता है और अन्त में बूढा हो जाता है। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता- आप अमुख तिथि से बूढे होन लगे हैं। जहाँ तक अंगों के ऊतकों के निर्माण-टूटन की प्रक्रिया का प्रश्न है, वह तो लगातार ही चलती रहती है। अन्तर इतना ही है कि किसी में कम या ज्यादा अथवा भिन्न-भिन्न अवस्था में होता है। बूढे होने की प्रक्रिया (वार्द्धक्य) के बारे में कहा जा

सकता है की शरीर के पुनर्नवीनीकरण की शक्ति में क्रमशः धीमी गति से ह्रास होना ही वार्द्धक्य का निचोड है।

हड्डियों से कार्बनिक पदार्थ धीमे-धीमे निकल जाता है। इसका स्थान खनिज पदार्थ ले लेते हैं, जिससे हड्डियाँ भंगुर हो जाती हैं। शरीर का ताप मान तथा रासायनिक सन्तुलन कमजोर हो जाता है। दिमागी स्तर की तीव्रता में धीरे-धीरे कमी आने लगती है। हृदय और रक्त वाहिनियाँ ही मुख्य रूप से वार्द्धक्य के लिए उत्तरदायी हैं। उम्र के साथ रक्त वाहिनियों में अनेक विकार जैसे -खून का जमना, कैल्शियम जमना, रक्त दबाव, लचीलापन समाप्त हो जाना, आदि उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिए कहा जाता है कि उतना ही बूढा जितनी धमनियाँ।

डॉ. जॉन एच. लारेंस ने वार्द्धक्य की माप एक नये पैमाने से की है। उनका कहना है कि मनुष्य की अपने रक्त में घुली नाइट्रोजन गैस से छुटकारा पाने की क्षमता जितनी है, मनुष्य उतना ही बूढा होगा। समुद्र तल के स्थल पर एक प्रौढ व्यक्ति के रक्त में लगभग एक हजार घन से.मी. नाईट्रोजन गैस घुली रहती है। उन्होंने रेडियोसक्रिय नाइट्रोजन का उपयोग विभिन्न आयु वर्ग के लोगों पर किया और देखा कि 15 वर्ष की उम्र वाले बच्चे आधी गैस की मात्रा कुछ ही मिनट में बाहर निकाल देते हैं, जबकि 65 वर्ष की उम्र के लोग इतनी ही मात्रा 5घटें में निकाल पाते हैं।

वार्द्धक्य क्यों होता है ? अभी भी संशयात्मक है - कुछ इसके लिए शारीरिक रचना को कारण मानते हैं, कुछ जीव द्रव्य में उम्र के साथ घटने वाली जीवंतता को, कुछ रक्त के प्लाज्मा को कुछ शरीर में उपस्थित खनिज लवणों को, कुछ खाए जाने वाले पदार्थों में उपस्थित तथा शरीर द्वारा अवशोषित होने वाले पोषक तत्वों को इसका उत्तरदायी मानते हैं। कुछ अन्य शारीरिक एंजाइम अभिक्रियाओं का इसका उत्तरदायी मानते हैं। अब इस बात की खोज करली गई है कि उम्र के बदलने के साथ एंजाइम की क्रियाएँ किस प्रकार बदल जाती हैं। सम्भवतः एंजाइम ही वार्द्धक्य के प्रमुख कारण हो सकते हैं।

प्रो. नीलरत्नधर के अनुसार रक्त रूपी कोलाइड का धीरे-धीरे स्कंदन ही मृत्यु है।

अगर जीव वैज्ञानिक की दृष्टि से देखे तो यह एक जैविक परिवर्तन है, जिसे रोका नहीं जा सकता । प्रकृति की एक सामान्य और परिवर्तनीय प्रक्रिया है। सामान्य तथा शारीरिक और मानसिक शक्ति कमजोर होना संवेदनशीलता कम होना, भार घटना, नजर कमजोर होना, बाल सफेद होना, त्वचा में झुर्रियाँ पडना, आदि वृद्धावस्था या बुढापे के लक्षण माने जाते हैं।

हर आदमी के बूढे होने की प्रक्रिया अलग-अलग आयु में शुरू होती है, पर यह निर्विवाद है कि बुढापा आता जरूर है।

वास्तव में प्राणियों में भ्रूणीय अवस्था से ही वृद्धि और अपक्षय साथ-साथ चलते रहते हैं। प्रारम्भ में वृद्धि अपक्षय पर हावी रहती है, किन्तु पूर्ण परिपक्व अवस्था प्राप्त कर लेने के बाद अपक्षय वृद्धि पर हावी होने लगता है। वृद्धि की दर शरीर के विभिन्न ऊतकों में भी अलग होती है। जैसे कि हमारे शरीर में मांसपेशियों में तथा कंकाल तंत्र के ऊतक लगभग 25 वर्ष की आयु तक पूर्ण परिपक्व हो जाते हैं; जबकि मस्तिष्क, रीढ की हड्डी और तंत्रिका तंत्र के ऊतक जीवन के कुछ वर्षों के बाद ही पूर्ण विकसित हो जाते हैं। इसके विपरीत प्रजनन तंत्र के ऊतक वय: संधि के बाद ही विकसित होते हैं। इस प्रकार विभिन्न ऊतकों का चरम विकास, आयु के अलग-अलग दौर में होता है और इसके बाद उसका क्षय शुरू हो जाता है।

उम्र बढने के साथ-साथ अंत: कोशिकीय द्रव में कमी आ जाती है, जिससे शरीर के कुल द्रव की मात्रा में कमी आ जाती है। कुछ लोगों में वसा पिंडों के जमाव से उम्र बढने के साथ-साथ शरीर का भार भी बढ जाता है।
युवावस्था में अत्यन्त सक्रिय कोशिका का केन्द्र भी वृद्धावस्था में अधिक क्रियाशील नहीं रह पाता है, बल्कि यह मात्र नियंत्रण ही रह जाती है।

डी. एन. ए. तथा आर. एन. ए. का संश्लेषण भी अब नहीं हो पाता है। हमारी तमाम उपापचयी क्रियाएँ भी मंद पड जाती हैं, जिसके कारण हम न केवल ऑक्सीजन कम ले पाते हैं, अपितु आक्सीजन का उपयोग भी कम कर पाते हैं जिससे शरीर का ताप मान भी गिर जाता है। वृद्धावस्था में कम विकसित ऊतक अधिक विकसित ऊतकों का स्थान भी ले लेतें हैं। इसी तरह प्रत्यास्थ ऊतक का स्थान तंतुमय ऊतक ले लेते हैं।

वृद्धावस्था में कैल्शियम धीरे-धीरे अस्थियों से निकलने लगता है, जिसके परिणाम स्वरूप 'आस्टियोपोरोसिस' नामक बीमारी हो जाती है। अस्थियों का भार घटने लगता है। थोडी चोट लगने से भी फ्रैक्चर होने की संभावना बढ जाती है। उपास्थियाँ या कार्टिलेज भी कठोर हो जाती है। मांसपेशियाँ आकार में सिकुडने लगती हैं तथा तंतुमय होने लगती हैं, जिससे मांसपेशियों की कार्य क्षमता घट जाती है। वृद्धावस्था में महत्वपूर्ण और अधिक विकसित ऊतकों के स्थान पर कम गुणवत्तावाले ऊतक आ जाते हैं। प्रत्यास्थ ऊतकों का स्थान तंतुमय ऊतक ले लेते हैं। वृद्धावस्था पर उसका अत्यंत महत्वपूर्ण प्रभाव पडता है। वृद्धावस्था का एक सामान्य किन्तु महत्वपूर्ण परिवर्तन 'एथेरोस्कलेरोसिस' है। 'कोलेस्टेरॉल' वसा के साथ मिलकर धमनियाँ संकीर्ण हो जाती हैं। प्रत्यास्थ ऊतकों के न होने से धमनियों की आंतरिक दीवारों पर धीरे-धीरे जमता जाता है, जिससे धमनियाँ संकीर्ण हो जाती हैं। प्रत्यास्थ ऊतकों के न होने से धमनियों की प्रत्यास्थता भी कम हो जाती है, जिससे रक्तचाप बढ जाता है। आगे जाकर ये स्थिति दिल के दौरे का कारण भी

बन सकती है। काम करने पर जल्दी साँस फूल जाना वृद्धावस्था का एक सामान्य लक्षण बन जाता है। धीरे-धीरे मस्तिष्क की ओर रूधिर संचरण में कम होने से स्मरण शक्ति में कमी आ जाती है और व्यवहार में भारी परिवर्तन आने लगते हैं। नींद न आना भी इस अवस्था का सामान्य रोग है। यही कारण है कि डॉक्टर अधिक चिकनाई युक्त पदार्थों के सेवन की सलाह देते हैं।

वृद्धावस्था में दाँत गिरने लगते हैं, उनका एनेमल घिसने लगता हैं। भोजन को पचाने के लिए जठर रस तथा अन्य पाचक रसों की आवश्यकता होती है, जो शरीर में सामान्य रूप से बनते हैं। वृद्धावस्था में इन रसों की मात्रा में भारी कमी आने के कारण पाचन तंत्र बार-बार बिगड जाता है, आँतों की काम करने की क्षमता में कमी आ जाने से कब्ज भी होता रहता है। भोजन के उपापचय में लगभग 30% की कमी आ जाती है। इस सबके परिणाम स्वरूप भूख नहीं लगती।

हमारी ज्ञानेन्द्रियों में भारी परिवर्तन आता है जैसे कि आँखें अंदर धँस जाती हैं, पलकें झुक जाती हैं, आँखों के आस-पास झुर्रियाँ आ जाती हैं, आँखें का लेंस अपारदर्शी होने लगती हैं तथा मोतियाँबिंद हो जाता है। इसी प्रकार श्रवण शक्ति धीरे-धीरे कम होने लगती है। स्वाद और सूँघने की शक्ति भी कम होने लगती है। त्वचा में भी परिवर्तन आने लगते हैं। युवावस्था में हमारे शरीर में 'ओइस्ट्रोजन' नामक हार्मोन और एक विशेष प्रोटीन 'इलास्टिन' त्वचा में कसाव और लचीलापन बनाए रखते हैं, वृद्धावस्था में ओइस्ट्रोजन हार्मोन बनना बंद हो जाता है, जिससे त्वचा ढीली पड जाती है तथा इलास्टिन प्रोटीन समाप्त होने से त्वचा का लचिलापन भी कम हो जाता है। तंतुमय ऊतकों के कारण सब जगह मुख्यत:माथे और हाथ पर झुर्रियाँ आ जाती हैं।

वृद्धावस्था में हमारे बालों के काले रंग के लिए उत्तरदायी मेलेनिन वर्णक बनना कम हो जाता है अत: बाल सफेद होना शुरू हो जाते हैं। वृद्धावस्था में त्वचा में रूधिर संचरण की कमी होने से तापमान गिर जाता है। यही कारण है कि वृद्ध लोगों को ठंड भी ज्यादा लगती है। नाखून भी इस अवस्था में भंगुर हो जाते हैं। गुर्दों की कार्यक्षमता भी बहुत कम हो जाती है। चौबीस घटों में मूत्र में 'कीटोस्टेरायड' का उत्सर्जन जहाँ युवावस्था में 10-20 मिलीग्राम होता है वहीं वृद्धावस्था में मात्र 1-3 मिली ग्राम रह जाता है। लगभग सभी हार्मोनों का उत्पादन भी कम हो जाता है। थायरायड हार्मोन के कम होने से उपापचयी क्रियाओं में कमी आ जाती है। सेक्स हार्मोन की कमी से प्रजनन शक्ति कमजोर हो जाती है। यहाँ तक कि हार्मोन उत्पादन का नियंत्रण करने वाली पीयूष ग्रंथि भी असंतुलित होने लगती है। इसलिए धर्म में वृद्धावस्था को एक बडा रोग कहा है।

मृत्यु क्या है ? :- मृत्यु समस्त शारीरिक क्रियाओं का स्थायी अवसान है। इसके

निम्न-लिखित चिन्ह हो सकतें हैं-

1) रूधिर परिसंचरण का पूर्णतया रूक जाना। 2) श्वसन का पूर्णतया रूक जाना । 3) त्वचा का रंग पीत एवं श्वेत हो जाना। 4) नेत्रों की पुतलियों का संज्ञा शून्य होना। 5) शरीर का ठंडा पड जाना। मृत्यु के प्रथम तीन घटें 2 सेंटीग्रेट प्रतिघंटे की दर से और उसके बाद लगभग 0.5 सेंटीग्रेट प्रतिघंटे के हिसाब से शरीर का तापमान घटता है। 6) अंत में शव की अकडन, शव की नीलिमा, सडांध, शरीरिक वसा का साबुनीकरण।जैन धर्म के अनुसार आयु कर्म का क्षय होना मृत्यु का प्रधान कारण है। (अकाल मरण = कदलीघात मरण)

मृत्यु दो तरह की :- 1) प्राकृतिक मृत्यु 2) आकस्मिक मृत्यु । पश्चिमी देशों में यह देखा गया है कि मृत्यु दर विवाहितों में न्यूनतम और विधवाओं तथा विधुरों में अधिक होती है। विवाहित व्यक्तियों में मृत्यु दर कम होने का कारण वैवाहिक जीवन में स्थिरता आना है और साथ-साथ अस्वस्थ व्यक्तियों का विवाह से वंचित रहना भी है ।

क्या बुढापा रोक सकते हैं ?

पौराणिक कथाओं में महर्षि च्वनन का नाम आता है, जिन्होंने अश्विनी कुमारों से दवा प्राप्त कराके पुन: यौवन प्रदान किया था। ययाति ने भी अपना बुढापा अपने पुत्र पुरू को देकर जवानी प्राप्त की थी। कुछ वैज्ञानिकों का मानना है कि यदि प्राणी शरीर में ऑक्सीकरण निरोधक तत्वों और विटामिन-ई की मात्रा बढा दी जाए तो कोशिकाएँ देर से मरती हैं और इस प्रकार बुढापे को रोका जा सकता है। इसलिए मस्तिष्क का अधिक से अधिक उपयोग करना चाहिए, जिससे यह क्रियाशील बना रहे, क्योंकि क्रियाशील मस्तिष्क बुढापा आने से रोकता है। शारीरिक तापमान में कमी लाकर भी बुढापे को रोका जा सकता है।

बढती हुई उम्र को किसी भी तरह रोका नहीं जासकता। अभी तक कोई भी ऐसी दवा बाजार में नहीं आई है जो वृद्धाचस्था को रोक सके। यद्यपि एनोबेलिक स्टेरॉयड, विटामिन और अन्य दवाओं के बारे में बडे-बडे दावे किये गयें हैं, किन्तु सिद्ध कुछ नहीं हो सका है। हाँ, वृद्धावस्था में कार्यक्षमता की गुणवत्ता बढाई जा सकती है। इसके लिए सबसे आवश्यक है उपयुक्त शारीरिक श्रम। वृद्धावस्था में टहलना सबसे अच्छा शारीरिक श्रम है। जिन व्यक्तियों को मानसिक काम करना पडता है, उनक लिए व्यायाम यथा योगासन आदि अमृत तुल्य हैं। कई प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ है कि कम खाने से उम्र बडाई जा सकती है। हमारे प्राचीन इतिहास में अनेक दीर्घजीवी ऋषियों, योगियों आदि की चर्चा है जो मिताहारी थे। आधुनिक युग में न्यूयार्क में कारनैल विश्वविद्यालय में चूहों पर किये गए प्रयोग से सिद्ध हुआ है कि कम खाने से उम्र बड सकती है। इस सम्बंध में

प्रयोग और खोज जारी है। राफैलर विश्वविद्यालय, न्यूयार्क के विज्ञानिकों ने एक नई दवा इजाद की है-

'एमाइनोग्वानीडीन' जो वृद्धावस्था की गुणवता बढा सकती है। मनुष्य पर इसके प्रयोग चल रहें। यदि ये प्रयोग सफल हो गए तो यह दवा एथेरोस्क्लेरोसिस को धीमा कर सकेगी, अस्थियों का पतला होना रोक सकेगी। धर्म के अनुसार सम्यक् विचार-आहार-विहार, ध्यान, योगासन आदि से वृद्धावस्था का दुष्प्रभाव कम पडता है।

विविध रोग के कारण विविध कर्म

मन: पूर्वागमा धर्मा अधर्मा अधर्माश्च न संशय: ।
मनसा बद्ध्यते चापिमुच्यते चापि मानव: ।
निगृहीते भवेत्स्वर्गो विसृष्टे नरको ध्रुव: ।। महाभारत पृ.5955

इसमें संदेह नहीं कि धर्म और अधर्म पहले मन में ही आते हैं। मन से ही मनुष्य बंधता है और मन से ही मुक्त होता है। यदि मन को वश में कर लिया जाए तब तो स्वर्ग मिलता है और यदि उसे खुला छोड दिया जाये तो नरक की प्राप्ति अवश्यम्भावी है।

जीवा: पुराकृतेनैव तिर्यग्योनिसरीसृपा: ।
नानायोनिषु जायन्ते स्वकर्मपरिवेष्टिता: ।।

जीव अपने पूर्व कृत कर्म के ही फल से पशु-पक्षी एवं कीट आदि होते हैं। अपने-अपने कर्मों से बँधें हुए प्राणी ही भिन्न-भिन्न योनियों में जन्म लेते हैं।

जायमानस्य जीवस्य मृत्यु: पूर्वे प्रजायते ।
सुखं वा यदि वा दु:खं यथा पूर्व कृतं तु वा ।।

जो जीव जन्म लेता है, उसकी मृत्यु पहले ही पैदा हो जाती है। मनुष्य ने पूर्व जन्म में जैसा कर्म किया है, तदनुसार ही उसे सुख या दु:ख प्राप्त होता है।

असमर्थ शरीर प्राप्त करने का कर्म

शक्ता येऽत्र निजं वीर्यं व्यक्तं कुर्वन्ति जातु न ।
कायशर्मरता धर्मतपो व्युत्सर्ग सिध्दये । ।206
तन्वन्ति पापकर्माणि गृह व्यापार कोटिभि: ।
परत्राघाभ्दवेतेषां वपुर्निन्द्यं तपोऽक्षमम् ।।207

जो समर्थ होकर के भी धर्म, तप, व्युत्सर्ग आदि की सिद्धि के लिए कदाचित् भी अपने बल, वीर्य को व्यक्त नहीं करते हैं और शरीर के सुख में मग्न रहते हैं, तथा घर के व्यापार सम्बन्धी करोडों कार्यों के द्वारा पाप कर्मों को करते रहते हैं , उन जीवों को उस पाप से पर भव में तप करने में असमर्थ और निन्दनीय शरीर प्राप्त होता है।

विकलाङ्ग बनने का कर्म

स्वेच्छया ये प्रवर्तन्ते हिंसादि पापपञ्चसु ।
उन्मत्ता इव गृहन्ति तत्वार्थान् श्रीजिनोदितान् ॥111
देवश्रुतगुरून् धर्मार्चादीन् सत्यांस्तथेतरान् ।
भवन्ति विकलास्ते मतिज्ञानावरणोदयात् ॥112 (वी. व.चा.)

जो जीव हिंसादि पाँचों पापों में अपनी इच्छा से प्रवृत होते हैं, श्री जिनेन्द्र देव से उपदिष्ट तत्त्वार्थ को उन्मत्त पुरूष के समान यद्वा-तद्वा रूप से ग्रहण करते हैं, तथा सत्य और असत्य देवशास्त्र, गुरू, धर्म, प्रतिमा आदि को भी समान मानते है ऐसे जीव मतिज्ञानावरणकर्म के उदय से विकलांगी होते हैं।

कुबडे होने के कर्म

ये पुरा मनुजा देवि लोभमोह समावन्ताः ।
प्राणिनां प्राणहिंसार्थभङ्गविघ्नं प्रकुर्वते ।।
शस्त्रेणोत्कृत्य वा देवि प्राणिनां चेष्टनाशकाः ।
एवं युक्तसमाचाराः पुनर्जन्मनि शोभने ॥
तदङ्गहीना वै प्रेत्य भवन्तयेव न संशय : ।
स्वभावतो वा जाता वा पङ्गुवस्ते भवन्ति वै ।।

श्री महेश्वर ने कहा-देवि ! जो मनुष्य पहले लोभ और मोह से आच्छादित होकर प्राणियों के प्राणों की हिंसा करने के लिए अंग भग कर देते हैं, शस्त्रों से काट कर उन प्राणियों को निश्चेष्ट बना देते हैं, शोभने ! ऐसे आचार वाले पुरूष मरने के बाद पुनर्जन्म लेने पर अंग हीन होते हैं, इसमे संशय नहीं है। वे स्वभावतः पंगुरूप में उत्पन्न होते हैं अथवा जन्म लेने के बाद पंगु हो जाते हैं।

मूक बनने का कर्म

प्रजल्पन्ति वृथा येऽत्र विकथाः प्रत्यहं शठाः ।
दोष न्निर्दोषिणां चार्हच्छुतसद्गुरूधर्मिणाम् ॥ 108
पठन्ति पापशास्त्राणि स्वेच्छया च जिनागमम् ।
विनयादिं विना लोभख्यातिपूजादिवाञ्छया ॥ 109
धर्म सिद्धान्त तत्त्वार्थानयुक्तयाऽन्यान् दिशन्ति च ।
ते ज्ञानावृतिपाकेन मूकाः स्युः श्रुतवर्जिताः ॥110

जो शठ यहाँ पर प्रतिदिन वृथा ही विकथाओं को कहते रहते हैं, निर्दोष अर्हन्त, श्रुत, सद्गुरू और धार्मिकजनों के मन-गढन्त दोषों को कहते हैं, पाप शास्त्रों को अपनी इच्छा से पढते हैं, और जिनागम को विनय आदि के बिना लोभ, ख्याति, पूजा आदि की

इच्छा से पढते हैं, जो धर्म सिद्धान्त और तत्वार्थ का कुयुक्तियों से अन्यथा रूप दूसरों को उपदेश देते हैं, वे जीव ज्ञानावरण कर्म के विपाक से श्रुतज्ञान से रहित मूक (गुँगे) होते हैं। (वर्धमान चरित सप्तदश अधिकार)

बधिर बनने का कर्म

अश्रुतं परदोषादि श्रुत्रं वदन्ति चेषर्या ।
श्रुण्वन्ति परनिंदा ये विकथां दुःश्रुतिं जडाः ॥104
केवलि श्रुत्र सङ्घानांदूषणं चात्र धर्मिणाम् ।
भवेयुर्बधिरास्ते कुज्ञानावरणपाकतः 105

जो जड लोग नहीं सुने हुए भी पर दोषों को ईष्या से कहते हैं, पर निन्दा विकथा और कुशास्त्रों को सुनते हैं केवली भगवान, श्रुत संघ और धर्मात्माओं को दूषण लगाते हैं वे कुज्ञानावरण कर्म के विपाक से बधिर (बहिरे) होते हैं। (श्री वर्धमान चारित)

पंगु बनने का कर्म

कार्यन्ति पशूनां येऽतिभारारोपणं शठाः ।
ध्नन्ति पादेन सत्त्वांशचेक्षणादृतेऽध्वगामिनः ॥ 102
कुतीर्थे पापकर्मादौ गच्छन्ति निर्दयाशयाः ।
मृत्या ते पङ्गवो निन्द्याः स्युराङ्गोपाङ्गकर्मणा ॥ 103

जो शठ पशुओं के ऊपर उनकी शक्ति से अधिक भार को लादते और लदवाते हैं, पैरों से प्राणियों को मारते हैं, बिना देखे मार्ग पर चलते हैं, कुतीर्थ में और पाप के कार्योदि में जाते हैं, ऐसे निर्दय चित्त वाले नित्य जीव मरकर अंगोपांङ्ग नाम कर्म के उदय से पंगु (लँगडे) होते हैं।

अन्धे बनने का कर्म

ब्रुवनत्यत्रेर्ष्ययाद्दष्ट दृष्टं ये परदूषणम् ।
कुर्युनैत्रविकारं च पश्यन्त्यादरतः खलाः ॥106
परस्त्रीस्तनयोन्यास्यान् कुतीर्थदेवलिङ्गिनः ।
तेऽतीवदुःखिनोऽन्धा स्युश्चक्षुरावरणो दयात् ॥107

जो अन्य लोगों को देखे या अनदेखे दूषणों को कहते हैं, नेत्रों की विकार युक्त चेष्टा करते हैं, जो दुष्ट परस्त्रियों के स्तन, योनि आदि अंगों को आदर और प्रेम से देखते हैं। कुतीर्थी कुदेवभक्त और कुलिंगी हैं, वे पुरूष चक्षुदर्शनावरण कर्म के उदय से अतीव दुःख भोगने वाले अन्धे होते हैं।

ये पुरा कामकारेण परवेश्मसु लोलुपाः ।
परस्त्रियोऽभिवीक्षन्ते दुष्टैनैव स्वचक्षुषा ॥

अन्धीकुर्वन्ति ये मर्त्याः क्रोधलोभसमन्विता।
लक्षणज्ञाश्च रूपेषु अयथावत्प्रदर्शकाः॥
एवं युक्त समाचारः कालधर्मवशास्तु ते।
दण्डिता यमदण्डेन निरयस्थाश्चिरं प्रिये॥

जो पूर्व जन्म में या काम स्वेच्छाचार वश में पराये घरों में अपनी लोलुपता का परिचय देते हैं और परायी स्त्रियों पर अपनी दूषित दृष्टि डालते हैं तथा जो मनुष्य क्रोध और लोभ के वशीभूत होकर दूसरों को अन्धा बना देते हैं अथवा रूप विषय के लक्षणों को जानकर उसका मिथ्या प्रदर्शन करते हैं, ऐसे आचार वाले मनुष्य मृत्यु को प्राप्त होने पर यमदण्ड से दण्डित हो चिरकाल तक नरकों में पडे रहते हैं।

यदि चेन्मानुषं जन्म लभन्तस्ते तथापि वा।
स्वभावतो वा जाता वा अन्धा एव भवनि ते॥
अक्षि रोगयुता वापि नास्ति तत्र विचारण॥

उसके बाद यदि वे मनुष्य योनि में जन्म लेते हैं, तब स्वभावतः अन्धे होते हैं अथवा जन्म लेने के बाद अन्धे हो जाते हैं या सदा ही नेत्र रोग से पीडित रहते हैं। इस विषय में विचार करने की आवश्यकता नहीं है। (महाभारत अनुशासन पर्व)

दृढ शरीर को प्राप्त करने का कर्म

व्युत्सर्ग दुष्करं योगं तपो मौनव्रतादिकान् ।
स्वशक्त्या दधते ये च बुधाः स्वर्मुक्तिकाङ्क्षिणः ॥204
नाच्छादयन्ति सद्वीर्यं तपोधर्मादि कर्मसु।
ते लभ्यन्ते दृढं कायं तपोभार क्षमं शुभम्॥ 205

जो स्वर्ग- मुक्ति के इच्छुक ज्ञानी पुरूष अपनी शक्ति के अनुसार अति दुष्कर कायोत्सर्ग योग और मौनव्रत आदि को धारण करते हैं, तपश्चरण और धर्म सेवनादि कार्यों में अपने विद्यमान बल-वीर्य को नहीं छिपाते हैं, वे पर भव में तप के भार को सहन करने में समर्थ ऐसे शुभ वज्र वृषभनाराच संहनन वाले दृढ शरीर को पाते हैं।

दातृव गुण प्राप्त होने का कर्म

पात्रेभ्यो येऽनिशं दानं धनं भक्त्या च सिद्धये।
चैत्य चैत्यालयादीनां ददते धर्मकाङ्क्षिणः ॥160
तेषां सर्वत्र जायेत दातृत्व गुण उत्तमः।
पूर्व संस्कार योगेन श्रेयसेऽत्र परत्र च॥ 161

जो धर्म के अभिलाषी जन पात्रों के लिए सदा दान देते हैं। जिन प्रतिमा और जिनालय आदि के निर्माण के लिए भक्ति के साथ धन देते हैं, उनके पूर्व संस्कार के योग

से सर्वत्र उत्तम दातृत्व गुण प्राप्त होता है। जो उनके इस लोक और परलोक में कल्याण के लिए कारण होता है।

सौभाग्यशाली होने का कर्म

ये कुर्वन्ति परां भक्ति जिनेन्द्राग्मयोदिनाम्।
आचरन्ति तपोधर्म व्रतानि नियमादिकान् ॥125
हत्वा च दुर्ममत्वादीन् जयन्तीन्द्रिय तस्करान् ।
स्युस्ते नेत्रप्रिया लोके सुभगाः सुभगोदयात् ॥126

जो पुरूष जिनदेव , जिनागम और योगियों की परम भक्ति करते हैं , तप, धर्म, व्रत और नियम आदि को धारण करते हैं, खोटे ममत्व आदि का घात कर इन्द्रिय रूप चोरों को जीतते हैं , ये पुरूष सुभगकर्म के उदय से लोक में सौभाग्यशाली और नेत्रप्रीत होते हैं।

सर्व सम्पदाओं के स्वामी होने का कर्म

त्रिजगत्स्वामिनश्चार्हद् गणेन्द्रागम योगिनः।
रत्नत्रयं तपोधर्म माराधयन्ति येऽनिशम् ॥170
त्रिशुध्द्या नुति पूजाद्यैस्त्यक्त्वा सर्वान्मतान्तरान्।
उत्पद्यन्तेऽत्र पुण्यात्ते स्वामिनो विश्व सम्पदाम् ॥171

जो लोग तीन जगत् के स्वामी अर्हन्तों की , गणधरों की , जिनगाम की, योगीजनों की, रत्नत्रय धर्म की और तप की निरन्तर मन-वचन काय की शुद्धिपूर्वक और सर्व मतान्तरों को छोडकर आराधना करते हैं, वे इस लोक में उस पुण्य से सर्व सम्पदाओं के स्वामी होते हैं।

भोग-सम्पदाओं को प्राप्त होने का कर्म

ददते येऽन्वहं दानं सत्पात्रेभ्योऽति भक्तितः।
अर्चयन्ति जितेन्द्राङ्घ्री गुरू पादम्बुजौ शुभौ ॥147
विद्यमाना बहून् भोगांस्त्यजन्ति धर्म सिद्धये।
ते लन्तेऽत्र धर्मेण महतीर्भोग संपदः ॥148

जो पुरूष सत्पात्रों के लिए अति भक्तिसे प्रतिदिन दान देते हैं, जिनेन्द्र देव के और गुरूजनों के शुभाचरण-कमलों को पूजते हैं और धर्म की सिद्धि के लिए विद्यमान बहुत से भोगों को छोडते हैं, वे मनुष्य इस लोक में धर्म के द्वारा महाभोग-सम्पदाओं को प्राप्त करते हैं।

ये तन्वन्ति सदा धर्मं पूजनं च जिनेशिनाम्।
वितरन्ति सुपात्रेभ्यो दानं भक्तिभराङ्किताः ॥151
तपोव्रतयमादींश्चाचरन्ति लोभदूरगाः।

तान् प्रति स्वयमायान्ति जगत्सारा:श्रिय:शुभात् ।।152

जो सदा धर्म का विस्तार करते हैं, जिनेशों का पूजन करते हैं, भक्ति भाव से युक्त होकर सुपात्रों को दान देते हैं, तप, व्रत, संयमादिका आचरण करते हैं और लोभ से दूर रहते हैं, उनके पास पुण्य कर्म के उदय से जगत् में सारभूत लक्ष्मी स्वयं आ जाती है।

इष्ट संयोग प्राप्त होने का कर्म

दूषयन्ति न जीवान् ये वियोग ताडनादिभि: ।
पोषयन्ति सदा जैनांस्तदीहित सुसंपदा ।।157
सेवन्ते यत्नतो धर्मं व्रतदानार्चनादिभि : ।
स्पृहयन्ति च शर्मस्त्रीतुग्धनादीन् शिवं विना ।।158
संपद्यन्तेऽत्र तेषां च पुण्य भाजां सुपुण्यत: ।
संयोगाश्च मनोऽभीष्ट पुत्रस्त्री धन कोटिभि: ।।159

जो पुरूष वियोग, ताडन आदि से दूसरे जीवों को दुख नहीं पहुँचाते हैं, सदा जैनों का उनकी अभीष्ट सम्पदा से अर्थात् मनोवांच्छित वस्तु देकर पोषण करते हैं, यत्नपूर्वक व्रत, दान, पूजन आदि के द्वारा धर्म का सेवन करते हैं, मोक्ष के बिना संसारिक सुख-स्त्री-पुत्र और धनादिक की इच्छा नहीं करते हैं उन पुण्यशाली लोगों को सुपुण्य के निमित्त से मनोभीष्ट पुत्र, स्त्री और कोटि-कोटि धन के साथ इस लोक में सयोग प्राप्त होते हैं।

सुसंग एवं कुसंग प्राप्त होने का कर्म

गुणाब्धीनां गुरूणां च ज्ञानिनां जिनयोगिनाम् ।
सद्दृष्टीनां सदा सङ्गं कुर्वते तद्गुणाय ये ।। 188
तेषां संपद्यते साधर्म गुर्वादिगुणिभिश्च तै: ।
भवेत्सर्वमहान् सङ्ग: स्वर्ग मुक्ति गुणादिद: ।। 189

जो मनुष्य गुणों के सागर ऐसे जिन योगियों की, ज्ञानी गुरूओं की और सम्यग्दृष्टि पुरूषों के, उनके गुण पाने के लिए सदा संगति करते हैं उन्हें गुणी गुरू आदि सुजनों के साथ स्वर्ग-मुक्ति का दाता महान् संयम प्राप्त होता हैं।

संसर्ग मुत्तमानां ये त्यक्त्वा कुर्वन्ति चान्वहम् ।
गुण ध्वंसकरं सङ्गं मिथ्यादृश्यां शठात्मनाम् ।। 190
तेऽधोगामिन एवाहो इहामुत्रासुनाशिनम् ।
सङ्गं तद्गति हेतुं तैलभन्ते दुर्जनै: सह ।। 191

जो लोग उत्तम जनों का संगम छोडकर अज्ञानी मिथ्यादृष्टियों का गुण-नाशक संगठन नित्य करते हैं, वे अधोगामी जीव इस लोक और परलोक में प्राण नाशक और दुर्गाति का कारणभूत कुसंग-दुर्जनों का साथ सदा पाते हैं।

अशुभाशय होने का कर्म

पर स्त्री हरणादौ ये कौटिल्यं कुटिलाशया: ।
चिन्तयन्त्यन्वहं चित्ते ह्याच्चाटनं च धर्मिणाम् ।।141
तुष्यन्ति मनसा दृष्ट्वा दुराचाराणि दुर्धियाम् ।
पापर्जनाय जायन्ते तेऽशुभेनाशुभाशया: ।। 142

जो कुटिल अभिप्राय वाले मनुष्य पर स्त्री हरण आदि कुटिल प्रवृत्ति करते हैं, धर्मात्माजनों के उच्चाटन का चित्त में सदा विचार करते रहते हैं और दुर्बुद्धियों के दुराचारों को देखकर मन में संतुष्ट होते हैं, वे अशुभ कर्म के उदय से पापोपार्जन के लिए अशुभ अभिप्राय वाले उत्पन्न होते हैं।

निन्दनीय होने का कर्म

निन्दां कुर्वन्ति ये दुष्टा जिनेशां च गणेशिनाम् ।
सिद्धान्तस्य च निर्ग्रन्थ श्रावकादिषु धर्मिणाम् ।। 182
प्रशंसा पापिनां मिथ्यादेवश्रुत तपस्विनाम् ।
तेऽयश: कर्मणा दोषाढ्या निन्द्या:स्युर्जगत्त्रये ।। 183

जो दुष्ट पुरूष जिन राजाओं की, गणधरों की, जिन सिद्धान्त की निर्ग्रन्थ साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकादि धार्मिक जनों की निन्दा करते हैं तथा पापी, मिथ्या देव-शास्त्र-गुरूओं की प्रशंसा करते हैं वे अयश: कीर्ति कर्म के उदय से तीनों लोकों में निन्दनीय और दु:खों से संयुक्त होते हैं।

शुभाशय होने का कारण

वैराग्य भव भोगाङ्गे जिनेन्द्र गुरू सद्गुणान् ।
धर्म धर्माय तत्वादीन् चिन्तयन्ति सदा हृदि ।।139
त्यक्त्वा ये चार्जवादीन्न कौटिल्यं दधते क्वचित् ।
शुभाशया भवेयुस्ते शुभाच्छुभविधायिन: ।।140

जिनके हृदय में संसार, भोग और शरीर से वैराग्य है, जिनेन्द्र देव और सद्-गुरू के गुणों का, धर्म का और तत्त्वादि का धर्म प्राप्ति के लिए सदा चिन्तवन करते हैं, जो आर्जव आदि सद्- गुणों को छोडकर कदाचित् भी कुटिलता नहीं करते हैं, वे शुभ आशय वाले पुरूष कर्म के उदय से शुभ कार्यों के करने वाले होते हैं।

धर्मात्मा होने का कर्म

ये कुर्वन्ति सदा धर्म तपोव्रत क्षमादिभि: ।
सत्पात्रदान पूजाद्यैदृक् चिद्वृतैदृगन्विता: ।।143

ते नाकादौ सुखं भुङ्क्त्वा पुनरूच्चैः पदाप्तये।
धर्म कर्मकरा धर्मादुत्पाद्यन्तेऽत्र धर्मिणः ॥144

जो पुरूष तप, व्रत, क्षमादि के द्वारा, सत्पात्रदान-पूजादि के द्वारा, दर्शन, ज्ञान और चारित्र के द्वारा सदा धर्म को करते हैं, सम्यग्दर्शन से युक्त हैं, वे स्वर्गादि में सुख भोग कर पुनःउच्च पदों की प्राप्ति के लिए धर्म कार्य करते हैं, वे जीव इस लोक में धर्म के प्रभाव से धर्मात्मा होकर उत्पन्न होते हैं।

शिवमार्ग के पथिक होने का कर्म

जिन शास्त्र गुरून् धर्म परीक्ष्य ज्ञान चक्षुषा।
ये तात्पर्येण सेवन्ते भक्त्या तद्गुणरञ्जिताः ॥202
अनन्य शरणानन्यान् स्वप्नेऽपि कुपथस्थितान्।
जिन धर्मेऽनुरक्तास्ते स्युरमुत्र शिवाध्वगाः ॥ 203

जो अपने ज्ञान नेत्र से यथार्थ जिनदेव, शास्त्र-गुरू और धर्म की परीक्षा करके गुणानुरागी होकर उन गुणों की प्राप्ति के अभिप्राय से भक्ति पूर्वक उनकी सेवा करते हैं, उन्हें ही अपने अन्यान्य (एकमात्र) शरण मानते हैं और कुमार्ग में स्थित अन्य कुदेवादि की स्वप्न में भी सेवा नहीं करते हैं, वे परलोक में जिनधर्मानुरक्त और शिव मार्ग के पथिक होते हैं।

मूढामूढ होने का कर्म

तत्वातत्वात्त शास्त्राणां गुरूदेव तपोभृताम् ।
धर्माधर्मादि दानानां विचारं तन्वतेऽनिशम् ॥192
सूक्ष्म बुद्धयात्र ये तेषां विवेकः परमो हृदि।
अमुत्र विश्वदेवादि परिक्षायां क्षमो भवेत् ॥193

जो पुरुष अपने सूक्ष्म बुद्धि से निरन्तर तत्व-अतत्व का, शास्त्र-कुशास्त्र का तथा देव, गुरू, तपस्वी, धर्म-अधर्म और दानादि का विचार करते हैं।

मिथ्यामार्ग में अनुराग होने का कर्म

मिथ्यामार्गानुरागेरागेणात्रै कान्ते कुत्सिते पथि।
स्थिता ये कुगुरून् मिथ्यादेव धर्मान् भजन्ति च ॥200
दुर्धियः श्रेयसे तेषां पूर्व संस्कार योगत :।
मिथ्यामार्गऽनुरागोऽमुत्र जायेताशुभाकरः ॥201

जो दुर्बुद्धि पुरूष इस लोक में मिथ्यामार्ग के अनुरारग से एकान्ती मिथ्यामार्ग में स्थित हैं और कुगुरू, कुदेव, कुधर्म की आत्मकल्याण के लिए सेवा करते हैं उनका पूर्व भव के संस्कार के योग से पर भव में अशुभ का भण्डार ऐसा अनुराग मिथ्यामार्ग में होता है।

योग्यायोग्य पुत्रादि प्राप्त होने का कर्म

निर्दया ये व्रतैर्हीना दृनत्यत्र पर बालकान्।
तन्वन्ति बहुमिथ्यात्वं संतानादि प्रसिद्धये।। 172
तेषां शठात्मनां मिथ्यात्वाद्य पाकेन निश्चितम्।
स्वल्पायुषो न जीवन्ति पुत्राः पुण्यादिवार्जिताः।।173

जो निर्दय, व्रतहीन मनुष्य इस लोक में दूसरों के बालकों का घात करते हैं और सन्तान आदि की प्राप्ति के लिए अनेक प्रकार का सेवन करते हैं, उन शठ पुरूषों के मिथ्यात्व पाप के परिपाक सेवन से उनके पुत्र अल्प आयु के धारक होते हैं, वे जीते नहीं है और जितने दिन जीवित रहते हैं, उतने दिन पुण्य और सौभाग्य आदि से हीन रहते हैं।

स्वसंतान समान्मत्वाऽन्यपुत्रान् ध्नन्ति जातु नः।
मिथ्यात्वं शत्रुवत्त्यक्त्वा येऽहिंसादि व्रतान्विताः ॥176
यजन्ति जिन सिद्धान्त योगिनः स्वेष्ट सिद्धये।
दिव्यरूपाः शुभात्तेषां सुताः स्युश्चिरजीविनः ॥177

जो पुरूष अन्य के पुत्रों को अपनी सन्तान के समानमान कर उनका स्वप्न में भी घात नहीं करते (किन्तु प्रेम से पालन- पोषण करते हैं) और मिथ्यात्व को शत्रु के समान जान उसे छोडकर अहिंसादि व्रतों को धारण करते हैं तथा जो अपनी इष्ट सिद्धि के लिए जिन देव, जिन सिद्धान्त और जिनानुयायी साधुओं की पूजा-उपासना करते हैं, उस पुण्य के उदय से उनके पुत्र चिरकाल तक जीने वाले और दिव्यरुप के धारक होते हैं।

महारोगी होने का कर्म

तपोयमव्रतादीन् विना येऽतिलम्पटाशयाः।
पोषयन्ति वपुर्नित्यं नानाभोगैवृषादृते ॥116
चरन्ति निशि चान्नादीन् पीडयन्त्याङ्गिनो वृथा।
भक्षयन्ति ह्यखाद्यानि पापिनः करूणतिगाः।।117
तेऽसातकर्मपाकेन कृत्स्नरोगैक भाजनाः।
जायन्ते रोगिणस्तीव्रवेदना विह्वलाशयाः ॥118 श्री वर्ध. चारित्र

जो अति लम्पट चित्त वाले पुरूष तप, संयम, व्रतादि के बिना धर्म को छोडकर नाना प्रकार के भोगों से शरीर का सदा पोषण करते रहते हैं, रात्रि में अन्नादि खाते हैं, प्राणियों पर आक्रमण करके वृथा पीडा देते हैं, अभक्ष्य वस्तुओं को भी खाते हैं और करूणा से रहित हैं, वे पापी असाता कर्म के परिपाक से सर्व रोगों के भोजन तीव्र वेदना से विह्वल चित्त वाले ऐसे महारोगी उत्पन्न होते है।

मुख रोगी होने का कर्म

हन्त ते कथयिष्यामि श्रृणु देवि समाहिता।
कुवक्तरस्तु ये देवि जिह्वया कटुकं भृशम्॥
असत्यं पुरुषं घोरं गुरून् प्रतिपरान्प्रति।
जिह्वाबाधां तदान्येषा कुर्वते कोपकारणात्॥
प्रायशोऽनृतभूतिष्ठा नयः कार्यवशेन वा।
तेषां जिह्वा प्रदेशस्था व्याधयः सम्भवन्तिते॥ महा भारत

देवि ! एकाग्रचित होकर सुनो, मैं प्रसन्नचित्त से तुम्हें सब कुछ बताता हूँ, जो कुवाक्य बोलने वाले मनुष्य अपनी जिह्वा से गुरूजनों या दूसरों के प्रति अत्यन्त कडवे, झूठे, रूखे घोर वचन बोलते हैं, जो क्रोध के कारण दूसरों की जीभ काट लेते हैं अथवा कार्यवश प्रायः अधिकाधिक झूठ ही बोलते हैं उनकी जिह्वा प्रदेश में ही रोग होते हैं।

कर्णरोगी होने का कर्म

कुश्रोतारस्तु ये चार्थं परेषां कर्मनाशाकाः।
कर्णरोगान् बहुविधाल्लभन्ते ते पुनर्भवे॥

जो पर दोष या निन्दादियुक्त कुवचन सुनते हैं तभा दूसरों के कानों को हानि पहुँचाते हैं वे दूसरे जन्म में कर्म सम्बन्धी नाना प्रकार के रोगों का कष्ट भोगते हैं।

दन्तरागशिरोरोगकर्णरोगास्तथैव च।
अन्ये मुखाश्रिताः दोषाः सर्वे चात्मकृतं फलम्॥

ऐसे ही लोगों को दन्तरोग, शिरोरोग, कर्णरोग तथा अन्य सभी मुख सम्बन्धी दोष अपनी करनी के फलस्वरूप से प्राप्त होते हैं।

उदर शुलादि के कर्म

ये पुरा मनुजा देवि कामक्रोधवशा भृशम्।
आत्मार्थमेव चाहारं भुञ्जन्ते निरपेक्षकाः॥
अभक्ष्याहारदानैश्च विश्वस्तानां विषप्रदाः।
अभक्ष्यभक्षदाचैव शौचमङ्गलवर्जिताः॥
एवंयुक्त समाचाराः पुनर्जन्मनि शोभेन।
कथंचित् प्राप्य मानुष्यं तत्र ते व्याधिपीडिताः॥

पहले जो मनुष्य काम और क्रोध के अत्यन्त वशीभुत हो दूसरों की परवाह न करके केवल अपने ही लिये आहार जुटाते और खाते हैं, अभक्ष्य भोजन का दान करते हैं, विश्वस्त मनुष्यों को जहर दे देते हैं, न खाने योग्य वस्तुएँ खिला देते हैं, शौच और मंगलाचार से रहित होते हैं, शोभने ! ऐसे आचरण वाले लोग पुनर्जन्म लेने पर किसी तरह

मानव शरीर को पाकर उन्हीं रोगों से पीडित होते हैं।

तैस्तैर्बहु विधारकारैर्व्याभिर्दुःखसंश्रिताः।
भवन्त्येव तथा देवि यथा चैव कृतं पुरा॥

देवि ! नाना प्रकार के रूप वाले उन रोगों से पीडित हो वे दुःख में निमग्न हो जाते हैं। पूर्वजन्म में जैसा किया था वैसा भोगते हैं।

प्रमेहादि रोग होने का कर्म

ये पुरा मनुजा देवि परदार प्रधर्षकाः।
तिर्यग्योनिषु धूर्ता वै मैथुनार्थ चरन्ति च॥
कामदोषेण ये धूर्ताः कन्यासु विधवासु च।
बलात्कारेण गच्छन्ति रूपदर्पसमन्विताः॥
तादृशा मरणं प्राप्ता पुनर्जन्मनि शोभने।
यदि चेन्मानुं जन्म लभेरंस्ते तथाविधाः॥
मेहनस्थैस्तो घोरैः पीडयन्ते व्याधिभिः प्रिये॥

श्री महेश्वर ने कहा-देवि ! जो मनुष्य पूर्व जन्म में परायी स्त्रियों का सतीत्व नष्ट करने वाले होते हैं, जो धूर्त मानव पशुयोनि में मैथुन के लिए चेष्टा करते हैं, रूप के घमण्ड से भरे हुए धूर्त काम दोष से कुमारी कन्याओं और विधवाओं के साथ बलात्कार करते हैं शोभने ! ऐसे मनुष्य मृत्यु के पश्चात् जब फिर जन्म लेते हैं, तब मनुष्य योनि में आने के बाद रोगी होते हैं। प्रिये ! वे प्रमेह सम्बन्धी रोगों से पीडित रहते हैं।

सुखा रोग का कर्म

ये पुरा मनुजा देवि मांसलुब्धाः सुलोलुपाः।
आत्मार्थं स्वादुगृद्धाश्च पर भोगोपतापिनः॥
अभ्यसूयापराश्चापि परभोगेशु ये नराः।
एवंयुक्त समाचारः पुनर्जन्मनि शोभने॥
शोषव्याधियुतास्तत्र नराधमनिसंतता।
भवन्त्येव नरा देवि पापकर्मोपभोगिनः॥

श्री महेश्वर ने कहा- देवि ! जो मनुष्य मांस पर लुभाये रहते हैं, अत्यन्त लोलुप हैं, अपने लिए स्वादिष्ट भोजन चाहते हैं, दूसरों की भोग-सामग्री देखकर जलते हैं, तथा दूसरों के भोगों से दोषदृष्टि रखते हैं, शोभने ! ऐसे आचार वाले मनुष्य पुनर्जन्म लेनेपर सूखा रोग से पीडित हो इतने दुर्बल हो जाते हैं कि उनके शरीर में फैली हुई नस-नाडियों तक दिखाई देती हैं। देवि ! वे पाप कर्मो का फल भोगने वाले मनुष्य वैसे ही होते हैं।

कुष्ट रोग का कर्म

ये पुरा मनुजा देवि परेषां रूप नाशनाः।
आघातवधबन्धैनेश्च वृथा दण्डेन मोहिताः॥
इष्ट नाशकरा ये तु अपथ्यहारदा नराः।
चिकित्सका वा दुष्टाश्च द्वेषलोभसमन्विताः॥
निर्दयाः प्राणिहिंसायाः मलदाश्चित्तनाशनाः।
एवं युक्त समाचाराः पुनर्जन्मनि शोभने।
यदि वै मानुषं जन्म लभरस्तेषु दुःखिता॥

श्री महेश्वर ने कहा- देवि जो मनुष्य पहले मोहवश आघात, वध, बन्धन तथा व्यर्थ दण्ड के द्वारा दूसरों के रूप का नाश करते हैं, किसी की प्रिय वस्तु नष्ट कर देते हैं,ि चकित्सक होकर दूसरों को अपथ्य भोजन देते हैं, द्वेष और लोभ के वशीभूत होकर दुष्टता करते हैं, प्राणियों की हिंसा के लिए निर्दय बन जाते हैं, मल देते और दूसरों की चेतना का नाश करते हैं, शोभने ! ऐसे आचरण वाले पुरूष पुनर्जन्म के समय यदि मनुष्य जन्म पाते हैं तो मनुष्य जन्म में सदा दुःखी ही रहते हैं।

अत्र ते क्लेशसंयुक्ताः कुष्टरोगशतैर्वृता।
केचित् त्वग्दोषसंयुक्ता व्रणकुष्ठैश्च संयुताः॥
श्वित्र कुष्ठयुता वापि बहुधा कुष्ठ संयुताः।
भवन्त्यैव नरा देवि यथा येन कृतं फलम्॥

उस जन्म में वे सैकडों कुष्ट रोगों से घिरकर क्लेश से पीडित होते हैं। कोई चर्म दोष से युक्त होते हैं, कोई व्रणकुष्ट (कोढ के घाव) से पीढित होते हैं अथवा कोई सफेद कोढ से लांच्छित दिखायी देते हैं। देवि ! जिसने जैसा किया है उसके अनुसार फल पाकर वे सब मनुष्य नाना प्रकार के कुष्ट रोगों के शिकार हो जाते हैं।

पैर रोग का कर्म

ये पुरा मनुजा देवि क्रोधलोभसमन्विताः।
मनुजा देवतास्थानं स्वपादैर्भं शयन्त्युत॥
जानुभिः पार्ष्णिभिश्चैव प्राणिहिंसा प्रकुर्वते।
एवंयुक्त समाचाराःपुनर्जन्मनि शोभने॥
पादरोगैर्बहुविधैर्बाध्यन्ते श्वपदादिभिः।

श्री महेश्वर ने कहा- देवि ! जो मनुष्य पहले क्रोध और लोभ के वसीभूत होकर देवता के स्थान को अपने पैरों से भ्रष्ट करते, घुटनों और एडियों से मारकर प्राणियों की हिंसा करते हैं, शोभने ! ऐसे आचरण वाले लोग पुर्वजन्म लेने पर श्वपद आदि नाना प्रकार

के पाद रोगों से पीडित होतें हैं।

वातादि रोग का कर्म

तदहं ते प्रवक्ष्यामि शृणु कल्याणि कारणम्।
ये पुरा मनुजा देवि त्वासुरं भावमाश्रिताः॥
स्ववशाः कोपनपा गुरू विद्वषिणस्तथा।
परेषां दुःखजनका मनोवाक्कायकर्मभिः॥
छिन्दन् भिन्दवस्तुदन्नवे नित्यं प्राणिषु निर्दयाः।
एवं युक्त समाचाराः पुनर्जन्मनि शोभने।
यदि वै मानुषं जन्म लभेरंस्ते तथा विधा॥

श्री महेश्वर ने कहा- कल्याणि ! इसका कारण मैं तुम्हें बताता हूँ, सुनो । देवि ! जो मनुष्य पूर्वजन्म में असुरभाव का आश्रय ले स्वच्छन्दचारी, क्रोधी और गुरूद्रोही हो जाते हैं, मन, वाणी, शरीर और क्रिया द्वारा दूसरों को दुःख देते हैं, काटते, विदीर्ण करते और पीडा देते हुए सदा ही प्राणियों के प्रति निर्दयता दिखाते हैं शोभने ! ऐसे आचरण वाले लोग पुनर्जम के समय यदि मनुष्य जन्म पाते हैं, तो वे वैसे ही होते हैं।

तत्र ते बहुभिर्घोरैस्तप्यन्ते व्याधिभिः प्रिये।
केचिच्च छर्दिसंयुक्ताः केचित्कास समन्विताः।।
ज्वरातिसारतृष्णाभिः पीडयमानास्तथा परे।
पादगुल्मैश्च बहुभिःश्लेष्मदोषसमन्विताः॥
पादरोगैश्च विविधैर्व्रण कुष्ठ भगन्दरैः।
आढ्या वा दुर्गता वापि दृश्यन्ते व्याधिपीडिता॥

प्रिये ! उस शरीर में वे बहुतेरे भयंकर रोगों से संतप्त होते हैं। किसी को उल्टी होती है। तो कोई खाँसी से कष्ट पाते हैं, दूसरे बहुत से मनुष्य ज्वर, अतिसार और तृष्णा से पीडित रहते हैं, किन्हीं को अनेक प्रकार के पादगुल्म सताते हैं, कुछ लोग कफ दोष से पीडित होते हैं, कितने ही नाना प्रकार के पादरोग व्रणकुष्ठ और भगन्दर रोगों से रूग्ण रहते हैं, वे धनी हो या दरिद्र सब लोग रोगों से पीडित दिखाई देते हैं ।

उन्मत्तादि होने का कर्म

ये पुरा मनुजा देवि दर्पाहङ्कारसंयुताः।
बहुधा प्रलपन्त्येव हसन्ति च परान् भृशम्॥
मोहयन्ति परान् भोगैर्मदनैर्लोभकारणात्।
वृद्धान् गुरूश्च ये मुर्खा वृथैवापहसन्ति च॥
शौण्डा विदग्धाः शास्त्रेषु तथैवानृतवादिनः।

एवं युक्त समाचारा: पुनर्जन्मनि शोभने।
उन्मत्ताश्च पिशाचाश्च भवन्त्येव न संशय: ॥

श्री महेश्वर ने कहा-देवि ! जो मनुष्य पहले दर्प और अहंकार से युक्त हो नाना प्रकार की अंटशंट बातें करते हैं, दूसरों की खूब हँसी उडाते हैं, लोभ-वश, उन्मत्त बना देने वाले भोगों द्वारा दूसरों को मोहित करते हैं, जो मूर्ख वृद्धों और गुरू जनों का व्यर्थ ही उपहास करते हैं तथा शास्त्र ज्ञान में चतुर एवं प्रवीण होने पर भी सदा झूँठ बोलते हैं, शोभने ! ऐसे आचरण वाले मनुष्य पुनर्जन्म लेने पर उन्मत्तों और पिशाचों के समान भटकते फिरते हैं, इसमें संशय नहीं है।

दीन-हीन रोगी होने का कर्म

ये पुरा मनुजा देवि आसुरं भावमाश्रिता: ।
क्रोधलोभसमायुक्ता निरन्नद्याश्च निष्क्रिया: ॥
नास्तिकाश्चैव धूर्ताश्च मूर्खाश्चात्म परायणा: ।
परोपतापिनो देवि प्रायश: प्राणिनिर्दया: ॥
एवं युक्त समाचारा: पुनर्जन्मनि शोभने।
कथंचित् प्राप्य मनुष्यं तत्र ते दु:ख पीडिता: ॥
सर्वत: सम्भवन्त्येव पूर्वमात्म प्रमादत: ।
यथा ते पूर्व कथितास्तथा ते सम्भवन्त्युत: ॥

जो मनुष्य पहले असुर भाव के आश्रत, क्रोध और लोभ से युक्त भोजन सामग्री से वंचित, अकर्मण्य, नास्तिक, धूर्त, मूर्ख अपना ही पेट पालने वाले, दूसरों को सताने वाले तथा प्राय: सभी प्राणियों के प्रति निर्दय होते हैं। शोभने ! ऐसे आचार से, व्यवहार से युक्त मनुष्य पुनर्जन्म के समय किसी प्रकार मनुष्य योनि को पाकर जहाँ-कहीं भी उत्पन्न होते हैं, सर्वत्र अपने ही प्रमाद के कारण दु:ख से पीडित होने है और जैसा तुमने बताया हैं, वैसे ही अवांछनीय दोषों से युक्त होते हैं।

शुभाशुभं कृतं कर्म सुख दु:ख फलोदयं।
इति ते कथितं देवि भूय: श्रोतुं किमिच्छसि ॥

देवि ! मनुष्य का किया हुआ शुभ या अशुभ कर्म ही उसे सुख या दु:ख रूप फल की प्राप्ति कराने वाला है, यह बात मैंने तुम्हें बता दी । अब क्या सुनना चाहती हो?

निरोगी सुखी जीवन होने का कर्म

शरीरे ममतां त्यक्तवा ये चरन्ति तपोव्रतम् ।
स्वसमां जीवराशिं विज्ञाय ध्नन्ति न जातुचित् ॥119
आक्रन्ददु:खशोकादीन् स्वान्ययोर्जनयन्ति न।
भवेयु: सुखिनस्तेऽत्र विश्वरोगातिगा: शुभात् ॥120

जो पुरूष शरीर में ममता का त्याग कर तप और व्रत को पालते हैं, अपने समान सर्व जीव राशि को मानकर किसी का भी घात नहीं करते हैं, जो आक्रन्दन, दु:ख, शोक आदि न स्वयं करते हैं और न दूसरों को उत्पन्न कराते हैं, वे मनुष्य यहाँ पर साता कर्म के उदय से सर्व रोगादि से दूर रहते हैं, और निरोग सुखी जीवनयापन करते हैं।

तदहं ते प्रवक्ष्यामि शृणु सर्व समाहिता।
ये पुरा मनुजा देवि आढ्या वा इतरेऽपि वा ॥
श्रुतव्रत समायुक्ता दानकामा: श्रुतप्रिया: ।
परेङ्गितपरा: नित्यं दातव्यमिति निश्चिता: ॥
सत्यसंघा क्षमाशीला लोभमोह विवर्जिता।
दातार: पात्रतो दानं व्रतैर्नियम संयुता।
स्वदु:खमिव संस्मृत्य परदु:खविवर्जिता ॥
सौम्यशीला: शुभाचारा: देवब्राह्मण पूजका: ॥
एवं शील समाचारा: पुनर्जन्मनि शोभने।
दिवि वा भुवि वा देवि जायन्ते कर्म भोगिन: ॥

यह मैं तुम्हें बताता हूँ, तुम एकाग्रचित्त होकर सब बातें सुनो। जो धनाढ्य या निर्धन मनुष्य पहले शास्त्र ज्ञान और सदाचार से युक्त दान करने के इच्छुक, शास्त्र प्रेमी दूसरों के इशारों को समझकर सदा दान देने के लिए दृढ विचार रखने वाले, व्रत और नियमों से युक्त तथा अपने दु:ख के समान ही दूसरों के दु:ख को भी समझ कर किसी को दु:ख न देने वाले होते हैं, जिसका शील स्वभाव सौम्य होता है। आचार व्यवहार शुभ होते हैं, जो देवताओं तथा ब्राह्मणों के पूजक होते हैं, शोभामयी देवि ! ऐसे शील सदाचार वाले मानव पुनर्जन्म पाने पर स्वर्ग में या पृथ्वी पर अपने सत्कर्मों के फल भोगते हैं।

मानुषेष्वपि ये जातास्तादृशां सम्भवन्ति ते।
यादृशास्तुत्वया प्रोक्ता: सर्वेकल्याण संयुता: ॥
रूपं द्रव्यं बलं चायुर्भोगेश्वर्यं कुलं श्रुतम्।
इत्येतत् सर्व साद्गुण्यंदानाद् भवति नान्यथा।
तपोदानमयं सर्वमिति विद्धि शुभानने ॥

वैसे पुरूष जब मनुष्यों में जन्म ग्रहण करते हैं, तब वे सभी तुम्हारे बताये अनुसार कल्याणमय गुणों से सम्पन्न होते हैं। उन्हें रूप, द्रव्य, बल, आयु, भोग, ऐश्वर्य, उत्तम कुल और शास्त्र ज्ञान प्राप्त होते हैं । इस सभी सद्गुणों की प्राप्ति दान से ही होती है अन्यथा नहीं। शुभानने ! तुम यह जान लो कि सब कुछ तपस्या और दान का ही फल है।

(महाभारत अनुशासन पर्व दान धर्म पर्व)

जीनोम सिद्धान्त, भोजन एवं रोग

किसी जीवधारी में जीन्स के पूरे समूह को जीनोम कहते हैं। इसमें सब कोशिकाओं की संरचना और किसी कोशिका की शरीर-रचनात्मक गतिविधियों की विस्तृत योजना स्थित है।एक व्यक्ति की खरबों कोशिकाओं की प्रत्येक नाभि में मानव जीनोम पाया जाता है। यह कसे कुण्डलीदार DNA (डिआक्सीरिबोन्यूक्लिअक एसिड) के पतले धागों और सहयोगी प्रोटीन के अणुओं से बनता है जो क्रोमोसोम्स नामक संरचनाओं में संगठित होते हैं। एक DRN के धागों को लम्बा करने और क्रम से रखने पर वह 5 फिट से अधिक हो जाता है। परन्तु इसकी मोटाई एक इंच के 50 खरबवाँ हिस्सा भी नहीं होता है।

प्रत्येक शरीर-रचना में, इन पतले धागों में जीवन को बनाने और सँभालने की आवश्यक सूचना छुपी होती है, चाहे वह जीवाणु की सरल शरीर- रचना हो अथवा अति संश्लिष्ट जीव हो जैसे मानवों कीं जीन्स-प्रत्येक (DNA) अणु में अनेक जीन्स होते हैं, जो अनुवंशिकता की मूल शारीरिक और कार्य इकाईयाँ होती हैं। एक जीन न्युक्लियोटाइड्स आधारों का एक विशिष्ट क्रम है और इस क्रम में निहित सूचना से प्रोटीन बनता है। प्रोटीन्स कोशिकाओं और उनकी पारस्परिक बुनावट के लिए संरचनात्मक घटक प्रदान करते हैं तथा आवश्यक जैविक-रासायनिक क्रियाओं के लिए एन्जाइम्स बनाते हैं। मानव जीनोम में 80,000 से 100,000 के लगभग अनुमानित जीन्स हैं। मानव जीन्स की लम्बाई में काफी बडा अन्तर होता है, यह हजारों आधारों तक हो सकता है। किन्तु जीनोम में केवल 10 प्रतिशत के लगभग जीन्स ही प्रोटीन बनाने का काम करते हैं जिनमें कोड होता है। शेष जीन्स कोड प्रोटीन बनाने का कार्य सम्पादित नहीं करते। ऐसे जीन्स का कार्य स्पष्ट नहीं है।

सभी जीव अधिकांशत: प्रोटीन्स से बने होते हैं; मानव जीन्स लगभग 80,000 प्रकार के प्रोटीन्स का संश्लेषण या अप्राकृतिक निर्माण कर सकती हैं। प्रोटीन्स बडे और संश्लिष्ट अणु हैं जो अमीनो-एसिड्स नामक उपइकाइयों की लम्बी शृंखला से बने होते हैं। प्रोटीन में सामान्यत: 20 प्रकार के अमीनो-एसिड्स पाये जाते हैं। जीन के अन्दर तीन DNA आधारों (कोडोन्स) का प्रत्येक विशिष्ट क्रम कोशिका प्रोटीन-संश्लेषण/ निर्माण करनेवाली मशीन को निर्देश देता है कि कौन -कौन से विशेष अमीनो-एसिड्स मिलाये जाएँ।उदारहण के लिए आधार क्रम AGT कोड अमिनो एसिड मिथिओनाइन बनाता है क्योंकि तीन आधार एक अमीनो एसिड के लिए कोड बनाते हैं तो एक सामान्य आकार वाली जिन (3000BP) द्वारा चिह्नित प्रोटीन में 1000 अमीनो एसिड्स होगें। इस प्रकार उत्पत्ति सम्बन्धि कोडोन्स का एक विशेष क्रम यह बताता है कि कुछ विशेष प्रोटीन्स बनाने के लिए किन अमीनो एसिड्स कि आवश्यकता है। जीन्स से प्रोटीन बनाने के कोड

(निर्देश) एक संदेशवाहक रिबोन्युक्लिक एसिड (MRNA)द्वारा वक्रता से भेजे जाते हैं जो एक क्षणिक मध्यवर्ती अणु है और DNA की घुमावदार रस्सी की भाँति है। जिन के अन्दर की सूचना भेजने के लिए, नाभि में स्थित DNA पैटर्न की एक पूरक RNA की घुमावदार रस्सी बनायी जाती है, व इस प्रक्रिया को प्रतिलेखन कहते हैं। यह MRNA नाभि से कोशिकीय सिटोप्लाज्म में भेज दी जाती है जहाँ यह प्रोटीन्स निर्माण अथवा समन्वयकर्ता पैटर्न का काम करती है। कोशिकाओं में प्रोटिन बनाने वाली मशीन तब कोडोन्स को अमीनो एसिड्स की रस्सी में बदल देती है जो अपने कोड के अनुसार प्रोटीन्स अणु को बनाएगी। प्रयोगशाला में MRNA अणु को अलग करके एक पूरक DNA (CDNA) का निर्माण करने में प्रयोग किया जा सकता है जिससे क्रोमोसोम नक्शे पर जीन्स की पहचान की जा सकती है।

क्रोमोसोम्स :- मानव जीनोम में 3 बिलियन BP24 निश्चित, शारीरिक दृष्टि से भिन्न अतिसूक्ष्म इकाईयों में संगठित होता है जिन्हें क्रोमोसोम्स कहते हैं। सम्पूर्ण जीन्स क्रोमोसोम्स के साथ एक रेखिय क्रम में होते हैं। अधिकतर मानव कोशिकाओं की नाभि में क्रोमोसोम्स के दो समूह होते हैं, एक समूह माता तथा दूसरा पिता द्वारा दिया जाता है।

प्रत्येक समूह में है अकेले 23 क्रोमोसोम्स, 22 आटोसोम्स तथा एक X या Y सेक्स क्रोमोसोम्स होते हैं। एक सामान्य स्त्री में X और Y का युगल होगा। स्थूल रूप में क्रोमोसोम्स में प्रोटिन और DNA सामान मात्रा में होते हैं। क्रोमोसोम्सीय DNA में औंसतन 150 मिलियन आधार होते हैं। अभी तक DNA अणु सबसे विशाल अणुओं में माने जाते हैं।

एक हल्के सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से क्रोमोसोम्स देखे जा सकते हैं और जब उन पर कुछ रंगों के धब्बे लगाये जाते हैं तो वे हल्के और गहरे पट्टों के रूप में क्षेत्रिय अन्तरों को A और TVSG और C राशियों में प्रकट करते हैं आकार और पट्टीय पैटर्न के अन्तर से 24 क्रोमोसोम्स एक-दूसरे से विशिष्ट दिखायी देते हैं। यह विश्लेषण केरीयोटाइप कहलाता है।

कुछ मुख्य क्रोमोसीय विषमताएँ /म्युटेशन्स को अनुपस्थित या अतिरिक्त प्रतिलिपि या स्थूल टूटन और पुन: जुडाव/अदल-बदल को सूक्ष्मदर्शी यन्त्र से जाँचा जा सकता है।डाउन सिन्ड्रोम रोग में व्यक्ति की कोशिका में क्रोमोसोम 21 की तीसरी प्रति होती है और इसे केरीयोटाइप विश्लेषण से जाना जा सकता है। DNA की सूक्ष्म विषमताएँ (एबनार्मलटीज)अनेक पैतृक रोगों के लिए जैसे सिस्टिक फाइब्रोसिस और सिकिल सैलं एनीमिया के लिए जिम्मेदार हैं और एक व्यक्ति को कैंसर, बडे मानसिक

रोगों और दूसरे संश्लिष्ट रोगों की और ले जा सकती हैं।

२) विभिन्न भोजनों (बिस लोड) का शरीर पर प्रभाव

तीन प्रकार के भोजन (बिस लोड)होते हैं-

1 रेजीस्टीव (अवरोधी) (आर बिस)-किसी भी प्रकार का माँस

2 इन्डक्टीव (एल बिस)- शराब, नशीले ड्रिंक्स और बेहोशी की दवाइयाँ (पदार्थ जो बुरी आतें पैदा करते हैं और मानव-शरीर को नष्ट कर देते हैं जैसे तम्बाकू, अफीम, चरस, गांजा आदि)

3 केपेसीटेटिव (सी बिस)- वेश्यावृत्ति, दूसरों का पैसा, सामान, किताबें चुराना।

तीन प्रकार के बिल लोड्स का पता चलता है, जो मानव के शरीर और उस के नाडी-तंत्र को नष्ट कर देते हैं।

बिस लोड्स चार प्रकार के हैं-

क)आन्तरिक बिस लोड -(माँस) ख) बाह्य बिस लोड-(चमडें के उत्पाद) ग) हिंसा सम्बंधी कार्य-(बिजनेस बिस लोड) घ) जीवों की सीधे हत्या-(हत्या बिस लोड)

ये सभी बिस लोड सम्मिलित रूप से मनुष्य पर प्रभाव डालते हैं।

3) विभिन्न प्रकार के भोजन (बिस लोड) का मानव जीनोम पर प्रभाव

पिछले कुछ वर्षों में प्रयोगिक जीवशास्त्रियों ने जीव विज्ञान की सर्वाधिक महत्वपूर्ण और उत्कट आकांक्षी नक्शे बनाने का- ह्यूमन जीनोम प्रोजेक्ट (HGP)प्रारम्भ किया । HGP के माध्यम से बनाये गये नयेनक्शे शोधकर्ताओं को इस योग्य बना देंगे कि वे हमारे क्रोमोसोम्स पर विशिष्ट जीन्स की सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्थिति जान सकें।

4) मानव जीनोम पर बिस लोड्स और जीन रोग

हमारे अपने और पूववर्ती काम करने वालों की जाँच के आधार यह ज्ञात हुआ है कि निम्नलिखित क्रोमोसोम्स और जीन रोग बिस लोडस होते हैं।

क्रोमोसोम 1 - दोषयुक्त जीन 1, GBA, एन्जाइम के लिए कुछ चर्बियों को खण्डित कर देता है। इसके कारण गोचर रोग होता है।

क्रोमोसोम 2 - दोषयुक्त PAX-3 से बहरापन होता है। प्रत्येक आँख का रंग अलग होता है इससे वार्डनबर्ग सिनड्रोम रोग होता है।

क्रोमोसोम 3 - दोषयुक्त VHL जीन के कारण रक्तवाहिनी नलियाँ विषम/एबनार्मल बन जाती हैं। इससे वान हिपेल-लिन्डो रोग होता है।

क्रोमोसोम 4 - दोषयुक्त जीन से पागलपन हो जाता है जिसे हनटिंगटन रोग कहते हैं।

क्रोमोसोम 5- दोषयुक्त जीन से हाथ और पाँव गलत बन जाते हैं। इससे डिआसट्रोफिक

डिसप्लाजिया रोग होता है।

क्रोमोसोम 6 - दोषयुक्त SCA-1 जीन, सेरीबैलम को सुखाकर, व्यक्ति को भद्दा बना देती है। इसे स्पिनोसेरीबैलर एट्रोफी रोग कहते हैं।

क्रोमोसोम 7- दोषयुक्त जीन के कारण फेफडों और पाचक ग्रन्थियों में अन्ततः मारक श्लेष्मा बन जाता है। यह सिस्टिक फाइब्रोसिस रोग कहलाता है।

क्रोमोसोम 8 - दोषयुक्त जीन व्यक्ति को समय से पहले बूढा बना देती है। इसे वैमर सिनड्रोम रोग कहते हैं।

क्रोमोसोम 9 - त्वचा कैंसर उन लोगों में अधिक होता है जिनमे दोषयुक्त CDKN -2 ट्यूमर (ग्रंथि) निरोधक जीन है इसके कारण दुराशयी त्वचा कैंसर होता है।

क्रोमोसोम 10 - दोषयुक्त MEN-2A जीन व्यक्ति के गर्दन और गुर्दे की नलियों में ट्यूमर बनाते हैं जिसे मलटीपल एनडोक्रिन नियोप्लाजिया रोग कहते हैं।

क्रोमोसोम 11 - हावें RAS जीन सामान्य कैसरों का कारण है।

क्रोमोसोम 12 - PAH जीन के दोष भोजन में साधारण अमीनो एसिड का पाचन अवरूद्ध करके मानसिक रूकावट पैदा करते हैं। इसको फेनिलकेटोनूरिया रोग कहते हैं।

क्रोमोसोम 13 - BRCA -2 जीन के दोष स्तन कैंसर का खतरा बढा देते हैं।

क्रोमोसोम 14 - दोषयुक्त AD -3 जीन मस्तिष्क में हानिकारक पदार्थ पैदा करता है। इससे एलज्हीमर रोग होता है।क्रोमोसोम १५- विषम / एबनार्मल FBN -1जीन जोडने वाले महीन रेशों वाले जाल को कमजोर करता है और यह सम्भावना बनी रहती है कि रक्तवाहिनी नलियों को न तोड दे। इससे मारफैन सिनड्रोम रोग होता है (जिसकी स्थिति अज्ञात है)।

क्रोमोसोम 16 - दोषयुक्त PKD -1 जिन के कारण मूत्राशय में सिस्ट बन जाते हैं जिसके कारण गुर्दा फेल हो जाता है। यह पोलिसिस्टिक गुर्दा सम्बंधी रोग पैदा करता है।

क्रोमोसोम 17 - P-53 जीन की विषमताएँ / एबनार्मलिटीज से कैंसर की सम्भावना बढती है, BRCA -1 स्तन कैंसर की और ले जाती है।

क्रोमोसोम 18 - DPC -4 जीन की क्षति आमाशय के कैंसर की गति को तेज कर देती हैं।

क्रोमोसोम 19 - एपोलिपो प्रोटिन E के दोष से रक्त कोलस्ट्रोल बढ जाता है जिससे रक्तवाहिनी नलियों में अवरोध पैदा होता है और हृदय रोग हो जाता है।

क्रोमोसोम 20 - एबनार्मल एडिनोसाइन डीमिनेज से कैंसर प्रतिरोधक क्षमता नष्ट हो जाती है। इससे गम्भीर समन्वित प्रतिरोधक क्षमता में कमी हो जाती है।

क्रोमोसोम 21 - दोषयुक्त SOD -1 (सुपरआक्साइड डिस्म्यूटेज 1) जीन से लो

गैहरिग नामक रोग होता है।

क्रोमोसोम 22 - एबनार्मल जीन से हृदय में विकार और चेहरे में परिवर्तन आता है। इसके कारण डी जार्ज सिनड्रोम रोग होता है।

क्रोमोसोम 23 - एबनार्मल DMD जीन से माँसपेशियों को क्षति पहुँचती है। इसको डक्ने मस्कुलर डिस्ट्रोफी रोग कहते हैं।

क्रोमोसोम 24 - दोषयुक्त जीन के कारण ही अण्डकोष वृद्धि रोग हो जाते हैं।

डॉ. मदन मोहन बजाज तथा पी. अग्रवाल

धर्म एवं आयुर्वेदानुसार स्वास्थ्य के नियम

हिंसासत्यं स्तेयमोहादि सर्व, त्यकत्वा धीमांश्चारूचारित्र युक्तः ।
साधुन्संपूज्य प्राज्यवीर्याधियुक्ता नारोग्यार्थी योजयेद्योगराजान् ॥

स्वस्थ की इच्छा रखने वाला मनुष्य हिंसा, झूठ, चोरी, परिग्रह, कुशील इत्यादि पापों को छोडकर सदाचरण में तत्पर होवे, सज्जन व संयमियों की सेवा करके अत्यंत शक्तिवर्द्धक योगराजों का प्रयोग करें।

यद्यतपापार्थं यच्चय पैशून्यहेतु यंद्यल्लोकानाप्रियं चाप्रशस्तं ।
यद्यत्सर्वेषामेव बाधानिमित्तम् तत्तत्सर्वं वर्जनींय मनुष्यैः ॥

जो–जो कार्य पापोपार्जन के लिए कारण हो जो लोकापवाद के लिए कारण हो, लोगों के लिए अप्रिय एवं अमंगल हो और जो सबके लिए बाधा उत्पन्न करने वाले हों, ऐसे कार्यों को बुद्धिमान मनुष्य कभी न करें।

एवं सद्वतैस्सज्जनं दुर्जनं वा, जन्माचारांतर्गतानिष्टवाक्यैः ।
रागद्वेषात्यंतमोहैनिर्मित्तैः नैव ब्रूयात्स्वस्य संपत्सुखार्थी ॥

जो मनुष्य संसार में सम्पत्ति व सुख चाहता है उसे चाहिये कि वह सज्जन व दुर्जन के प्रति, जन्म (पैदाइश) सम्बंधी व आचार संबंधी अनिष्ट वचनों के प्रयोग न करें जो कि राग, द्वेष व मोह की उत्पत्ति के लिए कारण होते हैं ।

पूर्वोपार्जित पाप कर्म से एवं वर्तमान के अयोग्य विचार, आचार, आहार, उच्चार एवं दूषित पर्यावरणादि से रोग होने के कारण उस रोग को दूर करने के लिए जिस कारणों से रोग हुआ है उससे विपरीत कारणों /उपायों/ प्रणालियों को सेवन करना चाहिए। अर्थात् पवित्र विचार , आचार, आहार, उच्चार पर्यावरण एवं औषधियों का सेवन करना चाहिए । केवल औषधियों की सीसी में, इन्जेक्शंन में स्वास्थ्य को न ढूँढे। जिस प्रकार वृक्ष की वृद्धि के लिए उसके मूल में पानी सिंचन किया जाता है न केवल पत्रों में, इसी प्रकार स्वास्थ्य की रक्षा एवं वृद्धि के लिए मूल–भूत आदर्श विचारादि का पालन करना

आवश्यक हैं न कि केवल भौतिक औषधि। जैनाचार्य उग्रादित्य ने कहा भी है।

यमैश्च सर्वैर्नियमैरूपेतो, मृत्युंजयाभ्यासरतो जितात्मा ।
जिनेन्द्रबिंबार्चनयात्मरक्षां, दीक्षामिमां सावधिकां गृहीत्वा ॥

प्रतिनियत यम या नियम व्रतों से युक्त रहें। मृत्युंजयादि मंत्रों को जपते रहें। इन्द्रियों को वश में रखें। जिनेन्द्र बिंब की पूजा से मैं अपनी आत्मरक्षा कर लूँगा इस प्रकार की नियम दीक्षा को लेवें।

दिवा निशं धर्मकथास्स श्रृण्वन् समाहितो दान दयापरश्य ।
शांतिं पयोमृष्टरसान्नपानै, स्संतर्पयन्साधुमुनींद्रवृदम् ॥

रात दिन धर्म कथाओं को सुनते हुए सदा काल दया और दान में रत रहें। सदा सुंदर मिष्ट आहारों से शांत साधु गणों को तृप्त करते रहें।

सदातुरस्सर्वहितानुरगी , पापक्रियायाविनिवृत्तवृत्तिः ।
वृषान्विमुंचन्नपदोहिनश्च विमोचयन्बन्धनंपजरस्थान् ॥

सदा रोगी सबका हितेशी बने और सबसे प्रेम रखे । सर्व पाप क्रियाओं को बिल्कुल छोड देवें। बन्धन व पिंजर में बंद चूहे व अन्य प्राणियों को दया से छुडावे।

शाम्योपशांति च नरश्चभक्त्या, निनादभक्त्यां जिनचद्रंभक्त्या ।
एवंविधो दूरत एवं पापाद्विमुच्येते खलु किं रोग जालैः ॥

उपर्युक्त प्रकार के सदाचरणों से जो मनुष्य अपने आत्मा को निर्मल बना लेता है, एवं जो जिनागम व जिनेन्द्र के प्रति भक्ति करता है, वह मनुष्य शांति व सुख को प्राप्त करता है। उस मनुष्य को पाप भी दूर से छोडकर जाते हैं, दुष्ट रोग जाल क्यों उसके पास में जावेंगे।

बाह्य चिकित्सा –

द्रव्यं तथा क्षेत्रमिहापि कालं, भावं समाश्रित्य नरसुखी स्यात् ।
स्नेहादिर्भिर्वा सुविशेषयुक्तम् छेद्यादिभिर्वा निगृहीतदेहः ॥

द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव को अनुसरण करके यथा योग्य स्नेह, स्वेदन, वमन, विरेचन आदि कर्मों को, तथा छेदन, भेदन आदि क्रिया करें तो रोग पीडित मनुष्य सुखी होता है।

मनुष्य जीवन एवं मनुष्य शरीर का सदुपयोग आत्म-कल्याण में है तो इसका दुरूपयोग निहित स्वार्थ सिद्धि में लगाने में एवं भोग–विलास में लगाने में है। इसी आत्म कल्याण के लिए भोजन किया जाता है। अधम श्रेणी के व्यक्ति खाने के लिए जीते हैं, मध्यम श्रेणी के व्यक्ति जीने के लिए खाते हैं एवं उत्तम श्रेणी के व्यक्ति धर्म के लिए खाते हैं। वे उत्तम श्रेणी के व्यक्ति ऐसा भोजन करते हैं जो धर्म साधना के लिए साधक बने न कि

बाधक बने। कहा भी है –

वशे यथा स्युरक्षाणि नोतधापन्त्यनूत्पथम् ।
तथा प्रयतितव्यं स्याद्वृत्तिमाश्रित्य मध्यमाम् ।।अ.ध.पृ. 495

आगम में कहा है कि शरीर रत्नत्रयरूपी धर्म का मुख्य कारण है। इसलिए भोजन, पान आदि के द्वारा इस शरीर की स्थिति के लिए इस प्रकार का प्रयत्न करना चाहिए । जिससे इन्द्रियाँ वश में रहें और अनादिकाल से सम्बद्ध तृष्णा के वशीभूत होकर कुमार्ग की और न ले जावे।

यदाहारमयो जीवस्तदाहारविराधितः ।
नार्तरौद्रातुरो ज्ञाने रमते न च संयमे ।।

यतः प्राणी आहारमय है अर्थात् मानो आहार से ही बना है। इसलिए आहार छुडा देने पर उसे आर्त्त और रौद्रध्यान सताते हैं। अतः उसका मन न ज्ञान में लगता है, न संयम में लगता है।

प्रसिद्धमन्नं वै प्राणा नृणां तत्याजितो हठात् ।
नरो न रमते ज्ञानि दुर्ध्यानार्तो न संयमे ।।

मनुष्यों का प्राण अन्न ही हैं यह कहावत प्रसिद्ध है। जबरदस्ती उस अन्न को छुडा देने पर खोटे ध्यान में आसक्त मनुष्य न ज्ञान में ही मन लगाता है और न संयम में मन लगाता है।

उपरोक्त श्लोक में लेखक ने अनुभव जन्य सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। नीति वाक्य भी कहा है –

''भूखे भजन न होय गोपाला, लेलो अपनी कण्ठी माला।''

प्राचीन वाक्य भी कहा है –

''बुभुक्षितं किं न करोति पापम् ।''

अर्थात्–भूखा व्यक्ति कौन सा पाप नहीं कर सकता अर्थात् वह सब तरह के पाप कर सकता है।

शरीर विज्ञान एवं मनोविज्ञान के अनुसार जब पर्याप्त भोजन नहीं मिलता है तब शरीर में अनेक तत्वों की कमी हो जाती है, जिसकेकारण मनुष्य के शरीर में एवं मन में विभिन्न प्रक्रियाएँ होती है एवं दुर्बलताएँ जन्म ले लेती हैं। ज्ञानतन्तु प्रभावित हो जाती है। कार्य क्षमता, वैचारिक शक्ति, सहनशीलता कम हो जाती हैं। जिसके कारण जीव चिडचिडा, कमजोर, अन्यमनष्क हो जाता हैं। इसलिए लोकोक्ति है –

''कम कुब्बत गुस्सा तेज''

सुनने एवं पढने में आता है जब कुत्तियाँ, सर्पिणी आदि कुछ माता संतान को

जन्म देती हैं तब ही वह भूख के कारण स्व संतान को ही खा जाती है। मैनें कुछ किताबों में अध्ययन किया है कि दुर्भिक्ष के समय में मनुष्य भी मरे हुये मनुष्य को खा लेते हैं; माँ भी मरे हुए बच्चें को खा जाती है। यहाँ तक की मनुष्य भी जीवित मनुष्य को खा लेता है।

पर्याप्त योग्य भोजन नहीं मिलने पर शारीरिक अनेक तत्वों की कमी से बुद्धि एवं विचार–शक्ति भी क्षीण हो जाती है। मेरा खुद का अनुभव है कि मेरा अधिक अंतराय होने पर या योग्य आहार नहीं मिलने पर न मैं स्वयं अध्ययन कर पाता हूँ न साधुओं को अध्यापन करा पाता हूँ। शरीर थकाथका सा रहता है, अध्ययन में मन नहीं लगता है, और पढाने की क्षमता नहीं रहती है। कम भोजन से उपवास से योग्य भोजन के अभाव से वात–पित्त कुपित हो जाते हैं। मेरा खुद का अनुभव है कि, वर्तमान समय में जो अधिकांश कम उम्र वाले साधु है; उन्हें अतंराय हो जाता है जिसके कारण भोजन की कमी से वात–पित्त बढ जाते हैं उल्टी हो जाती है व अल्सर रोग हो जाता है। यहाँ तक कि मुझे देखने में आया है कि शक्ति से अधिक उपवास करने से दृष्टि–शक्ति कम हो जाती है; यहाँ तक कि कुछ व्यक्ति अंधे भी हो गये है। इतना ही नहीं कुछ व्यक्तियों को उपवास के बाद अधिक प्यास सताती है तथा कुछ तो उपवास के बाद दीर्घकाल तक रोगग्रस्त रहते हैं। जिस प्रकार मुसीबत आने पर सगे–संबंधी अपना साथ नहीं देते हैं उसी प्रकार भोजन न मिलने पर शरीर भी हमारा साथ नहीं देता है। इसलिए शक्ति के अनुसार हित–मित ऋतु के अनुकूल भोजन करना एवं उस भोजन से प्राप्त शक्ति के अनुसार आत्मकल्याण में लगे रहना इस पंचम काल में अधिक योग्य हैं। कहा भी –

शमयत्युपवासोत्थवात पित्त प्रकोपजाः ।
रूजो मिताशी रोचिष्णु ब्रह्मवर्च समश्नुते ।।ध.मृ.पृ. 503

उपवास के द्वारा वात–पित्त कुपित हो जाने से उत्पन्न हुए रोग अल्पाहार से शांत हो जाते हैं तथा परिमित भोजी प्रकाश स्वभाव परमात्म तेज को अथवा श्रुतज्ञान को प्राप्त करता है।

नाक्षाणिप्रदिषन्त्यन्नप्रतिक्षयभयान्नच ।
दर्पात् स्वैरं चरन्त्याज्ञामेवानूद्यन्ति भृत्यवत् ।।

अल्प आहार से इन्द्रियाँ मानों उपवास से इन्द्रियों का क्षय न हो जाय, इस भय से अनुकूल रहती है और मद के आवेश में स्वच्छंद नहीं होती हैं। किन्तु सेवक की तरह आज्ञानुसार ही चलती हैं।

तपो मनोऽक्षकायाणां तपनात् सन्निरोधनात् ।
निरूच्यते दुगार्धाविर्भावायेच्छानिरोधनम् ।।

मन, इन्द्रियाँ और शरीर के तपने से अर्थात् इनका सम्यक् रूप से निवारण करने

से सम्यग्दर्शन आदि को प्रकट करने के लिए इच्छा के निरोध को तप कहते हैं।

यद्वा मार्गाविरोधेन कर्मोच्छेदाय तप्यते।
अर्जयत्यक्षमनसोस्तत्तपो नियम क्रिया ।।

रत्नत्रयरूप मार्ग में किसी प्रकार की हानि न पहुँचाते हुए ज्ञानावरण आदि का या शुभ–अशुभ कर्मों का निर्मूल विनाश करने के लिए जो तपा जाता है अर्थात् इन्द्रिय और मन के नियमों का अनुष्ठान – करने योग्य आचरण को करने का और न करने योग्य आचरण कसे न करने का जो विधान है इसी का नाम तप है।

आगम से ज्ञात होता है कि पंचम काल में शारीरिक शक्ति क्षीण रहती है, मन चंचल रहता है और शरीर अन्न का कीडा रहता है। इसलिए तो पंचम काल में उत्कृष्ट तपस्या, अधिक उपवास, शुक्ल ध्यान आदि नहीं होते हैं। कहा भी है –

काले कलौ चले चित्ते देहे चान्नादि कीटके ।
एतच्चित्रं यदद्यापि जिनरूपधरा नराः ॥

कलिकाल है, चित्त चंचल है, देह अन्न का कीडा है तथापि जिनरूप को धारण करने वाले साधु विचरण करते हैं यह महान् आश्चर्य है। जैनाचार्य उग्रादित्य ने कल्याण कारक में योग्य शरीर का वर्णन करते हुए कहा है –

आदर्श शरीर :–

स्थूलः कृशश्चाप्पतिनिंदनीयौ भाराश्रवयानादिषु वर्जनीयौ ।
सर्वास्ववस्थास्वापि सर्वश्रेष्टः सर्वात्मना मध्यमदेह युक्तः ।।

स्थूल व कृश देह अत्यन्त निंद्य है एवं भार वहन, घोडे की सवारी आदि कार्य में ये दोनों शरीर अनुपयोगी है। सर्व अवस्थाओं में, सर्व तरह से, सर्वथा मध्यम देह ही उपयोगी हैं।

स्थूलस्य कार्श्यं करणीयमत्र रूक्ष्यौषधैर्भोजनपानकाद्यैः ।
स्निग्धैस्तथा पुष्टिकरैः कृशस्य पथयैस्सदा मध्यमरक्षणं स्यात् ॥

सदा रूक्ष औषधि, भोजन पान आदि से स्थूल शरीर को कृश करना चाहिये, कृश शरीर को स्निग्ध तथा पुष्टिकर औषधि अन्नपानों से पुष्ट बनाना चाहिए और पथ्य सेवन से मध्यम देह का रक्षण करना चाहिए अर्थात् स्थूल, व कृश होने नहीं देवें।

चतुर्थ काल में वज्र की अस्थि, वज्र की सन्धि, वज्र के बन्धन होते थे, प्रदूषण भी कम था, भोजन भी पौष्टिक और रसदार था जलवायु अनुकूल थी। खटमल, मच्छर, (विकलत्रय जीव) कम प्रमाण में थे जिसके कारण अधिक उपवास, रस त्याग आदि, तपस्यादि करने पर उन्हें दुर्बलता नहीं आती थी, रोग नहीं होते थे। परन्तु वर्तमान पंचम काल में इससे विपरीत परिस्थितियाँ आदि हैं। इसलिए जो जैनागम में कहा है कि आतापन

योग (सूर्य की ओर मुँह करके तपस्या करना) वर्षाऋतु में वृक्षमूल वास (वृक्ष के नीचे बैठकर पानी की बौछार सहते हुए तपस्या करना) शीतऋतु में खुले आकाश में रहकर तपस्या करना आदि क्लिष्ट साध्य तप निषेध है क्योंकि इससे संक्लेश एवं आर्तध्यान होने की अधिक सम्भावना रहती है। इसलिए कहा गया है –

''शक्तितस्त्यागतपसी ।''

अर्थात् शक्ति के अनुसार त्याग करना चाहिए एवं शक्ति के अनुसार तप करना चहिए । अतः स्वशक्ति, स्व–प्रकृति के अनुसार तप आदि करना विधेय एवं हितावह है। कहावत है – **'' देखादेखी साधे योग छिजे काया बाढे रोग ''** अर्थात् जो दूसरों का अंधानुकरण कर के प्रसिद्धि आदि के लिए योग (तप)साधता है तो उसे सिद्धि नहीं मिलती है परन्तु शरीर दुर्बल हो जाता है, रोग बढते हैं। आगम में कहा है कि शक्ति से न कम तप करना चाहिए न अधिक। कम तप करना भी दोष कारक है क्योंकि इससे मायाचारी, प्रमाद, आलस्य, भोगाशक्त, विलासिता आदि दुर्गण जन्म लेते हैं और बढते हैं। उपर्युक्त दुर्गुण ही पतन के लिए कारण हैं। बाह्य तप उतना तपना चाहिए जिस से संक्लेश भी न हो और अन्तरंग की तपस्या में वृद्धि हो क्योंकि बाह्य तप तपने का उद्देश्य अंतरंग तपस्या की वृद्धि के लिए है। समंतभद्र स्वामी ने कहा भी है –

बाह्यं तपः परम दुश्चरमाचरंस्त्व –
माध्यात्मिकस्य तपसः परिवृहणार्थम् ।

हे भगवान् ! आपने परम दुश्चर (कठिनता से आचरण योग्य) बाह्य तप को अंतरग तपस्या की वृद्धि के लिए तपा है। इसलिए गुणभद्र स्वामी ने कहा भी है –

करोतु न चिर धोरं तपः क्लेशासहो भवान् ।
चित्त साध्यान् कषायारीन् न जयेद्यत्तदज्ञानता ॥

यदि तु कष्ट को न सहने के कारण घोर तप का आचरण नहीं कर सकता है तो न कर, परन्तु जो कषायादिक मन से सिद्ध करने योग्य है–जीतने योग्य हैं – उन्हें भी यदि नहीं जीतता है तो वह तेरी अज्ञानता है। तपश्चरण में भूख आदि के दुःख को सहना पडता है, इसीलिए यदि अनशन आदि तपों को नहीं किया जा सकता है तो न भी किया जाये। परन्तु जो राग, द्वेष एवं क्रोधादि आत्मा का अहित करने वाले हैं उनको तो भले प्रकार से जीता जा सकता है कारण की उनके जीतने में न तो तप के समान कुछ कष्ट सहना पडता है और न मन के अतिरिक्त किसी अन्य सामग्री की अपेक्षा भी करनी पडती है। इसीलिए उक्त राग–द्वेषादि को तो जीतना ही चाहिए । फिर यदि उनको भी प्राणी नहीं जीतना चाहता है तो यह उसकी अज्ञानता ही कही जावेगी।

भगवती आराधना (मुनि आचार संहिता) शास्त्र में कहा गया है कि जिस साधु

की पित्त प्रकृति है, वे अधिक उपवास आदि न करके अल्प आहार करें। क्योंकि उपवास करने से अधिक पित्त बढ जाता है तथा जठराग्नि भोजन के अभाव से मल को पचाती है और मल के अभाव से चर्बी को पचा लेती हैं एवं चर्बी के अभाव से रक्त, मांसादि को भी पचाने लगती है जिससे शरीर क्षीण, दुर्बल एवं अशक्त हो जाता है। इसी प्रकार प्यास लगने पर भी पानी नहीं पीने से जल की कमी हो जाती है, जल की कमी से कण्ठ, जिह्वा, होठ, शरीर सूखने लगता है, रक्त संचालन ठींक तरह नहीं हो पाता है, शारीरिक मल की धुलाई भी अच्छी तरह से नहीं हो पाती है। इसके साथ–साथ मूत्र गाढा लाल हो जाता है एवं पेशाब में तकलीफ होती है। जनेन्द्रिय में पीडा एवं जलन होती है। उपरोक्त कारणों से शरीर में विभिन्न प्रकार के रोग हो जाते हैं। जिससे ध्यान, अध्ययन नहीं हो पाता है संक्लेश परिणाम भी हो जाता है। आयुर्वेद शास्त्र में कहा भी है –

भोजनेच्छाविघातात्स्यादंगमर्दोऽरूचिः श्रमः ।
तन्द्रा लोचनदौर्बल्यं धातुदाहो बलक्षयः ॥

भोजन की इच्छा रोकने से हानि – भोजन की इच्छा होने पर भोजन न करने से अंगमर्द (शरीर का टूटना), भोजन में अरूचि, थकावट, तन्द्रा (आलस्य),नेत्र में दुर्बलता, रसादिक धातुओं का दाह होना अर्थात् जठराग्नि द्वारा जलना ओर बल का क्षय होना ये सब होते हैं।

विघातेन पिपासायाः शोषः कण्ठास्योर्भवेत् ।
श्रवणस्यावरोधश्च रक्तशोषो हृदि व्यथा ॥

प्यास रोकने से हानि–प्यास लगने पर रोकने से (जल नहीं पीने से)कण्ठ और मुख सूखता है, कान में शब्द सुनाई नहीं पडते, रक्त सूखता है और हृदय में पीडा होती है। **भूख लगने पर भोजन नही करने से हानि**–भूखा पुरूष जब अन्न नहीं खाता है तो उसकी जठराग्नि जिस प्रकार लकडी के बिना जलती हुई अग्नि मंद हो जाती है उसी प्रकार आहार रूपी लकडी के बिना जठराग्नि मंद हो जाती है।

उपर्युक्त वर्णन से यह नहीं समझना चाहिए कि उपवास आगम विरूद्ध है। परन्तु शक्ति के अनुसार उपवास करना चाहिये जिससे संक्लेश परिणाम न हो और ध्यान अध्ययन ठीक चले, कर्त्तव्य पालन में बाधा न पहुँचे। उपवास करने से कफ प्रकृति वालों को तकलीफ नहीं होती क्योंकि कफ प्रकृति शीत प्रकृति है। उपवास से जठराग्नि भोजन को पचाने के बाद कफ को पचाती है जिससे कफ प्रकृति वालों का स्वास्थ्य और भी अच्छा होता है। प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार इसे (कफ को) श्लेष्मा कह सकते हैं। इस श्लेष्मा से अनेक रोग हो जाते हैं। इसलिए प्राकृतिक चिकित्सा में श्लेष्मा को दूर करने के लिए उपवास किया जाता है।

विश्राम एवं निद्राः– जीवन के लिए जिस प्रकार भोजन, पानी एवं वायु दे की आवश्यकता होती है। उसी प्रकार नींद की भी आवश्यकता है। जीवन के लिए परिश्रम चाहिए तो भी विश्राम भी चाहिए। परिश्रम से ऊर्जा की क्षति होती है तो विश्राम से आपूर्ति होती हैं। जड इजंन भी सतत् परिश्रम नहीं कर सकता है। सतत् परिश्रम करने से इजंन भी गर्म हो जाता है एवं शीघ्र खराब हो जाता है। इसलिए इजंन को स्वस्थ रखने के लिए बीच-बीच में विश्राम दिया जाता है। प्रकृति ने भी दिन एवं रात का निर्माण करके, यह सिद्ध कर लिया है कि दिन में परिश्रम करो, रात में विश्राम करो। सम्यग्दृष्टि दिगम्बर जैन साधु शरीर को पर द्रव्य मानते हैं और भोजन को भी बाह्य द्रव्य मानते हैं एवं स्व शुद्धात्मा को जन्म–जरा–रोग–मृत्यु से रहित मानते हैं। निद्रा, भूख, प्यास को भी दोष मानते हैं तथापि वीर्यान्तराय कर्म के मंद क्षयोपशम के कारण शारीरिक शक्ति की कमी के कारण, चारित्र मोहनीय कर्म से प्रेरित होकर भोजन करते हैं, पानी पीते हैं एवं आवश्यकता अनुसार नींद भी लेते हैं। मेरा अनुभव है कि अधिक नींद की कमी से शरीर थक जाता है जिसके साथ मन भी थक जाता है। आँखें तो बहुत लाल हो जाती हैं और जलन होने लगती है। तथा आँखों में जैसे अनेक बालू गिरी हैं ऐसा किरकिरा लगता हैं। आँखों में पानी आने लगता है। किसी भी काम में मन नहीं लगता है, षडावश्यक क्रिया में तन्द्रा आती है। शारीरिक उष्णता और मानसिक उष्णता बढ जाती है जिससे अधिक निद्रा की कमी से पगले भी हो जाते हैं। इसलिए मानसिक रोगियों को, ज्वर रोगियों को, थके हुए को, चिन्तित व्यक्तियों को अधिक निद्रा लेने का परामर्श आयुर्वेद शास्त्र में किया गया है। शीत के दिनों में कुछ पशु–पक्षी महीनों–महीनों की शीत निद्रा लेते हैं, इससे उनकी शारीरिक ऊर्जा की क्षति अधिक नहीं होती है। इसलिए भोजन की अधिक आवश्यकता नहीं होती है और उनकी शीत से रक्षा भी हो जाती है। अनिद्रा के कारण पाचन क्रिया भी प्रभावित होती है एवं मंद पड जाती है। जैन आयुर्वेद कल्याण कारक में निद्रा की आवश्यकता एवं उपयोगिता बताते हुए लिखा–

रात्रौ निद्रालु स्यान्मनुष्यः सुखार्थी,निद्रा सर्वेषां नित्यमारोग्य हेतुः ।
निद्राभंगे स्यात्सर्वदोषप्रकोपो, वर्ज्यानिद्रा स्यात्सर्वदैवाप्यमोघम् ॥

रात्री में जो मनुष्य यथेष्ठ निद्रा लेता है, वह सुखी, बन जाता है। अथवा सुख की इच्छा रखने वाला रात्री में निद्रा अवश्य लेवें । निद्रा सभी प्राणियों को आरोग्य का कारण है। निद्राभंग होने से वातादि दोषों का उद्रेक होता है। लेकिन रात – दिन निद्रा नहीं लेनी चाहिये।

दुराध्वन्यः श्रांतदेहः पिपासी, वातक्षीणो मद्यमत्तोऽतिसारी ।
रात्रौ ये वा जागरूकास्तदर्धा, निद्रा सेव्या तैर्मनुष्यैदिवापि ॥

दूर से जो चलकर आया हो, थका हुआ हो, प्यासा हो, वात रोग से पीडित होकर क्षीण हो गया हो, अतिसार रोग से पीडित होकर क्षीण हो गया हो, अतिसार रोग से पीडित हो, मद्य पीकर मुग्ध हो गया हो एवं रात्री में जो जगा हो वह मनुष्य जागरण से आधी नींद दिन में ले सकता है। योगरत्नाकर में भी कहा है –

निद्राविघाततो जृम्भा शिरोलोचनगौरवम् ।

अंगमर्दस्तथा तन्द्रा स्यादन्नपाक एव च ॥

नींद लगने पर नहीं सोने से जम्हाई, सिर और नेत्रों का भारी होना शरीर का टूटना, तन्द्रा, अन्न का परिपाक नहीं होना ये सब होते है।

संक्षिप्ततः रोग होने के कारण पूर्वोपार्जित पाप कर्म एवं वर्तमान के अयोग्य विचार, विहार, आहार, उच्चार, पर्यावरण हैं। इस के विपरीत स्वस्थ होने का कारण पूर्वोपार्जित पुण्यकर्म के साथ-साथ वर्तमान के योग्य विचार, विहार, आहार, उच्चार, पर्यावरण है। इसलिए प्राचीन हर आयुर्वेद एवं आधुनिक मनोवैज्ञानिक चिकित्सा में एवं एलोपैथिक चिकित्सा में भी उपर्युक्त सिद्धान्त को महत्व दिया गया है।

आदर्श विचार – विचार का प्रभाव हर क्षेत्र में सर्वोपरि है, हम ऊपर उठते हैं सुविचार से और कुविचार से नीचे गिरते हैं। इसलिए कहा है–

उन्नत मानस यस्य तस्य भाग्यं समुन्नतम् ।

नोन्नष मानस यस्य तस्य भाग्यं असमुन्नतम् ॥

अतएव हमें शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं सब दृष्टि से उन्नत होने के लिए हमारे विचार को उदार, उदात्त, व्यापक बनाना चाहिए। हमारा विचार "**बहुजनहिताय बहुजनसुखाय**" न होकर "**सर्वजनहिताय सर्वजनसुखाय**" होना चाहिए। प्रत्येक जीव के प्रति मैत्री, गुणीजनों के प्रति आदर-सम्मान का भाव, रोगी-दीन-दुःखी, गरीब जीवों के प्रति करूणा, दया, सेवा, भाव, होना चाहिए तथा दुर्जन पापियों के प्रति माध्यस्था साम्य भाव होना चाहिए।

आदर्श व्यवहार :– हमारा हर व्यवहार शालीनता से युक्त, नम्रता से सहित करूणा से ओत–प्रोत होना चाहिए। बडों के प्रति आदर तो बच्चों के प्रति प्यार/ स्नेह का होना चाहिए। अनावश्यक किसी अन्य के मध्य में नहीं बोलना चाहिए । दूसरों की चीज को मालिक की अनुमति के बिना उपयोग में नहीं लाना चाहिए, न लेना चाहिए । कोई वस्तु दूसरों की ली हुई हो तो उसे समय पर सुरक्षित आदर सहित, शालीनता से वापस करना चाहिए। देने के बाद धन्यवाद ज्ञापन करना चाहिए । बडों से गुरूजनों से कोई चीज लेना हो या देना हो तो नम्रता से दोनों हाथों से लेकर नमोऽस्तु करना चाहिए ।

आदर्श वचन :– नीतिकारों ने बाण से तीक्ष्ण वाणी को कहा है। बाण से वृक्ष कट जाने

पर भी वृक्ष पुनः पल्लवित हो जाता है। किन्तु वाणी रूपी बाण से हृदय रूपी वृक्ष कट जाने पर वापस पल्लवित नहीं होता है। गृह कलह सामाजिक कलह से लेकर महाभारत जैसे महा प्रलयंकारी युद्ध भी वाणी के कुप्रयोग से हो जाते हैं। इसलिए कवि ने कहा है –

ऐसी वाणी बोलिये, मन का आपा खोय ।

औरन को शीतल करे, आपहु शीतल होय ।।

वाणी एक अनमोल निधि है। जिसकी उपलब्धि मनुष्य को हुई है। इसलिए इस निधि का दुरूपयोग न करके सदुपयोग करना चाहिए । जिससे स्व–पर का उपकार होता है वह सत्य वचन है अन्यथा असत्य वचन। हमें सतत् सत्यग्राही होना चाहिए परन्तु हठग्राही नहीं । सत्य को भी दूसरों के ऊपर बलात् थोपना नहीं चाहिए । सत्यग्राही होते हुए भी नम्रता व शालीनता होनी चाहिए न कि उदण्डता। वचन सत्य के साथ–साथ हित, प्रिय होना चाहिए । जितने कथन से कार्य पूरा हो जायेगा उससे एक शब्द भी अधिक नहीं बोलना चाहिए क्योंकि इससे स्व शक्ति एवं समय के साथ–साथ दूसरों का भी समय नष्ट होता है एवं शब्द प्रदूषण भी फैलता है। स्वयं बोलते ही नहीं रहना चाहिए अतः दूसरों को भी बोलने का योग्य अवसर देना चाहिए । प्रायः लोग मित्र एवं बडों के प्रति तो साधारण नम्र व्यवहार करते हैं परन्तु छोटों के प्रति, दुष्टों के प्रति एवं शत्रु के प्रति खोटे वचन का प्रयोग करते हैं। ऐसा करना शालीनता के विरूद्ध है। धार्मिक सभा, मन्दिर, सार्वजनिक क्षेत्र आदि में अधिक शालीनता, अनुशासन, मौन आदि की आवश्यकता है क्योंकि वहाँ एक व्यक्ति के कारण अनेक व्यक्तियों को बाधा पहुँचती हैं।

आदर्श सामाजिक व्यवहार:– सार्वजनिक क्षेत्र मन्दिर आदि में केवल अपने अधिकार को ही प्रधानता नहीं देनी चाहिए परन्तु अपने कर्त्तव्य को ही अधिक प्रधानता देनी चाहिए क्योंकि हमारा कर्त्तव्य ही हमें समुच्चित अधिकार दिलाता है। कर्त्तव्य के बिना अधिकार चाहना याने बिना परिश्रम किये दूसरों की सम्पत्ति को छीन लेना है। सार्वजनिक क्षेत्र, धार्मिक कार्यक्रम आदि में ज्यादा भीड होने के कारण अव्यवस्था होने की सम्भावना रहती है, तथापि वहाँ धैर्य रखना चाहिए एवं शालीनता एवं विनम्रता का व्यवहार करना चाहिए। कुछ व्यक्ति दादागिरि दिखाने के लिए एवं अपना महत्व बताने के लिए ऐसे स्थानों पर अधिक अनुशासन भंग करते हैं जिससे दूसरे की दृष्टि को आकर्षित कर सके। परन्तु ऐसा व्यक्ति स्वयं को नीचा बना देता है एवं दूसरों की दृष्टि में भी नीचा बन जाता है। ऐसे क्षेत्र में स्त्रियों की रूग्णों की, बालकों की व्यवस्था अलग होनी चाहिए। आगे आने वाले को आगे का स्थान प्राप्त करना चाहिए एवं पीछे आने वालों को पीछे का स्थान प्राप्त करना चाहिए। ऐसे क्षेत्र में धूम्रपान, नशीली वस्तुओं का सेवन, पान , तम्बाखू खाना पूर्ण वर्जित होना चाहिए क्योंकि अधिक भीड होने के कारण वैसे ही प्रदूषण रहता है एवं इन

चीजों के सेवन से अधिक प्रदूषण फैलता है क्योंकि विषाक्त धुआँ फैलता है। तम्बाखू सेवन से जहाँ–तहाँ पीक थूकते रहते हैं। यदि आवश्यकता व पीछे आने वाले को आगे जाना पढे तो आगे वालों को रास्ता देना चाहिए एवं पीछे वाले को नम्रता से आगे बढना चाहिए । किसी कारण वश पैर लगने से या किसी प्रकार की समस्या उत्पन्न होने पर शालीनता से उसका समाधान करना चाहिए और क्षमा याचना करनी चाहिए । बिना कारण माईक में हैलो–हैलो नहीं करना चाहिए या टेप रिकार्ड नहीं चलाना चाहिए क्योंकि इससे शब्द प्रदूषण होता है एवं अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। मंच पर जिनकी आवश्यकता हो ऐसे ही महत्व पूर्ण व्यक्तियों का रहना चाहिए अन्य को नहीं क्योंकि इससे अव्यवस्था फैलती है, अनुशासन भंग होता है एवं तुच्छपना प्रकट होता है, कभी–कभी वृद्ध रोगी महिला व बच्चे यदि पीछे आते हैं और उनके लिए स्थान नहीं है तो उन्हें आदर सहित अपना स्थान देना चाहिए । इसी प्रकार रेल, बस, स्कूल, क्लब, हॉस्पिटल आदि में भी यही व्यवहार करना चाहिए।

स्वयं को आत्म गौरवपूर्ण जीवन जीना चाहिए तथा दूसरों के स्वाभिमान को भी धक्का नहीं पहुँचाना चाहिए ।किसी कारण वशतः किसी से कोई गलती होने पर उस गलती को तो सुधारना चाहिए परन्तु अट्टाहस (खिल्ली उडाना)नहीं चाहिए । क्योंकि इससे स्वयं की नीचता एवं अशालीनता तो प्रकट होती है साथ ही साथ जिसने गलती की है वह भी अपमान अनुभव करता है। परन्तु उसकी गलती को सुधारने के लिए एकांत में उसे प्रेम से समझाना चाहिए जिससे पुनः गलती न हो । राष्ट्रीय सम्पत्ति को व्यर्थ बर्बाद नहीं करना चाहिए क्योंकि राष्ट्रीय सम्पत्ति के ऊपर राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है न कि एक व्यक्ति का। एक व्यक्ति यदि राष्ट्र को क्षति पहुँचाता है तो वह राष्ट्र के हर व्यक्ति को क्षति पहुँचाता है। कुछ व्यक्ति अपनी माँग के लिए राष्ट्रीय सम्पत्ति को क्षति पहुँचाता है। परन्तु ऐसा कार्य राष्ट्रीय दृष्टि से अनुचित है। अपनी नैतिक माँग तो अवश्य करनी चाहिए परन्तु उसमें सत्य, अहिंसा, शालीनता व विनम्रता आदि गुण भी अवश्य होना चाहिए।

हमारा गुण, हमारा व्यक्तित्व, हमारी महानता, हमारे व्यवहार से एवं हमारे कथन से प्रकट होती है। इसलिए हमें जहाँ भी और जिसके साथ भी व्यवहार करना हो या बोलना हो तो अवश्य स्वयं को सम्भालकर व्यवहार करना चाहिए या बोलना चाहिए । बडों से काम लेना है तो विनम्रता से काम लेना चाहिए एवं छोटों से लेना है तो प्यार से काम लेना चाहिए । कभी ये विचार नहीं करना चाहिए ये छोटे हैं इनसे कैसे भी व्यवहार करने से चलेगा परन्तु ऐसा व्यवहार हमें पतित कर देता है और छोटे बच्चे भी हमारे व्यवहार को जान लेते हैं जिससे वे हमें आदर नहीं देते हैं। इतिहास, पुराण से ज्ञात होता है कि महापुरूषों का व्यवहार दीन, दुःखी, पापी पतितों के साथ भी नम्र एवं भद्र होता था।

इससे ज्ञात होता है कि नम्र व्यवहार ही हमें महान् बनाता है और विनम्र एवं भद्र व्यवहार से ही हम दुनियाँ में नाम उज्जवल कर सकते हैं।

विश्व बन्धुत्व की भावना :– स्वार्थ की क्षुद्र परिधि को उल्लंघन करके हमें विश्व–परिवार में पदार्पण करना चाहिए। केवल शरीर की चिंता, स्वार्थ की चिंता, निम्न श्रेणीय पशुओं की चिंता है। मनुष्यों का जन्म पेट (भोजन) पेटी (धन संग्रह) प्रजनन (भोग–विलासता) के लिए नहीं हुआ है। मनुष्य का जन्म तो आत्म कल्याण के लिए, महानता के लिए, विश्व कल्याण के लिए एवं अमृत तत्व को प्राप्त करने के लिए हुआ है। ऐसा जीवन जो जीता है उसका जीवन ही सार्थक है, नहीं तो अन्य का जीवन तो चलता–फिरता शव का जीवन है। हमारे जीवन में मूल भूत दो तत्व है – 1) शिव (भगवान्, मंगल ,पवित्र, अमृत, आत्मा) 2) शव (शरीर, भौतिक वस्तु)जब हम शिव तत्व को छोडकर केवल शरीरादि भौतिक तत्व के लिए काम करेंगे तो हम शव बन जायेंगे। इसलिए हमें सतत् आत्म–चिंतन, आत्म विश्लेषण, आत्मोन्नति करना चाहिए और विचार करना चाहिए कि मेरे अन्दर कितने अंश में शिव तत्व प्रकट हुआ है और कितने अंश में शव तत्व है, मुझ से कितने आत्मकल्याण के जनकल्याण के कितने विश्व कल्याण के कार्य हुए हैं। वे ही चतुर है, पुरूषार्थी हैं। अन्य सब तो मनुष्याकार पशु या चलते– फिरते शव के बराबर है। किसी ने कहा भी है –

प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत नरश्चरित मात्मनः ।
किन्नुमे पशुभिस्तुल्यं किन्नुमे सत्पुरूषैरिति ॥ (सा. धर्मा.)

मनुष्यों को हमेशा अपने आचरित कार्यों का अवलोकन करना चाहिए ओर फिर विचार करना चाहिए कि आज मैंने कौन-कौन से कार्य तो पशु के समान किये हैं और कौन– कौन से कार्य मनुष्यों के समान किये। इस प्रकार हिताहित का विचार करने वाले को प्राज्ञः कहते हैं।

यस्य त्रिवर्गशून्यानि दिनान्यायाति याति च ।
स लोहकारभस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति॥

परस्पर में अविरोध भाव से धर्म, अर्थ, और काम इन तीन पुरूषार्थों के सेवन करने के बिना ही जिसके दिन आते हैं और जाते हैं वह पुरूष लुहार की धौकनी के समान श्वासोच्छ्वास लेता हुआ भी मरे हुए के समान है अर्थात् धर्म,अर्थ और काम के सेवन के बिना मनुष्य का जीवन पशु के समान निरर्थक है और उसका जीना और नहीं दोनों जीना बराबर हैं अतः हमारा परम लक्ष्य निम्न प्रकार से होना चाहिए

असतो मा सद्गमयः । तमसो मा ज्योतिर्गमयः । मृत्यो मा अमृतंगमयः ।

हे ! करूणामय, पतित पावन भगवान् ! मुझे असत् (मिथ्या) से सत् (सम्यक्)

की ओर ले चलो अज्ञान रूपी मोहान्धकार से ज्ञानरूपी ज्योति की ओर ले चलो संसार रूपी मृत्युलोक से मोक्षरूपी अमृत लोक की ओर ले चलो।

विश्व शांति भावना –

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे संतु निरामय।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात् ॥

हे करूणामय भगवान ! विश्व के सर्व जीव सुखी रहें, निरोगी रहें, जीव सच्चरित्रमय, सज्जनमय, दृष्टिगोचर होवें, कोई भी जीव दुःख को प्राप्त न होवें।

शिवमस्तु सर्व जगतः, परहित निरता भवन्तु–भुतगणाः।
दोषाः प्रयान्तु नाशं, सर्वत्रसुखी भवतु लोक ॥

सम्पूर्ण विश्व मंगलमय हो, सम्पूर्ण जीव–जगत् पर हित में रत रहें, सम्पूर्ण दोषों का नाश हो सदा सर्वदा सब जीव–जगत् सुखी रहें।

अनेकान्त की दृष्टि से विचार, विहार, आहार

सुप्रसिद्ध प्रचलित नीति है कि " **जैसा खावे अन्न, वैसा होवे मन** " यह नीति अनेकांत की दृष्टि से अशंतः सत्य होते हुए भी पुर्ण सत्य नहीं है। इस आंशिक सत्य से भी कुछ अधिक सत्य है "**जैसा होवे मन, वैसा खावे अन्न।**" अर्थात् जैसा हमारा विचार होता है वैसा ही हमारा आहार होता है। विश्व–साहित्यों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि जितने महान् महापुरूष हैं वे सब सात्विक आहारी ही थे।

जैसे–जैनधर्म के सम्पूर्ण तीर्थंकर, चक्रवर्ति, कामदेव, नारायण, प्रतिनाराणय, रूद्र, नारद आदि। शुद्ध विचार सहित व्यक्ति कभी अशुद्ध आहार कर ही नहीं सकता है, जैसे-जहाँ पर प्रकाश होता है वहाँ अन्धकार प्रवेश कर ही नहीं सकता। भोगभूमियों के मनुष्य तो शुद्ध सात्विक आहारी होते हैं और वहाँ के पशु भी यथा सिंह, व्याघ्र आदि भी सात्विक–आहारी होते हैं। जैन धर्म के विश्वकोष स्वरूप तिल्लोयपण्णत्ति में इसका सविस्तृत वर्णन निम्न प्रकार से हैं –

जैसा मन वैसा अन्न

जह मणुवाणं भोगा, तह तिरियाणं हंवति एदाणं ।
णिय–णिय–जोग्गेत्तेणं, फल–कद–तणंकुरादीणि ॥

वहाँ जिस प्रकार मनुष्यों के भोग होते है उसी प्रकार इन तियञ्चों के भी अपनी–अपनी योगुयतानुसार फल, कन्द,तृण और अंकुरादि के भोग होते हैं।

वग्घादी – भूमिचरा, वायस – पहुदी य खेयरा तिरिया।
मंसाहारेण विण्णा, भुजंते सुरतरूण मधुर–फलं ॥ 396

वहाँ व्याघ्रादि भूमिचर और काक आदि नभचर, तिर्यञ्च, मांसाहार के बिना कल्पवृक्षों के मधुर फल भोगते हैं।

हरिणादि –तणचरा तह, भोगमहीए तणाणि दिव्वाणि।
भुंजंति जुगल–जुगला, उदय – दिणेस–प्पहा सव्वे ॥ 357

भोगभूमि में उदयकालीन सूर्य के सदृश प्रभा वाले समस्त हरिणादिक तृण–जीवि पशुओं के युगल दिव्य तृणों का भोजन करते हैं। उपरोक्त वर्णन से सिद्ध होता है कि भोगभूमि में उत्पन्न होने वाले सभी स्त्री–पुरूष कल्पवृक्ष से प्राप्त सुमधुर, सुंगधयुक्त भोजन एवं पानी का सेवन करते हैं। उत्तम भोग–भूमि में उत्पन्न होने वाले मनुष्य तीन दिन के बाद चौथे दिन भोजन करते हैं, मध्यम भोग–भूमि में उत्पन्न होने वाले जीव दो दिन के बाद भोजन करते हैं और जघन्य भोग–भूमि में उत्पन्न होने वाले जीव एक दिन के बाद अर्थात् दूसरे दिन भोजन करते हैं। इनका भोजन का प्रमाण भी आँवला, बेर हर्र के बराबर हैं। भोग–भूमि में जो उत्पन्न होते हैं वे पूर्व जन्म के संस्कार को लेकर जन्म लेते हैं जिसके कारण उनके भाव भी भद्र, सरल एवं सात्विक रहते हैं। इसके कारण उनका भोजन भी सात्विक होता हैं । इतना ही नहीं वहाँ जन्म लेने वाले पशु भी पूर्व के अच्छे संस्कार के कारण भद्र, सरल परिणाम के होते हैं जिसके कारण उनका भोजन भी सात्विक होता हैं। काल क्रम से युग परिवर्तन होता है। तब वहाँ जन्म लेने वाले कुछ पूर्व कुसंस्कार को लेकर जन्म लेते हैं, इसके कारण उनके परिणाम भी दूषित होते जाते हैं। वे पूर्व संस्कार से प्रेरित होकर एवं उस समय के वातावरण से प्रभावित होकर अशुभ-भाव से भावित हो जाते हैं जिसके कारण वे क्रूर होकर मांस का भक्षण करने लगते हैं और मनुष्यों को भी कष्ट देना प्रारम्भ कर देते हैं । तिललोयपण्णति में कहा है कि –

वग्घादि –तिरिया–जीवा, काल–वसा कूर–भावमावण्णा।
तब्भयदो भोग – नरा, सव्वे अच्चाउला जादा ॥ 448

तिल्लोयपण्णति

उस समय काल वश व्याघ्रादि तिर्यञ्च जीवों के क्रूर–परिणाम होने से सर्व भोग–भूमिज मनुष्य उनके भय से अत्यन्त व्याकुल हो गये थे।

खेमंकर–णाम मणु भीदाणं देदि दिव्व–उवदेसं ।
कालस्स विकारादो, एदे कूरत्तणं पत्ता ।। 449
ता एण्हिं विस्सासं, पापाणं मा करेज्ज कइया वि।
तासेज्ज कलुस–वयणा, इय भणिदे णिब्भया जादा ॥ 450

तब क्षेमंकर नामक मनु उन भयभीत प्राणियों को दिव्य उपदेश देते हैं कि काल में विकार से ये तिर्यंच जीव क्रूरता को प्राप्त हुए हैं, इसलिए अब इन प्राणियों का विश्वास

कदापि मत करो, ये विकृत मुख प्राणी तुम्हें त्रास दे सकते हैं। उनके ऐसा कहने पर वे भोगभूमिज निर्भयता को प्राप्त हुए हैं।

उस कुल का स्वर्गवास होने पर आठ हजार से भाजित पल्य–प्रमाण काल के अन्त क्षेमंधर नामक चतुर्थ मनु उत्पन्न हुआ । उसके शरीर की ऊँचाई सात सौ पचहत्तर धनुष और आयु सौ के वर्ग 10000 से भाजित पल्य प्रमाण थी। उसका वर्ण स्वर्ण सदृश था। उसकी देवी 'विमला' नाम से विख्यात थी।

तिक्काले सीहादी, कूरमया खंति, मणुव–मंसाई। 4531/2

उस समय क्रूरता को प्राप्त हुए सिंहादिक, मनुष्यों का मांस खाने लगे।

सीहप्पहुदि–भएणं, आदिभीदा भोगभूमिजा ताहे ।
उवदिसदि मणु ताणं, दडांदि सुरक्खणोवायं ।। 454

तब सिंहादि के भय से अत्यंन भयभीत हुए भोगभूमिजों को क्षेमंधर मनु ने उनसे अपनी सुरक्षा के उपायभूत दण्डादिक रखने का उपदेश दिया। इसी प्रकार और भी उदाहरण प्रस्तुत कर सकते हैं जिससे सिद्ध होता है कि विचार में परिवर्तन होते ही आहार में भी परिवर्तन हो जाता है। जैन धर्म के अनुसार महावीर भगवान् का जीव सिंह था वह प्राणियों को मारकर उनका कच्चा मांस खाता था परन्तु जब एक दिन दो चारण ऋद्धिधारी मुनि उसको सम्बोधित करते हैं तब उनका विवेक जाग्रत हो जाता है जिससे भाव में परिवर्तन आ जाता है। जिससे वह ना केवल मांस खाना छोड देता है बल्कि सम्पूर्ण प्राणियों को कष्ट देना भी छोड देता है और सम्पूर्ण भोजन को त्याग कर समाधि लेकर आत्म चिंतन करता है। इसी प्रकार एक हाथी का वर्णन है जिसमें जाति स्मरण के बाद अप्रासुक पानी एवं जीवित वृक्ष का सेवन भी त्याग दिया।

प्राचीन इतिहास के अध्याय से ज्ञात होता है कि विद्युत् चोर आदि ऐसे पतित जीव थे जो चोरी, वैश्या गमन, मांस भक्षण आदि व्यसनों का सेवन करते थे। परन्तु जब उनके भाव में परिवर्तन आया तो उनके सम्पूर्ण कुव्यसन छूट गये एवं शुद्ध भोजन करने लगे। इतना ही नहीं वे आगे जाकर मुनि बनकर आत्म साधन के बल पर मानव से भगवान् बन गये। बौद्ध धर्म में भी अँगुली माल आदि जैसे पतित भी महात्मा बुद्ध के सम्पर्क में आकर पतित से पावन बन गये। उपर्युक्त उदाहरण से एवं सिद्धान्तों से यह सिद्ध होता है कि विचार से आहार का गहरा सम्बध है।

शुद्ध–आहार के साथ शुद्ध विचार भी आवश्यक– विश्व साहित्य के अध्ययन से एवं अनुभव से ज्ञात होता कि कभी–कभी सात्विक आहार करने वाले कुछ व्यक्ति भी वैचारिक दृष्टि से पतित पाये जाते हैं। जैसे-जैन धर्मानुसार रावण, कंस, दुर्योधन आदि सात्विक आहारी होते हुए भी पापाचारी, दुराचारी, भ्रष्टाचारी थे। स्वयंभूरमण समुद्र में

निवास करने वाला महामत्स्य के कान का मैल खाकर उसके कान में निवास करने वाला तन्दुल मत्स्य भी दूषित विचार के कारण सप्तम नरक में गया। उस तन्दुल मत्स्य ने अपने जीवन में न दूसरों को मारा न मांसहार किया तथापि सप्तम नरक में जाने का कारण दूषित विचार थे। इसलिए केवल शाकाहार या सात्विक आहार करके स्वयं को सात्विक व्यक्ति, साधु-संत या अहिंसक नहीं मान लेना चाहिए । सात्विक आहार करना धर्म साधन के लिए बाह्य निमित्त है। इस निमित्त को ही सब कुछ मानकर नहीं बैठ जाना चाहिए । कबूतर आदि शाकाहारी होते हुए भी बहुत का सेवन करते हैं। इससे क्या यह सिद्ध नहीं होता है कि, केवल आहार के ऊपर ध्यान देकर विचार, आचार के ऊपर ध्यान नहीं देना बहुत बडी गलती है। इसलिए जितना ध्यान आहार के ऊपर देना चाहिए, उससे भी अधिक ध्यान विचार एवं आचार के ऊपर देना चाहिए। क्योंकि यदि हमारा आचार एवं विचार शुद्ध एवं सात्विक होगा तब हमारा आहार भी शुद्ध व सात्विक होगा। जो असात्विक भोजन करते हुए कहेगा कि, मेरा आहार एवं विचार शुद्ध है मुझे सात्विक आहार की क्या आवश्यकता है ? तो जानना चाहिए वह व्यक्ति ढोंगी है, पाखण्डी है, मायाचारी है व झूठ बोलने वाला है।

वर्तमान वैज्ञानिक तार्किक युग होते हुए भी कुछ व्यक्ति साक्षर होते हुए भी, राक्षस बनकर मांस सेवन करते हैं। मद्यपान करते हैं, धूम्रपान करते हैं व तम्बाखू खाते हैं। परन्तु कुछ व्यक्ति केवल भोजन में शाकाहार का प्रयोग करके स्वयं को अहिंसक एवं धार्मिक मान लेंते हैं। ऐसे व्यक्ति भी कम मूर्ख नहीं है, क्योंकि कुछ शाकाहारी व्यक्ति हिंसात्मक प्रसाधन सामग्री जैसे नेलपॉलिस, लिपिस्टिक, चर्म निर्मित जूते, बेल्ट, रेशमी वस्त्र आदि का प्रयोग निःसकोच करते हैं। केवल वे हिंसात्मक सामग्रीयों का ही निःसकोच प्रयोग नहीं करते हैं बल्कि वे उसका उत्पादन भी करते हैं एवं क्रय–विक्रय भी करते हैं। ऐसे व्यक्ति भी हिंसक है, मांसहारी के समान है, पाखण्डी हैं और मूढ हैं। वे गोमुख व्याघ्र के समान दिखने में तो बगुलों के जैसे धार्मिक हैं परन्तु वस्तुतः धर्म द्रोही हैं। कुछ व्यक्ति उपर्युक्त हिंसात्मक सामग्री प्रयोग नहीं करते हैं। परन्तु व्यापार में दूसरों का शोषण करते हैं और उससे उपार्जित धन से शाकाहार करते हैं ऐसे शाकाहारी भी मनोवैज्ञानिक व आध्यात्मिक दृष्टि से मांसाहारी के समान है। इसके लिए में निम्न उदाहरण प्रस्तुत कर रहा हूँ –

प्राचीन काल में एक दिगम्बर जैन मुनि आहार करने के लिए एक व्यक्ति के यहाँ आये। वे आहार करते–करते वहाँ रखा हुआ बहुमूल्य हार को लेने का विचार करते हैं। आहार के बाद जाते समय उस हार को उठाकर कमण्डल में रखकर ले जाते हैं। साधु के जाने के बाद वे श्रावक हार को ढूँढते हैं परन्तु हार नहीं मिला इसलिए वे सोचते हैं कि

साधु आहार करने के लिए आये थे, शायद वे ले गये होंगे। इसलिए वह श्रावक साधु को पूछने के लिए साधु के पास जाने लगा। उधर साधु सामायिक में बैठकर आत्म-विश्लेषण और विचार करते हैं कि में समस्त वैभव को त्याग कर साधु बना फिर इस हार की चोरी मैंने क्यों की ? उस हार को वापस करने के लिए श्रावक के घर की ओर जाने लगा । रास्ते में दोनों की भेट हो गयी। भेंट होते ही वे साधु उस व्यक्ति को पूछते है कि तुम कौन सा व्यापार करते हो ? वह व्यक्ति संकुचाते हुए बोला मेरी दुकान रात को बारह बजे खुलती है एवं चार बजे बंद होती है। साधु पूछता है कि इसका मतलब क्या है ? व्यक्ति बोलता है कि जो चोर,डाकु लोग चोरी करके, डाका डाल के धन-सम्पत्ति लाते हैं उन्हीं का मैं क्रय-विक्रय करता हूँ। इसीलिए मेरी दुकान रात को भी ही खुलती है एवं रात को ही बंद हो जाती है। तब साधु उस हार को उस व्यक्ति को देते हुए बोलते हैं कि तुम्हारे चोरी का भोजन मैंने एक दिन खाया इसलिए मेरी चोरी करने की भावना हुई। तुम तो रोज चोरी का माल खाते हो तो तुम्हारी क्या गति होगी ? दूसरा एक प्रसिद्ध उदाहरण गुरूनानक का है। एक बार गुरूनानक को एक जमींदार ने भोजन के लिए निमंत्रण दिया और एक सामान्य किसान ने भी भोजन का निमंत्रण दिया। परन्तु गुरू नानक किसान के यहाँ जाकर भोजन करते हैं इससे जमींदार स्वयं का अपमान मानकर क्रोधित एवं ईर्ष्यालु होकर गुरू नानक को बुलाकर इस का कारण पूछता है गुरू नानक बोलते हैं कि आप अपना भोजन ले आओ और किसान को भी बोलते हैं कि आप भी अपना भोजन ले आओ। जमींदार हल्लुवा, खीर, रसगुल्ला, गुलाब जामुन, कचौरी लाकर के गुरू नानक के सामने रखता है, और किसान अपनी सूखी रोटी लाकर देता है। गुरू नानक दोनों प्रकार के भोजन को हाथ में लेकर निचोडते हैं। जिस हाथ में जमींदार का भोजन था उससे खून टपकता है, और किसान के भोजन से दूध टपकता है। उनके प्रायोगिक उत्तर से सब कोई स्तब्ध रह जाते हैं और गुरू नानक ने क्यों जमींदार का निमंत्रण स्वीकार नहीं किया और किसान के यहाँ भोजन क्यों किया इसे भी जान लेते हैं । ऐसे अनेक उदाहरण जैन धर्म में, हिन्दु धर्म में, बौद्ध धर्म में पाये जाते हैं । एक हिन्दूधर्म का उदाहरण मैं प्रस्तुत कर रहा हूँ -

महाभारत युद्ध के समय भीष्म पितामह जब शरशय्या पर शयन करके मुत्यु के अन्तिम क्षण की प्रतिक्षा कर रहे थे तो पाण्डव उपदेश सुनने के लिए उनके पास जाते हैं और उपदेश देने के लिए प्रार्थना करते हैं। इस अवसर पर द्रौपदी हँसने लगती है, तब पाडण्व बोलते हैं कि हे द्रौपदी ! इस अवसर पर इस प्रकार हँसना मर्यादा का उल्लंघन करना है। तब भीष्म पितामह बोलते हैं कि हे पाडण्वों ! द्रौपदी जो हँस रही है वह ठीक हँस रही हैं। उसका कारण भी है। पाडण्व पूछते हैं -हे पितामह ! इसका क्या कारण है ? तो

पितामह बोलते हैं कि हे पाडण्वों ! जब आप लोगों ने धर्म उपदेश के लिए मुझे से प्रार्थना की तब द्रौपदी विचार करती है कि ऐसे अन्यायी पितामह क्या उपदेश दे सकतें हैं । तब पाण्डव पूछते हैं कि हे पितामह ! आप अन्यायी कैसे हो ? तब पितामह बोलते हैं कि हे पाण्डवों ! मुझे मालुम था कि आधे राज्य के उत्तराधिकारी आप ही हो परन्तु कौरवों ने आप लोगों को सूई की नोंक के बराबर भी राज्य नहीं दिया तो भी मैंने आप लोगों को राज्य नहीं दिलाया। भरी राज सभा में कुलवधू द्रौपदी का चीर-हरण हुआ तथापि मैंने उसका विरोध नहीं किया। इतना ही नहीं कौरव और पाण्डवों में युद्ध हुआ तब मैंने जानते हुए भी अन्यायी कौरवों का ही पक्ष लिया। केवल पक्ष ही नहीं लिया अपितु उनका प्रधान सेनापति बनकर आप लोगों के विरूद्ध में युद्ध किया।

मेरा अन्यायी बनने का कारण, अन्यायी कौरवों का पक्ष लेना एवं भोजन करना है अर्थात् उनका अन्यायमय भोजन करके मेरी बुद्धि भी अन्यायपूर्ण हो गयी थी। परन्तु हे द्रौपदी ! अभी में उपदेश देने के योग्य हूँ क्योंकि अर्जुन के बाण के कारण मेरा दूषित रक्त निकल गया हैं। उपर्युक्त उदाहरण से सिद्ध होता है कि अन्यायपूर्ण कमाई का भोजन करने वाले अन्यायी होते हैं। हिंसात्मक उपाय से धन अर्जन करने वाले भी हिंसक ही हैं। द्रव्य रूप से भोजन शुद्ध होते हुए भी दूषित भाव से भावित होने पर शुद्ध भोजन अशुद्ध हो जाता हैं। मैंने ऊपर जो कुछ वर्णन किया वह कपोल-कल्पित, अतिरंजित या अनुमानित नहीं हैं। बल्कि प्राचीन मनीषियों, लेखकों, आचार्यों ने भी उपर्युक्त सिद्धान्तों को स्वीकार किया हैं। कुछ प्राचीन ग्रन्थों के उदाहरण उद्धत करके मैं मेरे सिद्धान्त की पुष्टि कर रहा हूँ। यथा -

द्रव्यतः शुद्धमप्यन्नं भावाशुद्धया प्रदुष्यतं।
भावो शुद्धोऽबन्धाय शुद्धो मोक्षाय निशितः ॥ 67 अ.धर्मामृत

द्रव्य से शुद्ध भी भोजन भाव के अशुद्ध होने से अशुद्ध हो जाता है, क्योंकि अशुद्ध भाव बंध के लिए और शुद्ध भाव मोक्ष के लिए होते हैं यह निश्चित है।

आधाकम्मपरिणादो फासुगदव्वेहि बंधओ भाणिओ।
सुद्धं गवेसमाणो आधाकम्मेवि सो सुद्धो ॥ 487 मूलाचार

अधः कर्म से परिणत हुए मुनि प्रासुक द्रव्य के ग्रहण में भी बन्धक कहे गये हैं, किन्तु शुद्ध आहार की गवेषणा करने वाले अधः कर्म से युक्त आहार ग्रहण करके भी शुद्ध हैं।

प्रासुक द्रव्य के होन पर भी यदि साधु अधः कर्म से परिणत हैं अर्थात् यदि गौरव से उस आहार को अपने लिए किया हुआ मानते हैं तब वे कर्म का बन्ध कर लेते हैं। पुनः शुद्ध आहार की खोज करते हुए अर्थात् अधः कर्म से रहित और कृत-कारित-अनुमोदना से रहित ऐसा आहार यत्न-पूर्वक चाहते हुए साधु कदाचित् अधः कर्म युक्त आहार के ग्रहण करने में भी शुद्ध ही है। यद्यपि वह आहार अधः कर्म के द्धारा बनाया हुआ है तो भी साधु के बंध हेतु

नहीं है क्योंकि उसमें उस साधु की कृत–कारित–अनुमोदना आदि नहीं है।

सव्वोहि पिडंदोसोदव्वे भावे समासदो दुविहो।
दव्वगतो पुण दव्वे भावगदो अप्पपरिणामो॥ 488

सभी पिंड दोष द्रव्य और भाव से संक्षेप में दो प्रकार के होते हैं। पुनः द्रव्य से सम्बन्धित तो द्रव्य में है और भाव से सम्बन्धित आत्मा का परिणाम है।

सभी पिंड दोष द्रव्यगत और भावगत की अपेक्षा से संक्षेप से दो प्रकार के हैं, अर्थात् द्रव्य पिण्ड दोष और भाव पिण्ड दोष ऐसे पिण्ड दोष के दो भेद हैं। उद्गम आदि दोष से रहित भी अधः कर्म से युक्त आहार द्रव्यगत पिण्ड दोष कहलाता है। वह द्रव्यगत पुनः द्रव्य दोष है, भाव से अर्थात् आत्मा परिणाम से जो अशुद्ध है अर्थात् शुद्ध–प्रासुक भी आहार आदि परिणामों की अशुद्धि से अशुद्ध है, इसलिए भाव शुद्धि यत्नपूर्वक करना चाहिए। क्योंकि भाव से शुद्धि से ही सर्व तपश्चरण और ज्ञान–दर्शन आदि व्यवस्थित होते हैं।

आदर्श आहार–प्रणाली

एक बार धन्वन्तरी, पक्षी के वेष में योग्य वैद्य की परीक्षा करने के लिए स्वर्ग से अवरित होकर भूपृष्ट में आये। वह विभिन्न स्थान में घूम–घूमकर कोऽरूक् (कः अरूक् अर्थात् कौन निरोग है) कुगते –2, बोलते–बोलते परीक्षा करने लगे। एक दिन उस पक्षी को वृक्ष पर बैठकर बोलते हुए एक व्यक्ति ने सुना; वह बोला– **''च्यवनप्राश भुक् अरूक्।''** अर्थात् जो चवनप्राश खाता है वह निरोगी है। इस उत्तर को सुनकर पक्षी वहाँ से भाग गया। अन्य स्थान में पुनः कोऽरूक् –कोऽरूक् कुगने (बोलने) लगा। एक व्यक्ति ने उस वचन को सुनकर उत्तर दिया **''हिंगाष्ठक भुक्! अऽरूक्।''** वहाँ से भी पक्षी भागकर परीक्षा के लिए विभिन्न स्थान में घूम–घूमकर उपरोक्त वाक्य बोलने लगा। एक व्यक्ति सुनकर बोला –

हितभुक् मितभुक् ऋतुभुक् (शाकयुक्) शतपद गामी वामशायी च।
अविरोध विण्परूष (मल–मूत्र) सदाचारी पुरूषः, सोऽरूक्–सोऽरूक्॥

हितभोजी, अल्पभोजी, ऋतु अनुकूल भोजी (शाकाहारी) आहार के बाद सौ पग चलने वाला, बाम पार्श्व में सोने वाला, मलमूत्र निरोध नहीं करने वाला, सदाचारी निरोगी होता है। पक्षी–स्वरूप–देव, मूल स्वरूप में प्रकट होकर उस व्यक्ति को बोला आप ही योग्य वैद्य हैं। वह सुनाम धन्य सुश्रुत (च्यवन) थे।

सम्पूर्ण आयुर्विद्या (चिकित्सा विज्ञान) इस सिद्धान्त में निहित है –

''हियाहार मियाहार अप्पाहार य जे नरा।
न ते विज्जातिगच्छति, अप्पाण ते तिगिच्छगा॥''

जो मनुष्य हित आहार, मित आहार और अल्पाहार करता है वह वैदिक चिकित्सा कराने के लिए नहीं जाता है। स्वयं की चिकित्सा स्वयं कर लेता है।

'' तहा भोत्तव्य जहा से जायमाताय भवति।
न ते भवति विब्भमो न भंसणा च धम्मस्य॥''

उतना भोजन करो जिससे जीवन की संयम यात्रा सुचारू रूप से गतिशील होती है और जिससे विभ्रम उत्पन्न नहीं होता है और धर्म की भर्त्सना नहीं होती हैं। जैन आयुर्वेद कल्याणकारक में आहार प्रणाली का वैज्ञानिक विवेचन निम्न प्रकार से किया गया है –

आहार काल –

विण्मूत्रे च विनिर्गते विचलिते वायौ शरीर लधौ।
शुद्धोऽपीद्रियवाङ्मनः सुशिथिले कुक्षौ श्रमव्याकुले॥
कांक्षा मप्यशनं प्रति प्रतिदिनं ज्ञात्वा सदा देहिना।
माहारं विदधीत शास्त्रविधिना वक्ष्यामि युक्तिक्रमं॥ 16

जिस समय शरीर में मलमूत्र का ठीक–ठीक निर्गमन हो, अपानवायु भी बाहर छूटता हो, शरीर भी लघु हो, पांचों इन्द्रिय प्रसन्न हो, लेकिन वचन व मन में शिथिलता आ गई हो, पेट भी श्रम (भूख) से व्याकुलित हो, भोजन करने की इच्छा भी हो, तो वही भोजन के योग्य समय जानना चाहिए। उपरोक्त लक्षण की उपस्थिति को ज्ञात कर उसी समय आयुर्वेद–शास्त्रोक्त भोजन विधि के अनुसार भोजन करें।

भोजन क्रम –

स्निग्धं यन्मधुरं च पूर्वमशनं भुंजीत भुक्तिक्रमे।
मध्ये यल्लवणाम्लभक्षणयुतं पश्चात्तु शेषान्नसान्॥
ज्ञात्वा सात्म्यबलं सुखासनतले स्वच्छे स्थिरस्तत्परः।
क्षिप्रं कोष्णमथ द्रवोत्तर सर्वर्तुसाधारणम्॥ 17

भोजन करने के लिए जिस पर सुखपूर्वक बैठ सके ऐसे साफ आसन पर, स्थिर चित्त होकर अथवा स्थिरता पूर्वक बैठे। पश्चात् अपनी प्रकृति व बल को विचार कर उसके अनुकूल, थोडा गरम (अधिक गरम भी न हो अधिक ठण्डा भी न हो) सर्वऋतु के अनुकूल, ऐसे आहार को शीघ्र ही (अधिक विलम्ब भी न हो अत्यधिक जल्दी भी न हो) उस पर मन लगाकर खावें। भोजन करते समय सबसे पहले चिकना व मधुर अर्थात् हलुवा, खीर, बर्फी, लड्डू आदि पदार्थों को खाना चाहिए तथा भोजन के बीच में नमकीन, खट्टा आदि अर्थात् चटपटा मसालेदार चीजों को व भोजनांत में दूध आदि द्रव पदार्थ का आहार लेना चाहिए।

भोजन समय में अनुपात –

भुक्त्वा वैदलसुप्रभूतमशनं सौवीरपायी
भवेन्यूर्त्यस्त्वोदनमेवचाम्यवहरंस्कानुपातानान्विताः।
स्नेहानामपि चोष्णतो यदमलं पिष्टस्य शीतं जलं
पीत्वा नित्वासुखी भवत्यनुगतं पानं हितं प्राणिनाम् ॥ 18

दाल से बनी हुई चीजों का ही मुख्यतया खाते समय कांजी पीना चाहिए। भात आदि खाते समय, तक्र (छाछ) पीना योग्य हैं। घी आदि से बनी हुई चीजों का भोजन करते हुए स्नेह (तेल आदि) पीते समय, उष्ण जल का अनुपात कर लेना चाहिए। पिट्ठी (आटा) से बने पदार्थों को खाते हुए ठण्डा जल पीना उचित है। प्राणियों के हितकारी इस प्रकार के अनुपान का जो मनुष्य नित्य सेवन करता है वह नित्यसुखी होता है। जैनायुर्वेद में भी कहा है –

इत्थं द्रवद्रव्वविधिं विधाय, संक्षेपतः सर्वमिहानुपनम् ।
वक्षाम्यहं सर्वरसानुपानं, मान्यं मनोहारि ॥ 38 कल्याणकारक

इस प्रकार सम्पूर्ण द्रव द्रव्यों का वर्णन करके आगे, हम संक्षेप से सर्व रसों के सम्पूर्ण अनुपान का वर्णन, मनोहर मत के अर्थात् पूर्वाचार्यो के दिव्य मत के अनुसार, सिद्धांताविरूद्धरूप से करेंगे।

सर्व भोज्यपदार्थों के अनुपान –

भोज्येषु सर्वेष्पपि सर्वथैव, सामान्यतो भेपजमुष्णतोयम् ।
तिक्तेषु सौवीर मयाम्लतक्रं, पथ्यानुपानं लवणान्वितेषु ॥ 39

सभी प्रकार के भोजन में सामान्य रूप से सर्वथा गरम पानी पीना यही एक औषध है। भोजन में कांजी लेना ठीक है।

कषाय आदि रसों के अनुपान –

नित्यं कषायेषु फलेषु कंद,शाकेषु पथ्यं मधुरानुपानम्।
श्रेष्ठं कटुद्रव्वयुतानुपानं, सर्वेषु साक्षान्मधुराधिकेषु ॥ 40

कषाय रस युक्त फल व कंदमूल के भाजियों में मीठा रस अनुपान करना पथ्य है, जो भोजन साक्षात् मधुर हैं उसमें चिरपरा रस अनुपान करना अच्छा है।

अम्ल आदि रसों के अनुपान –

आम्लेषु नित्यं लवणप्रगाढं ,तिक्तानुपानं कटुकेषु सम्यक् ।
पथ्यं तथैवात कषायपानं, क्षीर हितं सर्वरसानुपानम् ॥ 41

खट्टे पदार्थों के साथ लवण रस अनुपान करना योग्य है। तीखे पदार्थों के लिए कडुआ व कषायले रस अनुपान है। दूध सभी रसों के साथ हितकर अनुपान है।

अपुपानविधान का उपसंहार

केषांचिन्मधुरे भवत्यतितराकांक्षाम्लसंसेवना,
दम्लेवान्यतरातिसेवनतया वाछां भवेदादरात् ।
यद्यद्यस्य हितं यदेव रूचिकृतद्यद्यस्य सात्म्यादिकं ,
तत्तत्सर्वमिहनुपान विधिना यज्यं भिषग्भिस्सदा ॥ 42

किसी–किसी को अम्ल रस के अधिक सेवन से मीठे रस में अधिक इच्छा रहती है किसी को अम्ल के अतिरिक्त किसी रस का अधिक सेवन से खट्टे रस की इच्छा होती है। इसी तरह किसी को कुछ, अन्यों को कुछ रस सेवन की चाह होती है। इसलिए विद्वान वैद्य को उचित है कि वे जिनको जिस रस की इच्छा होती है और जो हितकर हो और उनकी प्रकृति के लिए अनुकूल हो उनके अनुसार सबको अनुपान विधि से प्रयोग करें।

जलपान क्रम –

रसेनान्नस्यरसनाप्रथमेनोपतर्पिता ।
न तथा स्वादुतामेति ततः सेव्याऽम्बुनाऽनतरा ॥ 149 योग रत्नाकर

भोजन के समय पहले जिस पदार्थ को खाया जाता है उसके रस से जिह्वा तृप्त हो जाती है इससे जब दूसरा पदार्थ खाया जाता है तो उसका उचित स्वाद नहीं मालूम होता है अतएव एक रस के भोजन कर चुकने पर और दूसरे रस खाने के पहले जल पीते रहना चाहिए जिससे जिव्हा दूसरे – रस के पूर्ण स्वाद लेने लायक शुद्ध हो जावें।

भक्तसयाऽऽर्दो जल पीत कार्श्यमन्दाभिदोषकृत्।
मध्येऽभिदीपनं श्रेष्ठमंते स्थौल्यकफप्रदम्।
समस्थूलककृशाभुक्तमध्यान्तप्रथमाम्बुपाः ॥ 150

भोजन के समय आदि, मध्य और अन्त में जल पीने का फल–भोजन के पहले जल पीने से अग्निदीप्त होती है यह श्रेष्ट है और अन्त में जल पीने से स्थूलता तथा कफ बढाता है और भी कहा गया हे कि–भोजन के मध्य अंत और आदि में जल पीने वाले का शरीर क्रम से सम, स्थूल तथा कृश होता है अर्थात् मध्य में जल पीने वालों का सम, अंत में पीने वाले का स्थूल और आदि में पीने वाले का शरीर कृश होता है।

अत्यम्बुपानान्न विपच्यतेऽन्नं निरम्बुपानाच्च स एव दोष ।
तस्मान्नरो वन्हिविवर्धनाय मुर्हुर्वारि पिबेदभूरि ॥ 150

भोजन के समय आदि, मध्य,अन्त में जल पीने या जल नहीं पीने के दोष एवं–बीच–बीच में थोडा–थोडा जल पीने का विधान–भोजन के समय अधिक जल पीने से भोजन (अन्न) का परिपाक नहीं होता है। इसी प्रकार जल नहीं पीने से भी अन्न का परिपाक–नहीं होता है, इसलिए मनुष्य को उचित है कि जठराग्नि की वृद्धि के लिए

बारम्बार थोडा–थोडा जल पीवें।

तृषितस्तु न चाश्नीयात्क्षुधितो न पिबेज्जलम्।
तृषितस्तु भवेद् गुल्मी क्षुधितस्तु जलोदरी ॥ 152

प्यासे और भूखे मनुष्य को क्रम से भोजन और जलपान का निषेध–प्यासा हुआ मनुष्य भोजन नहीं करे और भूखा मनुष्य जल नहीं पीवें क्योंकि प्यासा हुआ मनुष्य यदि भोजन करता है तो उसे गुल्म रोग होता है और भूखा मनुष्य यदि जल पीता है तो उसे जलोदर रोग होता है। भोजन के पहले शौचादि क्रियाओं से निवृत होकर शुद्ध छने हुए पानी से स्नान करके धुले हुए स्वच्छ ढीले–ढाले सफेद सूती वस्त्र पहन कर स्वच्छ, प्रकाश– युक्त, शांत, क्षुद्र जीव जन्तु से रहित स्थान में पवित्र आसन के ऊपर पूर्व या उत्तर दिशा की और मुँह करके भोजन के लिए बैठना चाहिए। मन को प्रसन्न रखकर के भोजन करना चाहिए । यदि मन अवसाद युक्त है क्रोधादि आवेश से सहित है, चिंता से ग्रस्त है तो किया हुआ भोजन विष के समान हो जायेगा। इससे अपच, वायु रोग, अल्सर, मंदाग्नि आदि अनेक शारीरिक एवं मानसिक रोग हो जायेंगे। पहले थोडा–सा पानी पीकर पहले स्निग्ध (चिकनाईयुक्त) गरीष्ठ घी, दूध आदि से निर्मित वस्तु जैसे हलवा, पूडी, लड्डू, गुलाब जामुन आदि खाद्यों को खाना चाहिए। मध्य–मध्य में थोडा–थोडा पानी धीरे–धीरे पीना चाहिए , पानी को कभी भी गट–गट करके नहीं पीना चाहिए । धीरे–धीरे पीने से कम पानी से भी प्यास बुझ जाती है। मुँह में अनेक पाचक तत्व पानी में मिलकर पेट में जाते हैं जिससे भोजन ठीक से पच जाता है। पहले या अंत में अधिक पानी नहीं पीना चाहिए क्योंकि इससे, अपच, आफरा, पेट दर्द आदि रोग हो जाते हैं। दाँतों की संख्या के अनुसार भोजन को 32 बार चबाना चाहिए। भोजन को इतना चबाना चाहिए कि वह पानी के समान पीने योग्य हो जावे। मध्य–मध्य में नमकीन युक्त भोजन करना चाहिए । परन्तु कभी भी भोजन में अधिक मिर्ची, गरम मसाला, नमक,इमली, खट्टी, चीज, बासी चीज, दुर्गंध युक्त भोजन, ग्लानि युक्त भोजन, झूठन आदि नहीं खाना चाहिए। ठूस–ठूस करके भी भोजन नहीं करना चाहिए। वायु संचारण के लिए पेट का कुछ भाग खाली रखना चाहिए। भोजन में विपरीत रसों का भी सेवन नहीं करना चाहिए। जैसे दूध के साथ खट्टी चीज का सेवन, गरम चीज के साथ ठण्डी चीज का सेवन नहीं करना चाहिए। खरबूजा खाकर पानी नहीं पीना चाहिए । इससे हैजा रोग हो जाता है। घी या घी से निर्मित वस्तु खाने के बाद ठण्डा पानी नहीं पीना चाहिए इससे खाँसी, विभिन्न प्रकार के गले के रोग हो जाते हैं इसी प्रकार फल या फल रस के बाद पानी नहीं पीना चाहिए इससे भी खाँसी जुखाम हो जाती हैं। इसी प्रकार और भी जो विरोधात्मक भोजन है वह भी नहीं करना चाहिए। भोजन के अंत में हाथ, मुँह, पैर ठीक से धोना चाहिए एवं कुल्ला भी ठीक से करना चाहिए । मुँह में भोजन के कण नहीं रहना चाहिए ।

ऋतु के अनुसार आहार– विहार :– भारत एक ग्रीष्म प्रधान देश है। ग्रीष्म प्रधान देश होते भी यहाँ 1) ग्रीष्म 2) वर्षा 3) शीत ऋतु स्पष्ट में अनुभव में आती है तथापि भारत में छः ऋतुओं का प्रभाव है। सूर्य की गतिविधि के कारण वातावरण में भी परिवर्तन होता है। वातावरए का प्रभाव भी शरीर के ऊपर पडता है। इस प्रभाव के कारण शरीर में विभिन्न प्रकार की रासायनिक क्रियाएँ होती है जिसके कारण हमें सर्दी, गर्मी का अनुभव होता है। इतना ही नहीं ग्रीष्म ु तु में अधिक प्यास लगती है तो शीत ऋतु में अधिक भूख लगती है। इसका कारण है गर्मी के उष्ण वातावरण के कारण शरीर के जल के ऋतु सूख जाते हैं, जिसके कारण उष्णता बढती है और प्यास अधिक लगती है शीत ऋतु में शरीरकी रक्षा के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है। शरीर की जठराग्नि भी शीत ऋतु में अधिक प्रज्जवलित होती है। इससे भी हमें अधिक भूख लगती है। इसलिए ऋतु के अनुकूल ही आवश्यकतानुसार विभिन्न ऋतु में विभिन्न प्रकार के भोजन करना चाहिए। जैसे ग्रीष्मऋतु, में ठण्डी चीज, अधिक जल अंश युक्त फल जैसे-कंकडी, खरबूजा, अंगूर, ठंडाई आदि । शीत ऋतु में गर्म भोजन, पौष्टिक भोजन, घी, दूध से निर्मित भोजन करना चाहिए। इस प्रकार ग्रीष्म ऋतु में ठंडा भोजन व शीत ऋतु में गर्म भोजन करना चाहिए। जैनाचार्य सोमदेव ने ऋतु चर्या का वर्णन निम्न प्रकार से किया है -

शिशिरसुरभिधर्मेष्वातापाम्भः शरत्सु क्षितिप जलशरद्धेमन्तकोलेषुचैते ।
कफ पवनहुताशाः संचयं च प्रकोप प्रशमहिम भजंते जन्मभाजां क्रमेण ॥ 349,

यशस्तिकलचम्पू

इस संसार में प्राणियों के कफ,वात और पित्त शिशिरऋतु (माघ फाल्गुन दो) बसंत (चैत्र व बैशाख) और ग्रीष्म ऋतु (ज्येष्ठ व आषाढ) में तथा वर्षा ऋतु (श्रावण व भाद्रपद) और शरद ऋतु (आश्विन व कार्तिक) में व हेमंत ऋतु (अगहन व पोषमाह) में क्रमशः संचय, प्रकोप और शमन को प्राप्त करते हैं। शिशिर ऋतु में प्राणियों का कफ संचय होता है और वसन्त ऋतु में कफ, कुपित होता है तथा ग्रीष्म ऋतु में कफ शांत होता है। इसी प्रकार ग्रीष्म ऋतु में वायु का संचय होता है और वर्षा ऋतु में वायु का प्रकोप होता हैं एवं शरद ऋतु में वायु का शमन हो जाता है एवं वर्षा ऋतु में पित्त संचित होता हैं शरद ऋतु में पित्त कुपित्त होता है और हेमन्त ऋतु में पित्त का शमन होता है।

तदिह शरदि सेव्यं स्वादुतिक्यं कषायं मधुरलवणमम्लं नीरहारकाले ।
नृपवर मधुमासे तीक्ष्णतिक्यं कषायं प्रशमरसमथान्नं ग्रीषमकालागमे च ॥ 352

इस शरद ऋतु (आश्विन व कार्तिक मास) में मिष्ठान्न का सेवन करते हुए तिक्त (कडुआ)या (चिरपरा) व कषायले रस का सेवन करना चाहिए। हेमंत ऋतु (अगहन व पौष माह) में मधुर, खारा व खट्टे रस का सेवन करना चाहिए। इस प्रकार वसन्त ऋतु में

तिक्त, तिक्ष्ण व कषायला रस खाना चाहिए और गीष्म ऋतु में मिष्टान्न सेवन करना चाहिए।

नवमशनभिहाखति क्षीरमाषेक्षुभक्ष्यान्दधि च घृतविकारांस्तैलमप्यत्र पथ्यम् ।

शिशिर ऋतु (माघ व फाल्गुन) में ताजा भोजन दूध, उडद, गन्ना, लडु आदि दही व घी से बने हुए व्यजंन खाने चाहिए। इस ऋतु में तेल भी पथ्य हितकारक है।

यवगोधूमप्रायं रूक्षप्रायं च भोजनं कुर्यात् ।
मदविजृम्भणकाले गुरू शीतं स्वादु च त्याज्यम् ॥ 352

बसंत ऋतु (चैत्र व बैशाख) में भारी (स्वभाव से भारी उडद व पिठि आदि) ठंडी चीजें (शक्कर आदि)और स्वादिष्ट (मिष्टान्न) को छोडते हुए अधिक करके जौ और गेहु का तथा अल्प घृतवाला भोजन करना चाहिए।

कलमसदकभक्तं मुद्रसूपः ससपिर्बिसकिसलपकन्दाः सक्तवः पानकानि ।
क्षितिरमण रसाला नालिकेरीफलाम्भस्तपदिवसनिषेव्यं शर्कराढ्य पयश्च ॥355

ग्रीषम ऋतु (ज्येष्ठ व आषाढ) में सुगन्धि चाँवलों का भात, घी–सहित मूँग की दाल, कमल–नाल का तन्तु, मीठी कोपलें, सतुआ व आम्र खाना चाहिए एवं पानक (शरबत आदि पीने योग्य), नारियल का पानी और शक्कर को डालकर दूध पीना चाहिए।

परिशुष्क लघु स्निग्धमुष्णं प्रावृति भोजनम् ।
पुराणशालिगो धूमयवप्रायं समाचरेत् ॥ 354

वर्षा ऋतु (श्रावण व भादों) में परिशुष्क (भली–भाँती पकाई हुए दूध की मलाई–आदि स्वदिष्ट पदार्थ, हल्का (चाँवलों का भात –आदि) घी आदि सचिक्कण वस्तु गरम एवं अधिक करके पूराना धान, गेहूँ और जौ का बना हुआ भोजन (क्रमशः चावलों का भात, पकी हुई गेहुँ के आटे की रोटी और जौ का भात)खाना चाहिए।

घृतं मुग्द्राः शालिः समिधविकृतिः क्षीरधशयः
पटाकलं मृद्वीकाः फलमिह च धान्याः समुचितम् ।
सिता शीतच्छाया मधुरसवशं कन्दकुपलं
शरत्काले सेव्यं रजनिपदने चन्द्रकिरणाः ॥ 355

शरद ऋतु (आश्विन व कार्तिक) में घी, मूँग, सुगन्धि चावलों का भात, गेहूँ के आटे की लप्सी, खीर, पटोल (व्यंजन विशेष अथवा परवल), मुनक्कादाख, आँवला, शक्कर और मीठी कौपलें खानी चाहिए । इसी प्रकार आम वगैरह वृक्षों की छाया व पूर्ण रात्री में चन्द्र किरणों का सेवन करना चाहिए।

न्यूनाधिकविभागेन रसानृत्तुषु योजयेत् ।
षड्साभ्यवहारस्तु सदा नृणां सुखावहः ॥ 356

बंसन्त आदि छहो ऋतुओं में अल्प व प्रचुर मात्रा का विभाग करके रस–भक्षण की योजना करनी चाहिए। उदाहरणार्थ–ग्रीष्म ऋतु में उष्णरस (सोंठ मिर्च व पीपल आदि) अल्पमात्रा में और शीतरस (छाछ) अधिक मात्रा में खाना चाहिए और शीत ऋतु में शीत रस अल्प और उष्णरस अधिक खाना चाहिए इत्यादि। इसके विरूद्ध सर्वथा छोडना चाहिए । छहों रसो वाला भोजन मनुष्यों को सदा सुखदायक है। अनेकानेक रोगों से बचाव (एक दूसरें के विरूद्ध खान–पान) कुछ खाने पीने की वस्तुएँ अकेली तो अमृत तुल्य गुणकारी होती है किंतु अन्य वस्तु के साथ मिल जाने पर जहर का काम करती हैं कुछ द्रव्य या वस्तुएँ परस्पर गुण–विरूद्ध, कुछ द्रव्य संयोग–विरूद्ध, कुछ द्रव्य–संस्कार विरूद्ध कुछ द्रव्य देश काल और मात्रा आदि से विरूद्ध होते हैं।

(क) हानिकारक या अहितकारी संयोग –

1) **दूध के साथ –** दही, नमक, इमली, खरबूजा, बेलफल, नारियल, तोरई गुड या गुड का हलवा तिलकुट, तेल, कुल्थी, सत्तु, खट्टे फल, खटाई आदि नहीं खाना चाहिए ।

2) **दही के साथ –** खीर, दूध, पनीर, गर्म खाना या गर्म वस्तु, केला या केला का शाक, खरबूजा आदि नहीं खाना चाहिए ।

(ख) हितकारी संयोग - खाने-पीने की कई वस्तुओं के संयोग जहाँ हानिकारक है, वहाँ कई संयोग उत्तम हैं। इनकी जानकारी रखना भी आवश्यक है। जैसे - खरबूजा के साथ शक्कर, आम के साथ दूध, केले के साथ दूध, खजूर के साथ दूध, चावलों के साथ दही, चावलों के बाद नारियल की गिरी, इमली के साथ गुड अमरूदके बाद सौफ, तरबूज के बाद गुड, मकई के साथ मट्ठा, बथुआ और दही का रायता, अनाज या दाल के साथ दूध और दही खाना चाहिए।

1) **खीर के साथ -** खिचडी,खट्ठा, सत्तु आदि

साधुओं के असवस्थ्य होने के कारण एवं निवारण

प्र.1 वर्तमान काल में अच्छे–अच्छे युवा साधु–साधवियों को अधिक अन्तराय क्यों आता है और वे अस्वस्थ भी क्यों रहते हैं ?

उ.– एक कार्य के अनेक कारक और कारण होते हैं। वर्तमान के अच्छे–अच्छे युवा साधु के अन्तराय एवं अस्वस्थ होने के भी अनेक कारण हैं। यथा–

1) अस्वस्थ होने के मूलकारण कर्म सिद्धान्तानुसार पूर्वोपार्जित असातावेदनीय कर्म का उदय है। 2) अंतराय आने का मूल कारण अंतराय कर्म का उदय है। 3) यह भी संभव है कि त्याग, तपस्या, साधना के कारण पाप कर्म की शीघ्र उदीरणा होती हो जिसके कारण अंतराय एवं अस्वस्थ होना संभव है। जैसा कि गंदे कपडे में अच्छा साबुन लगाने से गंदगी

शीघ्र निकलती है। 4) युवा साधु की दृष्टि–शक्ति अच्छी होने के कारण छोटी–छोटी अंतराय की वस्तु भी दिखाई देती है, जिससे उनके अंतराय ज्यादा होते हैं। 5)अधिक अंतराय के कारण पर्याप्त भोजन एवं पानी नहीं मिलनें के कारण पर्याप्त कैलोरी नहीं मिल पाती है। इससे भी शरीर दुर्बल, प्रतिरोधक–शक्ति से हीन हो जाता है। पानी की कमी से शरीर में गरमी (पित्त)बढ जाती है और जिससे वमन (वांति), पित्त विकार, अल्सर, हैजा, जंभाई, चक्कर आना, पेटदर्द, ओंठ सूखना, आँखें जलना आदि रोग हो जाते हैं। 6) युवावस्था में शरीर की चर्या पाचन की क्रिया अधिक होती है, जिससे भूख अधिक होती है परंतु साधु एक बार ही भोजन, पानी ग्रहण करते हैं और उसमें भी अनेक उपवास एवं अंतराय होते रहते हैं। इतना ही नहीं कभी–कभी तो स्व–प्रकृति एवं भूख प्यास के अनुसार उन्हें कभी भोजन मिलता है तो और कभी मिलता भी नहीं है। कुछ साधु तो स्व–द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, शक्ति, आयु, कर्म को बिना देखे दूसरों की देखा–देखी से या रूढी से दूध, घी, शक्कर आदि रस, फल, सब्जी आदि का त्याग करतें हैं, उपवास करते हैं और कभी–कभी श्रावक भी बिना विवेक से सूखा, रूखा, अधजला, अधपका, बेरस, यद्वातद्वा भोजन बिना क्रम बिना भावना से अंजली में डाल देते हैं। वह भी कभी पूर्ण उदर तो कभी अपूर्ण उदर। इससे भी वात, पित्त, कफ कुपित होकर अनेक रोग पैदा कर लेते हैं विशेष जिज्ञासु मेरे द्वारा लिखित 'धर्म एवं स्वास्थ्य विज्ञान I, II, (आदर्श विचार, विहार एवं उपवास का धार्मिक एवं वैज्ञानिक विस्लेषण) ग्रंथ का भी अध्यन करें।

7) अधिकांश नवयुवक साधु–साध्वी अधिक अध्ययन–अध्यापन, लेखन, प्रवचन, करते हैं। इससे मानसिक एवं शरीरिक श्रम भी बहुत होता है। उसके योग्य भोजन, वसतिका, औषधि की व्यवस्था नहीं हो पाती है जिससे श्रम दूर नहीं होता है और क्षतिपूति भी नहीं हो पाती है।

8) कम आयु वाले साधुओं के शरीर भी कोमल रहते हैं, विकासोन्मुख रहते हैं जिससे भोजन, पानी, वातावरण से शीघ्र प्रभावित हो जाते हैं।

9) कुछ नये साधु भी दीर्घ अनुभव के बिना भावुकता से 'देखा–देखी करके तप-त्याग करते हैं जिसके कारण उन्हें देखा-देखी साधे योग, छीजे काया वाढे रोग' हो जाता है वे **''नया मुल्ला अल्ला–अल्ला ज्यादा चिल्लाते हैं''** को भी चरितार्थ करते हैं।

10) जो साधु स्वास्थ्य के नियमों का पालन नहीं करते हैं, आयु, प्रकृति, ऋतु के अनुकूल आहार–विहार नहीं करतें हैं उन्हें भी अधिक रोग होने की संभावना रहती है। जैसे कि विपरीत भोजन, गंदे वातावरण में रहना, गंदे स्थान में मल-मूत्र त्याग करना। मल मूत्र त्याग करने के लिए प्रातः काल में भी योग्य वातारवरण रहते हुए भी दूर नहीं जाना। दूर मल–त्याग से तो एक प्रतिष्ठापन समिति का पालन होता है और द्वितीयतः प्रातः

कालीन भ्रमण संबंधी लाभ यथा–स्वच्छ प्राणवायु का मिलना, पूर्ण शरीर का व्यायाम होना, शरीर एवं मन में स्फूर्ति आना, हाजमा–शक्ति बढना, प्राकृतिक एक्यूप्रेशर होना आदि।

11) केशलोंच करना, गर्मी में नंगे पैर तथा नंगे शरीर विहार करना वह भी उपवास, अन्तराय अपर्याप्त भोजन पानी से। इसी प्रकार सर्दी में भी। 12) रोग के कारण यदि कोई साधु उत्सर्ग एवं अपवाद को दृष्टि में रखकर, अशक्यानुष्ठान में कुछ औषधि, पथ्य–भोजन सेवन करता है और प्रायश्चित भी करता है तथापि उसकी निंदा दूसरे करते हैं जिससे उपचार भी नहीं हो पाता है।

13) कुछ संघ में साधुओं की सेवा, चिकित्सा भी व्यवस्थित नहीं होती है, उनसे अक्रम से रसादि त्याग कराते हैं, उपवास दिलाते है जिससे भी साधु अस्वस्थ होते हैं।

14) साधु नग्न शरीर रहते हैं, जो मच्छरदानी आदि का प्रयोग नहीं करते हैं, इसलिए मच्छरादि रोग कारक विषाक्त कीट पतंग काटते हैं जिससे रोग होने की संभावना अधिक रहती है।

15) साधु आहार के समय ही शुद्ध आयुर्वेदिक औषधि का भक्षण कर सकते हैं किन्तु अन्य समय में नहीं। औषधियों को आहार में जो 12 घंटा पहले बाद या में लेने का विधान होता है तथापि साधु को आहार के समय में ही लेना पडता है। जिससे औषधि का प्रभाव भी सही नहीं पडता है। कभी-कभी तो कुछ विपरीत भी पड सकता है।

16) अभी ही नही चतुर्थकाल में भी कुछ महामुनिश्वरों को भी रोग हो जाता था। जैसा कि मुनि सनतकुमार (गृहास्थावस्था में चक्रवर्ति राजा) को कुष्ट रोग,मुनि आर्यनंदी को भष्मक रोग तथा पंचमकाल के प्रारंभ काल में होने वाले आचार्य समन्तभद्र को भी भस्मक रोग हो गया था। क्योंकि कर्म का उदय हर काल में रहता ही है।

17)**''श्रेयांसिबहुविध्नानि भवत्यपि महत्यपि''** अर्थात् महान् व्यक्तियों के अच्छे कार्य में बहुत विध्न आते रहते हैं वे उन विध्नों के साथ संघर्ष करके स्वयं में और भी सहिष्णुता, गभीरता, निर्मोहिता, सेवा वैराग्यता, स्थित प्रज्ञतादि गुणों की वृद्धि करते हैं।

परमस्वास्थ्यस्वरूपोऽहम्।	-	मैं परम स्वास्थ्य स्वरूप हूँ।
परम भेदज्ञानस्वरूपोऽहम्।	-	मैं परमभेदज्ञान स्वरूप हूँ।
परममंगलस्वरूपोऽहम्।	-	मैं परममंगलस्वरूप हूँ।

साधुओं के योग्य एवं अयोग्य विहार

प्रश्न – साधु एक स्थान में अधिक समय क्यों नहीं निवास करते हैं ?

उत्तर – आगम में कहा है कि साधु एक स्थान में अधिकनिवास करेंगें तो वे सुखाभिलाषी, प्रमादी एवं निवास स्थान तथा वहाँ रहने वाले सेवा करने वाले, आहार देने वालों के प्रति रागी हो जायेंगे। विभिन्न स्थानों का ज्ञान नहीं हो पायेगा, विभिन्न संघों का ज्ञान नहीं हो पायेगा उनके अनुभव से वंचित हो जायेंगे। अनियत विहार से उपर्युक्त दोषों के विपरीत गुण उत्पन्न होंगे। अनियत विहार निवास के गुण का वर्णन आगम में निम्न प्रकार से किया है। उस दर्शन विशुद्धि, स्थिति करण भावना, अतिशय आदि में निपुणता और क्षेत्र का अन्वेषण ये अनियत स्थान में बसने से होते हैं। (भगवती आराधना पृ. 181, गाथा-144 से 155 तक) उन जिन देवों के जन्म-स्थान, दीक्षास्थान, केवलज्ञान की उत्पत्ति का स्थान और समवशरण के चिन्ह, मानस्तम्भ का स्थान, निषीधिका स्थान दर्शन करने से सम्यक् रूप से निर्मल सम्यग्दर्शन होता है।

सम्यक् आचार और अनशन आदि तप से युक्त विशुद्ध लेश्या वाले मुनियों का अनियतवास सम्यक् आचार वाले योग के धारी सम्यक् लेश्या वाले और संसार से भीत साधुओं में संसार से भय उत्पन्न करता है। सम्यक्चारित्र, सम्यक्तप और शुद्ध लेश्या में वर्तमान अनियत विहारी साधु को देखकर सभी सम्यक्चारित्रवाले, सम्यक् तप करने वाले और शुद्ध लेश्या वाले यतिगण संसार से अत्यन्त भीत होते हैं। वे मानते हैं कि हम संसार से वैसे भीत नहीं हैं जैसे यह भगवान् मुनिराज है अतएव हमारा चारित्र और तप सदोष है अर्थात् सम्यक् आचार, तप ओर विशुद्ध लेश्या वाले अनियत विहार साधु को देखकर अन्य मुनि जो सम्यक् आचारवान् हैं, तपस्वी हैं, विशुद्ध लेश्या वाले हैं वे भी प्रभावित होकर और भी अधिक आचारण तप और लेश्या विशुद्धि में बढने के लिए प्रयत्नशील होते हैं यह अनियतवास से लाभ होता है। दर्शनविशुद्धि का लाभ तो अपना उपकार होता है। जो उत्तम क्षमा आदि धर्म का पालक है और पाप से डरता है, सूत्र और उस के अर्थ में निपुण है शठता से रहित है, ऐसा सदा देशान्तर में, विहार करने वाला साधु दूसरों में विराग उत्पन्न करता है। संविग्नतर, प्रिय धर्मतर और अवेद्य भीरूतर साधु को देखकर विहार करने वाला साधु स्वयं भी प्रिय स्थिर धर्मतर, संविग्नतर और अवद्यभीरू होता है।

अनेक देशों में विहार करने से चर्या भूख–प्यास, शीत और उष्ण का दुःख संक्लेश रहित भाव से सहना होता हैं; वसति में भी ममत्व से रहित रहना होता है । यहाँ चर्या शब्द से चर्या से होने वाले दुःख का ग्रहण किया गया हैं। जूता अथवा अन्य किसी वस्तु से अपने पैरो की रक्षा नहीं करने वाले साधु के चलते हुए तीक्ष्ण कंकड, पत्थर, काँटे आदि से पैर छिद जाते हैं। अथवा गर्म धूलि से पैर झुलस जाते हैं। उसके दुःख की

बिना संक्लेश के सहना चर्या भावना है।

अनजान देश में जहाँ पूर्व में कभी साधुओं का जाना नहीं हुआ और अनाज का संग्रह भी कम है, वहाँ योग्य भिक्षा के न मिलने से उत्पन्न हुआ भूख का दुःख सहना होता है। बहुत समय तक एक स्थान पर बसने से मनुष्य परिचित होने से श्रावक उदारता वश भिक्षा देते हैं, इसलिए भिक्षा में बडा श्रम नहीं होता। शीत–उष्ण से शीत स्पर्श और उष्ण स्पर्श से होने वाला दुःख यहाँ लिया है। उसका अनुभव अर्थात् संक्लेश रहित भाव पूर्वक सहना होता है तथा रहने के लिए जो वसतिका प्राप्त होती है उसमें भी ' यह मेरी है' ऐसाभाव नहीं रहता। ये सब विहार करने वाले मुनियों को सहना होता है। देशान्तर में जाने से अनेक देशों के सम्बंध में कुशल हो जाता है। अनेक देशों में पाये जाने वाले शास्त्रों के शब्दार्थ के विषय में कुशल होता है। आचार्यों के दर्शन से ही सूत्र और अर्थ का स्थितिकरण और अतिशयित अर्थों की उपलब्धि होती है। इसलिए आचार्यों की सेवा करनी चाहिए। बहुत प्रकार के आचार्यों के गण में प्रवेश करने से वसतिका और दाता के घर से निकलने और प्रवेश करने आदि में जो उनका सम्यक् आचरण है उसमें प्रवीण होता है। प्राणों के कण्ठ में आ जाने पर भी साधु को आगम का अभ्यास अवश्य करना चाहिए। जैसे वह सूत्र का और अर्थ का समाचारी का अभ्यास करता है। उसी प्रकार उसे आगम का अभ्यास करना चाहिए। जिस क्षेत्र में संयमी जन का प्रासुक विहार और सुलभ आहार हो, वह क्षेत्र देशान्तर में भ्रमण करने वाले को सल्लेखना के योग्य जानता है।

वसतियों और उपकरणों में, ग्राम में, नगर में, संघ में, और श्रावकजन में सर्वत्र यह मेरा है, इस प्रकार संकल्प से रहित साधु संक्षेप से अनियत विहार होता है। वसति उपकरण, ग्राम, नगर, गण, और श्रावकजन में सर्वत्र अप्रतिबद्ध है, यह वसति आदि मेरी है और में इसका स्वामी हूँ, इस प्रकार के संक्लेश से रहित है उसे संक्षेप में अनियत विहार जानना, इस प्रकार अनियत बिहार समाप्त हुआ ।

उवसतादीणमणा उवक्खासीना हवंति मज्झत्था।
णिठुदा अलोलमसठा अबिहिग्या कामभोगेषु ॥ (806) मूलाचार

वे उपशान्त भावी दीन मन से रहित उपेक्षा स्वभाव वाले जितेन्द्रिय, निर्लोभी, मूर्खता रहित और काम भोगों में विस्मय रहित होते हैं । आगम में यह भी निर्देश है कि ग्राम में (1–2) दिन निवास करें और शहर में अधिक (4–5) दिन निवास करें। उपर्युक्त कथन बहुत ही सत्य तथ्य पूर्ण मनोवैज्ञानिक, अनुभव परक है। पहले उपर्युक्त विषय सब सत्य होंगे, अभी भी अधिकांश विषय सत्य हैं परन्तु कुछ नवीन विषय भी अनुभव में आ रहे हैं।

1) जैसे की ऊपर कहा गया कि जिनदेव के जन्मस्थानादि के दर्शन से निर्मल सम्यक्दर्शन

होता है। परन्तु वर्तमान में अधिकांश तीर्थक्षेत्र का वातावरण रागद्वेष, कलह, फूट, पंथवाद, दूषित राजनीति से प्रदूषित है। वहाँ धर्मात्मा से भी धनात्मा को अधिक महत्व मिलता है। साधुओं के आहार, विहार, निवास, ध्यान, अध्ययन आदि की व्यवस्था समुचित नहीं होती है। तीर्थक्षेत्र में साधुओं को और भीअधिक संक्लेश होता है।

2) विहार में साधु परस्पर मिलते हैं। इससे ज्ञान, वैराग्य अनुभवादि का आदान-प्रदान होता है, परंतु प्रायोगिक रूप से अनुभव में आता है कि अनेक साधु परस्पर मिलते नहीं हैं। कदाचित् मिलने पर आगमयुक्त वात्सल्यभाव से मिलते नहीं हैं, परस्पर नमोऽस्तु, प्रतिनमोऽस्तु नहीं करते हैं अपितु एक दूसरों की वास्तविक या अवास्तविक भी गलती को उछालकर निंदा, विवाद, कलह करते हैं। जिससे और भी अधिक अप्रभावना होती है।

3) ग्राम में कम दिन एवं शहर में अधिक दिन रहने की परिस्थिति अभी नहीं है। शायद प्राचीन काल में प्रत्येक ग्राम, नगरादि में जैन श्रावक अधिक मात्रा में होते थे और उनका अनुपात शहर में ग्राम से अधिक होता होगा। प्राचीन काल में शहर में आधुनिक औधोगिकरण नहीं होने के कारण वर्तमान के जैसे प्रदूषण नहीं होना स्वाभाविक था। इसलिए ग्राम से भी शहर में अधिक रहने का निर्देश है। इसके साथ–साथ प्राचीन काल में सदाचार सम्पन्न ब्राह्मण,क्षत्रिय, वैश्य, जैन, जैनेतर भी आहार वसतिकादि देकर साधु सेवा करते थे परन्तु वर्तमान में उपर्युक्त परिस्थिति में महान् अन्तर है। कुछ ग्राम एवं नगर में जैन श्रावक एक भी नहीं रहते हैं। कुछ स्वयं को श्रेष्ट जैन कहने वाले, साधुओं की सेवा करने की बात तो दूर रहे उन्हें गाली देते हैं कष्ट देते हैं। कुछ शहरों में जैनी तो रहते हैं और धार्मिक भी होते हैं गुरूवों की सेवा भी करते हैं परन्तु इतनी दूर–दूर रहते हैं और अपने गृह कार्य में इतने व्यस्त रहते हैं कि रोज साधुओं के दर्शन तक नहीं कर पातें हैं, आहारादि देना तो दूर रहे। वर्तमान में शहर में तीव्रता से जनसंख्या की वृद्धि होने से साधुओं के लिए आवास, शौच, मूत्र–त्याग आदि की भी व्यवस्था नहीं होती है। प्रदूषण के कारण साधुओं को शुद्ध भोजन, पानी एवं प्राणवायु तक नहीं मिलती है। इसके कारण साधुओं का स्वास्थ्य खराब हो जाता है, ध्यान, अध्ययन, साधना भी व्यवस्थित नहीं होती है। इसलिए वर्तमान युग में शहर में रहना साधुओं के लिए योग्य नहीं है। अभी भी राजस्थान, कर्नाटक, मध्यप्रदेशादि में ग्रामांचल में जैनियों की सख्या अच्छी है, भावना भक्ति है और व्यवस्था भी होती है। इसलिए ऐसे स्थानों में साधुओं को विहार करना चाहिए। इसमें भी वहाँ के जैनियों की संख्या, श्रद्धा, सेवा, व्यवस्था को देखकर निवास करना चाहिए। जिस ग्राम में उपर्युक्त व्यवस्था है वहाँ चातुर्मास में तो 4–5 महिने निवास कर सकते हैं और अन्य समय में ऋतुयोग के अुसार एक–एक महिना निवास कर सकते हैं। यथा–

ऋतुषु षट्सु एकैकमैव मासमेकत्र वसतिरन्यदा।
विद्यरवि इत्यमं नवमः स्थितिक्लपः ॥ 423 भग. आरा.

छह ऋतुओं में एक–एक महिना ही एक स्थान पर रहना और अन्य समय में विहार करना नवम स्थिति विकल्प हैं यह नियम भी तथ्य पूर्ण है। यदि ऋतु प्रकोप के समय में विहार किया जायेगा तो साधुओं को अनेक शारीरिक पीडा के साथ–साथ असंयम की संभावना रहती है। जैसा कि अधिक शीत (सर्दी) में विहार करने से जुकाम, खाँसी, निमोनियादि रोग होने की संभावना रहती है। इस समय में घना कोहरा होने से ईर्यापथशुद्धि भी नहीं हो सकती है। इसी प्रकार से ग्रीष्म ऋतु में विहार करने से शरीर के जल कण सूख जाते हैं, गरमी एवं पित्त बढ जाता है, गला, मुँह सूख जाते हैं, जिससे पित्तज्वर,लू–लगना, वमन (वांति) हैजा, अल्सर, चक्कर आना, पीलिया आदि भयंकर रोग हो जाते हैं। इसके साथ–साथ जहाँ ऋतुयोग होता है वहाँ प्रवचन, शिविर, कक्षा, आहारदान आदि से प्रभावना होती है। परन्तु 1–2 दिन निवास करने से उपर्युक्त अच्छे काम नहीं हो पाते हैं। साधुओं की सेवा, आहारदान, व्यवस्था भी उत्तम रूप से नहीं हो पाती है। दो तीन दिन निवास के अनन्तर विहार करके पुनः कुछ दिन के बाद शीघ्र आने से भी वहाँ के लोगों में भावना जागृत नहीं होती है। इस ही प्रकार अधिक काल तक एक ही स्थान में रहने से भी भावना–व्यवस्था मंद पड जाती है। शास्त्र में कहा गया है कि एक स्थान में अधिक दिन रहने से राग बढ जाता है, परन्तु अनुभव में यह भी आ रहा है कि कुछ में तो राग बढता है परन्तु अधिकांश में द्वेष बढता है; साधुओं के प्रति अनादर, अवज्ञा भी बढती है। एक कवि ने कहा भी है-'अति परिचित से होता है अनीति अनादर भाई, मलयागिरि की भीलनी चन्दन देत जलाय॥' '**नये भवति खलु प्रीतिः**'' अर्थात नवीन में प्रीति होती है। इसलिए साधुओं को न एक स्थान में अधिक समय रहना चाहिए, न कम समय रहकर पुनः–पुनः वहाँ आना चाहिए। जहाँ भावना, भक्ति,व्यवस्था आदि है वहाँ चतुर्मास में 4–5 महिना रहना चाहिए और ऋतु –योग में एक–एक महिना रूकना चाहिए और शीत ऋतु में विशेषतः अनुकूल वातावरण में विहार करना चाहिए।

साधुओं के द्वारा साधुओं की सेवा

प्रश्न – क्या एक साधु अन्य साधु की वैयावृत्ति के लिए आहार, औषधि, वसतिका आदि की व्यवस्था करवा सकते हैं?

उत्तर– वैयावृत्ति के लिए एक साधु अन्य साधु की आहारादि की व्यवस्था करवा सकते हैं। शास्त्रों में कहा गया हैं कि समाधिस्थ संस्तरारूढ क्षपक की सेवा के लिए निर्ग्रन्थ मुनि 48 (अडतालिस) निर्यापक होते हैं, नहीं तो कम–कम से 2 निर्यापक तो होना ही

चाहिए। ये निर्यापक समाधिस्थ मुनि की आहार, संस्तरादि की व्यवस्था करते हैं। भगवती आराधना जैसे प्राचीन मुनि की समाधि संबंधी आगम ग्रंथ में इसका सविस्तार वर्णन निम्न प्रकार से पाया जाता है। यथा –

निर्यापक, प्रिय धर्म, संवेगरूप, पापभीरू, धीर, छंदूण् (क्षपक के कहे बिना अंगचेष्ठा से अभिप्राय जानना) प्रतीतवान, उचित प्रत्याख्यान (त्याग) के क्रम का ज्ञाता होता है। (गाथा 646)

कल्पाकल्प (भोजनपानदि की योग्यता) में कुशल चित्त समाधान में उद्यमी, रहस्य, श्रुत का ज्ञाता, जिनेन्द्रागम गुरू से अच्छी तरह अनुभव किया हो, इस प्रकार 48 मुनि निर्यापक गुण के धारक क्षपक के उपकार में सावधान होते है।

आमर्शन (हाथ, पैर, कमर दबाना) परिमर्शन (संपूर्ण-अंग दबाना) चक्रमण (क्षपक को चलने फिरने में सहायता देना) शयन, बैठाना, खडा करना, करवट बदलवाना, हाँथ पाँव पसारना, संकुचित करना इत्यादि उपकार परिचारक मुनि करते हैं। (गा. 648)

क्षपक के शरीर क्रिया में जिस प्रकार संयम विनाश को प्राप्त नहीं हो उसी प्रकार क्रम से संयम में नित्य उद्यम युक्त और क्षपक को सावधान करने के इच्छुक इस प्रकार चार मुनिराज सेवा करते हुए टहल करने के लिए तत्पर रहते हैं। (गा. 649)

चार मुनि ग्लानि का त्यागकर उद्गमादि दोष रहित आहार के पदार्थ क्षपक के लिए लाते हैं, कितने दिन तक हमको लाना पडेगा ऐसा विचार वे मन में नहीं करते हैं। क्षपक जो पदार्थ चाहता है उनको वे लाते हैं। क्षपक भी जिनसे भूख और प्यास शांत होगी ऐसे ही पदार्थ चाहता है। लौल्य से आहार की इच्छा वह नहीं करता है। क्षपक के वात्त, पित्त और श्लेष्म को न बढाने वाले पदार्थ ही परिचारक मुनि लाते हैं। परिचारक मुनियों के हृदय में माया भाव नहीं रहता है अतः वे अयोग्य आहार को योग्य बताते नहीं। मोहनीय कर्म और अंतराय कर्म का क्षयोपशम जिनको प्राप्त हुआ है ऐसे ही परिचारक आहार लाने के कार्य में आचार्य के द्वारा भेजे जाते हैं। जिनको भिक्षालब्धि नहीं है ऐसे मुनि इस कार्य में नियुक्त करने से क्षपक को क्लेश होगा। (गा. 662–663)

चार मुनि आचार्य के द्वारा नियुक्त होकर क्षपक के लिए योग्य पीने के पदार्थ लाते हैं। (बाकी संम्पूर्ण अभिप्राय ऊपर की गाथा के समान ही समझना चाहिए।)

उपर्युक्त मुनियों के द्वारा लाये हुए आहार के और पान के पदार्थों का चार मुनि प्रमाद छोडकर रक्षण करते हैं। उन पदार्थों में त्रस जीवों का प्रवेश न हो और कोई गिरा न दे ऐसी संभाल वे करते है क्योंकि क्षपक का जिस प्रकार से चित्त रत्नत्रय में एकाग्र रहे वैसा ही वे प्रयत्न करते हैं। (गा.664)

चार मुनि क्षपक का मल मूत्र निकालने का कार्य करते हैं तथा सूर्य के उदय

काल में और अस्त काल के समय में वसतिका उपकरण और संस्तर इनको शुद्ध करते हैं। स्वच्छ करते हैं। (गा. 665)

चार परिचारक मुनि क्षपक की वसतिका के दरवाजे का प्रयत्न से रक्षण करते हैं अर्थात् असंयमी और शिक्षकों को वे अंदर आने को मना करते हैं और चार मुनि समोशरण के द्वार का प्रयत्न से रक्षण करते हैं। धर्मोपदेश देने के मंडप के द्वार पर चार मुनि रक्षण के लिए बैठते हैं। (गा. 689)

निद्रा को जीतने की इच्छा रखने वाले चार मुनि क्षपक के पास जागरण करते रहते हैं। और जहाँ क्षपक और संघ ठहर जाता है उस देश की शुभाशुभ वार्ता का निरिक्षण करने वाले चार मुनि आचार्यो के द्वारा नियुक्त किये जाते हैं।

इस प्रकार ये माहात्म्यवान् 48 मुनि उत्कृष्ट से क्षपक को समाधि में एकाग्र करते हैं और संसार समुद्र से प्रयाण करने वाले उस क्षपक को समाधि के कार्य में अर्थात् रत्नत्रय में प्रयुक्त करते हैं। (गा. 670)

जिनका गुण वर्णन ऊपर किया है ऐसे ही मुनि निर्यापक होते हैं ऐसा न समझना चाहिए। परन्तु भरत और ऐरावत क्षेत्र में विचित्र काल का परिवर्तन हुआ करता है। इसलिए कालानुसार प्राणियों के गुणों में भी जघन्यता, मध्यमता और उत्कृष्टता आती है। जिस समय जैसे शोभन गुणों का संभव रहता हो उस समय वैसे ही गुणधारक मुनि निर्यापक परिचारक समझकर ग्रहण करना चाहिए।

भरत क्षेत्र में और ऐरावत क्षेत्र में समस्त देशों में जो जैसा काल प्रवर्तता है उसके अनुसार निर्यापक समझना चाहिए। अर्थात् मध्यम काल के प्रारम्भ में (44) चौवालीस निर्यापक होते हैं। (गा. 671)

इस प्रकार देशकालानुसार गुणों का यत्न से देखकर इस संक्लेश परिणाम युक्त काल में चार–चार निर्यापक कम–कम करना चाहिए। वे तब तक कम करना जब वे चार रहेंगे, अर्थात् क्षपक के समाधिमरण साधने के लिए केवल देश, काल, गुण की अपेक्षा से यदि चार ही निर्यापक हो तो भी समाधिमरण रूप कार्य की समाप्ति होती है। अतिशय संक्लिष्ट काल में दो निर्यापक भी क्षपक के इस कार्य को साध सकते हैं। परन्तु जिनागम में एक निर्यापक का किसी भी काल में उल्लेख नहीं किया है।

मूलाचार में भी गुरू के लिए शिष्य का क्या-क्या कर्तव्य है। क्या विनय है ? उसका वर्णन नीचे कर रहे हैं–

देव और गुरू के सामने नीचे खडा होना (विनय से एक तरफ खडे होना), गुरू के साथ चलते समय उनके बाँये चलना या उनकपीछे चलना, गुरू के नीचे आसन रखना अथवा पीठ पाटा आदि आसन को छोड देना। गुरू को आसन आदि देना, उनके के

लिए आसन देकर उन्हें विराजने के लिए निवेदन करना। उन्हें पुस्तक, कमडण्ल, पिच्छी का आदि उपकरण देना, वसतिका या पर्वत की गुफा आदि प्रासुक स्थान अन्वेषण करके गुरू को उसमें ठहरने के लिए निवेदन करना। अथवा नीचे स्थान का अर्थ यह है कि गुरू सहधर्मी मुनि अथवा अन्य कोई व्याधि ग्रसित मुनि के प्रति हाथ–पैर संकुचित करके बैठना। तार्त्पय यही है कि प्रत्येक प्रवृत्ति में विनम्रता रखना। (गा.374)

गुरू के शरीर बल के योग्य शरीर का मर्दन करना, अथवा उनके शरीर में तेल मालिश करना, उष्णकाल में शीतक्रिया करना, शीतकाल में उष्ण क्रिया करना, और वर्षाकाल में उस ऋतु के योग्य क्रिया करना।अथवा गुरू की सेवा आदि ऋतु के अनुकूल और उनके प्रकृति के अनुकूल करना, उनके आदेश का पालन करना, उनके लिए संस्तर अर्थात् चटाई, घास, पाटा आदि लगाना, उनके पुस्तक कमडण्ल आदि उपकरणों को ठीक तरह से पिच्छिका से प्रतिलेखन करके उन्हें देना।

इसी प्रकार से अन्य और भी जो उपकार गुरू या सर्व साधु वर्ग का शरीर के द्वारा योग्यता के अनुसार किया जाता है वह सब कायिक विनय है, क्योंकि वह काय के आश्रित है। **अभ्युत्थान–** गुरूओं को सामने आते हुए देखकर उठकर खडे हो जाना। **सन्नति**–शिर से प्रणाम करना। **आसनदान**–पीठ, काष्ठासन, पाटा आदि देना । **अनुप्रदान**–पुस्तक, पिच्छिका आदि उपकरण आदि देना, प्रतिरूप क्रिया कर्म यथायोग्य–श्रुत भक्ति आदि पूर्वक कायोत्सर्ग करके वंदना करना, अथवा गुरूओं के शरीर की प्रकृति के अनुरूप काल के अनुरूप और भाव के अनुरूप सेवा सुश्रुषा आदि क्रियाएँ करना, जैसे कि शीतकाल में उष्णकारी और उष्णकाल में शीतकारी आदि परिचर्या करना, अस्वस्थ अवस्था में उनके मल–मूत्रादि को दूर करना आदि। आसन त्याग– गुरू के सामने उच्चस्थान पर नहीं बैठना अनुव्रजन उनके प्रस्थान करने पर साथ–साथ कुछ दूर तक जाना। इस प्रकार से 1)अभ्युत्थान 2)सन्नति, 3)आसनदान, 4)अनुप्रदान, 5) प्रतिरूपक्रिया कर्म 6) आसन त्याग और 7) अनुव्रजन ये सात प्रकार कायिक विनय के होते हैं।

गुणाधिये उवज्झाय तवरसि सिरसेय दुब्वले।
साहुगण कुल संघे समणुण्णे य चापदि॥

आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, प्रवर्तक और गणधर ये पांच हैं। नव दीक्षित को बाल कहते हैं। वृद्ध से वयोवृद्ध, तपोवृद्ध और गुणों से वृद्ध लिए गये हैं। सात पुरूष की परम्परा को अर्थात् सात पीढी को गच्छ कहते हैं। इन आचार्य आदि पाँच प्रकार के साधुओं की तथा बाल, वृद्ध से व्याप्त ऐसे संघ की आगम में कथित प्रकार से सर्वशक्ति से वैयावृत्य करना चाहिए। अर्थात् अपनी सर्व सामर्थ्य से उपकरण, आहार, औषधि पुस्तक आदि से इनका उपकार करना चाहिए।

सेज्जोग्गासणिसेज्जो तहोवहिपडिलेहणा हि उवग्गहिदे।
आहारोसहवायण विकिंचणं वंदणादीहिं॥ 391 मूलाचार

शय्यावकाशन मुनियों को वसतिका दान देना, निषधा– मुनियों को आसन आदि–आदि देना, उपाधि–कमडण्ल आदि उपकरण देना, प्रतिलेखन–पिच्छिका आदि देना, इन कार्यों से मुनियों का उपकार करना चाहिए, अथवा इनके द्वारा उपकार करके उन्हेंस्वीकार करना आहारचर्या द्वारा, सोंठ, पीपल आदि औषधि द्वारा शास्त्र व्याख्यान द्वारा, कदाचित् मल–मूत्र आदि च्युत होने पर उसे दूर करने के द्वारा और वंदना आदि के द्वारा वैयावृति करनी चाहिए। तात्पर्य यह है कि वसतिका दान, आसनदान, उपकरणदान, प्रतिलेखन आदि के द्वारा पूर्वोक्त साधुओं का उपकार करना चाहिए। इन उपकारों से वे अपने किये जाते हैं। उपर्युक्त विनय, वैयावृति करने का फल निम्नोक्त है।

विणएण विप्पहीणस्स हवदि सिक्खा णिरत्थिया सव्वा।
विणओ सिक्खाए फलं विणयफलं सव्वकल्लाणं॥

विनय से हीन हुए मनुष्य की संपूर्ण शिक्षा निरर्थक है; विनय शिक्षा का फल है और विनय का फल सर्व कल्याण है।

विणओ मोक्खद्दारं विणयादो संजमो तवो णाणं।
विणएणाराहिज्जदि आइरियो सव्वसंघो य॥

विनय मोक्ष का द्वार है। विनय से संयम, तप और ज्ञान होता है। विनय के द्वारा आचार्य और सर्व संघ आराधित होता है।

आयारजीदकप्पगुणदीवणा अत्तसोधिय णिज्जंणा।
अज्जवमद्दवलाहव भत्तीपल्हादकरणं च॥ 387

विनय से आचार, जीद कल्प आदि गुणों का उद्योतन होता है तथा आत्म शुद्धि, निर्द्वन्दता, आर्जव, मार्दव, लघुता, भक्ति और आल्हाद गुण प्रकट होते हैं।

कित्ती मित्ती माणरस भंजण गुरूजऐ य बहुमाणं।
तित्थयराणं आणा गुणाणुमोदो य विणयगुण॥ 389

कीर्ति, मैत्री, मान का भंजन, गुरूओं में बहुमान, तीर्थंकरों की आज्ञा का पालन और गुणों का अनुमोदन ये सब विनय के गुण हैं।

आइरियदिसु पंचसु सबालवुड्ढाउलेसु गच्छेसु।
वेज्जावच्चं वुत्तं कादव्वं सव्वसत्तीए॥ 389

आचार्यादि पाँचों में, बाल–वृद्ध से सहित गच्छ में वैयावृत्य को कहा है। सो सर्वशक्ति से अर्थात् आहार, औषधि, उपकरण, पुस्तकादि से करना चाहिए।

जो साधुओं की सेवा करते हैं वे साक्षात् धर्म की सेवा करते हैं। क्योंकि साधु ही

जीवन्त चलते, फिरते धर्म हैं, तीर्थ हैं, मूर्ति हैं, मंदिर हैं। पांचों परमेष्ठियों में अरिहंत और सिद्ध की तो कोई सेवा वैयावृत्ति (आहार, औषधि, ज्ञान, वसतिका आदि दान तथा शरीर की मालिश आदि) की आवश्यकता नहीं हैं। केवल उनके समान आर्दश बनने के लिए उनके गुण – स्मरण, गुणानुराग, गुणानुचरण की आवश्यकता है। इसी प्रकार नवदेवता (पंचपरमेष्ठी, चैत्य, चैत्यालय, जिनधर्म जिनागम) में भी वर्तमान में साक्षात् जीवंत देवता तो तीन देवता (आचार्य, उपाध्याय, साधु) हैं जिनके लिए भोजन, औषधि, सुश्रुषा की आवश्यकता है। ये ही साधु, साधक ही आगे जाकर साध्य, अरिहंत, सिद्ध बनेंगे और अरिहंत की दिव्य देशना ही जिनागम है, उनकी मूर्ति (Idol) ही चैत्य है, चैत्यका आलय ही चैत्यालय है तथा उनका स्वरूप ही जिनधर्म है। इसलिए तो कुन्द कुन्द देव ने अष्टपाहुड में साधु श्रमण को ही निश्चय से नवदेवता कहा है और मूर्ति, मंदिरादि को व्यवहार से देवता कहा है। अतएव सिद्ध होता है कि मूर्ति, मंदिर , तीर्थक्षेत्रादि, प्रतिकृति, प्रतिमा, मूर्ति (Idol) है तो साधु स्वयं मूर्तिमान, प्रतिमान, आर्दश (Ideal) हैं जिसने साधु की सेवा की, उसने नव देवता की भी सेवा का सेवन किया परन्तु दुःख के साथ लिखना पडता है जो स्वयं साधुओं की सेवा तक नहीं करता है, वह भी जब एक साधु धार्मिक भाव से आगमोक्त प्रणाली से भी दूसरे साधु की सेवा करता है तो उसको खराब मानता है, निंदा करता है, दूसरों को भिडाकर, भटकाकर साधुओं से घृणा करवाता है। इस प्रकरण का विशेष वर्णन मैंनें इसी पुस्तक में अन्यत्र तथा 'पूजा से मोक्ष, पुण्य, तथा पाप भी, में भी किया है विशेष जिज्ञासु वहाँ से अध्ययन करें।

उत्सर्ग एवं अपवाद की मैत्री

बालो वा बुड्ढो वा समभिहदो वा पुणो गिलाणो वा।
चरियं चरदु सज्जोगं मुलच्छेदो जधा ण हवदि ॥ (230)

उत्सर्ग निश्चय है तथा अपवाद व्यवहार है। इन दोनों में किसी अपेक्षा से परस्पर सहकारीपना है। ऐसा स्थापित करते हुए चारित्र की रक्षा करनी चाहिए ऐसा दिखाते हैं। (बालोवा) बालक मुनि हो अथवा (बुड्ढोवा) बुड्ढा हो या (समभिहदो)थक गया हो (पुणो गिलाणो वा) अथवा रोगी हो ऐसा मुनि (जरा) जिस तरह (मूलच्छेदं) मूलसंयम का भंग (ण हवदि) न होवे (संजोग) वैसे अपनी शक्ति के योग्य (चर्या) आहार को (चरई) पालता है।

प्रथम ही उत्सर्ग और अपवाद का लक्षण कहते हैं। अपने शुद्ध आत्मा से अन्य सर्व भीतरी व बाहरी परिग्रह का त्याग देना सो प्रव.सार.पृ. 844 ही आचरना इस प्रकार अपवाद है। उत्सर्ग है, इसी को निश्चयनय से मुनिधर्म कहते हैं। इसी का नाम सर्व

परित्याग है, परमोपेक्षा संयम है, वीतराग चारित्र है, शुद्धोपयोग है। इनका सभी का एक ही भाव है। इस निश्चय मार्ग में जो ठहरने को समर्थ न हो वह शुद्ध आत्मा की भावना के सहकारी कुछ भी प्रासुक आहार, ज्ञान का उपकरण शास्त्रादि को ग्रहण कर लेता है यह अपवाद मार्ग हैं। इसी को व्यवहार नय से मुनि धर्म कहतें हैं। इसी का नाम एकदेश परित्याग है , अपहृत संयम है, सराग चारित्र है, शुद्धोपयोग है, इन सबका एक ही अर्थ है। जहाँ शुद्धात्मा की भावना के निमित्त सर्वत्याग स्वरूप उत्सर्ग मार्ग के कठिन आचरण में वर्तन करता हुआ साधु शुद्धात्मा तत्व के साधक रूप से जो मूल संयम के साधक, मूल शरीर का जिस तरह नाश नहीं होवे उस तरह कुछ भी प्रासुक आहार आदि को ग्रहण कर लेता है। सो अपवाद की अपेक्षा या सहायता सहित उत्सर्ग मार्ग कहा जाता है और जब वह मुनि अपवाद रूप अपहृत संयम के मार्ग में वर्तता है, तब भी शुद्धात्मा तत्व का साधक रुप से जो मूल संयम हैं उसका तथामूल संयम के साधक मूल शरीर का जिस तरह विनाश न हो उस तरह उत्सर्ग की अपेक्षा सहित वर्तता है अर्थात् इस तरह वर्तन करता है जिस तरह संयम का नाश न हो। यह उत्सर्ग की अपेक्षा सहित अपवाद मार्ग है। बाल, वृद्ध, श्रमित (थका हुआ) या ग्लान रोगी मुनि को भी संयम का जो कि शुद्धात्मा तत्व का साधक होने से मूल भूत है छेद जैसे न हो उस प्रकार संयत अपने योग्य अति ककर्श (कठोर) आचरण ही आचरना, इस प्रकार उत्सर्ग है। बाल, वृद्ध, श्रमित या ग्लान मुनि को शरीर का जो कि शुद्धात्मा तत्व के साधन भूत संयत का साधन होने से मूल भूत है उसका छेद जैसे न हो उस प्रकार से बाल, वृद्ध, श्रांत, ग्लान के द्वारा अपने योग्य मृदु आचरण इस प्रकार-आचरते हुए, संयम का जो कि शुद्धात्मा तत्व का साधन होने से मूल भूत है, इस प्रकार अपवाद है। बाल, वृद्ध, श्रांत, ग्लान के जैसे छेद न हो, उस प्रकार से संयत ऐसा अपने योग्य अति ककर्श आचार भी आचरण के द्वारा इस प्रकार उत्सर्ग सापेक्ष अपवाद है। इससे यह कहा है कि **सर्वथा उत्सर्ग और अपवाद जो शुद्धात्म तत्त्व कि मैत्री द्वारा आचरण की सुस्थितता करनी चाहिए।**

उत्सर्ग एवं अपवाद की मित्रतारूपी चारित्र से कम कर्मबंध होता है –

आहारे व विहारे देसं कालं समं खमं उवधिं।
जाणित्ता ते समणो वट्टदि जदि अप्पलेवी सो ॥ (231)

अपवाद की अपेक्षा बिना उत्सर्ग तथा उत्सर्ग की अपेक्षा बिना अपवाद निषेधने योग्य है। तथा इस बात को व्यतिरेक द्वार से दृढ करते हैं। (जदि)यदि (समणो) साधु (आहारे व विहारे) आहार या विहार में (देसं काल समं खमं उवतिं ते जाणिता) देस को, समय को मार्ग की थकान को उपवास की क्षमता या सहनशीलता को तथा शरीर रूपी परिग्रह की दशा को इन पाँचों को जानकर (वट्टदि) वर्तन करता है (सो अप्पलेवि) वह

बहुत कम कर्म बंध से लिप्त होता है। जो शत्रु–मित्रादि में समान चित्त को रखने वाला साधु–तपस्वी के योग्य आहार लेने में तथा विहार करने में नीचे लिखी इन 5 बातों को पहले समझकर वर्तन करता है वह बहुत कम कर्म बंध करने वाला होता है। 1) देश या क्षेत्र कैसा है 2) काल आदि किस तरह का है 3) मार्ग में कितना श्रम हुआ है होगा 4) उपवासादि तप करने की शक्ति है या नहीं 5) शरीर बालक है या वृद्ध है या थकित है या रोगी है ये 5 बातें साधु के आचरण के सहकारी पदार्थ हैं। भाव यह है कि यदि कोई साधु पहले कहे प्रमाण कठोर आचरण रूप उत्सर्ग मार्ग में ही वर्तन करे और यह विचार करे कि यदि मैं प्रासुक आहार आदि ग्रहण के निमित्त जाऊँगा तो कुछ कर्म बंध होगा इसलिए अपवाद मार्ग में न प्रवर्ते तो यह फल होगा कि शुद्धोपयोग में निश्चलता न पाकर चित्त में आर्तध्यान से संक्लेश भाव हो जायेगा तब शरीर त्यागकर पूर्वकृत पुण्य से यदि देवलोक में चला गया तो वहाँ दीर्घ काल तक संयम के अभाव होने से महान् कर्म का बंध होवेगा। इसलिए अपवाद की अपेक्षा न करके उत्सर्ग मार्ग को साधु त्याग देता है तथा शुद्धात्मा की भावना को साधन करने वाला थोडा सा कर्म बंध हो तो लाभ अधिक है, ऐसा जानकर अपवाद की अपेक्षा सहित उत्सर्ग मार्ग को स्वीकार करता है। जैसे ही पूर्व सूत्र में कहे क्रम से कोई अपहृत संयम शब्द से कहने योग्य अपवाद मार्ग में प्रवर्तता है। वहाँ वर्तन करता हुआ यदि किसी कारण सहित औषधि, पथ्य आदि के लेने में कुछ कर्म बंध होगा ऐसा भय करके रोग का उपाय न करके शुद्धात्मा की भावना को नहीं करता है तो उसके महान् कर्म का बंध होता है अथवा व्याधि के उपाय में प्रवर्तता हुआ भी हरीत की अर्थात् हरड के बहाने गुढ खाने के समान इंद्रियों के विषयों में लंपटी होकर संयम की विराधना करता है तो भी महान् कर्म बंध होता है। इसलिए साधु उत्सर्ग की अपेक्षा न करके अपवाद मार्ग का त्याग करके शुद्धात्मा की भावना रूप शुभोपयोग रूप संयम की विराधना न करता हुआ, औषधि, पथ्य आदि निमित्त अल्प कर्म बंध होते हुए भी बहुत गुणों से पूर्ण उत्सर्ग की अपेक्षा सही अपवाद को स्वीकार करता है। यह अभिप्राय है।

क्षमता तथा ग्लानता का हेतु उपवास है और बाल तथा बुढापा उपधीरूप शरीर के आश्रित है। इसलिए यहाँ बाल–वृद्ध–श्रांत–ग्लान ही लिए गये हैं। देशकाल को भी, यदि वह बाल–वृद्ध–श्रांत–ग्लानत्व के अनुरोध से (कारण से) आहार विहार में प्रवृत्ति करे तो मृदु आचरण में प्रवृत्त होने से अल्प ही लेप होता है। अर्थात् विशेष लेप नहीं होता , इसलिए अपवाद अच्छा है। देशकाल को भी, यदि वह बाल–वृद्ध–श्रांत–ग्लानत्व के अनुरोध से जो आहार विहार है, उससे होने वाले अल्पलेप के भय से उसमें प्रवृति न करे तो अर्थात् अपवाद के आश्रय से होने वाले अल्पबंध के भय से उत्सर्ग का हठ करके अपवाद में प्रवृत न हो तो अति कर्कस आचरणरूप होकर अक्रम से शरीरपात करके देव

लोक प्राप्त करके जिसने समस्त संयमामृत का समूह सेवन कर डाला है उसे तप का अवकाश न रहने से, जिसका प्रतिहार अशक्य है ऐसा महान् लेप होता है इसलिए अपवाद निरपेक्ष उत्सर्ग श्रेयस्कर नहीं है। देशकालज्ञ को भी, यदि वह बाल–वृद्ध–श्रांत–ग्लानत्व के अनुरोध जो आहार विहार है, उससे होने वालेअल्पलेप को न गिनकर उसमें यथेष्ठ प्रवृत्ति करे तो अर्थात् अपवाद से होने वाले अल्पबंध के प्रति असावधान होकर उत्सर्ग रूप ध्येय को चुनकर अपवाद में स्वच्छन्दतया प्रवृत्ति करे तो मृदु,आचरण रूप होकर संयम विरोध को– असंयतजन के समान हुए उसको उस समय तप का अवकाश न रहने से जिसका प्रतिकार अशक्य है ऐसा महान् लेप होता है। इसीलिए उत्सर्ग–निरपेक्ष अपवाद श्रेयस्कर नहीं है। इससे उत्सर्ग और अपवाद के विरोध से होने वाले आचरण की दुःस्थितता सर्वथा निषेध्य (त्याज्य) है और इसलिए परस्पर–सापेक्ष उत्सर्ग और अपवाद से जिसका कार्य प्रकट होता है, ऐसा स्याद्वाद सर्वथा अनुसरण करने योग्य है।

इत्येवं चरणं पुराणपुरूषैर्जुष्टं विशिष्टादरै
रूत्सर्गपिवादतश्च विचरद्बहवीः पृथग्भूमिकाः ।
आक्राम्य क्रमतो निवृतिमतुलां कृत्वा यदिः
सर्वतश्चित्सामान्यविशेष भासिनि निजद्रव्ये करोतु स्थिति ।।

इस प्रकार विशेष आदर पूर्वक पुराण रूपों के द्वारा सेवित उत्सर्ग और अपवाद द्वारा अनेक पृथक्–पृथक् भूमिकाओं में विचरण करने वाले यति चारित्र को प्राप्त करके क्रमशः अतुल निवृत्ति करके सामान्य विशेष रूप चैतन्य जिसका प्रकाश है ऐसे निज द्रव्य में सर्वतः स्थिति करें ।

जब वट बीज अंकुरित होता है तथा कोमल पौधावस्था में रहता है तब उसकी सुरक्षा की अधिक आवश्यकता होती है, परन्तु जब वही अंकुर विशाल वृक्ष रूप में परिणमन कर लेता है तब उसके ऊपर अनेक पशु–पक्षी बैठते हैं, गर्मी, वर्षा, झंझा–वात भी सहन कर लेता है यहाँ तक कि हाथी को भी उसकी शाखादि से बांधते हैं तथापि वह वृक्ष उसको सहन कर लेता है,परन्तु यह कार्य वह वृक्ष शिशु अवस्था में सहन करने के लिए समर्थ नहीं था परन्तु बडा होने पर समर्थ हो गया। इसी प्रकार प्राथमिकावस्था में जो कष्ट साध्य कार्य होता है वही कार्य सिद्ध–साधक के लिए सरल हो जाता है। जिस प्रकार मिट्टी का कच्चा घडा पानी से गल जाता है वही घडा जब अग्नि से पक्का हो जाता है तब पानी को भी अपने भीतर धारण कर लेता है। इसी प्रकार मोक्ष-मार्ग में भी जान लेना चाहिए।

जिस प्रकार शिशु को मृदु भोजन दिया जाता है परन्तु उसी शिशु को बडा हो जाने पर गुरू भोजन भी दिया जाता है/ उसी प्रकार प्राथमिक पहले मृदु साधना करता है और वही

साधक निष्णात होने पर क्लिष्ट साधना भी कर लेता है। जिस प्रकार रोगी व्यक्ति लघुपाक भोजन करता है, क्लिष्ट साध्य कार्य नहीं करता परन्तु वही व्यक्ति स्वस्थ अवस्था में गुरू पाक भोजन भी करता है तथा भारी शरीरिक कार्य भी करता है। यदि रोगी गुरूपाक भोजन करेगा तथा भारी – शारीरिक कार्य करेगा तो और भी रोगी हो जायेगा किंतु स्वस्थ व्यक्ति यदि केवल लघुपाक भोजन करता रहेगा एवं शारीरिक श्रम नहीं करेगा तो वह भी अस्वस्थ या दुर्बल हो जायेगा। इसी प्रकार यदि असमर्थ श्रमण भी यदि समर्थ साधक के समान उत्सर्ग मार्ग को अपनायेगा तो वह एक तो उत्सर्ग मार्ग में चल नहीं पायेगा दूसरा अपवाद मार्ग से भी विचलित हो जायेगा, परन्तु वही साधक जब समर्थ होकर भी प्रमाद वशतः सुखभिलाषी से या देखा-देखी अपवाद मार्ग को अपनायेगा तो वह भी अधिक कर्मबंध को करेगा, इसलिए द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, शक्ति आदि को तौलकर ही आगमानुसार आचरण करना चाहिए जिससे अल्प कर्मबंधन होगा। परन्तु सतत्–उत्कृष्ट आचरण की ही भावना भानी चाहिए उससे आगे योग्य द्रव्यादि मिलेगें जिसके माध्यम से उत्कृष्ट साधना भी संभव हो जायेगी एवं मोक्ष भी हस्तगत हो जायेगा । कुंद कुंद देव ने कहा भी है –

जं सक्कई तं कीरइ जं च ण सक्कई तंच सद्दहणं।
केवलिजिणेजिणेहिं भणियं सद्दहमाणस्स सम्मत्तं ॥ 22 अ. पा. पृ. 39

जो कार्य किया जा सकता है वह किया जाता है और जिसका किया जाना शक्य नहीं है उसका श्रद्धान करना चाहिए। केवलज्ञानी जिनेन्द्र भगवान् ने श्रद्धान करने वाले पुरूषों को सम्यग्दृष्टि कहा है –

कीजै शक्ति प्रमाण, शक्ति विना सरधा धरे।
'द्यानत' सरधावान, अजर अमर पद भौगवै ॥

शक्ति के अभाव में भी यदि कोई श्रमण आत्मा को अजर–अमर निराहारी मानकर भोजन नहीं लेगा तब वह संक्लेश परिणाम से अधिक कर्मबंध करेगा। जो तीर्थंकर केवलज्ञान के बाद शरीर सहित भी लाखों–करोडों वर्ष निराहार रह सकतें हैं, वें ही तीर्थंकर छद्मस्थावस्था में कुछ वर्ष तक भी निराहार नहीं रह सकते हैं। इसलिए तो छद्मस्थावस्था में तीर्थंकर भी अनेक बार आहार लेते हैं, तब सामान्य साधक की तो बात ही क्या है? गुणभद्राचार्य ने कहा भी है –

समस्तं साम्राज्य तृणामिव परित्यज्य भगवान्
तपस्यन् निर्वाणः क्षुधित इव दीनः परगृहान् ।
किलाटद्भिक्षार्थी स्वयमलभमानोऽपि सुचिरं
न सोढव्यं किं वा परमिह परैः कार्यवशतः ॥ 118 आ. शा. पृ. 112

जिन वृषभदेव ने समस्त राज्य–वैभव को तृण के समान तुच्छ समझकर छोड

दिया था और तपश्चरण को स्वीकार किया था वे भी निरभिमान होकर क्षुधित के समान भिक्षा के निमित्त स्वयं दूसरों के घरों पर घूमें । फिर भी उन्हें निरंतराय आहार नहीं प्राप्त हुआ। इस प्रकार उन्हें छह मास घूमना पडा फिर भला अन्य साधारण जनों या महापुरूषों को अपनें प्रयोजन की सिद्धि के लिए यहाँ क्या (परिषह आदि) नहीं सहन करना चाहिए ? अर्थात् उसकी सिद्धि के लिए उन्हें सब कुछ सहन करना ही चाहिए।

पुरा गर्भादिन्द्रो मुकुलितकरः किंकर इव
स्वयं स्त्रष्ट सृष्टेः पतिरथ निधीनां निजसुतः ।
क्षुधित्वा षण्मासान् स किल पुरूरप्याह जगती
महो केनाप्यस्मिन् विलसितमलङ्घ्यं हत विधेः ॥ 119

जिस आदिनाथ जिनेन्द्र के गर्भ में आने के पूर्व छह महिने से ही इंद्र दास के समान हाथ जोडे हुए सेवा में तत्पर रहा, जो स्वयं ही सृष्टि की रचना करने वाला था, जिसने कर्मभूमि के प्रारम्भ में आजीविका के साधनों से अपरिचित प्रजा के लिए आजीविका विषय की शिक्षा दी थी तथा जिसका पुत्र भरत निधियों का स्वामी (चक्रवर्ती) था वह इन्द्रादिकों से सेवित आदिनाथ तीर्थंकर जैसा महापुरूष भी बुभुक्षित होकर छह महिने तक पृथ्वी पर घूमा, यह आश्चर्य की बात है। ठीक है – इस संसार में कोई भी प्राणी दुष्ट देव के विधान को लांघने में समर्थ नहीं है।

उपर्युक्त वर्णन से यह सिद्ध होता है कि साधक ना तो प्रमादी होता है और ना ही अतिवादी होता है। शरीर का अतिशोषण भी नहीं करता है और न अति पोषण भी करता है। वह वीणा के तार के समान होता है। जिस प्रकार वीणा के तार अति शिथिल होगें तो योग्य ध्वनि भी नहीं निकलेगी और अति कठोर होने पर भी योग्य ध्वनि नहीं निकलेगी, परंतु योग्य प्रणाली से बांधने पर कर्णप्रिय ध्वनि निकलेगी। इसलिए श्रमण को प्रमादवशतः अपवाद मार्ग का ही अवलम्बन नहीं लेना चाहिए। आवश्यकतानुसार अपवाद मार्ग का आश्रय लेने पर अधिक कर्म बंध नहीं होता है। इसलिए तो प्रायश्चित्त शास्त्र में भी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के अनुसार लघु, मध्यम एवं महा प्रायश्चित्त का विधान है। यथा–

नीरसेऽप्यथवाचाम्ले क्षमणे वा विशोधिते।
ज्ञात्वा पुरूषसत्वादि लघुर्वा सान्तरो गुरूः ॥ 9 प्रायश्चित्त स. पृ.5

पुरूष उसका सत्व–धैर्य, आदि शब्द से बल, परिणाम आदि जानकर पूर्वोक्त पंचकल्याण में से नीरस अर्थात् निर्विकृति, अथवा आचाम्ल या उपवास को कम कर देना लघुमास है अथवा पूर्वोक्त पांचों को निरन्तर करना गुरूमास है। उसी गुरूमास को व्यवधान सहित करना लघुमास है।

कार्योत्सर्गप्रमाणाय नमस्कारा नवोदिताः ।

उपवासस्तनूत्सर्गैर्भवेद् द्वादशकैस्तकैः ॥ 11

नव पंच नमस्कारों का एक कायोत्सर्ग होता है और बारह कायोत्सर्ग का एक उपवास है।

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं यह एक पंच नमस्कार हैं ऐसे नौ पंचनमस्कार एक कायोत्सर्ग में होते हें और एक उपवास में ऐसे ही बारह कायोत्सर्ग होते हैं।

निमित्तादनिमित्ताच्च प्रतिसेवा द्विधा मता।
कारणात् षोडशोद्दिष्टा अष्ट भंगास्तथेतरे ॥ 17

निमित्त से और अनिमित्त से प्रतिसेवा दो तरह की मानी गई है। उनमें भी कारण से सोलह तरह की कही गई हैं। इसी तरह कारण अन्तर में आठ भंग होते हैं।

उपसर्ग, व्याधि आदि निमित्तों को पाकर दोषों का सेवन करना और इन निमित्तों के बिना भी दोषों का सेवन करना इस तरह प्रतिसेवा के दो भेद हैं। उनमें भी प्रत्येक के अर्थात् निमित्त प्रतिसेवा के सोलह और अनिमित्त प्रतिसेवा के आठ भेद हैं।

अष्टाप्येते न संशुद्धा आद्यः शुद्धतरस्ततः।
अविशुद्धतरास्त्वन्ये भंगाः सप्तापि सर्वदा ॥ 23

ये ऊपर बताये आठों भंग संशुद्ध नहीं हैं अशुद्ध हैं । बहुत प्रायश्चित्त के योग्य हैं। इनमें पहला भंग द्वितीय भंग की अपेक्षा शुद्ध है लघु प्रायश्चित्त के योग्य है। इसके अलावा बाकी के सात भंग निरन्तर अविशुद्धतर हैं बहुत प्रायश्चित्त के योग्य हैं।

प्रतिसेवाविकल्पानां त्रयोविशंतिमामृशथन्।
गुरू लाधवमालोच्य च्छेदं दद्याद्यथायथम् ॥ 24

प्रतिसेवन के कुल विकल्प चौबीस हुए । उनमें से आगाढकारणकृत सकृत्कारी, सानुवीचि, प्रयत्नप्रतिसेवी) पहले विकल्प को छोडकर अतिशिष्ट तेईस विकल्पों में छोटे, बडे का विचार कर यथा योग्य प्रायश्चित देना चाहिए ।

द्रव्ये क्षैत्रेऽथकाले वा भावे विज्ञाय सेवनां ।
क्रमशः सम्यगालोच्य यथाप्राप्तं प्रयोजयेतम् ॥ 25

द्रव्य,क्षेत्र, काल और भाव को जानकर और दोष के सेवन को जानकर, क्रमशः सम्यक् आलोचना करके यथायोग्य प्राश्चित्त की समायोजना करनी चाहिए ।

आद्यमाद्ये तपोऽन्येषु प्रत्येकं तद्द्वयं ततः।
आद्ये तत्त्रयमष्टानां तच्चतुष्टयमन्यतः ॥ 26

सोहल दोषों में से प्रथम दोत्र का प्रायश्चित्त आद्य तप अर्थात् प्रथम शलाका है। शेष पद्रंह दोषों का प्रायश्चित्त 2–2 तप 2–2 सलाकाएँ हैं। तथा आठ दोषों में से प्रथम

दोषों का प्राश्चित्त तीन तप–तीन शलाकाएँ और शेष सात दोषों का प्रायश्चित्त चार–चार तप चार–चार शलाकाएँ हैं।

आगाढादि सोलह दोषों का प्रायश्चित्त सामान्य से कहा गया । अब लघु दोष और गुण दोष का विचार कर आचार्यों के उपदेश के अनुसार उत्तर सूत्र के अभिप्राय से उक्त शलाकाओं में किसको कौन–सा प्रायश्चित्त दिया जाता है यह निश्चय करते हैं। आगाढ कारणकृत, सकृत्कारी, सानुवीची, प्रयत्नसंसेवी प्रथम दोष का प्रायश्चित्त आलोचना मात्र है। अनागाढकारणकृत, सकृत्कारी, सानुवीची, प्रयत्नसंसेवी द्वितीय दोष का बडा प्रायश्चित्त छह शुद्धिवाली दो शलाकाएँ हैं। जिनमें एक शलाका तो निर्विकृति और श्रमण नाम की नौवीं द्विसंयोग की और दूसरी निर्विकृति, पुरूमंडल, आचाम्ल और एक स्थान नाम की छब्बीसवीं चतुःसंयोग की हैं। इस तरह दोनों शलाकाओं के छह प्रायश्चित्त द्वितीय दोष के हैं। इस प्रकार आगे भी जान लेना चाहिए।

आलोचनादिकं योग्ये कायोत्सर्गोऽथ सर्वकं।
तपः आदि क्वचिद्देयं यथा वक्ष्ये विधिं तथा ॥ 27

योग्य – व्यक्ति के दोषों को जानकर आलोचनादि शब्दों से प्रतिक्रमण, तदुभय, विवेक इन में से एक या दो तीन अथवा चारों प्रायश्चित्त देवें और कायोत्सर्ग भी देवें। अथवा सभी आलोचनादि दश तरह के प्रायश्चित्त देवें। तथा किसी व्यक्ति विशेष को तप आदि शब्द से छेद,मूल, परिहार और श्रद्धा ये पांच प्रायश्चित्त देवें।

यदभीक्ष्णं निषेव्यत परिहर्तुं न याति यत्।
यदीषच्च भवेत्तत्र कायोत्सर्गो विशोधनं ॥ 28

जो निरंतर सेवन करने में आते हैं जो त्यागने में नहीं आते हैं और जो स्तोक हैं ऐसे दोषों का प्रायश्चित्त कार्योत्सर्ग है। चलना –फिरना आदि भी दोष है जो निरंतर करने पढते हैं। भोजन पान करना भी दोष ही है। ये दोष दुस्त्याज्य हैं। इन कर्तव्यों के करने पर कायोत्सर्ग नाम का प्राश्चित्त लेना चाहिए।

अपमृष्टपरामर्शे कंडूत्यांकुचनादिषु।
जल्लखेलादिकोत्सर्गे कायोत्सर्गः प्रकीर्तितः ॥ 29

प्रतिलेखित शरीरादि वस्तुओं से स्पर्श हो जाने पर, खाज-खुजाने हाथ–पैर आदि के फैलाने सिकोडने आदि क्रिया के करने पर मल, थूक आदि शब्द से खकार आदि शरीरिक मल आदि के त्याग ने पर कायोत्सर्ग प्रायश्चित्त कहा है।

तंतुच्छेदादिक स्तोके संक्लिष्टे हस्तकर्मणिः।
मनोमासिकसेवायां कायोत्सर्गः प्रकीर्तितः ॥

तंतु (धागा) तोडने का आदि शब्द से तृण वगैरह के तोडने का, अल्प संक्लेश

उत्पन्न करने का, पुस्तक आदि के संचय करने रूप हस्तकर्म का और इस उपकरण को इतने दिनों में बनाकर तैयार करूँगा इस प्रकार मन से चिंतवन करने का प्रायश्चित्त कायोत्सर्ग है।

संस्तरे यदि पंचाक्षो व्यापद्येताप्रमादतः।
पंच निर्विकृतान्येककल्याणं सप्रमादतः ॥ 371

सावधानी रखते हुये भी संस्तर सोने के आथरे पर यदि पंचेद्रिय जीव मर जाये तो उसका प्रायश्चित्त पांच निर्विकृतियां हैं और यदि असावधानी से मरे तो एक कल्याणक प्रायश्चित्त है।

जो अनावश्यक सुखाभिलाषी या प्रमादी होकर अपवाद मार्ग का ही आवलंबन लेता है वह अधिक कर्मबंध को करता है। आत्मानुशासन में कहाँ भी है –

विहाय व्याप्तमालोकं पुरस्कृत्य पुनस्तमः।
रविवद्रागमागच्छन् पातालतलमृच्छति ॥ (124)

जिस प्रकार सूर्य फैले हुए प्रकाश को छोडकर और अंधकार को आगे करके जब राग (लालिमा) को प्राप्त होता है तब वह पाताल को जाता है । अस्त हो जाता है, उसी प्रकार जो प्राणी वस्तुस्वरूप को प्रकाशित करने वाले ज्ञान रूप प्रकाश को छोडकर अज्ञान को स्वीकार करता हुआ राग विषय वांछा को प्राप्त होता है तब वह पातालतल को नरकादि दुर्गतिको प्राप्त होता है।

जिस प्रकार क्षुधा को अधिक रोकने से हानि है तथा अधिक खाने से भी हानि है उसी प्रकार अपवाद रहित उत्सर्ग से भी हानि है एवं उत्सर्ग रहित अपवाद से भी हानि है। अतः साधक को आगमनुसार आचरण करते हुए सिद्ध बनना चाहिए ।

योग्याहारी – उपवासी (अनाहारी)

जस्स अणेसणमप्पा तं पि तवो तप्पडिच्छगा समणा ।
अण्णं भिक्खमणेसणमध ते समणा अणाहारा ॥ 227

(जस्स) जिस साधु का (अप्पा) आत्मा (अणेसणं) भोजन की इच्छा से रहित है (तं पि तवो) सो ही तप है।(तपडिच्छग्ग) उस तप को चाहने वाले (समणा) मुनि (अणेसणं अणं भिक्खं) एषणा दोष रहित निर्दोष अन्न की भिक्षा को लेते हैं। (अध ते समणा अणाहारा) तो भी वे साधु आहार लेने वाले नहीं हैं।

जिस मुनि की आत्मा में अपने ही शुद्ध आत्मिक तत्व की भावना से उत्पन्न सुख रूपी अमृत के भोजन तृप्त हो रही है वह मुनि लौकिक भोजन की इच्छा नहीं करता है। यही उस साधु का निश्चय से आाहार रहित आत्मा की भावना रूप उपवास नामक तप है। इसी निश्चय उपवास रूपी तप की इच्छा करने वाले साधु अपने परमात्म तत्व से भिन्न त्याग ने

योग्य अन्न की निर्दोष भिक्षा को लेते हैं। लेते हैं तो भी वे अनशन आदि गुणों से भूषित साधुगण आहार का ग्रहण करते हुए भी अनाहारी होते हैं। जैसे ही जो साधु क्रिया रहित परमात्मा की भावना करते हैं वे पांच समितियों को पालते हुए विहार करते हैं। तो भी वे विहार नहीं करते।

इस गाथा में आचार्य श्री ने बहुत बडे आध्यात्मिक रहस्य का उद्घाटन किया है। जो स्व आत्म स्वरूप को संपूर्ण भौतिक आहारों से रहित जानता है, मानता है तथापि चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से वीर्यान्तराय कर्म के मंद क्षयोपशम से तथा असाता वेदनीय कर्म के उदय से क्षुधा की पीडा होती है उस पीडा को दूर करने के लिए एवं रत्नत्रय की साधना के लिए जो आगमोक्त शुद्ध आहार को गृद्धतारहित होकर ग्रहण करता है वह आहार करते हुए भी अनाहारी है। उपवासी है क्योंकि उपवास का अर्थ है "उप समीपे आत्मनः परमब्रह्माणाशुद्धेक स्वरूपस्य वसतीत्युपवास" आत्मा का ध्यान करना, आत्मा को परिमार्जित करना, आत्मा के समीप बैठना अर्थात् आत्मा में लीन रहना उपवास है। इस उपवास के लिए ही चार प्रकार के भोजन का त्याग किया जाता है। इसी लिए इंद्रियों को, जीतना, कषायों का निग्रह करना, आत्मविशुद्धि के लिए स्वाध्याय, तप, ध्यान आदि में तत्पर होना ही निश्चय से उपवास है, अनाहार है, क्योंकि इसके कारण कर्मों का आहार ग्रहण एवं बंध नहीं होता है। जिन उपायों से कर्मों का आहार नहीं होता है वही यथार्थ से उपवास है, क्योंकि इससे कर्मों का आहार (ग्रहण, आस्रव, बंध) नहीं होता है, आत्मा की विशुद्धि होती है, आत्मा के समीप उपवेशन किया जाता है, आत्मा को प्राप्त किया जाता है। स्वामी कार्तिकेयानुपेक्षा की टीका में कहा भी है –

कर्मेन्धनं तप्यते, दध्येते भस्मीक्रियते इति तपः। तथा निश्चय तपो विधानमुक्तं च "पर द्रव्येषु सर्वेषु यदिच्छा तन्निर्वर्तनम् तजः परमाम्नातं तन्निश्चयस्थितः।"

जिस के द्वारा कर्म रूपी इंधन को जलाकर भस्म किया जाता है वह तप है। निश्चय तप विधान में कह गया है कि समस्त पर द्रव्यों की इच्छा को रोकना ही निश्चय से परम आम्नाय में तप कहा गया है। स्वामी कार्तिकेय ने भी कहा है –

उवसमणो अक्खाणं उववासो भणिदो समासेण।
तम्हा भुंजुता वि य जिदिंदिया होंति उववासा ॥ 439

तीर्थंकर, गणधरदेव, आदि मुनिन्द्रों ने इंद्रियों के उपशमन को (विषयों में न जाने देने को) उपवास कहा है । इसलिए जितेन्द्रिय पुरूष आहार करते हुए भी उपवासी है।

शुद्ध, बुद्ध स्वरूप आत्मा के उप अर्थात् समीप में बसने का नाम उपवाश है। और आत्मा के समीपमें बसने के लिए पांच इंद्रियों का दमन करना आवश्यक है, क्योंकि जो भोजन के लोलुपी होते हैं उनकी इंद्रियाँ उनके वश में नहीं होती है, बल्कि वह स्वयं

इंद्रियों के दास होते हैं और जो इद्रियों के दास होते हैं वे अपनी शुद्ध, बुद्ध आत्मा से कोसों दूर बसते हैं अतः स्पर्श का गंध, रस,रूप और शब्द इन पांचों विषयों की और अपनी-अपनी उत्सुकता को छोडकर पांच इंद्रियों का शान्त रहना ही वास्तव में सच्चा उपवास हैं और इंद्रियों के शान्त करने के लिए चारों प्रकार के आहार का त्याग करना व्यवहार से उपवास है। अतः जिन्होंने अपनी इंद्रियों को जीतकर वश में कर लिया है वे मनुष्य भोजन करते हुए भी उपवासी हैं। सारांश यह है कि जितेन्द्रि मनुष्य सदा उपवासी होते हैं। अतः इंद्रियों को जीतने का प्रयत्न करना चाहिए ।

जो मण– इंद्रिय–विजई–इह–भवपर–लोय सोक्ख णिरवेक्खो।
अप्पाणे विय णिवसई सज्झाय परायणो होदि ॥४४०

जो मन और इंद्रियों को जीतता है, इसभव और परभव के विषय सुख की अपेक्षा नहीं करता, अपने आत्म स्वरूप में ही निवास करता है और स्वाध्याय में तत्पर रहता है वह सच्चा उपवासी है।

सच्चा उपवास करने वाला वही है जो मन और इंन्द्रियों को अपने वश में रखता है, इसलोक और परलोक के भोगों की इच्छा नहीं रखता अर्थात् इसलोक में ख्याति, लाभ और मान-प्रतिष्ठा की भावना से तथा आगामी जन्म में स्वर्ग लोक की देवांगनाओं को भोगने की अभिलाषा से उपवास नहीं करता है, तथा जो शुद्ध चिदानन्द स्वरूप परमात्मा में अथवा स्वात्मा में रमता है, अच्छे–अच्छे शास्त्रों के अध्ययन में तत्पर रहता है।

कम्माण णिज्जरट्ठं आहारं परिहरेई लीलाये।
एग–दिणादि पमाणं तस्स तवं अणसणं होदि ॥ 441

उक्त प्रकार का जो पुरूष कर्मों की निर्जरा के लिए एक दिन वगैरह का परिमाण करके लीला मात्र से आहार का त्याग करता है उसके अनशन नाम का तप होता है।

ऊपर की गाथा में जो विशेषतायें बतलायी हैं उन विशेषताओं से युक्त जो महानपुरूष कर्मों का एकदेश से क्षय करने के लिए

एक दिन, दो दिन आदि का नियम लेकर बिना किसी कष्ट के प्रसन्नता पूर्वक अशन, पान, खाद्य, और लेह्य के भेद से 4 प्रकार के भोजन को छोड देता है वही अनशन तप का धारक है। वसुनंदी श्रावकाचार में कहा है– अनशन दो प्रकार का होता है 1) साकांक्ष 2) निराकांक्ष। **'' इतने काल तक मैं अनशन करूँगा ''** इस प्रकार काल की अपेक्षा रखकर जो अनशन किया जाता है उसे साकांक्ष अनशन कहते हैं। और जीवन पर्यन्त के लिए जो अनशन किया जाता है उसे निराकांक्ष अनशन कहते हैं साकांक्ष अनशन का स्वरूप इस प्रकार कहा है– एक दिन में भोजन की दो वेला होती है, उसमें से एक वेला भोजन करें और एक वेला भोजन का त्याग करें। इसे एक भक्त कहते हैं। चार

वेला भोजन का त्याग करने को चतुर्थ कहते हैं, या एक उपवास है। छः वेला भोजन का त्याग करने को षट् (षष्ठ) कहते हैं। यह दो उपवास है। इसी प्रकार आठ वेला भोजन का त्याग करने को अष्टम कहतें हैं। यह तीन उपवास है। 10 वेला भोजन त्याग करने को दशम कहते हैं। दशम अर्थात् 4 उपवास, 12 वेला भोजन का त्याग करने को द्वादश कहते हैं। द्वादश नाम पांच उपवास का है। इसी तरह एक मास और अर्धमास आदि तक भोजन को त्यागना तथा कनकावली, एकावली, आदि तप करना ''साकांक्ष अनशन''। साकांक्ष अनशन उत्कृष्ट से 6 महिनें तक किया जाता है। चारित्रसार में भी लिखा है– मंत्र साधना आदि लौकिक फल की भावना को त्याग कर प्राणी संयम, इंद्रियसंयम, राग–द्वेष का विनाश, कर्मों की निर्जरा और शुभध्यान आदि की सिद्धि के लिए एक बार भोजन करना या चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम, दशम, द्वादश, पक्ष, मास, ऋतु, अयन और संवत्सर में चारों प्रकार आहार का त्याग करना अनशन है।

उववासं कुव्वाणो आरम्भं जो करिदे मोहादो।
तस्स किलेसो अपरं कम्माणं णेव णिज्जराणं ॥ 442

जो उपवास करते हुए मोह वश आरम्भ करता है, उसके लिए यह एक और कष्ट तो हुआ किन्तु कर्मों की निर्जरा नहीं हुई। जो मनुष्य अथवा स्त्री मोह अथवा अज्ञान के वशीभूत होकर उपवास के दिन असि, मसि, कृषि, सेवा, व्यापार आदि उद्योगों को तथा कूटना, पीसना, पानी भरना, चूल्हा जलाना, झाडू लगाना, कपडे धोना, घर लीपना आदि आरम्भ को करता है वह उपवास करके भूख प्यास की बाधा से केवल अपने कष्ट को ही बढाता है। कहा भी है– जिसमें विषय कषाय रूपी आहार का त्याग किया जाता है वही उपवास है। केवल भोजन का त्याग करना तो उलंघन है।

कषायों को क्षीण किये बिना– इंद्रियों को वश किये बिना, आरम्भ–परिग्रह त्याग किये बिना, चार प्रकार विकथा, पर निंदा को छोडे बिना जो केवल चार प्रकार के भोजन त्याग करते हैं वे उपवास नहीं करते, केवल लंघन करते हैं, भूखे रहतें, या भूखे मरते हैं क्योंकि इससे शरीरिक कष्ट होता है, मानसिक संक्लेश होता है और कर्म का संश्लेष बंध होता है। कहा भी है –

कषाय निषयाहार त्यागो यत्र विधीयते।
उपपवासः स विज्ञेयः शेषं लंघनकं विदुः ॥

क्रोध, मान, माया, लोभ तथा काम भोग विषय वासना, आरम्भ, परिग्रह रूपी आहार का त्याग किया जाता है उसे उपवास जानना चाहिए। इस के बिना शेष को लंघन जानना चाहिए। उपरोक्त संपूर्ण सिद्धान्त से सिद्ध होता है कि जो एषणा दोष से रहित, गृद्धता से रहित प्रासुक आहार ग्रहण करता हुआ, ध्यान अध्ययन में, आत्म कल्याण में जो

मुनि सलग्न रहता है वह आहार करता हुआ भी उसके स्वभाव तथा परभाव के निमित्त से बंध नहीं होता इसीलिए साक्षात् अनाहारी है, उपवासी है।

युक्ताहारी विहारी, अनाहारी है–

केवलदेहो समणो देहे ण ममत्ति रहिद परिकम्मो।
आजुत्तो तम तवसा अणिगूहीय अप्पाणो सत्तिं ॥ 228

(समणो) साधु (केवलदेहो) केवल मात्र शरीर धारी है (देहे वि ममत्ति रहिद परिकम्मो) देह में भी ममता रहित क्रिया करने वाले हैं इससे उन्होंने (अप्पणो सत्तिं) अपनी शक्ति को (अणिगूहिय) न छिपाकर (तवसा) तप से (तं) उस शरीर को (आजुत्तो) योजित किया है अर्थात् तप में अपने तन को लगा दिया है। निंदा–प्रशंसा आदि में समान चित्त के धारी साधु अन्य परिग्रह को त्याग कर केवलमात्र शरीर के धारी है तो भी क्या वे देह में ममता करेगें? कभी नहीं। वे देह में भी ममता रहित होकर देह की क्रिया करते हैं। साधुओं की यह भावना रहती है, जैसा इस गाथा में कहा है। मैं ममता को त्यागता हूँ। निर्मत्वभाव में ठहरता हूँ। मेरे को अपना आत्मा ही आलम्बन है और सर्व को मैं त्यागता हूँ।

शरीर से ममता न रखते हुए वे साधु अपने आत्मवीर्य को न छिपाकर इस नाशवान शरीर को तप साधन में लगा देते हैं। यहाँ यह कहा गया है कि जो कोई देह के सिवाय सर्व वस्त्रादि परिग्रह का त्याग कर शरीर में भी ममत्व भाव नहीं रखता है तथा देह को तप में लगाता है वही नियम से युक्ताहार विहार करने वाला है।

समीक्षाः– आचार्य श्री ने जो पूर्वोक्त 227 नं. गाथा में जो अनिच्छा कहा था उसे यहाँ सयुक्तिक सिद्ध किया है। उनकी युक्ति यह है कि जो समस्त बाह्य विषय परिग्रहों से निर्मोही है, शरीर मात्र परिग्रह में भी अनासक्त है और अपनी शक्ति को बिना छिपाये, बिना मायाचारी किये, बिना आलसी बने शरीर को भी तप में सतत् लगायें रहते हैं ऐसे साधु अनाहारी क्यों नहीं हो? अवश्य अनाहारी हैं।

परमात्मस्वरूपोऽहम्।

जिस प्रकार अर्हन्त घातिया कर्मों का क्षय कर अरहन्त परमात्मा बन गये हैं तथा सिद्ध भगवान् अष्टविध कर्मों का क्षय करके परम परमात्मपद को प्राप्त हो गये हैं वैसा ही मेरी आत्मा भी परमात्म-स्वरूप है।

जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन

मानसिक विचारों, संवेदनाओं अनुभूतियों, बुद्धि, धृति तथा स्मरण शक्ति के विकास के लिए दिमाग प्रोटीन से पेप्टाइड नामक जैविक रसायन निर्मितकरता है। न्यूरोपेप्टाइड नामक जैविक रसायन ही न्यूरोट्रॉन्समीटर्स कहलाते हैं। अब तक पचासों न्यूरोट्रॉन्समीटर्स खोजे जा चुके हैं। ये न्यूरोट्रॉन्समीटर्स दिमाग के खास केन्द्रों को प्रभावित कर विभिन्न अनुभूतियों को उत्पन्न करते हैं। विभिन्न शारीरिक एवं मानसिक कर्म करने को प्रवृत्त करते हैं। दिमाग के हाइपोथैलमस क्षेत्र में भूख, प्यास, नींद, सेक्स, दुःख, दर्द, अमन-चैन, सुख-शांति अनुभूतियों एवं संवेदनाओं के केंद्र हैं। इन्हें पैदा करने तथा तृप्त करने में इन न्यूरोट्रॉन्समीटर्स रसायनों की भूमिका है। इन सभी न्यूरोट्रॉन्समीटर्स रसायनों के निर्माण स्राव उत्पादन हमारे आहार पर निर्भर करता है। अर्थात् **''जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन''**।

जर्मनी, इंग्लैण्ड, रुस तथा अमेरिका में हुई खोजों से ज्ञात हुआ है कि सुख-शांति, प्रसन्नता, सौहार्द, करूणा, प्रेम, स्नेह, सहानुभूति आदि उदात्त पवित्र भावनाओं को पैदा तथा सम्वर्द्धन करने के लिए दिमाग में सेरोटोनिन बीटा एंडोर्फिन फिनाइल, इथाइल एमिन, डोपामिन आदि न्यूरोट्रॉन्समीटर्स रसायनों का स्राव बढ जाता है। क्रोध, चिंता, हिंसा, ईर्ष्या आदि घृणादि विध्वंस भावनाओं से दिमाग में एड्रिनलिन, नारएड्रिनलिन एंजियोटेसिन आदि न्यूरोट्रॉन्समीटर्स रसायनों का स्राव बढता है।

इन में सुखद, प्रशान्तक, तृप्तिकारक सेरोट्रोनिन तथा पीडानाशी एवं आनंददायी एड्रोर्फीन न्यूरोट्रॉन्समीटर्स की मुख्य भूमिका है। दिमाग में सेरोट्रोनिन का निर्माण ट्रिप्ट्रोफिन नामक एमिनोएसिड से होता है। दिमाग के चारों तरफ सुरक्षा कवच ब्लड ब्रेन बेरियर होता है। इस सुरक्षा कवच द्वारा स्क्रीनिंग के बाद ही आवश्यक पोषक तत्वों दिमाग तक पहुंच पाते हैं। पाचन के बाद आहार तत्वों के कुछ ही अतिंम उत्पाद ग्लूकोज आदि ब्लड ब्रेन बैरियर को पार करने में सक्षम हैं। ट्रिप्टोफिन तथा अन्य एमिनोएसिड्स इस सुरक्षा कवच को भेद नहीं पाते हैं। सेरोटोनिन न्यूरोट्रॉन्समीटर्स के गुणों से वैज्ञानिक भलीभाँती परिचित थे। इसके उत्पादन के लिए ट्रिप्टोफेन मस्तिष्क में पहुंचना आवश्यक है। भोजन में कार्बोहाइड्रेट यानी मीठे आहार की मात्रा बढा दी जाए, तो ट्रिप्टोफेन आसानी से दिमाग के सुरक्षा कवच को भेदने में सक्षम हो जाता है। मीठे आहार से रक्त में इन्सुलिन की मात्रा बढ जाती है। इन्सुलिन ट्रिप्टोफिन को छोडकर अन्य एमिनो अम्लों (प्रोटीन) को सोखकर रोक लेता है। ट्रिप्टोफिन ब्रेन बैरियर के पार ले जाने का माध्यम बन जाता है। दिमाग में घुसते ही ट्रिप्टोफिन सेरोटोनिन के निर्माण में लग जाता है। काफी मात्रा में सेरोटोनिन रिसने लगता है।

प्रसन्नता के लिए मीठे आहार खाएं :– गोर्टिजन विश्वविद्यालय जर्मनी के प्रोफेसर डॉ. पुडेल ने सुख-शांति, अमन-चैन, ध्यान, बुद्धि, ज्ञान एवं प्रसन्नता के लिए केला तथा अन्य मीठे फल खाने की सिफारिश की है। डॉ. पुडेल के अनुसार मीठे फल विशेष रूप से केला खाने से मस्तिष्क में सेरोटोनिन की सक्रियता बढ जाती है। जो दुःख विषाद एवं पीडा को दूर कर प्रसन्नता उल्लास-आल्हाद एवं आनंद से भर देता है। चेहरे पर स्मित मुस्कान खिल उठती है। इस वैज्ञानिकता से हमारे प्राचीन ऋषि मुनि भलीभांति परिचित थे। उनके वैदिक आश्रमों के आस–पास कदली वन होता था। हर शुभ कर्म व्रत-त्यौहार में केले के वृक्ष एवं फलों का भरपूर उपयोग होता था। संभवतः यही कारण कि केले का वनस्पतिक लेटिन नाम **'मुसासेफिटम'** यानी बुद्धिमानों का फल हैं।

अच्छी नींद के लिए मीठे आहार खाएं :– रात्री में सोने के आधा घण्टा पूर्व पचास ग्राम प्रतिदिन खजूर लेने से गहरी नींद आती है। अवसाद की स्थिति दूर होती है। मीठे आहार लेने से दिमाग में सेरोट्रेनिन का स्राव बढ जाता है। मीठी-मीठी झपकी आने लगती है। एवं तनाव से मुक्त होकर रोगी गहरी नींद में सो जाता है।

मानसिक एवं शरीरिक काम करते समय, बच्चों को स्कूल भेजते समय, किसी सभा-सोसायटी में जाते समय मीठे आहार नहीं खाएँ। नास्ते में खट्टे फल तथा दूध से चुस्ती–फुरती, दोपहर के भोजन में प्रोटिन बहुल आहार लेने से कार्य के प्रति सक्रियता, रात्रि के लिए (सूर्यास्त के पहले) भोजन में स्टार्च एवं कार्बोहाइड्रेट बहुल आहार लेने से व्यक्ति चैन की गहरी नींद में सो सकता है।

मीठा आहार तृप्ति देता है :- ड्यूक यूनिवर्सिटी मेडिकल सेन्टर की सृजन शिप मैन अपने प्रयोगों से इस निष्कर्ष पर पहुची हैं कि भोजन को खुब चबाचबा कर खाने से जीव को अधिक स्वाद तथा घ्राण को भरपूर सुगन्ध प्राप्त होती है। चबाने से स्वाद तथा सुगन्ध से मस्तिष्क में तृप्ति प्रदान कराने वाले तत्व सेरोटोनिन न्यूरोपेप्टाइड का स्राव बढ जाता है। भूख बढाने वाले न्यूरोपेप्टाइड बाई तथा गैलानिन का रिसाव नियंत्रण हो जाता है।

अपराध क्रोध एवं हिंसा का जिम्मेदार उत्तेजक आहार :– चाय, कॉफी, टॉफी, चॉकलेट, कोका, पेप्सी, आईसक्रीम केफिन युक्त आहार फास्ट फूड, अण्डा, मांस, चीनी, बीडी, तम्बाकू, नशीले पदार्थ, सिगरेट, शराब अत्यधिक मिर्च मसाले वाले उत्तेजक आहार से दिमाग तथा शरीर में कुछ ऐसे न्यूरोट्रॉन्समीटर्स रसायनों का रिसाव बढ जाता है कि व्यक्ति क्रोध, हिंसा, व्यभिचार एवं अन्य भ्रष्ट आचरण करने को प्रवृत्त (प्रेरित) हो जाता है। इन उत्तेजक आहारों में स्थित रसायनों के उद्दीपक प्रभाव से मनुष्य की चेतना हिंसक पशु की तरह क्रूर एवं पाश्विक हो जाती है। ऐसे आहार में पाए जाने वाले रसायन खून तथा दिमाग के न्यूरानों (तंत्रिका कोशिकाओं) में घुस कर एक ऐसा

दुष्चक्र पैदा करते हैं कि व्यक्ति को बिना क्रोध, ईर्ष्या, हिंसा या अन्य अपराध किए चैन नहीं मिलता है। रक्त में एड्रिनलिन (एपिनेफ्रिन) नार एड्रिनलिन (नार एपिनेफ्रिन) कार्टिसॉल, बीटा एडार्फिन आदि न्यूरोट्रॉन्समीटर रसायनों का सन्तुलन अस्त–व्यस्त हो जाता है। दिमाग में स्थित आदिम पाश्विक केन्द्र उत्तेजित हो जाते हैं। दिमाग हृदय तथा रक्त संचार की प्रक्रिया विक्षुब्ध हो जाती हैं। बात–बात में तनाव, कुंठा, अनिद्रा, भ्रम, क्रोध, एवं हिंसाग्नि भडक उठती है। व्यवहार में अराजकता एवं पाश्विकता आ जाती है। मन विक्षुब्ध एवं सोच में अश्लीलता तथा बिखराव पैदा होता है। आप चाय तथा कॉफी पिएँ ; तीव्र मिर्च मसाले वाले आहार का अधिक सेवन करें और चाहें कि क्रोध एवं हिंसा से बचे रहें; ऐसा संभव नहीं है।

मीठे आहार लेने से दिमाग में सरोटोनिन बीटा एंडोर्फिन आदि न्यूरोट्रॉन्समीटर रसायनों का स्राव बढने से समता, सुख, शांति एवं समाधि में स्थित होने में सहायता मिलती है। तन, मन व चित्त स्वस्थ होने लगते हैं। मीठे आहार में केला, खजूर, किशमिश, मुनक्का, गुड, गन्ने रस, खीर इत्यादि खाएँ।

कोलीन तथा लेसिथिन खाएं बुद्धि, धृति, मेधा एवं स्मरण शक्ति बढाएं

वैज्ञानिक खोजों से ज्ञात हुआ है कि अभी तक ऐसी कोई दवा नहीं बनी है, जो स्मरण शक्ति एवं ताकत को बढाएँ। हाँ कुछ ऐसे आहार जरूर खोजें गए हैं जिनको खाने से बुद्धि, शक्ति में सुधार होता हैं। अमेरीका में किए गए शोधों से ज्ञात हुआ है कि स्मरण शक्ति बढाने में कोलिन तथा लेसिथिन अत्यन्त उपयोगी हैं। लेसिथिन तथा कोलीन दिमाग में पहुंचकर याददास्त बढाने वाले 'एसिटाइल कोलीन' नामक न्यूरोपेप्टाइड के निर्माण एवं स्राव में वृद्धि करते हैं। एक अन्य ब्रिटिश वैज्ञानिक की शोध के अनुसार एन्जाइमर्स तथा बुढापे से उत्पन्न कमजोर याददास्त से प्रभावित लोगों को प्रतिदिन 25 ग्राम लेसिथिन तथा कोलिन देने पर आश्चर्यजनक सुधार हुआ। अमेरीका में एन्जाइमर्स के 30 रोगियों पर जस्ता तथा सेलेनियम देकर देखा गया कि उन में सजगता, मूड, जीवन एवं कार्य के प्रति निष्ठा एवं आनन्द में काफी सुधार है। इसी प्रकार के प्रयोग डेनिश वैज्ञानिकों ने भी किए हैं।

सोयाबीन, तिल, बदाम, अखरोट, काजू, मूंगफली, सूर्यमुखी, कुसुम में लेसिथिन तथा कोलिन पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। सोयाबीन में कोलिन सर्वाधिक 500 मि.ग्रा. प्रति सौ ग्राम में पाया जाता है। सोयाबीन में लेसिथिन भी सर्वाधिक पाया जाता है। सोयाबीन का लेसिथिन सोया फास्फोलिविड्स के व्यापारिक नाम से विदेशों में मिलता है। आहार वैज्ञानिकों के अनुसार सोया फास्फोलिविड्स लेसिथिन याददास्त तो बढाता

ही है, साथ ही उच्चरक्तचाप, मधुमेह, हृदयरोग, आर्टिरियो स्वलरोसिस, कोलेस्ट्राल वृद्धि को ठीक करता है। मूड ठीक करने तथा याददास्त बढाने वाले न्यरोट्रॉन्समीटर रसायनों तथा स्नायुओं के निर्माण में विटामिन बी–1, बी–2, बी–6, सी, इ एवं खनिज लवणों में मैंग्नीज कैल्शियम, फास्फोरस, आयरन, जिंक, सेलेनियम, मैग्नेशियम कोबाल्ट तथा स्वर्ण की आवश्यकता होती है।

विटामिन बी–1 स्नायुओं को ताकत देने वाला प्रमुख घटक तत्व है। इसकी कमी से याददास्त एवं विचार लडखडाने लगते हैं। स्नायविक कमजोरी ऐठन, अवसाद, सिरदर्द आदि मानसिक रोग दिखते हैं। **विटामिन बी–3** की कमी से मानसिक अवसाद मानसिक अस्थिरता तथा स्मरण शक्ति का ह्रास होता है। **विटामिन बी–6** या पायरिडॉक्सिन की कमी से अनिद्रा, डिप्रेशन, अति क्रियाशीलता, सिजोफ्रेनिया, विस्मृति, अशक्ति एवं भय के लक्षण दिखते हैं। बायोटिन की कमी से नर्वसनेस पेन्टोथेनिक एसिड की कमी से मानसिक अवसाद होता है कोलिन एसीटाइल कोलिन, विटामीन बी. फॉलिक एसिड, मेथियोनिन मानसिक स्वास्थ्य के लिए उपयोगी हैं। पाराएमिनो बेंजाएक एसिड (पारा) फॉलिक एसिड के निर्माण तथा फॉलिक एसिड रक्त के निर्माण में सहायक है। विटामिन सी. मस्तिष्क के न्यूरोट्रॉन्समीटर्स डोपामीन, नारएड्रिलिन (नार एपीनेफ्रिन) तथा एड्रिनलिन (एपीनेफ्रेन) न्यूरोट्रॉन्समीटर्स रसायन में रूपान्तरित करता है। विषम परिस्थिति में खतरे से जूझने अथवा बचाव के लिए दिमाग इन्हीं न्यूरोट्रॉन्समीटर द्वारा तन तथा मन को तैयार करता है। इसके अभाव में निर्णय लेने की क्षमता प्रभावित होती है। विटामीन इ की कमी से अवसाद, घबराहट, थकान, हिंसा, क्रोध की स्थिति पैदा होती है। लोहे के अभाव में हिमोग्लोबिन कम हो जाता है। हिमोग्लोबिन कम होने से मस्तिष्क को भरपूर ऑक्सीजन नहीं मिलता है, ध्यान केन्द्रित नहीं होता है। आकुलता, शंका, संदेह, कुंठा तथा सिजोफ्रेनिया जैसी व्याधियाँ पैदा होती हैं।

जिंक की कमी से दिमागी सुस्ती, स्वाद एवं गंध की संवेदनाओं का नष्ट हो जाना जैसे लक्षण दिखते हैं। मैंग्नीज, तांबा, मैग्नीशियम, सेलेनियम, आयोडीन कोबाल्ट आदि खनिज लवण भी दिमाग के स्वास्थ्य एवं शक्ति के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इन खनिज लवणों से याददास्त बढाने वाले अनेक हार्मोन तथा न्यूरोट्रॉन्समीटर रसायनों का निर्माण तथा स्राव रक्त में बढ जाता है। जिससे मानसिक तथा दिमागी बीमारियों में फायदा होता है।

दिमाग तथा विचार शक्ति को ताकत देने वाले विटामिन तथा खनिज लवणों का मुख्य स्रोत हाथ कूटा कन्नीयुक्त चावल, रिजका, अल्फाल्फा, मोठ, चना, सोयाबीन, मसूर, मटर, इत्यादि अनाज, दूध, दही, पनीर, ताजा खाने योग्य (छिलका युक्त) फल तथा सब्जियाँ, आंवला, अमरूद, टमाटर, पालक, आम, फालसा, शहतूत, केला, अनार इत्यादि है।

टायरोसिन खाएं–डिप्रेशन से मुक्त हो जाएं

बोस्टन में किए गये अनुसंधानों से ज्ञात हुआ है कि डिप्रेशन से ग्रस्त रोगियों को टायरोसिन, एमिनो एसिड युक्त आहार देने से मस्तिष्क में नार–एपिनोफ्रिन न्यूरोट्रॉन्समीटर की मात्रा बढ जाती है। विटामिन सी भी नारएपिनोफ्रिन के निर्माण में भाग लेता है। नारएपिनोफ्रिन अवसाद अवरोधी एण्टी डिप्रेंसेन्ट दवा का काम करता है। अमेरीकी दवा कम्पनियों ने टायरोसिन युक्त चाकलेट तथा अन्य आहार बनाने प्रारम्भ कर दिए है। टायरोसिन पनीर, दूध, दही तथा अन्य अनाज में पाया जाता है। विटामिन सी की दृष्टि से आंवला, अमरूद, नीबू, संतरा विटामिन बी की दृष्टि से हाथ कूटा चावल श्रेष्ट स्रोत है।

टायरोसिन से दर्द भगाएं :– कैम्ब्रिज के मासाचूसेटस इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलाजी एम. आई. टी. के वैज्ञानिकों ने कुछ स्वयं सेवको को सौ वाट बल्बों की ऊष्मा से दर्द पैदा किया। ट्रिप्टोफिन खिलाते ही उनमें दर्द बर्दाश्त करने की क्षमता विकसित हो गई। कईयों के दर्द तो छू मंतर हो गया। अमरीका के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक टैरिश लीबर मैन ने बताया कि मानसिक अवसाद तथा शारीरिक पीडाओं से ग्रस्त अनेक रोगियों के भोजन में कार्बोहाइड्रेट की मात्रा बढाने सै दिमाग में दर्द नाशक रसायन ट्रिप्टोफेन की मात्रा बढ जाती है। फिलाडेल्फिया के टेंपल विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने चेहरे के सामान्य एवं स्नायविक जीर्ण पीडा से ग्रस्त रोगियों को ट्रिप्टोफेन खिलाकर देखा कि वे पहले से स्वस्थ महसूस कर रहे है। (डॉ. नागेन्द्र कुमार नीरज)

पानी है स्वस्थ रहने की संजीवनी

हाल ही में हुए एक अध्ययन के मुताबिक आधुनिक जीवन शैली के चलते लोग कम पानी पी रहे हैं और उनके शरीर में महज 60 से 70 फीसदी हिस्से में पानी है जबकी जन्म के समय शरीर में 90 फीसदी हिस्सा पानी होता है।

गौरतलब है कि उम्र बढने के साथ शरीर में पानी घटता है। बूढों के शरीर में महज 50 फीसदी पानी बचता है, लेकिन पानी से शरीर विभिन्न रोगों से लडने की ताकत हासिल करता है। अब यह पानी की गुणवत्ता तथा इस्तेमाल पर निर्भर करता है कि किसी व्यक्ति का स्वास्थ्य कैसा है। हाल के अध्ययनों से पता चलता है कि पानी शरीर के लिए किसी तरह फायदे मंद या नुकसानदेह हो सकता है।

रशियन एकेडमी आफ नेचुरल साइंस से जुडे लेव स्कोर्त्सोव जो रूसी स्वास्थ मंत्रालय से भी संबद्ध हैं, ने हाल ही में शरीर पर पानी के प्रभाव पर अहम जानकारीयाँ दी। लेव के अनुसार पानी शरीर का तापमान नियंत्रित करता है, जिस हवा में हम सांस लेते हैं

उसे आर्द्र बनाता है, यह विटामिन व अन्य पोषक तत्वों को शरीर द्वारा ग्रहण करने लायक बनाता है। साथ ही यह ब्लेड प्रेशर सामान्य बनाए रखने में भी मदद करता है, इससे हार्ट अटैक की आशंका काफी कम हो जाती है। उन्होंने रोजाना तैरने की सलाह देते हुए कहा कि सोने से पहले गर्म पानी (गुनगुना) से नहाना आराम करने का सबसे बढिया साधन है।

रोज कितना पानी पीना जरूरी है :- वैज्ञानिक अब तक एकमत नहीं है कि एक आदमी को दिन में कितना पानी पीना चाहिए। यह मात्रा एक से पांच लीटर तक हो सकती है। यह मौसम या शरीर की जरूरत के मुताबिक घट-बढ सकती है। खिलाडियों मरिजों आदि को ज्यादा पानी पीने की सलाह दी जाती है।

शरीर में पानी की कमी कैसे पता करें :- लेव के अनुसार शरीर में पानी घटने पर त्वचा शुष्क पड जाती है, व्यक्ति जल्द थकान महसूस करने लगता है, उसे एकाग्रता बनाए रखने में दिक्कत होती है। इसके अलावा सिरदर्द, हाईपरटेंशन, एलर्जी, किडनी में निष्क्रियता के अलावा जननांगों का ठीक से काम न करना व जोडों में दर्द होना भी शरीर में पानी की कमी की निशानी है।

क्या सोडा या जूस पानी के विकल्प हो सकते हैं :- लेव ने पानी के विकल्प में सोडा या जूस पीने को सही बताते हुए कहा कि जूस में विटामिन व कैलोरी होती हैं इसलिए यह खाद्य पदार्थ के तौर पर गिना जाना चाहिए।

पानी औषधि भी है :– सामान्य मनुष्य को प्रतिदिन लगभग 250 ग्राम शुद्ध जल अवश्य ही पीना चाहिए। शरीर को स्वस्थ बनाए रखने तथा कार्य करने की क्षमता बनाए रखने के लिए शुद्ध पानी बहुत आवश्यक है। पानी का मुख्य कार्य शरीर में पहुंचकर मल को शुद्ध करना, देह की नमी में आवश्यक संतुलन तथा स्फूर्ती बनाए रखना तथा गर्मी को शांत करना होता है। मनुष्य जो भोजन करता है, उसे घोलकर आवश्यक ऊर्जा बनाने में पानी सहायक होता है। पानी शरीर में रक्त को तरल बनाए रखने में तथा विधिवत् संचार में सहयोग देता हैं।

शरीर में जल का सन्तुलन बिगड जाने पर पीलिया, हैजा, टाइफाइड तथा रक्तहीनता जैसी अनेकों बिमारियां होने की संभावना रहती है। शरीर में 10 से 20 प्रतिशत पानी कम होने पर आँखें झपकनी बंद हो जाती है और आदमी बोल तक नहीं पाता हैं। 20 प्रतिशत अधिक से पानी कम होने पर पसीने के स्थान पर खून की बूंदे निकलने लगती हैं। कम पानी पीने के कारण कब्ज की शिकायत भी आमतौर पर देखने में आती है।

सामान्य व्यक्ति को प्रतिदिन 6 से 8 गिलास शुद्ध पानी धीरे-धीरे समय–समय पर पीना चाहिए। शारीरिक श्रम करने वाले अथवा पसीना अधिक निकलने वाले व्यक्ति को पानी अधिक मात्रा में पीना चाहिए। गर्मी में भी पर्याप्त मात्रा में पानी पीते रहना

चाहिए। पानी को फलों के रस, दूध, कॉफी, शीतल पेय के माध्यम से भी लिया जा सकता है। चाय–कॉफी में कैफिन की मात्रा की अधिक होती है जो मूत्रवर्द्धक है। अतः इससे मूत्र के रूप में पानी के निकल जाने से जितना पानी व्यक्ति पीता है। उससे अधिक मात्रा की आवश्यकता होती है। शराब में शरीर का जलीय अंश नष्ट करने की क्षमता है अतः शराब पीने पर आधी रात के बाद प्यास लगती है।

हमारी लार का 99.6 भाग पानी से बना होता है। पाकस्थली के अम्लरस का 97.5 भाग, मूत्र का 99.3 पित्त का 88.3 भाग, मांस का 75.0 भाग, पसीने का 56.8 भाग और हड्डी का 13.0 भाग पानी का है। एक पूर्ण वयस्क व्यक्ति की निःश्वास वायु के मार्ग से प्रतिदिन 350 सीसी पानी निकलता है। चर्म के रंध्रों के मार्ग से 500 सीसी और मूत्राशय से 2500 सीसी पानी निकलता है।

शरीर की त्वचा लचीली और संवेदनशील बनी रहे इसके लिए पर्याप्त मात्रा में पानी पीना आवश्यक है। पानी शरीर का ताप क्रम कम करता है। पाचन व्यवस्था को संतुलित रखता है तथा अनावश्यक पदार्थों को शरीर से बाहर निकालने में सहयोग देता है।

पथरी, कामला, मधुमेह आदि कई रोगों में पानी दवा का काम देता है। चोट लगे स्थान पर गीली पट्टी बांधने से राहत मिलती है। ज्वर की अवस्था में शरीर का तापमान बढ जाने से शरीर का जल नष्ट हो जाता है अतः रोगी को थोडी–थोडी देर में शुद्ध जल पिलाना चाहिए। तथा ठंडे जल की पट्टी रखनी चाहिए।

यह धारणा निराधार है कि आवश्यकता से अधिक पानी स्वास्थ्य के लिए बहुत लाभकारी होता है। शरीर उतना ही पानी स्वीकार करता है जितनी उसे आवश्यकता होती है। अतः शरीर की आवश्यकता के मुताबिक समय–समय पर धीरे–धीरे ठंडा एवं शुद्ध जल पीते रहना चाहिए। शारीरिक श्रम करने वाला व्यक्ति यदि प्यास लगने पर भी पानी नहीं पीए तो उसकी कार्यक्षमता बहुत कम हो जाती है तथा स्वास्थ्य खराब होने लगता है। सिर में चक्कर आने लगते हैं तथा कंठ सूखकर सांस लेने में कठिनाई अनुभव होती है। पानी हमेशा शुद्ध पीना ही लाभदायक रहता है। कीटाणुयुक्त पानी शरीर में कई तरह की बीमारियाँ पैदा करता है। पानी को उबाल कर साफ भी किया जा सकता है। पानी में फिटकरी घोलकर मैल के नीचे जम जाने के बाद छान लेने से भी पानी साफ किया जा सकता है। फिल्टर के माध्यम से भी पानी साफ किया जाता है।

खतरनाक है शरीर में पानी की कमी :– झुलसाने वाली गर्मी से शरीर में तरल पदार्थों की कमी हो जाती है नतीजन शरीर के ताप में वृद्धि होती है। ऐसे मौसम में पेयजल जीवनदायक है। इसके बावजूद यह एक तथ्य है कि जब हम उन सब पदार्थों पर विचार करते हैं जिनका एक संतुलित आहार में शामिल होना आवश्यक होता है, तब

पानी को इतना महत्व नहीं दिया जाता । भोजन के बिना हम कई दिन जीवित रह सकते हैं, लेकिन पानी के बिना कुछ घंटो में ही हम असहाय से हो जाते हैं। आम व्यक्तियों का यह मानना है कि जब भी हमारे शरीर को पानी की आवश्यकता होती है, तभी हमें प्यास लगती है। यह सत्य है, फिर भी हाल ही के शोधों द्वारा पता चला है कि शरीर में पानी की कमी के कई और भी लक्षण होते हैं, जिनकी ओर ध्यान न देने से कई प्रकार के रोगों का सामना करना पड सकता है। इन रोगों का दवाइयों से इलाज तो संभव है, परंतु दुर्भाग्य से पूर्ण निदान संभव नहीं है। साधारणतया हमारे शरीर से सांस लेने, पसीना आने तथा पेशाब व मल के रास्ते से चार से पांच लीटर तक पानी बाहर निकल जाता है, जिसकी कमी भोजन व तरल पदार्थों के सेवन से पूरी हो जाती है। इन सभी माध्यमों से पानी के उपयोगी होने की दर किसी भी व्यक्ति की क्रियाशीलता, हवा, तापमान, आर्द्रता तथा स्थान की समुद्रतल से ऊँचाई पर निर्भर होती है।

पसीना – आम गतिविधियों से हमें अधिक पसीना नहीं आता अतः इससे पानी का नुकसान भी कम ही रहता है, वैसे दिन में एक या दो लीटर, लेकिन गर्मी में मेहनत करने से शरीर के जल के नुकसान होने की मात्रा बढ जाती है।

पेशाब – पेशाब के जरिये प्रतिदिन एक से दो लीटर तक पानी का निकास शरीर से होता है। इसके साथ ही अनचाहे तत्वों का शरीर से निकास होता है। डिहाइड्रेशन की सूरत में पेशाब की मात्रा कम हो जाती है।

सांस लेना – साधारण गति विधियों के चलते सांस लेने व छोडने की प्रक्रिया से फेफडों से रोजाना 1–2 लीटर जल का वाष्पीकरण द्वारा निकास होता है।

मल त्याग – मल त्याग से होने वाले जल निकास की मात्रा सिर्फ 0.1 लीटर प्रतिदिन ही होती है, लेकिन दस्त लगने की सूरत में यह मात्रा बढकर 25 लीटर तक भी पहुंच सकती है। पानी की कमी के फलस्वरूप हमारे शरीर द्वारा दिये जाने वाले एक भी संकेत पर ध्यान न देने से हमें गंभीर परिणाम भुगतने पड सकते हैं।

डिहाइड्रेशन के लक्षण – (जल न्यूनता के लक्षण) :- अधिक प्यास लगना, दिल की धडकन का तेज होना, चक्कर आना या उल्टी होना, मुँह व जीह्वा का सूखना, रोने पर आंसू न आना, सिरदर्द रहना, सूखी त्वचा आदि कुछ ऐसे लक्षण हैं जो डिहाइड्रेशन की ओर संकेत करते हैं। व्यक्ति की प्रतिदिन की पानी की आवश्यकता उसकी आयु, मौसम, जलवायु, शारीरिक गतिविधि, ग्रहण किए जाने वाले भोजन, भोजन में प्रयुक्त मसालों की मात्रा तथा भोज्य पदार्थों में पानी व नमक की मात्रा पर निर्भर करती है, फिर भी एक आम व्यक्ति को प्रतिदिन 8 से 10 लीटर पानी का प्रयोग अवश्य करना चाहिए। पानी की जरूरत को जल–ग्रहण के अलावा रसीले फलों व सब्जियों के प्रयोग

से भी पूरा किया जा सकता है। उदाहरणतया तरबूज में 75 फीसदी पानी होता है। पानी की कमी अन्य पेय पदार्थों द्वारा भी पूरी कि जा सकती है, लेकिन पेय पदार्थ ग्रहण करते समय कैलौरिज का ध्यान रखना चाहिए।

क्या दिन में आठ गिलास पानी पीना आवश्यक है ? :- ऐसा कहा जाता रहा है कि प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन आठ गिलास पानी का सेवन अवश्य करना चाहिए। ऐसा इसलिए क्योंकि प्रत्येक 15 कैलोरीज के मेटाबॉलिज्म के लिए एक बडा चम्मच जल की आवश्यकता होती है। अतः यदि एक व्यक्ति हर रोज 2000 कैलौरीज का सेवन करता है, तो उसे दो लीटर पानी की आवश्यकता होती है, लेकिन ऐसा कहते समय हम यह भूल जाते हैं कि पानी की काफी मात्रा हमें अपने भोजन से ही प्राप्त हो जाती है। जब यह कमी पूरी नहीं होती, हमें तब इससे अवगत करने के कई संकेत मिलते हैं, लेकिन खयाल रखें कि प्यास लगना पानी की जरूरत का अधिक विश्वसनीय संकेत नहीं है, क्योंकि जब हमें प्यास लगती है तब डिहाइड्रेशन की शुरूआत हो चुकी होती है।

भोजन के द्वारा जल का प्रयोग :- आहार विशेषज्ञों द्वारा ऐसे पदार्थों के सेवन की सलाह दी जाती है। जिसमें जल व रेशे अधिक मात्रा में हो, जैसे सब्जियाँ, फल, सलाद, क्रिम निकला दूध, सूप, इत्यादि। इनके प्रयोग से आप चुस्त-दुरूस्त रह सकते हैं।

पानी भी एक दवा है :- जब कभी किसी को आप आग से जलने या झुलसने से आक्रांत देखे, तुरंत उसके जले–झुलसे अङ्ग को ठंडे पानी में कम से कम एक घंटा डुबोकर रखे उसे परम शांति मिलेगी, जलन दूर होगी और घाव या फफोला नहीं होगा। यदि पूरा शरीर जल जाय तो तुरंत उसको बडे पानी के हौज में या तालाब में डुबो दें सांस लेने के लिए नाक को पानी के बाहर रखें । यह याद रखें कि जला झुलसा अङ्ग पानी में लगातार एक या दो घंटे डुबा रहें उस पर पानी नहीं छिडकना चाहिए – इससे हानि होती है। पानी में डुबोये रखना ही कारगर इलाज है। यदि अस्पताल ले जाने के चक्कर में समय नष्ट करेंगे तो फफोले पड जायेंगे, घाव सांघातिक बन जायेंगे–जलन और कष्ट बढ जायेगा। बहुतों को ऐसा झूठा भ्रम है कि जले अङ्ग पानी में डुबोंने से घाव बढेंगे। सच्ची बात यह कि जले अङ्ग पर पानी के छीटे देने या पानी डालने से घाव बढ जाते हैं। हम तो पीडित अङ्गोको लगातार एक–दो घंटे ठंडे पानी में डुबोये रखने की सिफारिश करते हैं तभी आपको ठंडे पानी का चमत्कार दिखायी देगा। इसी तरह जब किसी को मोच आ जाय या चोट लगे तो तुरंत उस स्थान पर खूब ठंडे पानी की पट्टी लगा दे–बर्फ भी लगा सकते हैं। इससे न तो सूजन होगी, न दर्द बढेगा। गरम पानी की पट्टी लगायेंगे या सेंक करेंगे तो सूजन आ जायेगी और दर्द बढ जायेगा। यदि चोट लगने या कटने से खून आ जाये तो वहाँ बर्फ या खूब ठंडें पानी की पट्टी चढा दें, आराम होगा।

गरम पानी का लाभ वात रोगों में :– जोडों का दर्द, कमर का दर्द, घुटने दर्द, गठिया-कंधे की जकडन में होता है। इसमें गरम पानी का या भाप का सेंक दिया जाता है। इंजेक्शन लगाने के बाद यदि उस स्थान पर सुजन आ जाय या दर्द बढे तो ठंडे पानी की पट्टी या बर्फ लगायें। वहाँ गरम पानी का सेक न करें यदि रात में नींद न आती हो तो सोने के पहले दोनों पैरों को घुटनों तक सहने योग्य गरम पानी से भरी बाल्टी या टब में पंद्रह मिनट डुबोये रखें– इसके बाद पैरों को बाहर निकालकर पोंछ लें और सो जायँ। नींद आयेगी। यह ध्यान रखें कि जब गरम पानी में पैर डुबोयें तब सिर पर ठंडे पानी में भिगोकर निचोडा हुआ तौलिया अवश्य रखें।

सम्पूर्ण भोजन है दुग्ध

दूध में उपस्थित पौष्टिक तत्वों एवं अन्य गुणों के कारण इसे श्रेष्ठ आहार माना गया है, वस्तुतः दूध में वसा साधारणतः 5 से 7 प्रतिशत (गाय के दुध में 3.5 से 4.5 प्रतिशत तथा भैंस के दूध में 5 से 7प्रतिशत) ही होती है। दूध में वसा के अतिरिक्त प्रोटीन (उसे 4.5 प्रतिशत), कार्बोहाइड्रेट (5 प्रतिशत), खनिज लवण (कैल्शियम, फास्फोरस आदि) तथा विभिन्न विटामिन भी होते हैं। इन सभी पौष्टिक तत्वों को सम्मिलित रूप से वैज्ञानिक भाषा में सौलिड्स नॉट फेट (एस. एन. एफ.) कहा जाता है।

दूध शाकाहारियों के लिए प्रोटीन का एक प्रमुख स्त्रोत है। दुग्ध प्रोटीन की विशेषता यह है कि इसमें शरीर के लिए आवश्यक सभी अमीनों एसिड प्रचुर मात्रा में होते हैं। प्रोटीन वैसे तो वनस्पति नहीं है, जिससे सभी एमिनों एसिड प्राप्त हो जाए। दुग्ध प्रोटीन की एक विशेषता यह भी है कि यह खाद्यान्न से प्राप्त होने वाले प्रोटीन की उपयोगिता को बढाता है। यही कारण है कि दूध के साथ खाद्यान्न का सेवन शरीर के लिए उत्तम माना गया है।

दूध अन्य सभी खाद्य सामग्रियों के मुकाबले कैल्शियम का भी स्त्रोत है। प्रतिदिन एक गिलास दूध का सेवन शरीर की कैल्शियम की 73 प्रतिशत आवश्यकता पूरी कर देता है। यह ज्ञातव्य है कि शरीर में कैल्शियम तत्व की कमी हड्डियों संबंधी विभिन्न रोगों का प्रमुख कारण है। गर्भस्थ शिशु के विकास के लिए तथा गर्भवती महिलाओं के हेतु कैल्शियम अति आवश्यकता होता है।

दूध में विटामिन-बी$_{12}$ भी होता है। एक गिलास दूध बच्चों की विटामिन-बी$_{12}$ की 42 से 60 प्रतिशत आवश्यकता की पूर्ति कर देता है। शाकाहारियों के लिए विटामिन-बी$_{12}$ का एक प्रमुख स्त्रोत दूध ही है। विटमिन-बी$_{12}$ रक्त में लाल कोशिकाओं के बनने हेतु आवश्यक होता है एवं इसकी कमी से रक्ताल्पता संबंधी रोग हो जाते हैं। भारत में बच्चों में अंधापन होने का एक प्रमुख कारण विटामिन-ए की कमी है। एक

गिलास दूध बच्चों की विटामिन-ए की 30 प्रतिशत आवश्यकता की पूर्ति कर देता है। अच्छी सेहत के लिए कुछ मात्रा में वसा का सेवन आवश्यक है। विशेषज्ञों के अनुसार एक पुरूष को प्रतिदिन 2200 कैलोरी ऊर्जा की आवश्यकता होती है। वयस्कों के लिए आवश्यक कुल कैलोरी की 25 से 30 प्रतिशत कैलोरी की आवश्यता की पूर्ति वसा द्वारा की जा सकती है। इस आधार पर वसा उपभोग की जोखिम रहित सीमा वयस्क पुरूष के लिए 97 ग्राम एवं महिला के लिए 73 ग्राम आंकी गई है। एक गिलास दूध इस सीमा का लगभग 25 प्रतिशत वसा की आपूर्ति ही करता है। अतः स्पष्ट है कि दूध से प्राप्त होने वाली वसा शरीर के लिए हानिकारक सीमा से कहीं कम है। यदि भोजन में वसा की कमी करनी हो, तो बेहतर होगा कि दुग्ध वसा कम करने की बजाए अन्य स्रोतों से प्राप्त होने वाली वसा कम की जाए, ताकि दूध से प्राप्त होने वाले अन्य पौष्टिक तत्वों से शरीर वंचित न हो।

दुग्ध वसा के कुछ विशेष फायदे :- दुग्ध वसा अन्य स्रोतों से प्राप्त होने वाली वसा के मुकाबले आसानी से पचती है। इस कारण यह रोगियों एवं कमजोर पाचन तंत्र व्यक्तियों के लिए पौष्टिकता एवं ऊर्जा का अच्छा साधन है। यह वसा में धुलनशील विटामिनों का स्रोत है। यह दातों की सुरक्षा में योगदान देता है। पेट की आन्तरिक सतह पर कोटिंग का कार्य कर अल्सर के विरूद्ध कवच का कार्य करता है। दूध का नियमित सेवन रक्त धमनियों को स्वस्थ रखता है।

दूध में उपस्थित कुछ विशेष तत्व शरीर में कोलेस्ट्रॉल स्तर कम करने में सहायक है। अमेरीका में एक अनुसंधान के निष्कर्षों से यह प्रतिपादन किया गया है कि दूध में उपस्थित खनिज लवण रक्त दबाव कम करने में सहायक होते हैं।

दूध में उपस्थित एक फेटी एसिड (लिनोलिक एसिड) विभिन्न प्रकार के कैंसर के विरूद्ध प्रतिरोधक का कार्य करता है। भोजन के बाद गर्म दूध का सेवन कब्ज से राहत दिलाता है। यह दूध में उपस्थित लैक्टोस के कारण तथा जीवाणुओं द्वारा लैक्टोस को अम्ल में परिवर्तित किए जाने के कारण पाया जाता है। वृद्धावस्था में महिलाओं को कैल्शियम की कमी से होने वाले रोगों से बचाव के लिए आवश्यक है कि वे न सिर्फ गर्भावस्था के दौरान उचित मात्रा में दूध का सेवन करें, वरना बचपन से ही दूध एवं दुग्ध उत्पादों का नियमित सेवन करें। यह भी एक भ्रांति है कि दूध के पौष्टिक तत्वों की आवश्यकता मात्र बच्चों को ही होती है; वयस्को को नहीं। वस्तुतः वयस्को एवं वृद्धों के उचित स्वास्थ्य के लिए दुग्ध प्रोटीन लैक्टोस एवं खनिज लवण नितातं आवश्यक हैं। (राजीव)

दुग्ध सेवन विधि :– दूध को अधिक देर तक गर्म नहीं करें क्योंकि ऐसा करने से इसमें पोषक तत्वों का ह्रास होता है। पतले लोगों को मलाईदार दूध और स्थूल लोगों को मक्खन निकाला हुआ दूध पीना चाहिए। आधा किलो दूध अपने विशेष गुणों से एक

पाव मांस और तीन अण्डों से अधिक मूल्यवान है।

दूध पीने का समय :– दूध प्रातः पीना अधिक लाभदायक है। साधारणतया दूध सोने से तीन घण्टे पहले पीना चाहिए । दूध पीकर तुरन्त नहीं सोएं, रात्री को ज्यादा गर्म दूध पीने से स्वप्नदोष होने की आशंका रहती है।

दूध कैसा पिएँ :– ताजा धारोष्ण दूध पीना अच्छा है यदि ऐसा संभव नहीं हो तो दूध-गरम करके पिएं। गर्म इतना ही करें जितना गर्म पिया जा सके। दूध को अधिक उबालने से जीवनोपयोगी अंश नष्ट हो जाता है। दूध को बहुत उलट-पुलट कर झाग पैदा करके धीरे-धीरे घूंट-घूंट पिएं।

दूध में मिठास :– चीनी मिलाकर दूध कफ कारक होता है। प्रायः लोग दूध में चीनी मिलाकर मीठा करके पीते हैं। चीनी मिलाने से दूध में जो कैल्शियम होता है, नष्ट हो जाता है, अतः चीनी मिलाना उचित नहीं है। दूध में प्राकृतिक मिठास होती है । फीके दूध का अभ्यास करने से थोडे दिन में ही उसके प्राकृतिक मिठास का आभास होने लगता है और बाह्य मिठास की आवश्यकता नहीं होती । जहाँ तक हो इसमें चीनी न मिलाऐं। यदि मिठास की आवश्यकता हो तो मीठे फलों का रस मुनक्का को भिगों कर इसका पानी, ग्लूकोज मिलाएं।

दूध का शीघ्र पाचन – किसी–किसी को दूध नहीं पचता, अच्छा नहीं लगता। इसके लिए दूध को उबालते समय एक पीपल डालकर दूध उबाल कर पीएं। इससे वायु नही बनती। दूध बादी करता हो, गैस बनाता हो तो सौंठ का चूर्ण और किशमिश मिलाकर सेवन करें।

दूध किन–किन रोगों में हानिकारक है :– खांसी, दमा, दस्त, पेचिश, पेटदर्द और अपच आदि रोगों में दूध नही पीएं । इसमें ताजा छाछ (मट्ठा) पीना चाहिए।

धारोष्ण दूध – निकलवाकर छानकर ताजा बिना गर्म किए मिश्री भिगोई हुई किशमिश का पानी मिलाकर चालीस दिन पीने से नेत्र ज्योति, स्मरण शक्ति बढती है। खुजली, स्नायुदौर्बल्य, बच्चों का सूखा रोग, क्षयरोग (टी. बी.), हिस्टीरिया, हृदय की धडकन आदि में उपयोगी है। छोटे दुर्बल बालको को बहुत ही लाभ करता है। इसे धीरे-धीरे, घूंट-घूंट लेकर पीएं।

शिशु शक्तिवर्धक – बच्चे बडे होने पर भी दुर्बल हो, सूखा रोग हो तो उन्हें दूध में बादाम मिलाकर पिलाएं।

अम्लपित्त – जिन्हें अम्लपित्त (पेट से कंठ तक जलन) हो, उन्हें दिन में तीन बार दूध पीना चाहिए ।

आंखों में अवांछित वस्तु गिरना – आँख में तिनका या कोई चीज गिर जाए और निकलती न हो तो आंख में दूध की तीन बूंदे डालें। दूध की चिकनाहट से वे आंख

से बाहर निकल जाऐंगें।

श्वास नली के रोग, शक्तिवर्धक – दूध में 5 पीपल डालकर गर्म करें। फिर शक्कर डालकर नित्य सुबह शाम पिएं। इससे जुकाम, खांसी, दमा, फेफडे की कमजोरी, आरम्भिक टी. बी. एवं कमजोरी दूर होती है। यह कुछ महिने करें।

कब्ज – गर्म दूध के साथ इसबगोल की भूसी या गुलाब का गुलकन्द लेने से शौच खुलकर आता है। बवासीर वालो को भी इसका सेवन करना चाहिए। गाय का ताजा दूध तलुओं पर मलने, एडिपर मलते रहने से बवासीर में लाभ होता है।

दस्त – छोटे बच्चों को दस्त हो तो गर्म दूध में चुटकी भर पिसी हुई दाल चीनीडालकर पिलाऐं।

पोषक – माँ का दूध अन्य सभी प्रकार के दूधों से उत्तम से उत्तम होता है। माँ का दूध रोग निरोधक है एवं शक्ति बढाता है तथा संक्रामक रोगों से बचाव करते हुए शरीर को सुन्दर रखता है।

पेशाब की जलन – गर्मी के प्रभाव, गर्म प्रकृति की चीजें खाने से पेशाब में जलन हो तो ठंडे दूध में पानी मिलाकर लस्सी बनाकर पीने से लाभ होता है।

सिर दर्द आधे सिर में – सिर दर्द सूर्य के साथ घटता–बढता हो, तो सूर्योदय से पहले गर्म दूध के साथ जलेबी या रबडी खाऐं। (सुरेश मेहता)

औषधिय पेय

ठण्डाई – ग्रीष्म में जितने भी पेय प्रयुक्त किए जातें है , उनमें पारम्परिक पेय ठंडाई सर्वश्रेठ मानी जाती है। ठण्डाई बनाने की **विधि** – सामग्रीः 100 ग्राम सौंफ, 100 ग्राम पोस्त के दाने, 50 ग्राम कासनी, 50 ग्राम काहू के बीज, 50 ग्रामकुल्फा बीज, 50 ग्राम गुलाब के फूल, 15 ग्राम सफेद चंदन का बूरादा, 10 ग्राम ईलायची, चारों मगज (खरबूजा, मतीरा, ककडी एवं कद्दू के बीज की मींगी) 100 ग्राम। इन सब को मिलाकर रख लें। यह तैयार ठंडाई 50 ग्राम लेकर पानी में भिगों दें , 5 बादाम की गुली और 5 मुनक्का अलग से भिगों दें। तीन घण्टे बाद मुनक्का के बीज निकाल लें और बादाम गिरी (गुली) का छिलका उतार लें, दोनों को पीस कर रख लें। इसके बाद भीगी हुई ठंडाई को पीस कर पानी मे घोलकर छान लें, इसमें मिश्री मिला लें तथा पीसी हुई मुनक्का और बदाम की गुली मिला कर पीवें। यह शीतल, तृप्तिदायक, बलवर्धक, दाह निवारक एवं रक्त पित्त नाशक होने के साथ-साथ स्वादिष्ट पेय है। इसमें दूध, केसर आदि भी मिलाई जा सकती हैं।

गुलकन्द – देशी गुलाब के फूलों से बने गुलकंद को उपयुक्त ठंडाई के साथ पीस कर या ठंडे पानी अथवा ठंडे दूध में मिलाकर भी पिया जा सकता है। 25 ग्राम गुलकंद में 5

ग्राम सौंफ मिलाकर चबाकर खाने से शरीर का दाह (जलन) शांत होता है। नकसीर, मासिक धर्म के समय अधिक रक्तस्राव, पेट और आंखों में जलन आदि व्याधियों के लिए यह लाभ दायक है। यह आतों के रूखेपन और कब्ज को दूर भी करता है। जिन लोगों के गर्मी से त्वचा पर घमोरियाँ या फुंसियाँ अधिक होती हैं, उनके लिए यह अत्यंत उपयोगी है।

ब्राह्मी की ठण्डाई – ताजा ब्राह्मी 5 ग्राम, सौंफ 10 ग्राम, बादाम 5 नग, मुनक्का 5 नग भिगो कर पीस लें, इसमें पानी मिला कर छान लें, इसमें मिश्री मिलाकर पीने से मस्तिष्क सम्बन्धी बीमारियों में लाभ मिलता है। अनिद्रा मानसिक तनाव, उन्माद, अपास्मार आदि में लाभ दायक होने के साथ – साथ यह बुद्धि वर्द्धक भी है।

धान्याक – पानक– सूखा धनिया 10 ग्राम को भिगोकर पीस कर ठण्डाई की तरह तैयार करके पीने से शरीर के दाह (जलन) खासकर पैरों की जलन में लाभ होता है।

मार्कण्डयादि हिम – सनाय के पत्ते 3 ग्राम, मंजीठ 5 ग्राम दोनों को मोटा-मोटा कूट लें, गुठली निकले हुए पिण्ड खजूर 50 ग्राम इन सब को रात को एक गिलास (300 मि.ली.) पानी में भिगों दें। सुबह मसल कर छानकर पिलावें। कुछ लोग बिना मसले ही यह पानी छान कर पिलाते हैं, पर उसमें सनाय की मात्रा अधिक (लगभग 12 ग्राम) लेते हैं। यह पीलिया के रोगियों के लिए रामबाण पेय है। जिन लोगो को पीलिया नहीं है, पर यकृत संबंधी बीमारी पित्त की वृद्धि और कब्ज रहती है, वे भी इसका प्रयोग कर सकते है।

रक्तशोधक हिम – मंजीठ, चोपचीनी, उशब्बा, लाल चन्दन, गुल बनफ्शा सौंफ, गुलाब के फूल ये सभी 50–50 ग्राम लेकर मोटा–मोटा कूट कर रख लें। इसमें से 20 ग्राम लेकर एक गिलास पानी में रात को भिगो दें। सुबह मसल कर छान कर पीवें। मुहासें, फोडे–फुंसी, नकसीर, दाद–खुजली आदि से पीडित लोगों के लिए लाभदायी निरापद पेय है। इसे सुबह भिगो कर शाम को भी लिया जा सकता है। दोनों समय लें तो और भी अधिक लाभ होता है।

षडङ्ग: पानीय :– नागरमोथा, पित्तपापडा, खस, लाल चन्दन, नेत्रबाला, सौंठ सभी पांच–पांच ग्राम लेकर 500 मि. लि. पानी में डालकर उबालें, आधा रह जाये तब छान कर थोडा–थोडा पिलावें। जिन रोगियों को बुखार है, दाह है या प्यास से पीडित हैं; उनके लिए यह पेय अत्यंत लभदायक है।

मेथी जल :- मेथी को दरदरा (मोटा) कूट लें। इस मेथी चूर्ण को 20 ग्राम की मात्रा में लें तथा रात को एक गिलास पानी में भिगों दें। सुबह इस पानी को निथार कर खाली पेट ही पीवें, यह मधुमेह के रोगियों के लिए अमृत के समान हितकारी है। यदि इसमें विजयसार की लकडी का बुरादा भी तीन ग्राम की मात्रा में भिगों दें तो और भी लाभदायी है।

आम्रादि हिम :– आम, जामुन, और अर्जुन की छाल तीनों को मोटा–मोटा कूट लें।

यह 25 ग्राम की मात्रा में लेकर एक गिलास पानी में रात को भिगों कर रख दें, सुबह मसल कर छान कर एक चम्मच चासनी मिला कर पीवें। यह हृदयरोग और रक्तपित्त में लाभदायी है। इसके साथ एक चम्मच मेथी चूर्ण लें, तो यह मधुमेह के रोगियों के लिए भी लाभदायी है, पर तब इसमें चासनी नहीं मिलाना चाहिए।

शर्बत ब्राह्मी :- **सामग्री** – ब्राह्मी की पत्ती पाव भर, बादाम कागजी 20 गिरि, मुनक्का 20 दाने, मिश्री 1 किलो, पानी 2 किलो।

बनाने की विधि :– ब्राह्मी की पत्ती और मुनक्कों को कुल दो किलों पानी में भीगने दे। साथ ही बादाम को अलग पानी में भिगोकर छिलके उतार लें । बाद में ब्राह्मी और मुनक्का को पानी में पीस लें। इन सबको धीमी आंच पर चढाकर गाढा बना लें। जब आधा पानी खीज जाए या जल जाए तब आंच से उतार कर छान लेवें। अब छिले हुए बादामों को खूब बारीक पीस कर उसी काढे में छान कर धोल दें और मिश्री घोल दें और मिश्री को मिलाकर शर्बत की सी चाशनी तैयार कर लें।

शर्बत पोदीना :– **सामग्री**– अनार का रस पावभर, हरे पोदीने का रस पाव भर, चीनी या बुरा आधा किलो। **विधि** – अनार और पोदीने के रस को मिलाकर उसमें चीनीं का घोल करके मिला लेवें। कुछ समय बाद तीनों को अच्छी तरह हिलाकर, बर्फ मिलाकर सेवन करें। **उपयोग** – यह पोदीने का शर्बत गर्मी व प्यास शांत करता है। इससे तबीयत हल्की रहती है। लूव गर्मी से होने वालें रोगों से यह बचाता है।

शर्बत चन्दन :– **सामग्री**- सफेद चंदन का बूरादा 1 किलो, मिश्री 4 किलो, शुद्ध पानी चार किलो रात को सोने से पहले चंदन के बुरादे को भिगो देना चाहिए। सवेरे उठकर उसे मंदी-मंदी आंच पर गर्म करके काढा बना लें। जब आधा पानी आंच पर जल जाए तब उतार कर छान लें। और मिश्री में मिलाकर शर्बत की चाशनी तैयार कर लें कुछ देर में शर्बत तैयार हो जाएगा। **उपयोग** – चंदन का शर्बत गर्मी दूर कर शरीर में तरावट व ताजगी लाता है। नक्सीर आना व गर्मी के रोग दूर होते हैं। साथ ही यह शर्बत पागलपन भी दूर करता है।

विटामिन की आवश्यकता

नवीनतम वैज्ञानिक खोजों ने इस बात की पुष्टि कर दी है कि कुछ ऐसे सूक्ष्म घटक हैं, जिनका हमारे भोजन में होना अति आवश्यक है। यदि इन सूक्ष्म घटकों में से एक भी अनुपस्थित रहा, तो कोई न कोई बीमारी का आक्रमण अवश्य सम्भावी है। इन्हीं आवश्यक घटकों को हम प्रचलित भाषा में विटामिन कहते हैं, अर्थात् विटामिन वे तत्व हैं जो शरीर की क्रियाओं के संचालनार्थ एवं शरीर के रक्षणार्थ आवश्यक हैं। सर्व प्रथम 1912 ई. में फंक ने उन सभी यौगिक समूहों के लिए, जिनमें एमीन उपस्थित होती थी,

विटामिन शब्द का प्रयोग किया था। उन्होंने भोजन के इन घटकों के लिए भी 'विटामिनि' शब्द का प्रयोग किया था। बाद में जब यह पता चला कि भोजन के अभिन्न घटकों में से कुछ में नाइट्रोजन उपस्थित ही नहीं होती, तब विटामिनि शब्द से अंत का 'इ' हटा दिया गया और विटामिन शब्द सभी घटकों के लिए प्रयोग किया जाने लगा, जो हमारे शरीर की उचित आपूर्ति के अभिन्न घटक माने जाते थे, अतः ये घटक 'विटामिन' कहलाने लगे।

विटामिन की कमी से शरीर में लगने वाले रोगों को अल्पपोषी रोग (डिफिसियेन्सी डिजीज) या हीनता जन्य रोग कहते हैं। अल्पपोषी रोग का जब अध्ययन आरम्भ किया गया, उस समय विटामिनों की संरचनाओं की पर्याप्त जानकारी नहीं होने के कारण इन्हें ए. बी. सी. डी. ई. आदि नाम दिये गये और आज भी इनके ये ही नाम रासायनिक नामों की तुलना में ज्यादा प्रचलित हैं। अब तक ज्ञात 37 विटामिनों को दो भागों में विभाजित किया गया है –

वसा में घुलनशील तथा पानी में घुलनशील। विटामिन के कई प्रकार हैं और उनकी अलग–अलग खूबियों के साथ–साथ कमियाँ भी हैं। स्वस्थ शरीर के लिए विटामिनों की जितनी जरूरत है, उतनी ही उनके सतर्क उपयोग की भी ।

विटामिन-ए :- यह हल्के पीले रंग का तैल सदृश द्रव होता है, जिसकी गंध तथा स्वाद मछली जैसा होता है। दूध देने वाले जन्तुओं के स्तन में कैरोटिनायड पिगमेण्ट की मदद से दूध, मांसपेशी, यकृत आदि में कैरोटिन के रूप में इसका निर्माण होता है। कैरोटिन एक हाइड्रोकार्बन होता है जिसे तीन वर्गों–एल्फा, बीटा, गामा, में विभाजित किया गया है। यह स्वरूप मक्का में प्राप्य है। इसकी कमी से नैत्रों में जीरोफ्थेल्मिया, संक्रमण, ब्राकोनिमिया, जिह्वा मूल में विद्रधि, ग्रंथि पाक, कर्णनासा रंध्रों में पीव (मवाद), पाचन संस्थान व मूत्र तथा प्रजनन संस्थान के रोग होते हैं। महिलाओं के मासिक क्रम में गडबडी भी इसकी कमी से होती है। त्वचा सूखती है। बालों का झडना, रतौंधी भी होती है। इसकी कमी से विश्वभर के बच्चों में अंधेपन का रोग फैला हुआ है। बच्चों को बडों की अपेक्षा अधिक आवश्यकता होती है । यह कोशिका विभाजन को उत्तेजित करता है तथा इपीथिलिम ऊत्तको को स्वस्थ रखता है। यह तेल, सब्जी आदि में प्राप्य है।

विटामिन–बी (काम्प्लेक्स):- यह वैसे विटामिनों का एक समूह है जो मुख्यतया भोजन से प्राप्त होते हैं। इस समूह के प्रमुख विटामिन हैं – बी$_1$, बी$_2$, बी$_3$, बी$_5$, बी$_6$, और बी$_{12}$।

विटामिन–बी$_1$:- इसकी कमी से बहुनाडी शोध, बेरी–बेरी, चयापचय की गडबडी, कोष्ठबद्धता, व्रण, हृदय रोग आदि हो जाते हैं। गर्भवती स्त्रियों व दूध पिलाने वाली माताओं को भूख लगने, शारीरिक विकास और तंत्रिका के कुशल संचालन के लिए यह विटामिन अति आवश्यक है। मुख्यतया यह खाद्यान्नों, मूंगफली, चुकन्दर, दाल के

चोकर (छिलके) आदि में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होता हैं।

विटामिन -बी$_2$:- यह मनुष्य के स्वास्थ्य और शारीरिक विकास के साथ-साथ कोशिकाओं के श्वसन के लिए भी आवश्यक है। इसकी कमी से आतों पर पपडी, मुँह के कोणों में कटाव, मुँह जिह्वा, गले में छाले, फूली, मोतियाबिन्द आदि रोग होते हैं। बच्चों में वृद्धि रूक जाती है। यह दूध, हरी सब्जियाँ, गेहूँ, सोयाबिन, टमाटर आदि में होता है।

विटामिन – बी$_3$:– यह लिपिड एवं वसा के उपापचयन, वसीय अम्ल तथा हीमोग्लोबिन के निर्माण एवं कुछ एमीनों एसीडों को सक्रिय करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता हैं इसकी कमी से अनेक प्रकार की बीमारियाँ होती हैं। पैरों में जलन, आतों की अकर्मण्यता, उदर–आजीय रोग, पेशियों में ऐंठन, पाचन की गडबडी, त्वचा पर डर्मेटाइटिस आदि रोग होते हैं। सुषुम्ना के नष्ट होने की सम्भावना रहती है। यह चुकन्दर, मटर, गेहूँ के आटे के चोकर, दही आदि में पाया जाता है।

विटामिन– बी$_5$: – इसे पी. पी. विटामिन के नाम से जाना जाता है। इसकी कमी से पेलग्रा नामक रोग होता है। बच्चों में भार हीनता शक्तिहीनता तथा रक्तहीनता पैदा होती है। यह मुख्यतः दूध, मूंगफली, सोयाबीन, दही आदि में पाया जाता है।

विटामिन – बी$_6$:– साधारणतया यह देखा गया है कि मनुष्य में इसकी कमी नहीं होती है। इसकी कमी से मांसपेशियाँ कमजोर हो जाती हैं। चूहे के रोएं झडने लगते हैं। शारीरिक वृद्धि रूक जाती है तथा चर्मरोग भी होता है यह गर्भवती स्त्री के वमन में फायदा करता है। यह अंकुरित भी होता है। अनाजों, सूखे मेवे, में पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है।

विटामिन – बी$_{12}$: – इसकी कमी से हाइपर ग्लाइसीमिया नामक रोग होता है। यह वनस्पतियों में नहीं होता है।, दूध में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। न्यूक्लिक एसिडों के संश्लेषण, लाल रक्तकणों के निर्माण तथा शारीरिक एवं मानसिक विकास के लिए यह बहुत जरूरी विटामिन है।

विटामिन – सी : – यह विटामिन ताप बर्दाश्त नहीं कर पाता है। इसकी कमी से स्कर्वी नामक रोग तथा तथा सर्दी–जुकाम से लेकर कैंसर तक के रोग जाते हैं। यह विटामिन नींबू, टमाटर, अमरूद, सेव, हरीमिर्च, अंकुरित बीजों, टिण्डे, केलों आदि में पाया जाता है ।

विटामिन –डी : – यह अनाज से कैल्शियम का प्रदूषण कर रक्त में उसकी तथा फॉस्फोरस की मात्रा बनाए रखता है। यह स्वस्थ दांतों के निर्माण के लिए अनिवार्य विटामिन है। इसकी कमी से बच्चों में सूखा रोग एवं अस्ति मृदुता, आमवात, संधिशोध, एलर्जी आदि रोग होते हैं। सूर्य के पराबैंगनी प्रकाश से शरीर यह विटामिन डी तैयार करता है पौधो में एर्गेस्टरॉल उपस्थित होता है। यह रसायन विटामिन को तैयार करता है दूध में विटामिन डी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

विटामिन – ई :– यह विटामिन गर्भवती स्त्री के लिए अत्यावश्यक है। इसकी कमी से संतानोत्पादन शक्ति का क्षय तथा जानवरों की मांस–पेशियाँ, दुर्बल होती है। यह विटामिन जानवरों में कम एवं पौधों में सर्वाधिक उपस्थित रहता है। यह कपास के बीज और तेल, सेम, सलाद, सोयाबीन में पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है।

विटामिन – एच : – इसकी कमी से मांसपेशियों में दर्द होना, त्वचा का पीला पड जाना, रक्त में कोलेस्टेरॉल की मात्रा में वृद्धि होना आदि आम बात है। अभी भी वैज्ञानिकों का शोध इस विटामिन की भूमिका पर चल रहा है। यह मुख्यतः दूध, दही, सूखे फलों, अनाजों आदि में उपस्थित रहता है।

विटामिन – के :– प्रायः सभी विटामिन दूध में पाये जाते हैं, किन्तु यह विलमिन दूध में बिल्कुल ही नहीं पाया जाता है। यह शरीर में प्रोथ्रोम्बिन के स्तर को सामान्य बनाए रखने में सहायक होता है। इसकी कमी से रक्त का जमाव बंद हो जाता है, पित्त की कमी हो जाती है तथा छोटे बच्चों पर बडा प्रभाव पडता है। यह मुख्यतः पालक, टमाटर, सोयाबीन, तथा पत्तीदार सब्जियों में पाया जाता है।

विटामिन –पी :– यह विटामिन सर्व प्रथम ''पैपरिका'' में पाये जाने की वजह से 'पी' नाम से जाना जाता है। विटामिन–सी के साथ वनस्पतियों में सदैव उपस्थित रहता है तथा इसकी वजह से विटामिन–सी सक्रिय रहता है। इसी विटामिन की कमी से स्कर्वी रोग में रक्त-स्राव होने लगता है।

विटामिन - पी. ए. बी. ए. :– यह विटामिन बालों की सुरक्षा एवं सूक्ष्म जीवों की वृद्धि के लिए महत्व पूर्ण है। चूहों में शारीरिक वृद्धि और दुग्ध स्राव नियोजित करता है। इसकी कमी से बाल असमय में ही पकने लगते हैं। यह चावल की भूसी तथा दूध में उपस्थित होता है।

आइनोसिटाल :– यह पेशियों में उपस्थित रहता है। इसकी कमी से चूहें के शरीर और आँखों के चारों और के रोंए झड जाते है। यह सेम, नींबू, संतरा में फाइटिन के रूप में पाया जाता है।

फोलिक अम्ल :– यह इरिथोसाइटो एवं न्यूक्लिक एसिडों के निर्माण में सहायक विटामिन है। इसकी कमी से मानव में रक्त की कमी हो जाती है। यह हरी सब्जियों, दही, आदि में पाया जाता है।

कोलाइन :– इसको विटामिन-बी समूह में रखा जाता है पर इसे वैज्ञानिको ने विटामिन नहीं माना है। इसकी कमी से चूहों के यकृत में वसा का बढना, स्तनपायी जीवों में रक्ताल्पता एवं प्रोटीन की कमी आदि होती है। यह साधारणतया दूध में उपस्थित रहता है।

इस तरह हम पाते हैं कि जैव प्राणियों, विशेष कर मनुष्य के लिए विटामिन अनिवार्य हैं। यदि विटामिनों के ग्रहण पर हम रोक लगा दें, तो कोई भी मनुष्य जीवित

नहीं रह सकेगा। बचपन में ही रोग ग्रस्त होकर समाप्त हो जाएगा विटामिनों की मात्रा एवं उपयोग प्रभाव को मद्देनजर रखते हुए यदि हम अपना भोजन तैयार करें, ग्रहण करें, तो सदैव स्वस्थ–प्रसन्न रह सकते हैं आरोग्य जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

इस प्रकार हमें विटामिनों के बारे में उचित व वैज्ञानिक जानकारी दैनिक जीवन में संजीवनी प्रदान करेगी। (अकिंचन)

वर्ग प्रचलित नाम	रासायनिक नाम	प्रतिदिन ग्रहण करने की मात्रा		
		इकाई	शिशु	वयस्क
वसा में घुलनशील				
विटामिन 'ए'	रेटिनॉल	अन्तरराष्ट्रीय	1500-2500	5000
विटामिन 'डी'	कैल्सिफेरोल	अन्तरराष्ट्रीय	400	–
विटामिन 'ई'	टोकोफेरोल	अन्तरराष्ट्रीय	5-15	20-25
विटामिन 'के'	एंटीहिम्रेजिक	मिग्रा.	–	5
जल में घुलनशील				
विटामिन 'बी$_1$'	थायमिन	मिग्रा.	0.2-1.1	1.1–1.5
विटामिन 'बी$_2$'	राइब्रोफ्लेविन	मिग्रा.	0.4-1.1	1.3-1.7
विटामिन 'बी$_3$'	पेंटोथेनिक एसिड	मिग्रा.	–	10.
विटामिन 'बी$_5$'	निकोटिनिक एसिड	मिग्रा.	5–15	15–18
विटामिन बी$_6$	पायरी डाक्सिन	मिग्रा.	0.2–1.2	1.4– 2.0
विटामिन बी$_{12}$	सायनोकोबालमीन	मेक्रोग्राम	1.0 –4.	0 5.0
विटामिन 'सी'	एस्कार्बिक एसिड	मिग्रा.	30–40	55.
विटामिन 'एच'	बोयोटिन	मेक्रोग्राम	–	150–300
विटामिन 'पी'	साइट्रिन, रूटिन हेस्पेरिडिन	–	–	–
विटामिन 'पी.ए.बी.ए.	पी. एमीनो बैजोइक एसिड		–	
आइनोसिटॉल	मासिल शुगर	–	–	–
फोलिक एसिड	फोसिले शुगर	मिग्रा.	0.05–0.3	0.4
कोलाइन	–	–	–	–

कैल्शियम की आवश्यकता

1) सभी प्रकार के खनिज लवणों में कैल्शियम सर्वधिक महत्व रखता है। हमारे शरीर में अस्थियों के निर्माण में कैल्शियम की आवश्यकता सर्वविदित है। मेकमिलन एण्ड कम्पनी, न्यूयार्क द्वारा हाल में प्रकाशित पुस्तक ''द न्यूयर नॉलेज ऑफ न्युट्रिशन'' में वैज्ञानिकों ने कैल्शियम की कमी से होने वाली बीमारियों और कष्टों का वर्णन किया है। रक्त में कैल्शियम की कमी हो जाती है, फलस्वरूप चोट लगने पर रक्त का बहना रूकता

नहीं। शरीर का स्वाभाविक विकास रूक जाता है, आंतों में फ्लोरा में परिवर्तन आ जाता है, कैल्शियम की कमी से कोई भी मांसपेशियाँ सिकुड या फैल नहीं सकती हैं। हृदय और आंतों की मांसपेशियाँ फैलना और सिकुडना बंद कर देती हैं। कैल्शियम की कमी से मांसपेशियों में स्पन्दन और अस्थिरता उत्पन्न हो जाती है।

कैल्शियम के अभाव से सूजन और शक्तिहीनता आ जाती है। अस्थियों के लवणों का पुनर्पाचन आरम्भ होने लगता है, जिससे सूखा रोग हो जाता है। कैल्शियम की बचत का अभाव हो जाता है फलस्वरूप अस्थियों में कठोरता का सर्वथा अभाव हो जाता है। लंबे समय तक यही चलता रहे तो शरीरिक शक्ति का ह्रास हो जाता है और अन्त में मृत्यु हो जाती है।

गर्भगवती स्त्रियों को और दूध पिलाने वाली माताओं को साधारण स्थिति की अपेक्षा अधिक कैल्शियम की आवश्यकता होती है। बालकों, पुरुषों और स्त्रियों को अलग-अलग मात्रा में कैल्शियम की आवश्यकता होती है। दूध पिलाने वाली माताओं को अतिरिक्त 0.4 ग्राम एवं गर्भवती स्त्रियों को अतिरिक्त 0.4 ग्राम की आवश्यकता होती है।

2) वैज्ञानिकों का मानना है कि हमारे देश में औसतन प्रति व्यक्ति को 200 मिलीग्राम कैल्शियम मिलना आवश्यक है। कैल्शियम की इस मात्रा से हमारे शरीर का गठन ठीक रहता है व रोग निवारण शक्ति प्रबल रहती है। इससे असमय में होने वाली वृद्धावस्था से मुक्ति मिलती है। पाचन संस्थान में विष का प्रभाव हो तो उसे निष्प्रभावी करता है। किसी भी प्रकार के विष को शरीर से बाहर निकालने का कार्य कैल्शियम ही करता है। हड्डियों के निर्माण के लिए, दांतों को विकसित करने में कैल्शियम की अपनी महत्वपूर्ण भूमिका है। अस्थियों के टूटने पर जोडने का कार्य कैल्शियम ही करता है।

ऐंठन हाथ-पैरों का दर्द और थकान से मुक्ति दिलाने के लिए एवं अन्य रासायनिक क्रियाओं को सफलतापूर्वक और सुचारू रूप से सम्पन्न कराने के लिए कैल्शियम की आवश्यकता होती है। महिलाओं में प्रदर एवं मासिक संबंधी अनियमितता के लिए कैल्शियम की अनिश्चित मात्रा ही उत्तरदायी होती है। गर्भ धारण करने वाली स्त्रियों को और दूध पिलाने वाली माताओं को शिशु के शारीरिक विकास के लिए एवं अस्थियों के निर्माण के लिए कैल्शियम की अतिरिक्त मात्रा की आवश्यकता होती है। यदि पर्याप्त मात्रा में कैल्शियम माता के शरीर में नहीं पहुंच पाता है तो जन्म के बाद शिशु को सूखा रोग हो जाता है। इस रोग से शिशु का शरीर अविकसित रह जाते हैं और अस्थियाँ कठोर नहीं हो पाती हैं। दूध पिलाने वाली माताओं के शरीर में दुग्ध निर्माण के लिए यह तत्व प्रचुर मात्रा में होना चाहिए।

3) विशेष रूप से बच्चों को कैल्शियम की अधिक आवश्यकता होती है। बच्चों के शरीर को बढाने के लिए, गुर्दो को ठीक प्रकार से काम करने के लिए, आंतों के

निर्माण में अस्थियों को सुदृढ बनाने और नई अस्थियों के निर्माण में, पाचन संस्थान को सुचारू रूप से चलाने के लिए रोग निवारण शक्ति को प्रबल बनाने के लिए अतिरिक्त मात्रा में कैल्शियम की आवश्यकता है।

4) कैल्शियम की कमी से बच्चों के दांत देर से निकलते हैं, वे कमजोर और दुबले–पतले एवं बीमार से दिखाई देते हैं। इसकी कमी से बच्चे देर से चलना सीखते हैं और मंदबुद्धि हो जाते हैं। उनकी अस्थियाँ कमजोर हो जाती है। असमय वृद्धता के लक्षण उभरने लग जाते हैं।

स्त्रियों को इसकी कमी से प्रदर और मासिक संबंधी रोग हो जाते हैं। कैल्शियम की कमी से प्रसव वेदना अधिक होती है और गर्भपात का खतरा रहता है। प्रसव के उपरान्त वे कमजोर होती हैं।

5) कैल्शियम की इस कमी को पूरा करने के लिए हमें पालक - 0.06 %, बथुआ - 0.15%, मैथी का साग - 0.47%, सरसों का साग - 0.037%, आंवला - 0.05%, करेला - 0.02%, ककडी - 0.01%, केला - 0.01%, परवल - 0.03%, भिंडी - 0.09%, सेम - 0.05%, चोकर सहित आटा - 0.05%, अंगूर - 0.017%, नींबू - 0.09%, मूंगफली - 0.09%, गाय का दूध - 0.12%, सूखा खजूर - 0.12%, हरा धनियां - 0.2%, अखरोट - 2%, सोयाबिन - 0.24%, बादाम - 0.25%, तिल - 1.45% आदि को ग्रहण करना चाहिए।

6) मानव शरीर में लगभग 1500 मिलीग्राम कैल्शियम पाया जाता है। प्रतिदिन मूत्र के साथ 0.1 से 0.3 ग्राम कैल्शियम निकल जाता है। हमारे रक्त में 1से 10 मिली ग्राम प्रति 100 घन से. मी. में यह तत्व विद्यमान रहता है। कैल्शियम का 99 प्रतिशत भाग तो हमारी अस्थियों में ही विद्यमान रहता है। जो भोजन हम ग्रहण करते हैं उससे हमें 300 से 400 मि. ग्रा. कैल्शियम प्राप्त होता है। मैग्निशियम के साथ मिलाकर यह तत्व अस्थियों को कठोरता प्रदान करता है। मेग्निशियम की अनुपस्थिति में कैल्शियम हमारी अस्थियों को कठोर नहीं बना सकता है। अतः अच्छा यही होगा कि सभी प्रकार के खनिज लवणों को हम प्राकृतिक स्त्रोतों से ही प्राप्त करें । (अनिल पोरवाल)

औषधिय गुणों से भरपूर हैं मसाले

परम्परागत भारतीय सब्जी की पाक कला न सिर्फ भोजन में विविधता व स्वाद उत्पन्न करने में समर्थ है अपितु उत्तम स्वास्थ्य का निर्माण करने में भी सक्षम है। अन्न सदा एक रहता है पर तरह-तरह से पकायी हुई सब्जियाँ रूचिकारक व अग्निदीपक होने से भोजन को नवीनता प्रदान करती रहती हैं। सब्जी को स्वादिष्ट बनने के लिए डाले गए

मसाले स्वास्थ्य-रक्षा की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं। पाचन क्रिया ठीक रखने व रोगों से बचाव करने में इनकी प्रभावी भूमिका है। जीरे व अजवायन में प्रोटीन एवं लोहा, राई में फास्फोरस, मेथी में कैल्शियम व धनिए में विटामिन 'ए' प्रचुर मात्रा में औषधीय गुणों के भन्डार विद्यमान है। मसालों की विविधता भोजन में आकर्षण, रूचि व समृद्धि प्रदान करती है। विभिन्न मसालें औषधीय गुणों के भण्डार हैं।

जीरा – इस सर्व प्रसिद्ध मसाले को प्रायः सभी सब्जियों में पकाने के काम में लिया जाता है। जीरा पाचक, दीपक, वायुनाशक, दर्द निवारक व अफरा दूर करने वाला द्रव्य है। उल्टी दस्त व अजीर्ण की यह रामबाण दवा है। जीरा पाचक स्रोतों की वृद्धि करता है। इसमें स्थित तेल क्यूमिड एल्डिहाइड अन्न व दालों की प्रोटीन को सुगमता से पचा देता है। इस तेल को कृत्रिम रूप से थायमोल नामक पदार्थ में परिवर्तित किया जा सकता है जो ऐंटिसेप्टिक व कृमिनाशक हैं। जीरे के संयोग से तरकारियों के सेल्युलोज मुलायम व ऐसी सेल्पुलोज घुलनशील हो जाते हैं।

धनिया – धनिया रस में कसैला, तिक्त तथा कुछ कटु, पाक में मधुर, वीर्य में उष्ण, गुण में स्निग्ध तथा लघु है। प्रभाव में मूत्रप्रवर्तक, अग्निदीपक, पाचक, ज्वरनाशक, रूचिकारक ग्राही, त्रिदोषशामक तथा तृषा, दाह, श्वास, काँस, कृशता एवं कृमि का नाशक है। ये सब गुणधर्म धनियाँ के सूखे बीजों के है।

आमाशय की जलन दूर करने तथा अवांछित द्रव्यों को पेशाब द्वारा बाहर निकालने के लिए धनिया उत्कृष्ट द्रव्य है। भूख बढाने, पेट साफ रखने व तली हुई चीजों को पचाने में यह कारगर है। इससे मूत्र की रूकावट दूर होती है। धनिये के नित्य सेवन से जोडों का दर्द मिटता है व नेत्र–ज्योति की वृद्धि होती है। खूनी बवासीर, युवकों के स्वप्नदोष व स्त्रियों के श्वेतप्रदर में यह गुणकारी है।

सौंफ – रस में कटु, वीर्य में उष्ण, गुण में लघु एवं तीक्ष्ण है। प्रभाव में पित्तवर्द्धक, अग्निदीपक तथा ज्वर, वातविकार, कफविकार एवं पुरीष को बाँधने वाली है। सौंफ मीठी होती है। पाचक, रूक्ष एवं उष्ण है। सौंफ आमातिसार, प्रवाहिका, पेचिश की श्रेष्ठ एवं प्रसिद्ध औषधि है।

टमाटर, कैरी, करौन्दा व बेसन की सब्जियों में आम तौर पर सौंफ का प्रयोग किया जाता है। यह अम्लपित्त, अमीबॉइसिस अफरा व अरूचि का नाश करती है। पुराने सिरदर्द को दूर कर सौंफ नेत्र-ज्योति को बढाती है। चमडी की खुस्की, पेशाब की दाह व मुंह के छालों का निवारण करने में सौंफ का प्रयोग उत्तम है। यह गुर्दे, आंतों, तिल्ली व फेफडों में रोग प्रतिरोध क्षमता उत्पन्न करती हैं।

हल्दी – यह रक्तशोधक, वायुनाशक, सुगंधित तथा त्वचा वर्ण निखारने वाली वस्तु है।

हाल ही में विदित हुआ है कि हल्दी कैंसर की उच्च प्रतिरोधी है तथा एड्स नामक गुण भी इसमें विद्यमान है। यकृत को शक्ति देने तथा नैत्र रोग को मिटाने में इसका प्रयोग किया जाता है। कृमिहीन होने से हल्दी कीटाणुओं का नाश करती है। सब्जी में हल्दी डालने से सम्भावित ''फूड पायजनिंग'' की स्थिति टल जाती है। जुकाम, खांसी, श्वासरोग, कमरदर्द व आंतों की सूजन में हल्दी लाभप्रद है।

सोंठ – यह रूचिकारक, पाचन एवं पौष्टिक मसाला है। इसके प्रयोग से गरिष्ट भोजन का भी पाक हो जाता है। यह कफ, वायु व भारीपन को दूर करती है। भोजन से पूर्व नमक के साथ सोंठ खाने से जीभ व कंठ की शुद्धि होकर भूख बढती है। इसके प्रयोग से मोतियाबिंद रोग से बचाव होता है। अदरक गठिया व हृदयरोग को नष्ट करने की क्षमता रखती है। इसका प्रयोग श्वास, खांसी, गले की सूजन व बुखार में फायदा पहुंचाता है।

लौंग :– यह रुचिकर, वायुनाशक, तथा पाचन करने वाला प्रसिद्ध मसाला है। वमन, अम्लपित्त, पेटदर्द तथा हिचकी की यह प्रसिद्ध दवा है। लौंग के सेवन से पेट का आफरा शीघ्र नष्ट होता है। भोजन को सुगन्धित बनाने के अतिरिक्त यह अजीर्ण, व पेट के कीडों को भी दूर करता है। लौंग से पेट की ऐंठन व आंव नष्ट होती है। इससे मसूढे मजबूत होते है। रक्त विकार, श्वास व क्षय रोग में भी लौंग हितकर है।

राई : – भोजन निर्माण में फली, हरीमिर्च, कढी, सांभर आदिमें राई का प्रयोग किया जाता हैं यह अग्निवर्धक व रूचिकारक है। राई का सेवन करने से खुजली, कुष्ट का नाश हो जाता हैं उत्तेजक व कफनाशक होने से यह पुराने जुकाम को दूर करती हैं।

अजवायन : – अजवायन रस में कटु तथा तिक्त पाक में कटु, वीर्य में उष्ण, गुण में तीक्ष्ण तथा लघु है। प्रभाव में दीपक, पाचन रूचिकारक, पित्तनाशक, शुक्रनाशक, शूलनाशक तथा वात–विकार, कफ–विकार, उदररोग, आनाह, गुल्म, प्लीहा, विकार और कृमि का नाशक है। अपनी विशेष गन्ध व स्वाद के कारण यह रसोईघर की आवश्यक वस्तु बनी हुई है। अजवायन में किसी भी गरिष्ट भोजन को आसानी से पचाने की क्षमता है। यह पाचक उत्तेजक, कीटाणुनाशक, दुर्गन्ध निवारक व पेट दर्द को दूर करने वाली है। पुरानी खांसी, श्वास रोग, लीवर की सूजन एवं चर्म रोगों में अजवायन विशेष लाभ करती है। यह उल्टी, अतिसार तथा पेट के हुकवर्म व थ्रेडवर्म नामक कीडों में लाभ करती है। वर्तमान में अजवायन को हृदय के लिए उत्तम रसायन माना जा रहा है।

हींग :– यह एक विशेष वृक्ष का तीव्र गंध वाला रस है। भारी भोजन को पचाने व गैस का शमन करने के लिए हींग सुप्रसिद्ध है। पेट की ऐंठन, आंव व कमजोरी दूर करके यह लीवर को शक्ति प्रदान करता है। पेट के कीडों को दूर करने के लिए यह बेजोड है। हींग का नियमित सेवन स्नायु-दुर्बलता, मिरगी, दमा, आंतों की सूजन, अग्निमांद्यादि का निवारण करता है।

मेंथी :– सब्जी व अचार में डाली गयी मेथी या दानामेथी प्रोटीन, कैल्शियम, लोहा, क्लोरिन व फास्फोरस की प्रचुरता के कारण उत्तम पोषक तथा बलकारक होती है। इसकी मीठी गंध भोजन को रोचक बनाती है। यह मेंथी पेट के पाचक एंजाइम की मात्रा व गुणवत्ता में वृद्धि करती है। इसका सेवन करने से कमजोर, जोडों का दर्द, सिरदर्द, मन्दाग्नि, मधुमेह व अजीर्ण दूर होता है। मेंथी का प्रयोग मोटापा तथा रक्त में बढे कोलेस्ट्रॉल को नियंत्रीत करने में समर्थ है।

कलौंजी :– काले रंग का यह गर्म मसाला एक पौधे का त्रिकोणाकार बीज है। इसमें टैनिन, एल्ब्युमिन आदि पदार्थ पाए जाते हैं। यह पाचक, वायुहर तथा कृमिनाशक है। कलौंजी यकृत, त्वचा तथा गर्भाशय की शुद्धि करती है। प्रसूता में दूध की वृद्धि तथा पैरों का दर्द दूर करने में यह औषधि के समान है।

इलायची :– इलायची दो प्रकार की होती है। बडी इलायची और छोटी इलायची। छोटी इलायची रस में चरपरि, गुण में लघु, वीर्य में शीत, प्रभाव में कफ, श्वास, काँस, बवासीर, पेशाब की जलन को ठीक करती है तथा वात रोग की नाशक है। बडी इलायची, मुख रोग, शिरोरोग तथा श्वास, काँस, और कण्डूनाशक एवं अग्निवर्द्धक होती है। शीतोपलादिचूर्ण तथा इलायची का चूर्ण चासनी के साथ चाटने से कमर दर्द तथा सूखे रोग में लाभ होता है।

दालचीनी :– दाल चीनी मीठी, तिक्त एवं सुगंधित होती है। यह वात, पित्तनाशक, शुक्रवर्द्धक, कांतिकारक तथा मुखशोध एवं तृषा नाशक है। इसका प्रयोग दाल, शाक तथा औषधियों में प्रयोग किया जाता है।

इस प्रकार से गुणकारी मसालों से युक्त भारतीय सब्जी शरीर का सर्वांगीण पोषण करते हुए विभिन्न रोगों से शरीर की रक्षा करती है।

गुणकारी लौंग :- एक लौंग में नित्य भोजन के बाद चूसने से मुँह की बदबू आनी बंद हो जाती है व दुर्गंधमय श्वांस दूर होती है। शरीर की दुर्गंध कफ, लार, और मुँह-दुर्गंध को दूर करने के लिए इसका उपयोग गुणकारी है। इसके अतिरिक्त श्वास-खाँस में लौंग मुख में रखने से कफ आराम से निकलता है तथा कफ की दुर्गंधि दूर होती है। दंत पीडा दूर होती है और दाँत मजबूत होते हैं। अम्ल पित्त (Acidity) दूर होता है। पाचन-शक्ति बढती है। गठिया की पीडा दूर होती है तथा मुँह में वात के छाले मिटते हैं। 1) लौंग को पीस लें उसमें मिश्री मिलाकर पीने से हृदय की जलन शांत हो जाती है। 2) लौंग को मुँह में रखकर चूंसे, इससे विकृत गला ठीक होता है। मुँह की दुर्गन्ध नष्ट, दांत के दर्द में राहत मिलती है। 3) चाय में लौंग डालकर पीने से खांसी, जुकाम में राहत मिलती है, कारण इसकी तासीर गर्म होती है। 4) लौंग को पानी मे पीसकर गुनगुने जल में मिलाकर पिलाने से तृष्णा शांत होती है और जी मिचला रहा हो तो उसमें राहत मिलती है। 5) लौंग का

तेल मस्तिष्क पर लगाने से व स्वच्छ बारीक कपडे में डालकर सूँघने मात्र से सिरदर्द, बंद नाक और जुकाम में राहत महसूस होती है। 6) लौंग को जल के साथ पीसकर हल्कासा गर्म करलें फिर मस्तिष्क व कनपटियों पर लेप करलें स्नायविक, मस्तक शूल शीघ्र नष्ट होता है। 7) लौंग और हल्दी को जल के संग पीसकर नासूर पर लेप करने से बहुत ही लाभ होता है। 8) लौंग के तेल को संधिशूल के अंगों पर लगाने से शूल नष्ट होता है। 9) सब्जियों में लौंग डालकर सेवन करने व जल के संग निगलने से वायु-विकार शीघ्र नष्ट होता है। 10) जल के संग लौंग का चूर्ण सेवन करने से मूत्र का अवरोध नष्ट हो तकलीफ से राहत मिलती है।

काली मिर्च :- 1) पेट में कीडे होने पर काली मिर्च पीसकर चौथाई चम्मच चूर्ण सबेरे-शाम छाछ के साथ दो सप्ताह तक लेने से लाभ होता है, पेचिस में कालीमिर्च का आधा चम्मच चूर्ण सुबह-शाम पानी के साथ लें। 2) आंखों की रोशनी बढाने के लिए कालीमिर्च का चौथाई चम्मच चूर्ण एक चम्मच शुद्ध घी, आधा चम्मच पिसी मिश्री के साथ सवेरे तथा रात्रि को शयन के पूर्व लेना उचित रहता है। 3) एक कप दूध में चार-पांच कालीमिर्च डालकर उबालिये और गर्म ही पीजिए। खांसी दूर होगी। 4) गला बैठने पर आवाज साफ नहीं निकल रही हो तो भोजन के बाद कालीमिर्च का चुटकी भर चूर्ण एक चम्मच घी में मिलाकर खाइए। आवाज में सुधार होगा। 5) कालीमिर्च घी में घिसकर संपूर्ण शरीर पर मालिश करने से लकवे में लाभ होता है, यह इलाज नियमित रूप से कई दिनों तक किया जाना चाहिए। 6) सर्दियों में जुकाम हो जाने पर दही में पिसी कालीमिर्च मिलाकर खाने से जुकाम में राहत मिलती है। 7) चेहरे पर मुंहासे होने पर थोडे से पानी में कालीमिर्च पीसकर रात को शयन से पूर्व मुंहासों पर लगाकर सोएं। सवेरे ठंडे पानी से चेहरा भली-भाँति धो डालें। एक सप्ताह तक नियमित रूप से यह प्रयोग करने से मुंहासे दूर हो जाएंगें। 8) कालीमिर्च तथा तुलसी की पत्तियों को बराबर पीसकर दांतों के नीचे दबाने से और मञ्जन की तरह मलने से दांतों के दर्द में लाभ होता है। 9) कुत्ते द्वारा काट लिए जाने पर कालीमिर्च पीसकर तुरंत जख्म के स्थान पर लेप कर दें। बाद में डाक्टर को जरुर दिखाएं। 10) बदहजमी में नींबू काटकर कालीमिर्च तथा काला नमक लगाकर सुलगते हुए कोयले पर गर्म कर इसे चूसें। 11) कालीमिर्च आयुर्वेदिक मतानुसार चटपटी, तीष्ण, अग्निदीपक, कफ-वात नाशक, पित्तजनक, रूखी, दमा, शूल, कृमिनाशक होती है। पचने में सरल, पसीना लाने वाली, पेट की गैस और हृदय रोगों में फायदेमंद मानी जाती है। खांसी, प्रमेह व बवासीर में भी गुणकारी है। यूनानी मत में यह कष्टप्रद माहवारी, पक्षाघात, तिल्ली की बीमारी नाशक और कामोद्दीपक भी है। 12) कालीमिर्च, मुलेठी 10-10 ग्राम लेकर कूट लें फिर 25 ग्राम पुराना गुड मिलाकर छोटी-छोटी गोलियाँ बनाकर खांसी में दो-दो गोली पानी से 3-4 बार लें। हरेक

खांसी ठीक होगी। 13) दमा में भूनी अलसी 3 ग्राम, कालीमिर्च 9 ग्राम पीसकर 25 ग्राम मुनक्का की चटनी में मिलाकर चाटे यह एक खुराक है। इसे थोडे दिन तक दोनों समय लगातार लेनेसे फायदा होता है। 14) पक्षाघात की सूरु की हालत में कालीमिर्च पीसकर सरसों के तेल में मिलाकर लेप करें लगातार प्रयोग से लाभ होता है। 15) आधे सिर में दर्द हो तो देसी घी में घिसकर नाक में बुंदे डालें। 16) कब्ज हो, भूक कम लगती है, अपच की शिकायत हो रही हो तो सोंठ, पीपल, जीरा, सेंधानमक, कालीमिर्च बराबर मात्रा में महीन पीसकर देढ-दो ग्राम की मात्रा भोजन के बाद लेनी चाहिए। 17) निर्बल बच्चों के लिए 250 ग्राम गाय के दूध में सात-सात दाने कालीमिर्च पकाकर खिलायें ऊपर से गर्म-गर्म दूध पिलायें।

औषधि भी है हल्दी :- चोट लगने पर : – यदि शरीर के किसी भी भाग में चोट लग गयी हो और वहाँ सूजन आ गई हो तो हल्दी पीसकर एवं उसमें चूना मिलाकर चोट लगे स्थान पर लेप करना चाहिए। यदि चोट भीतर हो तो गाय के गुनगुने दूध में हल्दी का चूर्ण मिलाकर पिलाना चाहिए। ऐसा करने से दर्द कम हो जाता है और यदि घाव हो गया हो तो इसका लेप लगाने से घाव के कीडे नष्ट हो जाते हैं। इस तरह यह कीटकनाशक भी है। व्रण पर उसका चूर्ण रखने पर घाव शीघ्र भर जाता है।

घाव में आराम :– यदि घाव हो गया हो तो घाव पर इसका लेप लगाना चाहिए । यदि फोडा फूटा हुआ न हो तो अलसी के पुल्टिस में हल्दी मिलाकर फोडे पर बॉधने से फोडा जल्दी ही पक कर फूट जाता है एवं मवाद बाहर आ जाता है और घाव जल्दी ही ठीक हो जाता है।

एलर्जी में लाभ दायक :– हल्दी का प्रयोग चर्म रोग जुकाम एवं श्वास की एलर्जी में लाभदायक होता है।

खांसी में लाभदायक :– हल्दी सात माशा, आमी हल्दी दो मासा इन दोनों को पानी के साथ पीस कर मटर के दाने के बराबर गोलियां बनाकर सुबह–शाम जल के साथ सेवन करने से खांसी में आराम मिलता है। यदि खांसी सूखी हो तो गर्म दूध में हल्दी का एक चम्मच चूर्ण मिलाकर पीने से खाँसी ढीली हो जाती है एवं कफ बाहर आ जाता है। सूखी खाँसी में चासनी के साथ भी हल्दी का सेवन उपयोगी होता है। इसकी गोलियाँ बना लेना चाहिए एवं जब खांसी आये तो मुँह में रखकर चूसना चाहिए इससे खांसी का वेग कम हो जाता है।

नेत्र रोग में उपयोगी :– आँख संबंधी बीमारियों में हल्दी विशेष उपयोगी हो जाती है। यदि आँख लाल हो गई तो आँखों पर हल्दी का लेप करने से लालिमा समाप्त हो जाती है। हल्दी को महीन पीसकर कपडे से छान लेना चाहिए एवं शीशी में रख लेना चाहिए। रात को सोते वक्त सलाई से आँखों में लगाना चाहिए, ऐसा करने से आँख की ज्योति बढती है।

उदर गैस में लाभदायक :– यदि पेट में गैस बन रही हो तो पिसी हुई हल्दी 10 रत्ती एवं इतनी

ही मात्रा में काला नमक मिलाकर गर्म जल के साथ सेवन करने से तत्काल लाभ पहुँचता है।

दांत के रोग में उपयोगी :– यदि दांत में दर्द होता हो या अन्य विकार हो, तो हल्दी का मंजन विशेष उपयोगी होता है। मंजन बनाने हेतु हल्दी की गांठ को धीमी आंच पर भुनना चाहिए और भून कर इसे बारीक पीस कर कपडे से छान लेना चाहिए। इससे थोडा सेंधा नमक मिलाकर शीशी में रख लेना चाहिए एवं प्रतिदिन प्रात:काल तथा सायंकाल खाने से पूर्व इसका मंजन करना चाहिए।

कान रोग में उपयोगी :– कान बहने, कानदर्द, कान में पीव या मवाद होने पर हल्दी का प्रयोग विशेष लाभकारी होता है। कान की तकलीफ होने पर हल्दी को उसके मात्रा से दोगुने पानी में महीन पीस कर छान लेना चाहिए। इसके बराबर मात्रा में तिल का तेल मिलाकर धीमी आँच पर पकाना चाहिए जब पककर मात्र तेल ही रह जाय तो उसे शीशी में रख लेना चाहिए और जब भी कान संबंधी तकलिफ हो तो थोडा गुनगुना करके 2-3 बूँद कान में डालना चाहिए। कान की किसी भी प्रकार की तकलीफ में इससे आराम मिलता है।

मुख संबंधी रोगों में भी लाभदायक :– मुख संबंधी तकलीफ तथा हलक तालू एवं मुँह में छाले पड जाने की स्थिति में या गले में गिल्टियाँ निकल आने की स्थिति में हल्दी का सेवन उपयोगी है। मुंह में छाले पडने पर एक तोला हल्दी को कूट पीस कर एक लीटर पानी में उबालना चाहिए जब खूब उबल जाये तो उतार कर ठंडा कर लेना चाहिए । एवं सुबह-शाम कुल्ला करना चाहिए। ऐसा करने से मुख के अंदर के छाले ठीक हो जाते हैं तथा जलन समाप्त हो जाती है। यदि गले में गिल्टियां निकल आयी हो तो हल्दी को महीन पीस कर छः माशा की मात्रा में सुबह जल के साथ सेवन करना चाहिए, साथ ही साथ हल्दी को पानी में पीसकर हल्का गर्म करके गले पर लेप करना भी लाभदायक होता है। प्राचीन ग्रथों के अध्ययन से पता चलता है कि यदि भोजन में नियमित रूप से हल्दी का प्रयोग नहीं किया जाए, तो प्रमेह रोग होने की आशंका रहती है।

क) कमर अथवा सिर में दर्द होने पर एक चुटकी हल्दी को एक कप चाय में उबालकर पीने से लाभ मिलेगा। **ख)** आधा सीसी के दर्द (आधे सिर के दर्द) में एक कप पानी में एक चम्मच पिसि हल्दी डालकर उबालें तथा उसकी भाप को सांस द्वारा अंदर खींचे। कुछ ही समय में दर्द गायब हो जाएगा। **ग)** भोजन में पर्याप्त मात्रा में हल्दी का सेवन करने से रक्त शुद्ध रहता है तथा त्वचा सम्बन्धी रोग, फोडे-फुंसी आदि नहीं होते। **घ)** दूध में हल्दी उबालकर गर्म–गर्म पीने से शरीर के अंदर जमा हुआ बलगम व कफ आसानी से बाहर निकल जाता है। **ड)** हल्दी में नीम की पत्तियों का चूर्ण मिलाकर सरसों के तेल से मालिश करने से बदन की खारिश समाप्त हो जाती है। **च)** प्रदर की शिकायत होने पर गुगल और रसोत के साथ हल्दी का सेवन लंबे समय तक करना चाहिए। **छ)** हल्दी

को दानेदार शक्कर के साथ मिलाकर खाने से शरीर की भीतरी चोट में जमा रक्त का जमाव बिखर जाता है। (वीनाश्री श्रीमाल)

इलायची के औषधीय गुण धर्म :– खाना खाने के पश्चात् इलायची चूसने से खाना शीघ्रता से पचता है। गर्मियों में इलायची की चाय पीना सेहत के लिए अच्छा होता है। माना जाता है कि इलायची हमारे शरीर की गर्मी को कम करती है और रक्त को ठंडा करती है। अगर आपने केले अधिक खा लिए हो, तो 2 इलाइची चूसें। ऐसा करने से केले जल्दी पच जाएँगे और पेट का भारीपन दूर हो जाएगा।

इलायची को मुँह में रखकर चूसने से जी मिचलाना और घबराहट जैसी शिकायतें दूर होती है। इलायची को पानी में उबाले और ठंडा होने पर मिश्री मिलाकर थोडी–थोडी मात्रा में सेवन करे उल्टी नहीं होगी। कफ और खाँसी की शिकायत होने पर छोटी इलायची का चूर्ण दिन में 3 बार सेवन करने से फायदा होता है। काली मिर्च के साथ इलायची के चूर्ण का सेवन मियादी बुखार को दूर करता है। अपच की शिकायत और पेट में आफरा होने पर अजवायन के काढे के साथ इलायची का सेवन करें। इलायची को चबाकर खाने से दांतों में कीडा नहीं लगता है, जिनके मुँह से दुर्गंध आती है, या सांस में बदबू हो, उन्हें दिन में कई बार इलायची चबानी चाहिए ।

इलायची को खस के चूर्ण के साथ पान में रखकर खाने से मुँह की बदबू दूर होती है। यदि पित्ति बहुत उछलती हो तो पहले 2 से 4 चम्मच अरेंडी का तेल पिलाकर पेट साफ करवा दें। फिर निम्न योग प्रयोग करें – इलायची छोटी 10 ग्राम, दालचीनी 10 ग्राम, पीपल 10 ग्राम तीनों महीन पीस लें। इसकी आधा चम्मच की मात्रा दिन में 2 बार मक्खन के साथ सेवन करें। (केवल गृहस्थों के लिए)

हकलाहट, तुतलाहट में छोटी इलायची, कुलंजन, अकरकरा, बच तथा लोंग सभी 25–25 ग्राम लेकर चूर्ण करलें। इस चूर्ण का आधा चम्मच की मात्रा में सुबह–शाम ब्राह्मी, अर्क के साथ 2–3 माह तक लें। भोजन के आधे घण्टे बाद 3–3 ढक्कन सरस्वतारिष्ट, इतनी ही पानी मिलाकर दोनों समय लें। लाभ होगा।

महिलाओं को श्वेत प्रदर में वंश लोचन (नीलीधारी वाला) छोटी इलायची, नाग केसर प्रत्येक 50–50 ग्राम लें। इसको महीन चूर्ण कर लें, इसमें 150 ग्राम मिश्री पीस कर, मिलाकर रख लें। इसको एक–एक चम्मच की मात्रा में दो बार मलाई युक्त दूध के साथ लें, लगातार दो महिने लेने से पुराने से पुराने श्वेत प्रदर में फायदा होता है।

मुंह के छाले यदि बहुत परेशान कर रहे हो, तो छोटी इलायची, कवाब चीनी, कत्था तथा संगराहत समान भाग लेकर चूर्ण करें इस चूर्ण को दिन में कई बार मुंह में मलकर जल से कुल्ला कर लें। यदि किसी को **बिच्छू काटे**, तो आप 5 से 10 दाना इलायची मुंह में

रखकर मुंह बन्द करके खूब चबाएँ। बाद में अपने मुंह की भाप (भगवान का नाम लेते हुए) रोगी के दोनों कान में फूकें, तत्काल आराम मिलेगा। **लिवर की सूजन, पीलिया** आदि में 10 ग्राम आंवला, 25 ग्राम जीरे के साथ चूर्ण कर लें। इसकी 1-1 चम्मच की मात्रा को गाय के दूध से 2 बार लें। **आंव के दस्त** में 20 ग्राम इलायची को 5 ग्राम सेंधा नमक के साथ चूर्ण कर लें। आधा चम्मच की मात्रा में जल से 2 बार लें।

1) **उल्टी (वमन)** हो रही हो तो पोदीना, इलायची, पीपर एक साथ बराबर मात्रा में लेकर चूर्ण कर लें। इसको आधा चम्मच की मात्रा में जल से सेवन करें। **गुर्दे की पथरी** में इलायची, शिलाजीत, पीपल के समभाग चूर्ण में उसी के बराबर मिश्री मिलाकर एक चम्मच की मात्रा में सुबह-शाम जल से दें। कुछ दिन लेने से फायदा होता है। 2) **खाँसी** में इलायची, दालचीनी, पुष्कर मूल के समभाग चूर्ण को आधा चम्मच की मात्रा में मुनक्का की चटनी दो बार चाटें। 3) **हैजा** (उल्टी दस्त) में 10 ग्राम इलायची को 1 लीटर पानी में पकाएं। जब पाव भर पानी बचे, उसे ठंडा कर लें। यह जल घूंट-घूंट कर थोडी-थोडी देर से देने में हैजे के प्रकोप, प्यास तथा पेशाब रूकना आदि में अत्यन्त लाभप्रद है। चौथाई चम्मच इलायची चूर्ण को अनार के शर्बत से लेने पर '**उल्टी**' में फायदा होता है। **4)** आंवले के आठ चम्मच रस में दो नग इलायची पीसकर प्रातः सायं दें या दही के पानी में ककडी खरबूजा के बीज 2 नग, इलायची के साथ पीसकर दो बार लें। **5)** इलायची, कालीमिर्च, दालचीनी, सोंठ, धनियां समभाग लेकर मोटा चूर्ण कर लें। इस चूर्ण को दो चम्मच की मात्रा का 250 ग्राम पानी में पकाएँ। जब आधा पानी रह जाए, तो गुनगुना ही छान कर पिला दें । तेज से **तेज जुकाम** में यह लाभप्रद है। **6) कफ और खाँसी** दोनों में इलायची व सोंठ का समभाग चूर्ण चौथाई चम्मच की मात्रा में मुनक्का की चटनी में लेना चाहिए। **7)** इलायची, अजमोद, चित्रक, आँवला,सोंठ, सैंधानमक, बराबर लेकर चूर्ण बनाकर घर में रख लें। यह चूर्ण **पेट दर्द, अजीर्ण, अपच, गैस** सभी में गर्म जल से एक चम्मच की मात्रा में दें। इलायची के चूर्ण को नाक में सूघँने से छींक आकर सरदर्द कम होता है।

संतुलित स्वास्थ्य के लिए सब्जियों की उपयोगिता

हमारे भोजन को पौष्टिक एवं संतुलित बनाने में सब्जियों का स्थान प्रमुख है। सब्जियों से कार्बोहाईड्रेटस, विटामिन तथा खनिज लवण प्राप्त होते हैं। इनको अपने भोजन के साथ अपनाकर संतुलित आहार लिया जा सकता जिससे कुपोषण से वंचित रखा जा सके। सब्जियां भोजन का केवल एक भाग भी नहीं बल्कि ये मनुष्य को स्वस्थ रखने के लिए पोषक तत्व भी प्रदान करती है। जो लोग आहार में सब्जियों का कम प्रयोग

करते हैं, या इनका बराबर उपयोग उचित रूप से नहीं करते हैं, वे खनिज पदार्थों की कमी से होने वाले रोगों के शिकार हो जाते हैं। अतः सब्जियों को अपने आहार में महत्व देते हुए अपने भोजन को संतुलित करें।

सब्जियों का महत्व :– सब्जियों में विटामिन प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं, विटामिन वे कार्बनिक पदार्थ होते हैं जो भोजन में कम मात्रा में उपस्थित होते हैं, लेकिन शरीर की सामान्य वृद्धि तथा स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए अति–आवश्यक होते हैं। स्वास्थ्य रक्षा में इनका बडा महत्व होता है तथा इनकी कमी से स्वास्थ्य असंभव सा हो जाता है। विटामिन दो तरह के होते हैं, वसा विलय विटामिन जैसे विटामिन ए, डी, ई, तथा के एवं दो जल विलेय विटामिन जैसे विटामिन सी, थाइमिन, राइबोफलेविन, नियासिन तथा दूसरे बी काम्पलैक्स समूह के विटामिन सब्जियों में निम्न विटामिन पाए जाते हैं।

1) विटामिन 'ए' – इसकी कमी से रतोंधी, शुतकासिपाक, दुखती आँख, श्वास तथा पाचन पथ के रोगों की संक्रमणता तथा त्वचा में खुर्दुरापन एवं शुष्कता बढ जाती है। टमाटर, सलाद, पालक, मेथी तथा हरी मिर्च आदि सब्जियाँ विटामिन ए से भरपूर होती हैं।

2) विटामिन 'बी'– इसे राइबोफलेबिन बी 1, थाइनिन बी 2 निकोटिमिन एसिड बी 5 तथा पाइरोडोक्सिन बी 6 में बांटा जा सकता है। विटामिन बी के अभाव से बेरी-बेरी रोग, भूख कमी, वजन में कमी और शारीरिक तापमान में कमी हो जाती है। इन कमियों को दूर करने के लिए इन सब्जियों का इस्तेमाल करना चाहिए जैसे मटर, टमाटर, सलाद, हरी मिर्च, तथा सेम ।

3) विटामिन 'सी'– इसे एस्कोर्बिक एसिड भी कहते हैं। ये विटामिन रक्तवर्द्धक, दाँतों तथा नरम हड्डियों की रक्षा के लिए एवं स्वास्थ्य के विकास में सहायक होता है। इस विटामिन की कमी से स्कर्वी रोग, गठिया, मसूडों का कमजोर होना, शक्ति का ह्रास होना, घावों के ठीक होन में विलंब आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। टमाटर, मेथी, सलाद, पालक, हरीमिर्च, अन्य हरी सब्जियाँ इस विटामिन का स्रोत होती हैं।

4) विटामिन 'डी'– मजबूत हड्डियाँ एवं स्वस्थ दांतों की स्वस्थ बनावट के लिए आवश्यक होता है। इसकी कमी से रिकेट्स तथा बच्चों में सूखा रोग हो जाता है। यह सूर्य की धूप तथा सभी प्रकार की हरी सब्जियों में पाया जाता है।

5) विटामिन 'ई'– ये विटामिन प्रजनन क्षमता के लिए अति–आवश्यक होता है। इसकी कमी से शरीर में बंध्यता आ जाती है। विटामिन 'ई' पत्तियों वाली सब्जियों में अधिक पाया जाता है।

सब्जियों में खनिज पदार्थ प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। मनुष्य में शरीर की वृद्धि एवं विकास के लिए यह आवश्यक है कि उसके भोजन में खनिज पदार्थों का समावेश हो।

सब्जियां खनिज लवणों की प्रचुर मात्रा भोजन में प्रदान करती है। खनिज पदार्थों में केल्शियम, लोहा, फास्फोरस, आयोडिन, तथा सोडियम मुख्य हैं। कैल्शियम के लिए सेम, सलाद, पालक, मटर एवं टमाटर का सेवन बहुत ही लाभप्रद होता है।इसी प्रकार लौह तत्व रक्त कणिकाओं में हीमोग्लोबिन के साथ मिलकर; लौह हीमोग्लोबिन का निर्माण करता है। लौह तत्व टमाटर, पालक तथा सलाद में प्रचूर मात्रा में पाया जाता हैं। फास्फोरस के लिए पालक को भोजनका हिस्सा बनाना चाहिए। आयोडिन की कमी से घेघों रोग हो जाता है। भिंडी तथा पालक में भी आयोडिन प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। सब्जियों में प्रोटीन भी पाया जाता है - प्रोटीन के मुख्य कार्य शरीर के ढाँचे को तथा संरचना को बनाए रखना है तथा संक्रमण से लडने के लिए एंटी बाडिज का निर्माण करना है। लेग्यूमिनेसि कुल की जितनी भी सब्जियाँ हैं उनमें प्रोटीन की प्रचुर मात्रा पाई जाती है। उदाहरण के लिए सेम, मटर, तथा ग्वार। सब्जियाँ भोजन के अम्लीय प्रभाव को दूर करती हैं। लौकी, चौलाई आदि के सूप का औषधी के रूप में सेवन किया जाता है। (बलवीर सिह एवं रघुनंदन शर्मा)

सब्जियों से रोगोपचार - हरी धनिया (Corlander) :- हरी धनिया सुगंधित, रूचिप्रद, पाचक, शीतल और पित्तनाशक होती है। हरे धनिये को बारीक काटकर दाल, साख तथा अन्य पदार्थों में डालने से पदार्थ सुगंधित तथा रूचिकर बनते हैं। चटनी बनाकर भी इस का उपयोग किया जाता है। परंतु इसका रस पीने से विशेष लाभ होता है। हरे धनियें में प्रजीवक – ए होने से यह पेट एवं आँखों के लिए विशेष लाभप्रद है। हरी धनियाँ के बीज एवं पत्र मधुर एवं विशेष रूप से पित्तनाशक हैं। विशेषतया इसे पित्तविकार–दाह, अंतर्दाह आदि की शांति के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

पालक (Spinacb) :- पालक कुछ तीखा, मधुर पथ्य एवं शीतल होता है। यह रक्तपित्त, कफ, श्वास तथा विषदोष का नाश करता है। इसका रस मूत्रल होता है।

करेला (Hairy Mordica, Bitter Gourd) :– खाली पेट एक गिलास करेला का रस पीने से पीलिया के रोग में अचूक लाभ होता है। करेला कडवा, अग्निदीपक, लघु, उष्ण, भेदक, शीतवीर्य एवं पथ्य होता है। करेला अरूचि, कफ, वायु, रक्तदोष, बुखार, कृमि, पित्त, पाण्डु, और कोढ को दूर करने में सहायक है। कद्दूकस पर करेले को घिसकर निकला हुआ रस खाली पेट पीने से अच्छा लाभ होता है। साग के रूप में खाने से भी करेले स्वास्थ्यप्रद हैं। करेले का रस रक्त शोधक है। इसके सेवन से भूख लगती है, कब्ज दूर होती है, आँतों में स्थित अनिष्टकर जीवाणु दूर हो जाते हैं, साथ ही अर्श में भी आराम मिलता है। मूत्रल होने से करेला मूत्र पिण्ड की जलन में लाभकारी है तथा पथरी को भी निःशेष कर देता है। मधुमेह में करेला अत्यंत गुणकारी है। सन्धिवात और पीलिया के रोगियों को खाली पेट एक गिलास करेले का रस देने से लाभ होता है।

किस बीमारी में कौन-सा जूस लें

जूस का सेवन पेय पदार्थों के रूप में सर्वत्र प्रचलित है, लेकिन आम तौर पर लोगों को इसका ज्ञान नहीं होता है कि कब कौन सा जूस लेना श्रेयष्कर होता है। यदि इसका ध्यान रखा जाए तो इनसे बहुत सी बीमारियों का सफल इलाज ही नहीं, बल्कि बीमारियों को निकट आने से भी रोका जा सकता है। किस बीमारी में कौन सा जूस स्वास्थ्य वर्द्धक होगा, इसकी एक जानकारी :–

उच्च रक्तचाप (हाई ब्लड प्रसर) :- अंगूर, संतरा, मौसम्बी और ज्वारों के रस के साथ मानसिक तथा शरीर को आराम की आवश्यकता है।

निम्न रक्त चाप (लो ब्लड प्रेसर) :– मीठे फलों का रस लें किन्तु खट्टे फलों का उपयोग न करें । अंगूर और मौसम्बी का रस तथा दूध भी लाभदायक है।

पीलिया :– अंगूर, सेव, रसभरी, मौसम्बी, संतरा का रस लाभकारी रहेगा। अंगूर की अनुपलब्धि पर लाल मुनक्के तथा किसमिस का पानी। गन्ने को चूसे। केले में 1.5 ग्राम चूना लगाकर कुछ समय रखकर फिर खाएं।

कैंसर :– गेंहू के ज्वारे, और अंगूर का रस लें।

एसिडिटी :– पालक, ककडी, तुलसी का रस, फलों का रस अधिक लें। अंगूर, मौसम्बी, संतरों का रस तथा दूध भी लाभदायक रहेगा।

दमा :– चुंकदर, मीठी द्राक्ष का रस, सब्जी का सूप अथवा मूंग का सूप और बकरी का शुद्ध दूध लेना लाभकारी होगा। घी, तेल, मक्खन वर्जित है।

रक्त शुद्धि के लिए :– इसके लिए नींबू, टमाटर, पालक और सेव का रस लें।

भूख लगाने के लिए :– भूख लगाने के लिए दो भाग टमाटर का रस, एक भाग अनन्नास का रस भोजन से पूर्व केवल चार औंस 100 ग्राम लें, प्रातः काल खाली पेट नींबू का पानी पिएँ । खाना खाने से पूर्व सोंठ, सेंधा नमक मिलाकर लें।

संधिवात :– पालक, ककडी, हरा धनिया, नारियल का पानी तथा सेब एवं गेंहुँ के ज्वारे लें।

डायबिटीज :– इसके लिए खोपरा, करेला, और पालक का रस लें।

पथरी :– पथरी के लिए ककडी का रस श्रेष्ट है। सेब अथवा कदू (घिया) का रस भी सहायक है।

अल्सर :– अंगूर का रस लभकारी है। साथ में दूध का सेवन भी फायदेमंद रहेगा।

सिरदर्द :– ककडी और खोपरे का रस मिश्रण लें।

किडनी का दर्द :– पालक, ककडी और खोपरे का रस फायदेमंद होता है।

फ्लू :- मौसम्बी के रस का सेवन करें।

वजन घटाने के लिए :- अनन्नास, तरबूज, तथा नींबू का रस फायदे मंद होता है।

सर्दी–कफ :– इसमें मूंग अथवा सब्जी का सूप लेना श्रेयष्कर हैं।

कोलाइटिस:– इसमें पालक और अनन्नास का रस लाभदायक है। खोपरा, ककडी के रस का मिश्रण भी उपयोगी है।

फोडें–फुन्सियों में :– पालक, ककडी और खोपरे का रस लें।

विभिन्न फलों की उपयोगीता

अनन्नास (Pineapple) :– अनन्नास के रस में स्थित क्लोरीन मूत्रपिंड को सौम्य उत्तेजन देता है और शरीर के भीतरी विषों को बाहर निकाल देता है। पका हुआ अनन्नास पित्तनाशक है। यह रूचिकर, पाचक और वायुकर है, पचने में भारी, हृदय के लिए हितकर और पेट की तकलीफों, पीलिया एवं पाण्डुरोग में गुणकारी है। अनन्नास भूखे पेट नहीं खाना चाहिए । अनन्नास का बाहरी छिलका और भीतरी गर्भ निकालकर, शेष भाग के टुकडे करके, उसका रस निकालकर पीना चाहिए। गर्भवती महिलाओं को कच्चा अनन्नास नहीं खाना चाहिए एवं पके हुए अनन्नास का भी अधिक उपयोग नहीं करना चाहिए। अनन्नास का ताजा रस कण्ठ पर शांतिप्रद प्रभाव डालता है एवं गले के रोगों से रक्षा करता है। डिप्थेरिया में और गले तथा मुँह के जीवाणुजन्य रोगों में यह बडा ही प्रभावशाली सिद्ध होता है।

खरबूजा (Melon) :- शीतल, मधुर, तृप्तिकारक, बलवर्धक, वीर्यवर्द्धक, कफकारक मूत्रजनक, वायु, पित्त एवं कब्ज निवारक होता है। यह मानसिक, शारीरिक, स्नायुविक तथा कामशक्ति वर्द्धक होता है। यह मूत्रीय अम्लता दूर कर उन्माद का नाश करता है। गले व सीने की जलन एवं यकृत की सूजन मिटाता है।

खरबूज के उपयोग :- 1) इसमें प्राकृतिक जलीय अंश की मात्रा ज्यादा रहने से मूत्र नलिकाएँ साफ हो जाती हैं तथा गुर्दे संबंधी रोग दूर हो जाते हैं। 2) खरबूजे के सेवन से शरीर में संचित मलदोष एकदम बाहर निकलने लगता है। शरीर शुद्धि होने लगती है। संग्रहणी और आंव के रोगियों के लिए यह फल विशेष लाभदायक है। 3) खरबूजे के सेवन से मुँह में मिठास धुलती है और मुँह की दुर्गंध दूर होती है। 4) खरबूजे के नियमित सेवन से हृदय रोग, रक्तचाप तथा रक्त संचार संबंधी रोग दूर होते हैं। 5) भोजनोपरांत सुबह–शाम खरबूज के सेवन से एक्जीमा दूर होता है। 6) यह पेट की गर्मी निकालता है, पथरी में लाभप्रद है। जिगर की बीमारियों तथा पीलिया में इसका सेवन गुणकारी है।

खरबूज के छिलकों का प्रयोग :– खरबूज के छिलकों में पोटाश व लवण प्रचुर मात्रा में रहने से यह क्षारीय होता है जिससे बहुत से रोग ठीक करने में हितकारी है । मसलन खरबूज के छिलकों का सूप बनाकर पीने से मूत्र की मात्रा बढ जाती है। यह मूत्राशय की

पथरी को तोडकर निकाल देता है।

खरबूज के बीजों का प्रयोग :– 1) खरबूज के बीज गजब की तरावट तथा ठंडक देने वाले होते हैं। ये स्मरण शक्ति बढाते हैं तथा शरीर में ताकत की वृद्धि करते है। बीजों की मिगियां में काफी मात्रा में प्रोटीन तथा वसा रहता है। ये मिगियां ठंडाई बनाने में प्रयोग में लाई जाती है। जो स्वास्थ्य तथा मस्तिष्क के लिए उपयोगी रहता है। 2) ये मूत्र लाने वाला तथा पोषण प्रदान करने वाला होता है। 3) खरबूज के बीज पीसकर उन्हें घी में भूनकर अल्पमात्रा में सुबह-शाम खाने से उन्माद, तंद्रा, आलस्य तथा चक्कर आने में बहुत लाभ होता है।

सावधानियाँ - खरबूज के सेवन से पूर्व गीले तर कपडे में लपेट कर रख दें जिससे उसकी गर्मी बाहर निकल जाए। खाली पेट तथा भोजन से पूर्व खरबूजा खाने से पित्तप्रकोप की सम्भावना बढ जाती है। बहुत अधिक मात्रा में खरबूजा न खाएँ। बाजारू कटे तथा बासी पिलपिले खरबूज भी न खाएँ । खरबूजा खाकर पानी न पीएँ इससे पेचिस या उल्टी होने की संभावना रहती हैं (रजनी मौदगिल)

नारियल (Coconat) :- हैजे में हरे नारियल का पानी अनिवार्य है। हरे नारियल का पानी शीतल, आदक, पोषक, मूत्रल, मूत्र का रंग सुधारने वाला और तृषाशामक है। जब कच्चा नारियल हो और उसके भीतर गर्भ (मलाई) का निर्माण न हुआ हो तब उसका पानी कम मीठा, कुछ खट्टा या कसैला–सा होता है, किंतु भीतरी गर्भ का बनना आरम्भ होने के बाद उसका पानी एकदम मीठा हो जाता है। नारियल के पानी की शर्करा शरीर में तुरंत ही शोषण हो जाता है। नारियल का पानी जीवाणु मुक्त होने से अत्यंत सुरक्षित है। कोमल और हरे नारियल के पानी में उपर्युक्त तत्व प्रजीवक होते हैं। ज्यों-ज्यों यह पककर पीला होने लगता है त्यों–त्यों इसके तत्वों का ह्रास होता जाता है। इसलिए कोमल नारियल का ही पानी पीना चाहिए। नारियल के ताजे पानी का उपयोग तुरंत कर लेना चाहिए। नारियल के पानी में ''प्रजीवक-विटामिन सी'' की कमी है, किंतु नींबू का रस मिलाकर इस कमी को दूर किया जा सकता है।

नारियल मूत्रल होने से मूत्र संबंधी तकलीफों और पथरी में बहुत ही प्रभावकारी होता है। यह हैजे में भी बहुत उपयोगी है। हैजे में दस्त और उल्टी के कारण शरीर में जल की अल्पता तथा क्षारों की कमी आ जाती है, फलस्वरुप जीवन के लिए खतरा खडा हो सकता है। ऐसी स्थिति में नारियल के पानी से शरीर को आवश्यक जल और क्षार उपलब्ध हो जाते हैं।

मौसंबी (sweet lemon) मौसंबी का रस पीने से जीवन-शक्ति और रोगों के प्रतिकार की शक्ति बढती है। मौसंबी मधुर, स्वादिष्ट, शीतल, तर्पक, तृषाहार, ताजगी

देने वाली, गुरू, वृष्य, पुष्टिकारक, धातुवर्धक एवं ग्राही है। यह वात, पित्त, कफ, वमन, रक्तरोग और अरूचि में गुणकारी है। मौसंबी में क्षारतत्व है जो रक्त की अम्लता को कम करता है, जब ज्वर आदि में अन्य आहार न लिया जा सकता हो तब शक्ति बनाए रखने के लिए तथा शरीर को पोषण देने के लिये मौसंबी का रस बहुत गुणकारी है। इसके रस से पेट की अम्लता कम होती है, भूख लगती है और पाचन संबंधी तकलीफें दूर होती हैं।

सीताफल :– आयुर्वेद के मतानुसार शीतल, पित्तशामक पौष्टिक, तृप्ति कर्ता मांस एवं रक्त वर्धक, उल्टी बंद करने वाला बलवर्धक वात दोष शामक और हृदय के लिए हितकारी है। आधुनिक विज्ञान के मतानुसार सीताफल में कैल्शियम, लोहतत्व, फास्फोरस, विटामिन, थायमिन, रिवोफ्लोवीन एवं विटामिन सी इत्यादि है। जिन लोगों की प्रकृति गरम अथवा पित्त प्रधान है उनके लिए सीता फल अमृत के समान गुणकारी है।

जिन लोगों का हृदय कमजोर हो, हृदय का स्पन्दन खूब ज्यादा हो, घबराहट होती हो, उच्च रक्तचाप हो ऐसे रोगियों के लिए भी सीताफल का नियमित सेवन हृदय को मजबूत एवं क्रियाशील बनाता है।

जिन्हें खूब भूख लगती हो, आहार लेने के उपरांत भी भूख शांत न होती हो – ऐसे 'भस्मक' रोग में भी सीताफल का सेवन लाभदायक है।

विशेष :– सीताफल गुण में अत्यधिक ठंडा होने के कारण ज्यादा खाने से सर्दी होती है, ठंड लगकर बुखार आने लगता है, अतः जिनकी कफ-सर्दी की तासीर हो, ऐसे व्यक्ति सीताफल का सेवन बहुत सोच-समझकर सावधानी से करना चाहिए, अन्यथा लाभ के बदले हानि होती है। **(ह. सेनी)**

अंगूर :– अंगूर सभी फलों में स्वादिष्ट एवं उत्तम फल है। पकने पर यह अति सुमधुर और गुणकारी हो जाता है। इसमें सर्वोत्तम प्रकार का ग्लूकोज एवं फ्रक्टोज होता है, जिससे रस पेट में पहुँचते ही शीघ्रता से सुपाच्य हो शरीर में ऊर्जा तथा ताप प्रदान करके शक्ति की वृद्धि करता है।

अंगूर बल, वीर्यवर्धक, आँखों के लिए हितकारी और वात–पित्त की वृद्धि को दूर करता है तथा खून भी बढाता है। सभी तरह के ज्वर में लाभकारी है।

अंगूर में शर्करा 25% होती है। लोहा पर्याप्त मात्रा में होता है, जो खून में हिमोग्लोबिन बढा देता है। खून की कमी वाले रोगियों के लिए यह वरदान स्वरूप है। यह प्रबल कीटाणुनाशक है। इससे आँतें तथा लीवर और किडनी (गुर्दे) अच्छी तरह काम करते हैं, कब्ज दूर होती है, मूत्र–मार्ग की बाधाएँ दूर होती हैं।

अंगूर में पर्याप्त विटामिन 'ए' और 'सी' है। बच्चों, बूढों और दुर्बल लोगों के लिए बल देने वाला यह अनुपम आहार है। इसमें पौटेशियम बहुत होता है, जो किडनी के

रोग, ब्लडप्रेशर तथा चर्मरोग में लाभकारी होता है। भारत ही नहीं, दुनियां के अनेक देशों में अंगूर रोगों को दूर करने का माध्यम माना जाता है। अंगूर रोगियों के लिए उत्तम पथ्य है। कैंसर, टी. बी., गैस्ट्रिक के घाव, बच्चों का सूखा रोग, एपेडिसाइटिस, जोडों का दर्द, गठिया तथा हृदय के रोगियों के लिए यह शक्ति दायक पथ्य है।

अंगूर के सेवन से शरीर में ताकत आती है। यह हर प्रकार की कमजोरी दूर करके शरीर को सुंदर और स्वास्थ बनाता है। अंगूर प्रबल क्षारीय आहार है, शरीर से विषैले पदार्थों को बाहर निकालता है, शरीर में खून बढाता है और साफ भी करता है। टाईफाइड बुखार हो या कोई वायरसजन्य बुखार – सभी में अंगूर शरीर में नयी शक्ति देने के लिए पथ्य के रूप में दिया जाता है।

कई लाइलाज बीमारियों में अंगूर का रस-कल्प अमृत के समान काम करता है। लंबी बीमारी के बाद शरीर में आयी कमजोरी को दूर करने में यह रामबाण सिद्ध हुआ है। कई आँतों के कैसंर-रोगी अंगूर-कल्प से स्वस्थ हुए हैं।

कच्चा अंगूर खट्टा होता है, उसे नहीं खाना चाहिए। जब भी अंगूर खाए मीठे पक्के अंगूर खाए।

केला (कदलीफल) :- केला एक सुपरिचित उपयोगी फल है। अपक्व केला मधुर, शीतल, भारी, ग्राही, स्निग्ध, कफ-पित्त-रक्तविकार, दाह, क्षय एवं वायुनाशक है। पका हुआ केला शीतल, मधुर, विपाक मधुर, वीर्यवर्द्धक, पुष्टिकारक, रूचिकारक, मांस को बढाने वाला, क्षुधापूर्तिकारक, प्रमेह, नेत्ररोग तृषा, रक्तपित्त, उदररोग, हृदयशूल, प्रदररोग एवं गर्मी के रोग का नाशक है।

भोजन के पहले केला नहींखाना चाहिए। पका केला एक अच्छा भोजन है। केले की जड, स्वरस, बीज, पत्ते, फूल सभी भागों में विभिन्न कठिन रोगों- मूत्र विकार, प्रदर तथा अतिसार रोगों में आश्चर्य जनक लाभ होता है।

सेब :– सेब का फल वात–पित्तनाशक, पौष्टिक, कफकारक, गुरू, पाक तथा रस में मधुर, शीतल, रूचिकारक एवं वीर्यवर्द्धक होता है। यह मूत्राशय तथा वृक्कों की शुद्धि करता है। सेब के सेवन से नाडियों एवं मस्तिष्क को शक्ति मिलने के कारण यह स्मरणशक्ति की दुर्बलता, उन्माद, बेहोशी तथा चिडचिडापन में गुणकारी है। यकृत–विकार एवं अश्मरी में गुणकारी पाया गया है। सेब को कच्चा खाने से जीर्ण तथा असाध्य रोगों में विशेष लाभ होता है। सेब का छिलका रोचक होता है, अतः संग्रहणी, अतिसार, प्रवाहिका प्रभृति उदर–व्याधियों में छिलके रहित फल के सेवन से लाभ होता है वायु के अनुलोमन एवं कब्ज में छिलका न उतारे, दस्त आदि में सेब मुरब्बा गुणकारी है। सेब में विटामिन 'सी' अधिक मात्रा में होता है।

आम – आम प्रसिद्ध फल है। कच्चा आम कषाय, अम्ल, वात, एवं पित्तवर्धक और

पका आम मधुर, स्निग्ध, बल तथा सुखदायक, गुरू, वातनाशक, शीतल, कषाय, अग्नि, कफ और वीर्यवर्धक होता है। आम की–मंजरी (बौर) शीतल रूचिकारक ग्राही, वातकारक, अतिसार, कफ, पित्त, प्रदर, दृष्टि और रूधिर नाशक है।

पाल में पकाकर भी आम खाया जाता है, परन्तु इसमें जीवन शक्ति की न्यूनता होती है। आम का रस दूध के साथ पीने से शक्ति जनक तथा वीर्यवर्द्धक होता है। चूसकर प्रयोग किए जाने वाले आम को रसाल की संज्ञा दी जाती है। कलमी आम अत्यंत पित्तकारक होता है। आम के अति सेवन से मंदाग्नि, विषम ज्वर, रक्त दोष, मलबद्धता, नेत्ररोग उत्पन्न हो सकते हैं। अतः अधिक आम नहीं खाना चाहिए। यह दोष खट्टे या अपक्व आम में देखे गये है। पक्व (पके) आम में विटामिन 'ए' तथा 'सी' अधिक मात्रा में होते हैं।

अनार :– अनार (दाडिम) मधुर, कषाय तथा अम्ल–रसयुक्त होता है। सामान्य रूप से अनार मलरोधक, वातनाशक, ग्राही, अग्नि को उत्पन्न करने वाला, स्निग्ध हृदय के लिए पौष्टिक है हृदय रोग कुष्ठरोग एवं मुख दुर्गंधनाशक है। इसमें विटामिन बी और सी पाया जात है। स्नायुशूल, शीलत तथा रात्री में अनार नहीं खाना चाहिए। अनार का रस आन्त्र, यकृत, आमाशय तथा कुष्ठ रोगों में लाभकारी है। ज्वर, दस्त, टाईफॉइड में पथ्यरूप में देना लाभदायक है।

निंबू :- नींबू की लगभग दस ग्यारह प्रजातियाँ होती हैं। सामान्यतया नींबू अम्लरसयुक्त, वातनाशक, दीपक, पाचक और लघु होता है। मीठा नींबू भारी, तृषा एवं वमन, वात–पित्तनाशक और बलदायक होता है। **बिजौरा नींबू** काँस, श्वास, अरूचि, रक्तपित्त तथा तृषानाशक है। चकोतरा नींबू स्वादिष्ठ, रूचिकारक, शीमल, भारी तथा रक्तपित्त, क्षय, श्वास, काँस, हिचकी एवं भ्रम-नाशक है। **जंबीरीह नींबू** उष्ण, गुरू, अम्ल तथा वात-कफ-दोष, मलबंध, शूल, खाँसी, वमन, तृषा, आमसंबंधी दोष, मुख की विरसता, हृदय की पीडा, अग्नि की मंदता और कृमिनाशक है।

नींबू का विविध रोगों में प्रयोग :- नींबू अनेक रोगों में सेवन कराया जाता है। नींबु के बीज, फूल, जड आदि भी विभिन्न गुणों से युक्त होते हैं।

पथरी : – एक गिलास पानी में एक नींबू निचोडकर सेंधा नमक मिलाकर सुबह–शाम दो बार नित्य एक महिना पीने से पथरी पिघलकर निकल जाती है ।

पथरी का दर्द :– अगुंर के आठ पत्तों पर आधा नींबू निचोडकर पीसकर चटनी बना लें। इसे दो चम्मच हर दो घंटे में तीन बार खाने से पथरी से होने वाला दर्द दूर हो जाता जायेगा।

हृदय की धडकन :– नींबू ज्ञान–तन्तुओं की उत्तेजना को शांत करता है। इससे हृदय की अधिक धडकन सामान्य हो जाती है। उच्च-रक्तचाप के रोगियों की रक्त वाहिनियों को यह शक्ति देता है।

आमवात, गठिया, जोडो के दर्द :– जोडों के दर्द में नित्य प्रातः एक गिलास पानी में एक नींबू निचोडकर पीयें। नींबू की फाँक को दर्द वाली जगह पर रगडकर फिर स्नान करें।

गला दर्द, गला बैठना, गले में ललाई :– होने पर एक गिलास गरम पानी में नमक और आधा नींबू निचोडकर सुबह–शाम गरारे करें।

नेत्र–ज्योति वर्धक :– एक गिलास पानी में एक नींबू निचोडकर प्रातः भूखे पेट हमेशा पीते रहें। नेत्र ज्योति ठीक बनी रहेगी। इससे पेट साफ रहता है, शरीर स्वस्थ रहता है। नीरोगता रहने का यह प्राथमिक उपचार है।

अपच :- (Dysrepsia) यदि भोजन नही पचता हों, खट्टी डकारें आती हों तो – 1) पपीते पर नींबू, काली मिर्च डालकर सात दिनों तक प्रातः खाऐं। 2) भोजन के साथ सोंठ पर नमक, नींबू डालकर नित्य खायें। 3) नींबू पर सेधा नमक, कालीमिर्च डालकर तीन बार नित्य चूसें । अपच व पेट के सामान्य रोग ठीक हो जायेंगे। भूख अच्छी लगेगी। 4) खाने से पहले नींबू पर सेंधा नमक डालकर चूसें।

भुख :– भोजन करने के आधा घंटा पहले एक गिलास पानी में नींबू निचोडकर पीने से भूख अच्छी लगती है।

कडवा स्वाद – रोगी प्रायः कहते हैं कि मुँह का स्वाद कडवा रहता है, स्वाद खराब रहता है, जिससे खाना अच्छा नहीं लगता। नींबू से मुंह की फाँक पर कालीमिर्च, कालानमक डालकर तवे पर सेंककर चूसने से मुँह में कडवेपन का स्वाद अच्छा हो जाने से भोजन के प्रति रचि बढती हैं।

गैस :– 1) एक चम्मच नींबू का रस, एक चम्मच पिसी हुई अजवाइन आधा कप गरम पानी में मिलाकर सुबह-शाम पीयें। 2) एक गिलास पानी में एक नींबू निचोडकर चौथाई चम्मच मीठा सोडा मिलाकर नित्य पीयें 3) आधा गिलास गरम पानी में एक नींबू निचोडकर जरा–सी पिसी हुई काली मिर्च की फाक्की सुबह–शाम लें। 4) सोंठ एक चम्मच, साबुत अजवाइन 50 ग्राम नींबू के रस में भिगोकर छाया में सुखायें। जब भी खाना खायें, खाने के बाद इसकी एक चम्मच चबायें 5) नींबू काटकर इसकी फाँकों में नमक, कालीमिर्च भरकर गरम करके चूसने से गैस में लाभ होगा।

छाले :– (स्टोमेटाइटिस) 1) एक गिलास गरम पानी में आधा नीबू निचोडकर चार बार नित्य कुल्लें करें। 2) नित्य नींबू एवं पानी में स्वाद के लिए चीनी या नमक डालकर प्रातः भूखे पेट पीयें।

हिचकी :– तेज गरम पानी में नींबू निचोडकर घूँट–घूँट पीने से हिचकी बंद हो जाती है। नींबू में नमक भरकर चार बार चूसें।

अम्लता (एसिडिटी) :– खाना खाने के बाद एक कप पानी में आधा नींबू जरा–सा

खाने का सोडा मिलाकर प्रतिदिन दो बार पीयें। दोपहर में भोजन से आधा घंटा पहले नीबू की मीठी शिकंजी दो महीने तक पीयें। खाने के बाद न पीयें।

खट्टी डकारें :– यदि खट्टी डकारें आती हो तो गरम में नीबू निचोडकर पीयें।

पेटदर्द :– किसी उत्सव आदि में अधिक खाना खाने से अपच, गैस से पेटदर्द हो तो एक कप तेज गरम पानी में भुना हुआ जीरा, पिसी हुई अजवाइन, नीबू और चीनी सब स्वाद के अनुसार मिलाकर चार बार नित्य पियें चीनी, जीरा, कालीमिर्च, एक कप गरम पानी में नींबू मिलाकर तीन बार नित्य पीयें।

यकृत :– नीबू, पानी एवं दस कालीमिर्च मिलाकर नित्य पीते रहें। यकृत–सम्बंधी रोग ठीक हो जायेगा।

कब्ज :- गरम पानी में नींबू निचोडकर प्रातः भूखे पेट पीयें। एक गिलास हलके गरम पानी में एक नींबू निचोडकर एनिमा लगायें। पेट साफ हो जायेगा। कृमि भी निकल जायेंगे।

उल्टी :– आधा कप पानी में पंद्रह बूंद नींबू का रस, भुना एवं पीसा हुआ जीरा, पीसी हुई एक छोटी इलायची मिलाकर हर आधे घंटे में पीयें। उल्टी होना बंद हो जायेगी। दो इलायची पीसकर नींबू की फाँक में भरकर चूसने से उल्टी बंद हो जाती है। नींबू की एक फाँक मिश्री भरकर चूसें। यात्रा में उल्टी हो तो नींबू चूसते रहें। शिशु दूध पीने के बाद उल्टी करते हों तो दूध पिलाने के कुछ देर बाद तीन बूँद नींबू का रस एक चम्मच पानी में मिलाकर पिलायें।

नाभि टलना :– नींबू काटकर बीज निकाल दें इसमें भुना हुआ सुहागा (यह पंसारी के यहाँ मिलता है) एक चम्मच भरकर हलका सा गरम करके चूसें, टली हुई नाभि अपने स्थान पर आ जायेगी)

दस्त :– एक कप ठंडे पानी में चौथाई नींबू निचोडकर स्वाद के अनुसार नमक, चीनी मिलाकर दो–दो घंटे में पीने से दस्त बंद हो जाते हैं। एमोबायसिस (आमातिसार) में नित्य दिन में तीन बार नींबू का पानी पीने से लाभ होता हैं । लगातार लेते रहने से आँते साफ होकर आँव आना बंद हो जाता है।

हैजा :– नींबू हैजे से भी बचाता है। जब हैजा फैल रहा हो, किसी को हैजा हो गया हो तो सम्पर्क में आने वाले लोग नींबू का अधिकाधिक सेवन करें। नींबू चूसें , नींबू का आचार खायें। भोजन के बाद नींबू का पानी पीयें। हैजा से बचाव होगा। हैजे के कीटाणु खट्टी चीजों के सेवन से नष्ट हो जाते है। हैजा होने पर चार चम्मच गुलाब जल, थोडा सा नीबू और मिश्री मिलाकर हर दो घंटे में पिलायें। हैजे में लाभ होगा ।

बवासीर (पाइल्स) :- में रक्त आता हो तो नींबू की फाँक में सेंधा नमक भरकर चूसने से रक्तस्त्राव बंद हो जाता है।

मोटापा :– सुबह–शाम नींबू का पानी पीने से मोटापा घटता है।

उच्च रक्तचाप – से बचने के लिए प्रातः नींबू का पानी सदा पीते रहें।

हृदय रोग :– उच्च रक्तचाप के रोगी नित्य तीन बार नीबू का पानी पीते रहें। आशातीत लाभ होगा।

सिरदर्द :– नींबू के छिलके पीसकर सिर पर लेप करने से सिर दर्द में लाभ होता है।

पानी के रोग :– गंदा पानी पीने से यकृत, टॉइफाइड, दस्त पेट के रोग हो जाते हैं। यदि शुद्ध पानी नहीं मिले, नदी तालाब का इकट्ठा किया हुआ पानी हो तो पानी में नींबू को निचोडकर पीयें। पानी में नींबू निचोडकर पीने से पानी के रोग, गदंगी आदि से होने वाले रोगों से बचाव होता है। नींबू के छिलकों को रगडने से बदबू दूर हो जाती है।

खुजली :– नहाने से पहले नींबू की फाँक में पिसी हुई फिटकरी भर कर खुजली वाली जगह पर रगडें। दस मिनट बाद स्नान करें। खुजली में लाभ होगा।

नकसीर (एपिसटेक्सिस) :– नींबू के रस की चार बूँद, जिस नथुने से रक्त आ रहा हो, उसमें डालने से तुरंत रक्त आना बंद हो जाता है।

दाँतों की मजबूती :– शौचालय में जब तक मल त्याग करें, दाँत बंद रखें, दाँत मजबूत रहेंगे, हिलेंगे नहीं। प्रातः भूखे पेट फीका नींबू चूसें। नींबू चूसने के एक घंटे बाद तक कुछ भी न खायें। दाँत मजबूत रहेंगे और दाँत दर्द में भी लाभ होगा।

दाँतों, मसूढों से रक्तस्राव :– हो तो नींबू की फाँक निचोडकर आधा रस निकलकर इस फाँक से दाँत और मसूढे रगडें। मसूढों से रक्तस्राव बंद हो जायेगा। मसूढे ढीले पड गये हो तो नींबू की मीठी शिकंजी दो बार, एक महीना पीयें।

धूम्रपान – नींबू चूसें। नींबू पानी पीयें। जीभ पर बार–बार नींबू के रस की पाँच बूँदे डालें और स्वाद खट्टा बनाये रखें। धूम्रपान, बीडी सिगरेट, जर्दा व तम्बाकू खाने की आदत छूट जायेगी।

लू (सनस्ट्रॉक) :- नींबू की नमकीन शिकंजी पीयें। लू से बचाव होगा।

पाँवों में पसीना :– गर्म पानी के दो गिलास में एक नींबू का रस मिलाकर पगतलियों का सेक करें। फिर इसी पानी से पगतलियाँ धोयें।

चक्कर आना :– प्रातः नींबू की मीठी शिकंजी पीने से उठते–बैठते समय आने वाले चक्कर ठीक हो जाते हैं।

हकलाना, तुतलाना–गरम पानी में नींबू निचोडकर सुबह–शाम गर्म कुल्लें करें। दस पिसी हुई कालीमिर्च, एक चम्मच शुद्ध देशी घी में मिलाकर प्रतिदिन दो बार चाटें।

(डॉ. श्री गणेशनारायण चौहान)

फल एवं सब्जी से रोगोपचार तालिका

सब्जी से रोगोपचार

क्र.	नाम	न्यूनतम प्रयोग	मात्रा प्रति बार	तत्व	रोग / विकार	पथ्य
1	करेला	20 दिन	200 ग्राम	लोहा	कब्ज, पीलिया, आमाशय व यकृत रोग, संधिवात, मूत्ररोग, मधुमेह, निम्नरक्तचाप,	दही
2	टमाटर	45 दिन	500 ग्राम से दो किलो	सी. ए.	मोटापा, अपच, वायु, कब्ज, प्रोटेस्ट, पीलिया, लकवा, हृदय रोग	
3	लौकी	60 दिन	500 ग्राम से दो किलो	लोहा सी. ए.	शरीर की गर्मी, कैंसर, अल्सर, कोलाइटिस, रीढ के रोग, स्त्री रोग, एलर्जी, मोटापा, मधुमेह, अनियमित रक्तस्राव, रक्तविकार, एसिडिटी, गैस, शरीर का कायाकल्प	आंवला, मैथी मूंग, जौ, बाजरा, चमेली
4	तुरई	30 दिन	500 ग्राम से 1.5 किलो	लोहा, ए	थाईराइड, पेरेलीसिस, मानसिक रोग, मसूडों व दांतों के रोग, टी.बी., हेपेटाइटिस, नसों का फूलना, नकसीर, कान के रोग	चम्पा, सिंघाडा कमल ककडी
5	चौलाई	30 दिन	500 ग्राम	सी, बी	कमजोर स्मरण शक्ति, पाचन तंत्र के रोग, मलेरिया बुखार	शंख पुष्पी, ब्राह्मी
6	पालक	20 दिन	250 ग्राम	सी,ए,बी,लोहा	कब्ज, खून की कमी, स्त्री योनी रोग, नेत्र रोग	जौ, शीशम

फलों से रोगोपचार

क्र.	नाम	न्यूनतम प्रयोग	मात्रा प्रति बार	तत्त्व	रोग / विकार	पथ्य
1	बेल	3 माह	250 ग्राम से 500 ग्राम	सी, बी-1, बी-2	कब्ज, अतिसार, अल्सर, कोलायटिस, दिमाग व शरीर की गर्मी, लू, दस्त, कैंसर	आंवला, तुलसी हल्दी
2	पपीता	12 माह	500 ग्राम से 2 कीलो		अल्सर, कब्ज, नशे की आदत, मानसिक रोग, हड्डी व दांतों के रोग	चंदन, केवडा
3	नारियल	6 माह	1 से 4 नग	बी-काम्पलेक्स सी, ए, तांबा	हैजा, मूत्रक रोग, पथरी, उल्टी, दस्त, हृदय रोग, ब्लड प्रेशर, गले के रोग, थायराइड, हड्डी के रोग	गुडहल, भीगे हुए कदम्ब, रात रानी, मैथी, मूंग
4	अंगूर	3 माह	500 ग्राम से 1.5 किलो	सी, ए, बी-1	सूखी त्वचा, पथरी, कैंसर, सूजन, खून की कमी, मोटापा, पीलिया, अनियमित ऋतुस्राव अस्थमा, नाडी दौर्बल्य	मूंग, सौंफ, गुलाब
5	जामुन	2 माह	250 ग्राम से 500 ग्राम	लोहा फास्फोरस	यकृत रोग, चर्म रोग, मधुमेह, कुष्ठरोग, तिल्ली रोग, सुजाक, रक्त शुद्धि, हाथी पाँव रोग, मानसिक रोग, हड्डी व दांत के रोग	करेला, नीम, मैथी
6	खरबूज	3 माह	1 से 2 किलो	कार्बन	चर्म रोग, एक्जिमा, मूत्र रोग, अनिद्रा, शरीर की गर्मी, बालों का झडना, आँखों के रोग	

7	संतरा	3 माह	6 से 12 नग	सी, बी	प्रतिरोधक क्षमता वृद्धि, बुखार, खून की कमी, कब्ज, दमा, गर्भवती स्त्री, आमाशय रोग	आंवला, गुलाब तुलसी
8	अननास	3 माह	1 से 2 किलो	क्लोरीन	मूत्र रोग, पथरी, डिफ्थीरिया, थायराइड, मुंह के रोग	कदंब, खीरा, जौ, गेहूँ
9	अनार	12 माह	½ से 2 किलो	सी, बी-2	हृदय रोग, ब्लड प्रेशर, अल्सर, अतिसार, पेटके रोग, कफ, प्रोस्टेट, हरनिया, गठिया, पेट के कीडे, कोलाइटिस, जुकाम, खांसी, माइग्रेन, साइनस	सोयाबीन, ज्वार
10	मौसंबी	12 माह	6 से 12 नग	सी, ए	बुखार, कब्ज, गठिया, कैंसर, गेग्रीन, शरीर की गर्मी, बाल व स्त्री रोग	आंवला, नीम, तुलसी
11	सेब	12 माह	½ से 1½ किलो	बी	माइग्रेन, आँखों के रोग, कमजोर याद्दाश्त, गठिया, दमा, पेचिश, कफनाशक	गुडहल, जौ, तिल
12	सीताफल	2 माह	6 से 12 नग	कार्बन	मानसिक रोग, पेट के रोग, स्पांडिलाइटिस, क्रोध, साइटिका, नसो का कमजोर होना, छोटी-बडी माता	अरहर, उडद, गुलमोहर
13	फाल्सा	3 माह	½ से 1½ किलो	सी, ए	शरीर की गर्मी, थायराइड, टाँसिल, बौनापन लकवा, सिरदर्द, एसिडिटी, गैस, मधुमेह	नीम, कनेर

परमात्मस्वरूपोऽहम्।

जिस प्रकार अर्हन्त घातिया कर्मों का क्षय कर अरहन्त परमात्मा बन गये हैं तथा सिद्ध भगवान् अष्टविध कर्मों का क्षय करके परम परमात्मपद को प्राप्त हो गये हैं वैसा ही मेरी आत्मा भी परमात्म-स्वरूप है।

14	आम	3 माह	1 से 2 किलो	बी, सी	पेट रोग, कब्ज, स्त्री-पुरुष यौन रोग, प्रोस्टेट, हृदय रोग, गुर्दा रोग	गुलाब, तुलसी, दूध
15	अमरुद	12 माह	1 से 2 किलो	सी	पेट रोग, चर्म रोग, कब्ज, हड्डी के रोग, गठिया, पेशाब, मधुमेह	आंवला, पपीता, गोंद
16	बादाम	3 माह	250 ग्राम	डी, ए	हड्डी के रोग, लो ब्लड प्रेशर, मस्तिष्क रोग, आँखों के रोग, सर्दी-जुकाम, खांसी, अस्थमा, चर्म रोग एवं मधुमेह	पलाश, मेथी,
17	चीकू	6 माह	½ से 2 किलो	---	जुकाम, सायनस, सर्दी, छोटी-बडी माता, शिव प्रकोप, हाथ-पैरों में कंपन	रातरानी, पलाश
18	नाशपाती	2 माह	½ से 1½ किलो	सी, ए	मसुडों व दांतों के रोग, कान के रोग, कब्ज, मोटापा, थायराइड, श्वास रोग	चमेली, बाजरा
19	केला	3 माह	4 से 6 नग	कार्बोहाइड्रेट	एसिडिटी, अपच, कमजोरी, चक्कर	दूध और दही

विभिन्न प्रकार के वेगों को रोकने से रोग

मनुष्य में मुख्यतः तीन तत्व हैं यथा 1) शरीर 2) मन एवं इंद्रियाँ 3) आत्मा। अन्य प्रकरण में मन एवं आत्मा को किस प्रकार स्वस्थ रखा जाता है उसके लिए विशेष प्रकाश डाल गया है। यहाँ पर शरीर स्वास्थ के लिए कुछ प्रकाश डाल रहे हैं। शरीर की रक्षा के लिए हम बाहर से कुछ न कुछ भोजन, पानी, श्वास के रूप में ग्रहण करते रहते हैं। उसमें से ग्रहण करने योग्य सार तत्व शरीर ग्रहण–कर लेता है बाकी अंश मलरूप में शरीर में संचित होता रहता है। उसे मल को योग्य समय में योग्य रीति से नहीं निकालने पर शरीर में विभिन्न विपरीत प्रतिक्रियायें होती हैं। जिससे शारीरिक रोग के साथ–साथ मानसिक रोग भी हो जाते हैं। इसलिए योग्य समय में योग्य रीति से शारीरिक मल को निष्कासित कर लेना चाहिए। यदि मलमूत्रादि स्वाभाविक रूप में नहीं आ रहे हैं तो जबरदस्ती से भी लाने का प्रयास नहीं करना चाहिए। विभिन्न मलरोध से जो विभिन्न रोग होते हैं, उसका कुछ संक्षिप्त विवरण आयुर्वेद के अनुसार नीचे कर रहा हूँ।

अधोवायु के अवरोध से रोग :– अधोवायु को रोकने से गुल्म, उदावर्त्त, कोष्ठशूल, कृम (ग्लानि) वाव (अपान वायु), मूत्र और मल का अवरोध से दृष्टिवध (दृष्टि–दौर्बल्य) अग्निनाश और हृदय रोग होते हैं। वातजन्य विकार होने पर स्नेहन विधि करना चाहिए एवं फलवत्ति, वातनाशकः भोजन, किंचित गर्म जल का पान, वस्ति–कर्म तथा जो भी वात का अनुलोचमन करने में योग्य हो उन सबों का प्रयोग करना उचित है।

मलवेग को रोकने से रोग :– मल के वेग को रोकने से पिण्डलियों में ऐंठन, प्रविश्चाय, सिरदर्द, वायु का ऊपर हो जाना परिकर्तिका हृदय का अवरोध से मुख से मल का आना और पूर्वोक्त वातरोध जन्य गुल्म, उदावर्त्त आदि रोग होते हैं।

मुत्र को रोकने से रोग :– मूत्र के उपस्थित वेग को रोकने से – अंगों का टूटना, पथरी, वस्ति, मेहन (शिश्न) और वृषण में वेदना होती है। वात और मलरोध जन्य रोग भी प्रायः होते हैं अर्थात् नहीं भी होते हैं। **इनकी चिकित्सा** – वात, मूत्र और मल के वेगावरोध से दोषों की चिकित्सा फलावृर्त्ति, अभ्यगं, अवगहन स्वेदन और वस्ति कर्म है।

डकार रोकने से रोग :– उद्गार (ऊर्ध्ववात) को रोकने से – अरूची, कम्प, हृदय और छाती में रूकावट, अध्यमान, हिक्का और वात होता; इसमें हिक्का की तरह चिकित्सा करें।

छींक रोकने से रोग :– छींक के उपस्थित वेग को रोकनेसे सिर दर्द आँख आदि इन्द्रियों में दुर्बलता, मन्यास्तंभ और आर्दित रोग होता है। **चिकित्सा** – रूकी हुई छींक को प्रवृत करने के लिए तीक्ष्ण धूम, तीक्ष्ण घ्राण (नस्य) नवीन, सूर्य की ओर देखना ये सब करें, स्नेहन और स्वेदन भी करें।

प्यास रोकने से रोग :– प्यास रोकने से मुख शोष, अगों में शिथिलता, बहरापन, ज्ञान का

अभाव, चक्कर आना और हृदय के रोग होते हैं, इसमें संपूर्ण शीतल विधि करनी चाहिए।

भूख रोकने से रोग :– भूख के राकने से अंगों का टूटना, अरूची, ग्लानी, कृशता, शूल और चक्कर आना होता है। इसमें लघु स्निग्ध उष्णादि और मात्रा में थोडा भोजन देना चाहिए।

निद्रा को रोकने से रोग :– निद्रा के उपस्थित वेग को रोकने से मोह, सिर में भारीपन, आँखों पर बोझ, आलस्य जंभाई का आना और अंगों का टूटना होता है। इसमें नींद लेना और संवाहन (चंपी)उत्तम हैं।

खांसी रोकने से रोग :– कासवेग को रोकने से कास की अधिकता होती है, श्वास, अरूची और हृदय रोग होते हैं एवं श्वास और हिक्का होती है, इसमें कासनासक विधि सम्पूर्णरूप से बरतनी चाहिए।

श्वास रोकने से रोग :– श्रमजनित श्वास को रोके रहने से गुल्म, हृदय के रोग और मुर्च्छा होती है। इस अवस्था में आराम लेना और वातनाशक उपचार करना चाहिए।

जम्भाई रोकने से रोग : – जम्भाई को रोकने से छींक को रोकने से होने वाले रोगों के समान रोग होते हैं। इसमें वातनाशक विधि पूर्णतः करनी चाहिए।

आंसू रोकने से रोग :– वाष्प (अश्रु) के वेग को रोकने से पीनस, अक्षिरोग, शिरोरोग, मन्यास्तंभ, अरूची, भ्रम और गुल्म रोग होते हैं इससे नींद लेना, मद्य (आसव, मीठा फलरस) तथा प्रसन्नता पैदा करने वाली मनोहर कहानियों को सुनना लाभप्रद होता है।

वमन रोकने से रोग : – वमन के उपस्थित वेग को रोकने से -विसर्प, कोठ, कुष्ट, आँख के रोग,कण्डु, पाण्डु, ज्वर, कास, श्वास, जी मिचलना व्यंग और श्वयथु होते हैं। व्यंग, मुख पर काली गाँठ या चक्ते पडना।

वीर्यस्खलन के वेग रोकने से रोग :– शुक्र के उपस्थित वेग को रोकने से शुक्र का स्रवण, गुह्य वेदना (मेहन तथा शणों में दर्द) शौथ, ज्वर, हृदय में पीडा, मूत्र का अवरोधक, अंगों का टूटना, वृद्धि, पथरी और नंपुसंकता होती है।

रोकने योग्य वेग

धारयेत्त सदा वेगान् हितैषी प्रेत्यचेष्ट च ।
लोभेर्ष्याद्वेषमात्सर्यरागादीनां जितेंद्रियः ॥ 24

धारणीय वेग :– इस लोक में और परलोक में हित चाहने वाला मनुष्य जितेंद्रिय बनकर सदा निम्न वेगों को रोके। लोभ, ईर्ष्या, द्वेष, मात्सर्य, राग आदि। ईर्ष्या–दूसरें के उत्कर्ष को न सहना राग–विषयाशक्ति। मात्सर्य – दूसरें के शुभ के साथ द्वेष।

शुद्धचिन्मात्र स्वरूपोऽहम्। मैं शुद्धचिन्मात्र स्वरूप हूँ।

हरित्याग की यथार्थता

प्रश्न – हरित्यागव्रत किसे कहते हैं ?

उत्तर – वस्तुतः '' हरित्याग '' नामक कोई व्रत नहीं है । हाँ, सचित्त–त्याग–प्रतिमा नामक पञ्चम गुणस्थानवर्ती व्रती श्रावक की पाँचवी प्रतिमा है। इस प्रतिमा के पहले और भी चार प्रतिमा का पालन करना होता है। यथा– 1) दर्शन प्रतिमा (सत्य स्वरूप में विश्वास की निष्टा तथा ज्ञान वैराग्य शक्ति से युक्त) 2) व्रत प्रतिमा (5 अणुव्रत तथा सात शीलव्रतों का पालन) 3) सामायिक प्रतिमा (साम्यभाव की साधना के लिए तीनों संध्या में साधना करना) 4) प्रोषधोपवास प्रतिमा (पर्व के दिनों में उपवास पूर्वक धर्माराधना करना) इन व्रतों (प्रतिमा) के पालन पूर्वक आध्यात्मिक उन्नति के लिए सचित्तविरत प्रतिमादि का पालन करना सचित्तविरत प्रतिमा का स्वरूप रत्नकरण्ड श्रावकाचार में निम्न प्रकार से कहा है।

मूलफल शाकशाखाकटीर कन्द प्रसून बीजानि।
नामानि योऽत्ति सोऽयं सचित्तविरतो दयामूर्मि ।।

मूली, गाजर, शकरकन्द आदि मूल कहलाते हैं, आम, अमरूद आदि फल कहलाते हैं, भाजी को शाक कहते हैं, वृक्ष की नई कोंपल को शाखा कहते हैं, बांस के अंकुर को कटीर कहते हैं। जमीन में रहने वाले अंगीठा (स्कन्द) आदि को कन्द कहते हैं, गोभी आदि के फूल को प्रसून कहते हैं और गेहूँ, चना आदि को बीज कहते हैं। ये सब आम (अपक्व) अवस्था में सचित्त (सजीव) होते हैं। अतः दया का धारक श्रावक इन्हें नहीं खाता है। गेहुँ, चना आदि बीज हरी अवस्था में तो सचित्त हैं ही परन्तु अंकुरोत्पादन की शक्ति की अपेक्षा शुष्क अवस्था में भी सचित्त माने जाते हैं अतः व्रती मनुष्य इन्हें खण्डित अवस्था में ही खाता है। इस श्लोक में जो मूल आदि वनस्पतियाँ गिनाई हैं वे उनकी जातियाँ बतलाने के अभिप्राय से गिनाई हैं । ये सभी भक्ष्य हैं यह अभिप्राय नहीं लेना चाहिये, क्योंकि उनमें मूल, कन्द तथा प्रसून स्पष्ट ही बहुघात तथा त्रसघात का कारण होने से अभक्ष्य हैं। अतः इनका त्याग भोगोपभोग परिमाण व्रत में कराया जा चुका है। यहाँ इनको ''अपक्व'' अवस्था में त्याग बताया है। इसलिए पक्व अवस्था में ये ग्राह्य हैं, ऐसा फलितार्थ लगाकर व्रती मनुष्य को इनके सेवन में प्रवृत्ति नहीं करना चाहिए । इस प्रसंग में स्वतः स्वभाव से सूखी हुई सोंठ तथा हल्दी आदि का दृष्टान्त देना संगत नहीं है क्योंकि उनका उपयोग औषध के रूप में जब कभी होता है अतः रागांश की तीव्रता नहीं रहती और अचित्त भी है, परन्तु मूली, गाजर, आलू, अदरक आदि के सेवन में स्पष्ट ही राग की तीव्रता रहती है, जो कि व्रती मनुष्य के लिए त्याज्य है क्योंकि सप्रतिष्ठित है। फल, शाक, शाखा आदि जो भक्ष्य वनस्पतियाँ हैं उन्हें छिन्न–भिन्न या अग्नि सिद्ध करके

लिया जा सकता है यद्यपि छिन्न-भिन्नादि करने में दयामूर्तित्व का विघात होता है तथापि इस प्रतिमा में इतनी सूक्ष्मता का विचार नहीं होता है। प्रासुक या अचित्त द्रव्य का लक्षण पूर्वाचार्यों ने निम्न प्रकार से कहा है –

सुक्कं पक्कं तत्तअंविल लवणेण मिस्सियं दव्वं ।
जं जंतेण य छिण्णं तं सव्वं फासुयं भणियं ॥

सूर्य की धूपादि से सुखाया गया हो, अग्नि से पकाया गया हो, अग्नि से तपाया गया हो, भुना गया हो, गरम किया गया हो, खटाई– नमक मिला हुआ हो, चाकू, मिस्सि–कोल्लू, यंत्रादि से छिन्न–भिन्न किया गया हो, वह सब द्रव्य प्रासुक, अचित्त, जीवरहित, (हरी नहीं है) ऐसा प्रासुक भक्ष्य भोजन सचित्त विरत प्रतिमाधारी से लेकर क्षुल्लक, ऐलक, आर्यिका, मुनि तक ग्रहण कर सकतें हैं। परन्तु विशेष ध्यान देने योग्य विषय यह है कि प्रथम प्रतिमा से लेकर सप्तम प्रतिमा ब्रह्मचर्य प्रतिमाधारी व्रती तक के श्रावक तो सचित्त वस्तु को स्वयं अचित्त करके भोजन कर सकता है परन्तु क्षुल्लकादि उच्चतम श्रावक तथा आर्यिका, मुनि आदि सचित्त को उपर्युक्त उपायों से अचित्त नहीं कर सकते हैं। सचित्त विरत प्रतिमा का स्वरूप बताते हुए कहा है –

भक्षणेऽत्र सचित्तस्य नियमो न तु स्पर्शनं ।
तत्स्वहस्तादिना कृत्वा प्रासुकं चात्र भोजनं ॥

इस प्रतिमा में सचित्त का तो त्याग होता है परन्तु स्वहस्त में सचित्त को अचित्त करके भोजन कर सकता है।

परन्तु वर्तमान में अधिकांश व्यक्ति अक्रम से विवेक रहित, रूढि परम्परा से ''हरीत्याग'' करते हैं। कुछ लोग तो दिन रात भक्ष्याभक्ष्य भक्षण करते रहेंगे परन्तु केवल अष्टमी एवं चतुर्दशी को हरीत्याग का ढोंग रचायेंगे। अनन्त ऐकेन्द्रियों के पिण्ड स्वरूप आलू, प्याज, लहसुन, अदरक, गाजर, रतालू तथा त्रसों के पिण्ड स्वरूप अनेक दिनों के आचार, मुरब्बा, पापड, मंगोडी, बडा, दही बडादि तो खाते रहेंगे परन्तु पूर्वोक्त आगमोक्त रीति से अचित्त सेव, केला, अंगूर आदि फल तथा पकी हुई, उबाली हुई तुरई, गल्की, परवल, टिंडीसि करेलादि की सब्जी (शाक) को हरी मानकर त्याग करेंगे। ऐसे व्यक्ति भी हरीत्याग के दिन में कच्चा पानी और कोई–कोई तो बिना छनाहुआ पानी या अमर्यादित पानी तक पीते रहेंगे। उन्हें ज्ञान तक नहीं होता है कि बिना प्रासुक किये हुए कच्चे पानी के एक ग्लास में असंख्यात एकेन्द्रिय जलकायिक जीव होते हैं। यदि वह पानी बिना छाना हुआ है अथवा छानने के बाद भी 48 मिनिट से अधिक समय हो गया है तो मर्यादा से अधिक होने के कारण उसमें असंख्यात एकेन्द्रिय जलकायिक जीवों के साथ–साथ लाखों–करोडों त्रस जीव भी होते हैं। उपर्युक्त

दोनों अवस्थाओं में पानी सचित्त है।

मान लो कि कोई यदि सचित्त प्रत्येक फल भी खा लेता है तो भी वह एक ही जीव के कुछ ही सचित्त प्रदेश को खायेगा किन्तु पूर्ण एक जीव नहीं खायेगा। परन्तु उपर्युक्त सचित पानी आदि का सेवन करेगा तो असंख्यात या अनंत जीवों को खा लेगा। एक विचारणीय विषय यह है कि यदि कोई अचित्त किया हुआ फल-सब्जी खाता है और कोई रोटी, भात, दाल खाता है, तो फल, सब्जी खाने वाला कम हिंसक होगा और भात, दाल, रोटी खाने वाला अधिक हिंसक होगा, क्योंकि फल और सब्जी आहार बडा (घनफल अधिक) होने से 10–20 फल से पेट भर सकता है और यदि कोई अनाज से पेट भरेगा, भरना चाहे तो 1000-2000 बीज से पेट भरेगा। फल और सब्जी से यदि बीज को निकाल दिया जाता तो गुदा वाला भाग पूर्ण अचित्त–निर्जीव पुद्गल हो जाता है। जिससे कम हिंसा होगी परन्तु तीन वर्ष के पहले–पहले का बीज तो योनिभूत जीव होता है। उसे अचित्त करने से योनिभूत जीव को मारने की हिंसा तो लगेगी ही। उपर्युक्त धार्मिक विवेचन के साथ–साथ आयुर्वेदिक एवं स्वास्थ्य–विज्ञान संबंधी विषय भी विचारणीय है। अनाज से भी अधिक स्वास्थ्यप्रद एवं बुद्धि प्रद फल तथा सब्जियाँ है। इतना ही नहीं अनेक रोगों की चिकित्सा भी फल एवं सब्जी से होती है। इससे विपरीत अनेक रोगों में अनाज अपथ्य के साथ–साथ हानिकारक भी है। इतना ही नहीं फलाहार भावना को अधिक पवित्र बनाने में सहकारी कारण है। आयुर्वेद में तो इसका वर्णन है ही परन्तु आधुनिक विज्ञान में, प्राकृतिक चिकित्सा आदि में फल एवं सब्जी संबंधी नित्य नवीन चमत्कार पूर्ण शोध–बोध हो रहे हैं। दि. जैन प्राचीन आगम में अष्टमी, चतुर्दशी को हरीत्याग (अचित्त फल सब्जी) का वर्णन नहीं है। यह अर्वाचीन परम्परा कब से प्रारम्भ हुई और क्यों प्रारम्भ हुई यह भी शोध का विषय है। तथापि यह परम्परा दिगम्बर जैन आगमोक्त नहीं है और वैज्ञानिक भी नहीं है फिर भी यह ध्यान में रखना चाहिये कि पर वस्तु को स्वीकार करना धर्म नहीं है। अपितु त्याग करना धर्म है। इसलिए तो 14 वें गुणस्थान के अन्तिम समय में जब पुण्य के साथ-साथ परमौदारिक शरीर का भी त्याग होता है। तब जाकर मोक्ष मिलता है उसी की साधना हेतु समाधि के समय शुद्ध भोजन के साथ–साथ पानी का भी त्याग किया जाता है।

यथा शक्ति त्याग एवं तपस्या से ही मोक्ष मार्ग प्रशस्त होता है, किन्तु महापाप तो जान बूझकर करते रहना और रूढिवशात्, देखादेखी या दिखावे के लिए अविवेक पूर्ण एक छोटा सा त्याग करके धर्मात्मा का अहंकार करना या व्यर्थ ढोंग रचाकर और भी पाप कमाना प्रशस्त नहीं है।

साधु भी सोंठ हल्दी सेवन कर सकते हैं

प्रश्न – क्या साधु सोंठ, हल्दी का सेवन कर सकते हैं ?

उत्तर – जिस साधु का सोंठ, हल्दी का त्याग नहीं है वे सेवन कर सकते हैं। मूलाचार के वैयावृत्ति प्रकरण में एक साधु अन्य साधु की वैयावृत्ति किन–किन उपायों से करे इसका वर्णन करते हुए कहा गया है कि –

तथाहारौषधवाचनाव्याख्यान विकिंचनमूत्रपूरीषादिव्युत्सर्ग वन्दनादियि। आहारेण भिक्षाचर्या। औषधेन शुंठि पिपल्यादिकेन। शास्त्र व्याख्यानेन च्युतमलनिर्हरणेन।''

आहारचर्या द्वारा, सोंठ, पीपल आदि औषधि द्वारा शास्त्र व्याख्यान द्वारा, कदाचित् मलमूत्र आदि च्युत होने पर उसे दूर करने द्वारा वैयावृत्ति करना चाहिए। इससे सिद्ध होता है कि साधु के द्वारा साधु को सोंठ दिलाया जाता है। केवल सामान्य गृहस्थों के द्वारा नहीं। यदि साधु नहीं सेवन कर सकते हैं तो एक साधु दूसरे साधु को कैसे दिला सकते हैं। यह सही है कि कच्ची अवस्था में हल्दी एवं अद्रक सप्रिष्ठित रहते हैं। सूख जाने के बाद अप्रतिष्ठित, शुष्क, अचित्त, काष्ठ औषधि बन जाते हैं। इसका वैज्ञानिक कारण यह हो सकता है कि इसमें जो तीक्ष्ण, चटपटे, औषधीय गुण होते हैं और सूखने के बाद गीलापन नहीं रहता है, जिससे ये अप्रतिष्ठित अचित्त, औषध बन जाते हैं। इसलिए तो जैन पुराण, चरणानुयोग, जैन आयुर्वेद , प्रतिष्ठाशास्त्र में इसके प्रयोग का विधान है। सोंठ में कफ, वात, मन्दाग्नि को दूर करने के गुण है तो हल्दी में खांसी, जुकाम दर्द दूर करने के साथ–साथ रक्त शुद्ध करने के, घाव भरने एवं रोग प्रतिरोधक शक्ति बढाने के गुण हैं। यदि नित्य सब्जी में हल्दी का प्रयोग किया जायेगा तो उपर्युक्त लाभ सहजरूप में प्राप्त हो जाऐगें।

ततस्त्वं दोषनिर्मुक्त्यै निर्मोहो भव सर्वतः।
उदासीनत्वमाश्रित्य, तत्वचिन्तापरो भव॥

आत्मा में विवेक भाव को लुप्त करने वाला कषाय भाव तब ही प्रबल होता है जब कि आत्मा इंद्रियों या शरीर के इष्ट यानी प्रिय विषयों में राग भाव करता है और इंद्रियों तथा शरीर के अनिष्ट यानी अप्रिय विषयों में द्वेष करता है। यदि सांसारिक, शारीरिक तथा इंद्रियों के विषयों में इष्ट-अनिष्ट की विचारधारा छोडकर आत्मा उदासीन बन जावे तो अपना आत्मा स्वरूप प्राप्त किया जा सकता है, आत्मा को कषाय मैल से स्वच्छ होकर संसार से छुटकारा मिल सकता है।

विभिन्न रोगों के उपचार

वात ज्वर :- 1) यह ज्वर प्राय: चौथे दिन तेज होता है, कुछ देर जूडी भी रहती है इसमें गला, मुख सूखता है, शरीर कांपता है, सिर पीडा तथा पेट का फूलना होता है, मल बंद हो जाता है। 2) सेर भर पानी को उबालकर अष्टमांस रहने पर उस पानी को पीने से वात ज्वर मिट जाता है। 3) दो काली मीर्च, 10 तुलसी के पत्तों का काढा दोनों समय पीकर गर्म कपडा ओढकर सोने से थोडी देर में पसीना आकर वात-ज्वर उतर जाता है। 4) गिलोय, सोंठ, नागरमोथा और जवासा इन सब का क्वाथ बनाकर देने से वात-ज्वर नष्ट होता है।

पित्त ज्वर :- 1) पित्त ज्वर वाले रोगी के नेत्रों में दाह रहती है, प्यास ज्यादा होती है, चक्कर आता है, शरीर गर्म रहता है, वेग रहता है, मल-पतला लगता है, वमन होता है, नींद कम आती है, पसीना आता है, मल-मूत्र-नेत्र पीले हो जाते हैं। ये लक्षण प्राय: पित्त ज्वर वाले रोगी के होते हैं। 2) मुनक्का के शर्बत में मिस्री मिलाकर पीने से पित्त ज्वर मिटता है। 3) एक हजार बार धोये हुए घृत को शरीर पर मालिश करने से पित्त ज्वर शांत होता है। 4) नीम के कच्चे पत्तों को पीसकर उसमें पानी डालकर बिलोयां जाये फिर जो झाग आये उसको शरीर पर लगाने से पित्त ज्वर मिटता है। 5) एक किलो भर का तीनपाव पानी औटाकर देने से भी पित्त ज्वर मिटता है। 6) तुलसी के पत्तों का शर्बत पिलाने से ज्वर संबंधी घबराहट मिटती है।

कफ ज्वर :- 1) यह ज्वर प्रति समय रहता है परंतु जब पित्त या वात मिलता है तो अधिक भी हो जाता है। इसमें सर्दी मालुम होती है, ताप मध्यम, शरीर शीतल, आलस्य ज्यादा, अरुचि, मुख मीठा, मल-मूत्र सफेद, रोमांच, अतिनिद्रा, नेत्र शुक्ल तथा बोलने की इच्छा नहीं रहती है। अर्थात् कफ-ज्वर के ये लक्षण है। 2) कफ-ज्वर वाले रोगी को पानी औटाकर आधा रहने पर पिलाना चाहिए अथवा अडूसा का काढा दस दिन देने पर फायदा होगा।

वात-कफ-ज्वर :- 1) वात-कफ-ज्वर वाले रोगी के लक्षण- खाँसी, अरुचि, शरीर की संधियों में पीडा, संताप, कंपना, नींद न आना, शरीर भारी रहना, पसीना, श्वास, पेट में शूल, नाडी सर्प तथा हंस की सी चाल चलना आदि ये सब होते हैं। वात-कफ-ज्वर वाले रोगी को लंघन करना चाहिए और औंटा पानी पीना चाहिए, पिलाना चाहिए। चिरायता, सोंठ, नागरमोथा, गिलोय इन सब को बराबर मात्रा में 2.4 ग्राम (तीन मासा) का क्वाथ देना चाहिए, पथ्य देना चाहिए।

कफ-पित्त ज्वर :- 1) इस ज्वर वाले रोगी के जीभ और मुँह में कफ लिपटा रहता हैं। तंद्रा और खांसी, अरुचि, प्यास ज्यादा होती है, तथा बार-बार शरीर में दाह व शीत ज्यादा लगती है, तथा शरीर में पीडा होय, चक्कर आवे, भूख नहीं लगे, शरीर जकडा हुआ सा रहता

है, इस कफ पित्त-ज्वर वाले की नाडी हंस की सी होय अथवा मेंढक सरिसी चलती है तथा उसका मूत्र सफेद, लाल व चिकना हो, मल भी हो उस रोगी को कफ-पित्त-ज्वर जानना। 2) जल को उबालकर आठवाँ हिस्सा रहने पर पिलाना चाहिए, तथा लंघन करना चाहिए जिससे फायदा होय। 3) दाख, किरमाल की गिरी, धनियाँ, कुटकी, नागरमोथा, पिपला-मूल, सोंठ, पीपल इन सबको लेकर कूट करके 3.2 ग्राम (4 माशा) काढा दोनों समय 11 दिन लेने से शूल, मूर्च्छा, अरुचि, वमन, ज्वर आदि मिटता है।

वात -पित्त-ज्वर :- 1) वात-पित्त-ज्वर वाले रोगी को मूर्च्छा होती है, चक्कर आता है, दाह होती है, नींद नहीं आती है, गला सूखता है, वमन होता है, अंधारी आती है, सारा शरीर दुखता है तथा प्रलाप करता है ये लक्षण वात-पित्त-ज्वर वाले रोगी के होते हैं। 2) चावल की खील के पानी में मिस्री मिलाकर दस दिन देने से वात-पित्त ज्वर नष्ट होता हैं। 3) सोंठ, कालीमिर्च, पीपल इनको समान भाग लेकर बराबर मिस्री मिलाकर चूर्ण बनाकर 2.4 ग्राम (3 माशा) प्रतिदिन मिस्री की चासनी के साथ 10 दिन लेने से वात-पित्त ज्वर नष्ट होता है।

जीर्ण-ज्वर :- 1) ज्यादातर शरीर के किसी भीतरी खराबी अथवा बुखार न टूटने पर या कमजोरी के कारण बुखार कम या ज्यादा बना रहता है तब उसे जीर्ण ज्वर कहते हैं। इस ज्वर में शरीर में दर्द, आलस्य, अरुचि, दुर्बलता, हाडो में फूटन, आँखो व हाथ पैरों में जलन, आदि अनेक लक्षण जीर्ण ज्वर के होते हैं। जो वर्षों तक भी बने रहते हैं। 2) इस ज्वर में दूध का सेवन हितकर होता है। 3) नीम की छाल का क्वाथ पीने से निरन्तर रहने वाला ज्वर तथा किसी औषधि से न मिटने वाला ज्वर मिट जाता है। 4) धनिया और पित्तपापडा का क्वाथ पीने से पुराना ज्वर मिटता है। 5) जो ज्वर कुनेन आदि औषधियों से नहीं मिटता है वह ज्वर दारूहल्दी का चूर्ण व क्वाथ लेने से मिट जाता है। 6) वृद्धावस्था में जीर्ण - ज्वर व खाँसी हो तो आँवला का क्वाथ दोनों समय लेने से मिटता है। 7)चौलाई की जड को अपने सिर पर बाँधने से भयंकर ज्वर भी मिटता है।

मलेरिया बुखार :- 1) सोंठ, पीपल, मिर्च, तज, लोंग, वायविडंग, ये सब 2-2 ग्राम (2॥ माशा) तथा तुलसी और बेर के पत्ते 25-25 ग्राम, एक मिट्टी के पात्र में एक सेर पानी चढा दें। उपरोक्त सब वस्तुएँ डालकर जब आधा पाव पानी रह जावे तो छानकर रोगी को दिन में तीन बार पिलाना चाहिए जिससे मलेरिया तथा भयंकर कफ-ज्वर तत्काल मिटे। 2) काली तुलसी के 11 पत्ते व काली मिर्च 11, बुखार चढकर उतरने पर देने से मलेरिया-ज्वर छोड देती है। 3) 5 अंगुल गिलोय का टुकडा और 14 काली मिर्च चिगदकर पाव भर पानी में ओटावें एक छटांक पीने से मलेरिया मिट जाता है। 4) नीम के अंदर की छाल के चूर्ण की फाँकी लेने से बारी से आने बाला बुखार उतर जाता है। 5) नीम की कौंपल तथा काली मिर्च को घोट कर पीने से बारी से आने वाला ज्वर मिटता है।

6) कलोंजी को गुड के साथ मिलाकर देने से विषम-ज्वर मिटता है। 7) दूधी की जड को कान में बाँधने से बारी से आने वाला बुखार उतर जाता है। 8) बकरी के दूध में 2 ग्राम (2॥ माशा) सोंठ का चूर्ण की फाँकी देने से गर्भवती स्त्री का भी विषम-ज्वर उतर जाता है । 9) दालचीनी 1.6 ग्राम (2 माशा) व चीनी 3.2 ग्राम (4 माशा)की फाँकी देने से गर्भवती स्त्री का मलेरिया -ज्वर उतर जाता है ।

बारी से आने वाले ज्वर के लिए मंत्र :-

ॐ वाण युध्दे महाघोरे, द्वादशार्क समप्रभे ।
जातोऽसौक्षमहावीरर्यो, मुञ्चत्यैकाहिकः ज्वरः ॥

उक्त मंत्र को पीपल के पत्ते पर लिखकर वस्त्र में लपेट कर पुरूष के दाहिने और स्त्री के बायें हाथ पर बाँधने से एकांतरा ज्वर छूट जाता है ।

तापनिवारण मंत्र :- ॐ णमो लोए सव्वसाहूणं, ॐ णमो उवज्झायाणं, ॐ णमो आइरियाणं, ॐ णमो सिध्दाणं, ॐ णमो अरिहंताणं, ॥ इस मंत्र को पढते समय पाँचवें चरण के अन्त में ह्रीं पढते जावें; एक सफेद शुद्ध चादर लेकर उसके एक कोने पर उपरोक्त मंत्र पढते जावें और गाँठ देने की तरह उस चद्दर के कोने को मोडते जावें। इस प्रकार 108 बार उस कोने पर मंत्र पढे फिर उस चद्दर को रोगी को ओढा दे, याद रहे गाँठ सिर की तरफ रहें, जब रोगी का बुखार उतरे या तीसरे-चौथे दिन बुखार आता है या किसी भी प्रकार का ज्वर चढता हो, जब तक ज्वर न उतरे तब तक रोगी उस चादर को ओढे रहे ।

टाईफाइड (मियादी) ज्वर :- 1)ज्वर, तंद्रा, ओष्ठों में कालापन, नाक, जीभ, मुख और कंठ में ललाई तथा नेत्र पीले, इन लक्षणों सहित गले में मोतियों के हार के समान दानों की पंक्ति निकलती है। इस ज्वर को मोतीझरा, पानीझरा, निकाला, टाईफाइड, मियादी, भाव आदि नामों से पुकारते है। 2) इस रोग वाले को पवित्र स्थान पर रखना चाहिए तथा स्वच्छ वस्त्रादि पहनाना चाहिए , सेवा करने वाले को भी साफ रहना चाहिए, तथा रोगी की दृष्टि में भी अपवित्र वस्तुएँ नहीं आनी चाहिए, रोगी के कमरे के दरवाजे पर लाल कंबल या मुलायम कपडे का पर्दा बाँधना चाहिए, धूप, अगरबत्ती, चन्दन फूलों से तथा इत्र आदि सुगंधित पदार्थों से रोगी के आवास को सुगंधित रखना चाहिए। इस रोग में ज्वर को तोडने की औषधि न देना चाहिए । इस रोग में जितना ज्यादा बार-बार पानी पिलाया जाय उतना अच्छा है। 3) लोंग डालकर ताजा उबाला हुआ पानी पिलाना चाहिये ।4) आठ किलों पानी को औटाकर एक किलों रहने पर पिलाना चाहिये, बर्तन ताँबे का होना चाहिए। 5) सफेद चंदन, लाल चंदन, नेत्रवाला, पित्तपापडा, नागरमोथा, सोंठ, चिरायता और खस का क्वाथ पिलाने से दाह, ग्लानि, प्रलाप, विकलता, तिमिर और पित्त आदि सब उपद्रवों को निकाले में शांत करता है। 6) लाल चंदन, नेत्रवाला,

पित्तपापडा, नागरमोथा, सोंठ और धणिया का क्वाथ देने से निकाले में फायदा होता है।

निमोनिया ज्वर :- 1) सामान्य लक्षण - इस रोग के शुरु में सर्दी की बुखार, खाँसी, छाती ज्यादा गर्म रहना, मुँह और आँखे लाल रहना, सिरदर्द, खुश्की, जीभ मैली, अरुचि, छाती में दर्द, सूखी खाँसी तथा कफ मुश्किल से निकलना, कफ में खून, थूक में दुर्गंध, खाँसी ज्यादा आती है, श्वास में कष्ट होता है, आँखों का चढना, बेचैनी, चेहरा फीका रहना, होटों पर नीलापन व पसलियों में दर्द रहता है। यह रोग साधारणतः छः से दस दिन ज्यादा कष्टप्रद रहता है। 2) इस रोग में रोगी को हवा से बचना चहिए तथा गर्म स्थान में रखना चाहिए। 3) पसली पर अरण्ड के पत्ते तेल लगाकर गर्म करके बाँधना चाहिए व नमक की पोटली का सेक करना चाहिए अथवा पसली का दर्द मिटाने के लिए असली हीना का इत्र लगाना चाहिए। 4) कालीमिर्च नग पांच और मनुक्का 12.5 ग्राम लेकर एक पाव पानी में ओटावें, छटाक भर रहने पर गर्म-गर्म दिन में दो या तीन बार पिलाने से कफ पतला होकर निकल जाता है। 6) ज्वर में ज्यादा प्यास हो तो - बडी इलायची को भूनकर थोडे-थोडे दाने खिलावें। 7) यदि ज्वर में मलावरोध हो तो कुटकी, हरड, अमलतास, निसोत और आँवला का क्वाथ पिलावें। 8) यदि ज्वर में अतिसार हो तो - सोंठ, अतीस, नागरमोथा, चिरायता, कूडा की छाल इनको जौ कूट करके क्वाथ बनाकर देवें।

सब प्रकार का ज्वर :- 1) सत्यानाशी का स्वरस 2 ग्राम (2॥ माशा) 4-4 घण्टे के अंतराल से दिन में चार बार देने से सब प्रकार का ज्वर मिटता है। इससे नया पुराना मलेरिया, मियादी कफ, ज्वर, इन्फलूएंजा आदि मिटते है। समस्त रक्त विकार भी मिटता है। 2) पित्तपापडा 50 ग्राम, सोंठ 25 ग्राम, पीपल 12.5 ग्राम, काली मिर्च 6 ग्राम, अजमोद 12.5 ग्राम, नीम गिलोय 25 ग्राम, नागरमोथा 25 ग्राम, पोदीना 25 ग्राम, सेंधानमक 12.5 ग्राम इन सबको कूट कर खरल करके शीशी भर लें। मात्रा जवान को 4 ग्राम (5 माशा), बच्चों को 1.6 ग्राम (2 माशा), 50 ग्राम पानी में मिलाकर कांसी तप करके प्रातःकाल 3-4 दिन देने से सब प्रकार का ज्वर मिट जाता है। 3) रविवार के दिन आक की जड को उखाड कर कान में बाँधने से सभी तरह के ज्वर दूर हो जाते है।

ज्वर में प्यास ज्यादा होने पर :- धनिया, नागरमोथा, पित्तपापडा इनको जौ कूट करके 6.4 ग्राम (8 माशा) का काढा तीन दिन लेने से दाह, प्यास दूर होय।

ज्वर में खाँस होय तो :- 1) पीपल, पीपला मूल, सोंठ, भारंगी, खेरसार, कटाली, अडूसा, कुलिंजन, बेहडा इन सबको बराबर लेकर जौ कूट करके 4 ग्राम (5 माशा) का काढा सात दिन तक लेने से ज्वर का खाँस मिटे।

ज्वर में वमन होने पर :- गिलोय 4 ग्राम (5 माशा) का काढा बनाकर मिश्री मिलाकर देने से वमन दूर होय अथवा चावलों की खील और पीपल को मिश्री की चासनी

में चटाने से वमन मिटें।

ज्वर में श्वास होन पर :- सोंठ, मिर्च, पीपल, नागरमोथा, काकडासिंगी, भारंगी, पोहकर मूल इन सबको बराबर लेकर जौ कूट करके चार ग्राम (5 माशा) का काढा 7 दिन लेने से ज्वर का श्वास मिटे।

ज्वर में कब्ज तथा आफरा :- दाख तथा दाडम के बीजों को उबाल कर कुल्ला करने से मुख शोष तथा जीभ का विरस पन मिटे।

ज्वर में नींद न आना :- 1) अरण्ड का तेल अलसी का तेल, इन दोनों को काँसी की थाली में मलकर अंजन करने से भी नींद आती है। 2) नीम के कोमल पत्तों का रस निकाल कर फिर उसके मथने से जो झाग आवे उन्हें शरीर पर लेप करने से दाह-ज्वर व तृषा का शमन मिटता है।

गर्मी के ज्वर में वमन होना :- ढाक के कोमल पत्तों को नींबू के रस में पीसकर शरीर पर लेप करने से दाह-ज्वर मिटता है।

लू लगकर ज्वर होना :- 1) धूप में पानी रखकर गर्म होने पर स्नान करने से लू उतर जाती है। 2) इमली का पानी शक्कर या गुड मिलाकर लेने से भी लू उतर जाती है।

मौसम का ज्वर :- अडूसे के जड के चूर्ण की फक्की लेने से मौसम का बुखार उतरता है।

साधारण ज्वर :- 1) तुलसी के आठ पत्तों के रस में तीन काली मिर्च पीसकर दिन में 3 बार लेने से साधारण ज्वर मिटता है। 2) सोंठ 1.6 ग्राम (2 माशा), धनिया .8 ग्राम (1 माशा) का क्वाथ पीने से साधारण ज्वर मिटता है। 3) तुलसी के पत्तों का क्वाथ पीने से पसीना आकर ज्वर उतर जाता है। 4) अमलतास को दूध में या मुनक्का के रस में पीने से ज्वर उतरता है। 5) जिस नाक में स्वर तेज चलता हो रुई भर दो, थोडी देर में बुखार उतरेगा।

ज्वर में पसीना ज्यादा आने पर :- 1) कभी-कभी ज्वर में अत्याधिक पसीना आकर शरीर की गर्मी को निकाल कर रोगी को मार देता है। ऐसे रोगी को भुनी हुई कुलथी के चूर्ण को उसके शरीर पर मर्दन करने से फायदा होता है। 2) कायफल व सोंठ पीसकर शरीर पर मलने से भी पसीना मिटता है।

सर्दी, जुकाम व ज्वर के लिए प्रयोग :- 7 पत्ते तुलसी के, 5 लौंग लेकर एक गिलास पानी में पकाएं। तुलसी पत्र व लौंग को पानी में डालने से पहले टुकडे कर लें। पानी पककर जब आधा शेष रह जाए, तब थोडा सा सेंधा नमक डालकर गर्म-गर्म पी जाएं। यह काढा पीकर कुछ समय के लिए वस्त्र ओढकर पसीना ले लें। इससे ज्वर तुरंत उतर जाता है तथा सर्दी, जुकाम व खाँसी भी ठीक हो जाती है। इस काढे को दिन में दो-तीन बार ले सकते हैं। छोटे बच्चों को सर्दी जुकाम व कफ होने पर तुलसी व सोंठ का रस 5-7 बुंद चासनी में मिलाकर चटाने से बच्चों का कफ, सर्दी जुकाम ठीक हो जाती हैं।

यह दवा नवजात शिशु को भी अत्यल्प मात्रा में दी जा सकती है।

पीलिया (कावील) रोग :- 1) खाने का सोडा 2 ग्राम दही में मिलाकर खावे तो पीलिया रोग (कावील) दूर हो जाता है। गन्ने का रस और दूध लेने से और भी लाभ होगा। घी का परहेज रखना, खाना नहीं। 2) बन्दाल के जोडे (पंसारी के यहाँ मिलते हैं) 4-5 नग रात को मिट्टी के सकोरे में पौने कप पानी में भिगा दें। प्रातः मसलकर छान लें। उसका अर्क 2-3 बुंदे दोनों कानों में डालें। दो दिन बाद सारा पीलिया दूर जायेगा। 3) गुलाबी फिटकरी फूली हुई 2-4 रत्ती तक नित्य सेवन करें। 4) मूली के पत्तों का रस 50 ग्राम 10 ग्राम बुरे के साथ नित्य सेवन करने से भी पीलिया में लाभ होता है।

पीलिया में लाभदायक घरेलु उपचार :- 1) आक की छोटी कोंपल (नए पत्र) को पीसकर पान के पत्ते में रखकर चबाएं, 2-3 दिन के प्रयोग से पीलिया रोग ठीक होने लगता है तथा रोगी के खून में पित्तरंजकों की मात्रा कम होने लगती है। 2) विडाल डोडे को रात्रि में पानी में भिगोकर रखें, प्रातः इसे पिस लें तथा 2-3 बूँद रोगी की नासा में टपका दें या सुंघाएं। ऐसा करने से रोगी को आराम मिल जाता है। 3) बडी दूधी को घिसकर पीने से पीलिया रोग शांत हो जाता है।

जुकाम रोग :- 1) अडुसा के पत्तों का क्वाथ पीने से जुकाम मिटता है अथवा नारंगी के छिलकों का क्वाथ पीने से मिटता है। 2) जुकाम के वेग को कम करने के लिए अजवाइन गर्म करके पोटली बनाकर सुंघना चाहिए अथवा काला जीरा (कलोंजी) को गर्म करके सुंघना चाहिए। 3) कायफल को पीसकर सुंघने से जुकाम मिटता है। 4) पुराना जुकाम मिटाने के लिए साफ पानी को 5-6 घंटे धुप में रखकर पीना चाहिए। 5) बच को नाक पर लगाने से जुकाम की खांसी व तीव्र ज्वर भी मिटता है। 6) गर्म दूध में काली मिर्च व हल्दी का चूर्ण बुरका कर पीने से जुकाम ज्वर मिटता है। 7) हल्दी के धुयें को नाक में नली द्वारा चढाने से जमा हुआ पानी तथा भयङ्कर कफादि भी बहकर तुरंत जुकाम मिटता है। परंतु याद रहे ऊपर दो-चार घंटे पानी न पीवे। 8) सात कालीमिर्च साबुत कुछ दिन थोडे पानी के साथ निगलने से जुकाम मिटता है। 9) गर्मी का जुकाम मिटाने के लिए-पोस्त के डोडे पानी में ओंटाकर उसमें शक्कर का पाक बनाकर सेवन करना चाहिए। 10) जुकाम के वेग को कम करने के लिए कायफल को पीसकर या अजवाइन गर्म करके पोटली बनाकर सूंघना चाहिए।

सिर रोग :- 1) ज्यादा जोर से बोलने से गरीष्ठ और मिर्च ज्यादा खाने से अजीर्ण से, बादलों के होने से, रात्री जागरण करने से, ठण्डी वायु के लगने से, क्रोध आदि के कारणों से प्रायः सिर पीडा होती है। 2) इसके लिए सामन्यतः उपाय पावों का दबाना, पावों के तलवे मसलवाना, पैर धोना, हाथ-पाँव पर गर्म पानी का तराडा देना, खाने-पीने में कमी करना, सिर में तेल की मालिश करवाना, बफरा देना, औषधिय नस्य सूंघना, छींक लेना, वमन करना, जुलाब लेना आदि

उपाय करना चाहिए। 3) नौसादर और हल्दी मिलाकर सूंघने से सिर की पीडा मिटती है। 4) मेहंदी को तेल में पिसकर लेप करने से मस्तक पीडा मिटती है। 5) खस के पंखे से हवा तथा गुलाब के इत्र को सूंघने से सिरदर्द मिटता है। 6) छोटी इलायची को खरल करके सूंघने से अथवा चिरमी को महीन पीसकर सूंघने से तीव्र सिरदर्द मिटता है। 7) कान के पीछे की नाडियाँ और गर्दन के पीछे की नाडियाँ और सिर के पीछले भाग पर तेल की मालिश करने से सिरदर्द मिटता है। 8) सात लाल मिर्च दूध में उबालकर पीलावे और रबडी के मालपुअे खाने से सिरदर्द और सूर्यावर्त्त शर्तिया मिटता है। 9) नींबू का रस गुनगुनाकर कान में टपकाने से सर्दी का सिरदर्द मिटता है। 10) सोंठ 12.5 ग्राम और घृत 25 ग्राम का सिर में मालिश करने से मस्तक शूल मिटता है। 11) असली चंदन के तेल को लगाने से गर्मी का सिरदर्द मिटता है। 12) दालचीनी का तेल लगाने से वायु का सिरदर्द नष्ट होता है। 13) बकरी के दूध में सोंठ का बारीक चूर्ण मिलाकर या सोंठ को पीसकर सिर पर लेप करने से सिर पीडा मिट जाती है।

आधाशीशी की पीडा :- 1) अरीठा को 1-2 कालीमिर्च के साथ पानी में पीसकर नास देने से आधाशीशी मिटे। 2) घृत में केशर घोटकर सूँघने से आधाशीशी तथा अन्य मस्तक पीडा मिटजाय। 3) गाय के घृत की नास देने से या सूँघने से आधाशीशी मिटती है। 4) कालीमिर्च को घृत में पीसकर नाक में टपकाने से आधाशीशी मिटती है। 5) नारियल के पानी को नाक में टपकाने से आधाशीशी की पीडा मिटती है। 6) गाय के घी में सोरा मिलाकर सूंघने से आधाशीशी रोग दूर होता है। 7) गाय का ताजा घी सुबह शाम दो चार बुंद नाक में रूई से टपकाने अथवा सुँघते रहने से आधा शीशी की पीडा जल्दी से आराम हो जाता है। साथ ही इससे नाक से खून गिरना भी जडमूल से नष्ट हो जाता है। सात दिन तक ले। 8) सिर के जिस तरफ के भाग में दर्द हो उस तरफ के नथुने में 7–8 बूंद सरसों का तेल डालने अथवा सूंघने से दर्द एकदम बन्द हो जाता है। 4-5 दिन तक दिन में 2-3 बार इसी प्रकार सूंघने से दर्द सदा के लिए मिट जाता है।

वायु से सिरदर्द :- गुड और सोंठ का नस्य लेने से सिरदर्द में फायदा होता है।

पित्त से सिरदर्द :- 1) सिर आग की तरह जलता हो, नाक में दाह हो, मस्तक शूल हो इसमें शीतल पदार्थों का सेवन लाभदायक है। 2) मिश्री घृत और मुलेठी की नस्य देने से सिरदर्द मिटता है। 3) सागवान् की लकडी को पानी में घिसकर सिर पर लेप करने से गर्मी की मस्तक पीडा मिटती है।

कफ की मस्तक पीडा :- 1) मस्तक छूने से ठण्डा और बँधा हुआ सा लगे, आँख और मुँह पर सूजन हो तो समझ लो कि कफ से मस्तक पीडा है। 2) तुलसी व अडूसा के रस की नस्य देने से मस्तक पीडा मिटती है। 3) काली मिर्च के चूर्ण का नस्य लेने से कफ जनित सिर पीडा मिटती है। 4) विक्स को पानी में उबालकर बफारा लेने से

कफ जनित सिदर्द मिटता है।

मस्तक की स्नायु संबन्धी पीडा - धनिया का लेप करने से आराम मिलती है।

जुकाम से सिर दर्द :- पीपल के चूर्ण की नास लेने से सिरदर्द मिटता है।

सूर्यावर्त्त :- 1) दूध में घृत मिलाकर नस्य लेने से सूर्यावर्त्त मिटता है। 2) घृत में गुड मिलाकर पिलाने से सूर्यावर्त्त मिट जाता है।

मस्तक का दर्द दूर करने का मंत्र :- ॐ णमो अरहंताणं, ॐ णमो सिद्धाणं, ॐ णमो आइरियाणं, णमो उपज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं। ॐ णमो णाणाय, ॐ णमो दंसणाय, ॐ णमो चरित्ताय। ॐ ह्रीं त्रैलोक्यवश्यंकरी ह्रीं स्वाहा। एक कटोरी में जल लेकर यह मंत्र 21 बार पढकर जिसके मस्तक में आधाशीशी व दर्द हो उसे पीला दें तो तत्काल ही उसका सिरदर्द रोग मिट जाता है।

श्वास, कफ, साइनस, पीनस व सिर दर्द में लाभदायक रीठा जल:- रीठा चूर्ण एक ग्राम, 2-3 ग्राम त्रिकुट (सोंठ, कालीमिर्च एवं पीपल) चूर्ण को 50 ग्राम पानी में डालकर रखें। प्रातः जल को निथारकर अलग शीशी में भरकर रखें। इस जल की 4-5 बुँद प्रातःकाल खाली पेट नियमित रूप से नाक में डालने से अंदर जमा हुआ कफ बाहर निकल जाता है। इससे नासारंध्र खुल जाते हैं व सिर दर्द में भी तुरंत लाभ पहुँचता है।

पित्त रोग (गर्मी शांत होना) :- 1) ठण्डे पानी में मेनफल, पीपल, वच व चंदन को मिलाकर उसमें गुड भिगोवें। यदि रोगी के अधिक पित्तप्रकोप है तो उक्त पानी से उसे वमन करावें एवं पीछे ठण्डा घृत व दूध मिली हुई यवागु उसे पीने को दे। इससे वमन होकर पित्त शमन हो जाता है। 2) पित्तापशम कारक अन्य उपाय :- पुष्प माला धारण, चंदन लेपन, पानी में भिगोया पतला वस्त्र धारण, कमल नाडी का हार पहनना, केले के पत्ते व कमल पत्ते बिछाकर ऊपर सोना, ठण्डे पानी का सूक्ष्म कणों से प्रक्षेपण, शीतल हवा, खस का टाटा बांधकर उस कमरे में सोना, मूँगा की माला पहनना। इत्यादि ठण्डे पदार्थों के प्रयोगों से पित्तोपशमन होता है। पित्तोपशमन के लिए दोनों हाथों में नींबू रखना चाहिए। 3) पित्तोशमन के लिए मुख्यतया शीत क्रिया करनी चाहिए अतः प्रयत्नपूर्वक शीत अन्नपानादि का सेवन करना चाहिए। ठण्डे पानी में स्नान करना, ठण्डे मकान में रहना आदि से भी पित्त का प्रबल जलन दूर हो जाता है। 4) कांसी की थाली में गाय का घृत कपूर मिलाकर पाँवों की पगथलियों को कई देर तक रगडने से गर्मी शांत हो जाती है। 5) धनियाँ, किशमिश (दाख), काकडी का बीज, इलायची दाना 4.8-4.8 ग्राम (6-6 माशा) इन सबको पीसकर ठण्डाई मिश्री मिलाकर बनालो फिर इसबगोल की भूसी की फक्की लेकर ऊपर से इस थंडाई को पीने से विषम पित्त तथा गर्मी शांत होती है। 6) शाम को 5-6 लोंग पानी में एक हांडी में भिगो दें, सुबह उन लोंगों को निकाल ले व उनकी फूली तोडकर फेंक दे फिर मिश्री मिलाकर रोजाना

ठण्डाई के रूप में पीने से गर्मी शांत होती है तथा वायु आदि के चक्कर नहीं आते हैं। इससे ब्लड प्रेशर भी लेवल पर रहता है। 7) बादाम की गिरी 5 दाना, कद्दु के बीज, खरबुजा के बीज और काडू के छिलके रहित बीज 2.4-2.4 ग्राम (3-3 माशा) लेकर सबको पानी में पिसकर छान ले फिर 25 ग्राम शर्बत बनकसा मिलाकर पीने से गर्मी से होने वाला नजला व सिरदर्द मिटता है और मस्तिष्क को शक्ति प्रदान करता है।

तृषा रोग :- 1) धनियाँ को रात्री में भिगोकर सुबह मिश्री मिलाकर घोटकर पीने से सब गर्मी शांत हो जाती है। 2) शीतल स्थान में रहने से, जल क्रीडा करने से पित्त की प्यास बुझ जाती है। 3) लोंग का काढा पीने से कफ की प्यास मिटती है अथवा आलुबुखारा चूसने से प्यास मिटे। 4) तुलसी का रस का मर्दन करने से दाह रोग शमन होता है।

खाँसी रोग :- 1) सोंठ, पीपल, कालीमिर्च का चूर्ण लेने से खाँसी मिटती है। 2) अडुसा के पत्तों के स्वरस में मिश्री मिलाकर पिलाने से सूखी खाँसी मिटती है। 3) अडुसा, मनुक्का व मिश्री मिलाकर पीने से सूखी खाँसी मिटती है। 4) तुलसी के पत्तों से भी सूखी खाँसी मिटती है। 5) अडुसा की सूखी छाल को चिलम में पीने से श्वास-खाँसी मिटती है। 6) छोटी इलायची और पीपलामूल के चूर्ण को घृत के साथ चाटने से कफ निकल जाता है। 7) पीपर छोटी एक भाग, दो भाग बेहडा के चूर्ण को बूरे की चासनी में चाटने से खांसी मिटती है। 8) थोडी पीसी हुई हल्दी, थोडा बूरा गर्म जल में डालकर पी लें। 9) दस ग्राम भुनी फिटकरी, सौ ग्राम बूरा की चौदह पूडियाँ बना लें। सूखी खांसी हो तो 125 ग्राम दूध के साथ लें। गीली खांसी हो तो पानी से लें।

श्वास-खाँसी :- 1) अडुसा की सूखी छाल को चिलम में पीने से श्वास-खाँसी मिटती है। 2) अडुसा के पत्ते और जड को सोंठ के साथ औटाकर पीने से खाँसी मिटती है। 3) गुदा पर तेल लगाने से खाँसी मिटती है। अथवा केले के पत्ते की राख को नमक मिलाकर खाने से खाँसी मिटती है।

दमा (श्वास) रोग :- 1) आम की गुठली की गिरी खाने से भी श्वास रोग मिटता है। 2) भुने हुए चने खाकर ऊपर दूध पीकर सो जाने से श्वास की नली का कफ साफ होता है। 3) सुहागा के फूल और मुलहठी दोनों बराबर मात्रा में बारीक पीस लें। चासनी के साथ एक ग्राम लें। परहेज - दही, केला, चावल, ठंडे पदार्थ।

काली गोली - यदि कफ सूख गया हो तो :- 1) मूलैठी 12.5 ग्राम को 250 ग्राम पानी में उबालकर छान ले और उसमें 12.5 ग्राम घृत और मिश्री 12.5 ग्राम तथा सेंधा नमक .8 ग्राम (1 माशा) मिलाकर पीने से कफ हरा होकर निकलता है। 2) पुराना गुड 25-50 ग्राम और सरसों का तेल 25 ग्राम मिलाकर सवेरे ही 21 दिन तक चाटने से दमा रोग मिटता है।

कफ रोगों का घरेलु उपचार :- बादाम गिरी 100 ग्राम, खांड 50 ग्राम, काली मिर्च 20 ग्राम इन सबका पाउडर करके मिलाकर सुरक्षित कर लें। **सेवन विधि** - एक चम्मच सांय खाने क बाद गुनगुने दूध से सेवन करने से जीर्ण कफ रोग, नजला-जुकाम, साइनस में विशेष लाभ होता है। यह प्रयोग कब्ज को भी दूर करता है। **विशेष** : जिनको मधुमेह हो वे व्यक्ति खांड का प्रयोग न करें तथा जिनको अम्लपित्त हो वे काली मिर्च 10 ग्राम की मात्रा में ही प्रयोग करें।

दंत रोग :- 1) अजमोद की धूनी देने से दंत पीडा मिट जाती है। 2) फिटकरी का मञ्जन करने से सडे दंतों की पीडा मिट जाती है। 3) गर्म पानी के कुल्ले करने से दाँत और दाढ की पीडा मिटती है। 4) बडी इलायची के क्वाथ के कुल्ले करने से दंत और मसुडों की पीडा मिटती है। 5) नागरमोथा, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, वायविडिंग, नीम का पत्ता इन सबको महीन कूट छानकर गाय के घृत की 3 पुट देकर छाया में सूखा लें और गोली बनाकर सोते वक्त 1 गोली मुंह में रखकर सो जाएँ फिर प्रभात गोली थूक दे व कुल्ला करने से दाँतों के समस्त रोग मिटते हैं। 6) यदि दाँतों में कीडे पडकर छिद्र हो गये हो तो उस छिद्र में कपूर भरने से आराम हो जाता है। 7) दो ग्राम सेंधा नमक अत्यंत बारीक, आठ ग्राम सरसों का तेल इससे कुल्ला करने से दातों के समस्त रोगों में आराम पडता है। 8) नीम की लकडी की राख, कपूर, इलायची, कालीमिर्च, काला नमक, माजूफल, दालचीनी, हरड का चूर्ण, तोमर के बीज, फिटकरी का भस्म सबका चूर्ण बनाकर नित्य गर्म पानी के साथ कुल्ला करने से लाभ होता है। 9) पीपल, मोचरम, जीरा, हरड, सेंधा नमक का मंजन बनाकर नित्य गर्म पानी से कुल्ला करने से लाभ होता है।

पाइरिया :- 1) खस, इलायची और लोंग का तेल मिलाकर लगाने से पाइरिया रोग मिटता है तथा मुँह की दुर्गन्ध मिटती है। 2) पाइरिया वाले रोगी को हमेशा अपना पेट साफ रखना जरुरी है, उसे में भोजन में हरी सब्जियाँ और फलों का सेवन करना चाहिए। 3) सैंधानमक, खेरसार, कूट, धनियाँ, कालीमिर्च, सौंठ, भुना जीरा, भुना थोथा, भुनी अजवाइन का मंजन करने से पाइरिया में लाभ होता है। 4) नीला थोथा का फूला एक तोला, कपूर एकतोला, लौंग दो तोला, दालचीनी दो तोला, फिटकरी का फूल चार तोला, समुद्र झाग आठ तोला, सोना गेरु छः तोला, शुद्ध चाक की मिट्टी सोलह तोला को कूट छानकरके मंजन करने से दंत शूल व पाइरिया से कुछ दिनों में ही मुक्ति मिल जाती है। 5) कच्चा माजुफल, 1 जला हुआ माजुफल, 1 जली हुई सुपारी पीसकर मंजन बनाकर मंजन करने से दांत मजबुत होते हैं व खून आना बंद हो जाता है। 6) आंवला जलाकर, सेंधा नमक मिलाकर सरसों के तेल के साथ मंजन करने से पाइरिया से कुछ दिनों में ही मुक्ति मिल जाती है। 7) जीरा, सेंधा नमक, हरड, सेमल के कांटे, दाल चीनी, शुद्ध कुचेला, शुद्ध मिलाचा, दक्षिणी सुपारी,

मोलसरी का छाल, माजूफल, अकरकरा को समभाग किसी बंद बर्तन में जलाकर पीस कर मंजन करने से पाइरिया में अत्यन्त लाभ होता है।

दाँतो के मसूडो तथा मुँह का रोग :- 1) अडुसा के पत्ते औटाकर कुल्ला करने से मसूडों का दर्द मिटता है। 2) मेहंदी के पत्तों के क्वाथ से कुल्ला करने से मसूडों का असाध्य रोग मिटता है। 3) शक्कर के बूरे को बारीक करके मञ्जन करने से दाँतों का दर्द मिटता है।

मुंह की दुर्गन्ध :- 1) भोजन के बाद एक लौंग नित्य चूसें। 2) भोजन के बाद आधा चम्मच सौंफ लें। 3) कोमल मीन की ताजी पत्ती, काला नमक, कालीमिर्च का सेवन करने से पायरिया में लाभ होता है व दुर्गन्ध मिटती है। 4) खस, इलायची, लौंग का तेल लगाने से दांत के रोगों में लाभ व मुंह से आने वाली दुर्गन्ध मिटती है।

मुख के छाले :- 1) पीपल को बारीक पीसकर मिश्री की चासनी में मिलाकर जीभ पर लगाने से लार आकर छाले मिटते हैं। 2) मुलेठी को मुँह में रखने से भी मुँह के छाले मिटते हैं। 3) अधिक बोलने से या गर्मी में गला बैठ जाने पर धनिया व मिश्री को महीन करके चाटना चाहिए। 4) छोटी हरड बारीक पीसकर लगाने से लाभ होता है। 5) टमाटर ज्यादा सेवन से भी लाभ होता है। 6) चमेली के पत्ते या गुंदी की छाल मुंह में रखने से लाभ। 7) जामुन के पत्ते चबाने से या उसके पानी से कुल्ला करने से भी लाभ होता है।

होठों के रोग तथा मुख पाक :- 1) गाय के घृत को 100 बार धोकर कपूर मिलाकर लेप करने से होठों का रोग मिटता है। 2) 2-3 लोंग प्रतिदिन चबाने से वायु के छाले मिटते हैं। 3) जामुन के नरम और ताजे पत्ते पानी में पीसकर कुल्ले करने से भयंकर छाले भी मिटते हैं।

मुख से खून आने का रोग :- 1) ढाक के ताजे रस में मिश्री मिलाकर पीने से मुँह आदि का रुधिर बंद हो जाता है। 2) हल्दी 3.2 ग्राम (4 माशा), फिटकरी 3.2 ग्राम (4 माशा) मिलाकर पीसकर 3 पुडिया बना कर 3 दिन लेने से मुख में से आने वाला रक्त बंद हो जाता है। 3) अच्छे और पके हुए केले खाने से मुँह से आने वाला खून बंद हो जाता है।

गले की खराश/उपजीव/टॉनसिल्स :- 1) 250 ग्राम दूध, दो ग्राम हल्दी, चौथाई चम्मच सोंठ का चूर्ण उबालें। गर्म-गर्म पीयें। 2) थोडी कुटी हल्दी, सेंधा नमक प्रत्येक के 6-6 ग्राम दिन में तीन बार गरारे (कुल्ला) करें।

थायराइड-टांसिल्स व कफरोग :- त्रिकूट चूर्ण 50 ग्राम, बहेडा चूर्ण 20 ग्राम, प्रवाल पिष्टी 10 ग्राम। **सेवन विधि** - सबका चूर्ण करके मिलाकर रख लें। बडी आयु के व्यक्ति एक-एक ग्राम तथा छोटी आयु के रोगी आधी-आधी ग्राम की मात्रा में चूर्ण लेकर प्रातःकाल खाली पेट चासनी या मनुक्का की चटनी के साथ सेवन करें। निरन्तर सेवन करने से थायराइड के रोग में विशेष लाभ होता है तथा बच्चों के टांसिल्स की

समस्या भी दूर हो जाती है। श्वास व कफ रोगों में भी यह प्रयोग लाभप्रद है।

गला बैठने पर :- कच्चा सुहागा (मटर के बराबर) मुँह में रखकर चूसें। धनिया को बूरे की चासनी में मिलाकर चाटने से भी लाभ होता है।

स्वर-भंग :- 1) मुलेठी का सत् मुँह में रखकर रस चूसने से स्वरभंग रोग मिटता है। 2) दाख और फालसा को मुख में दबाने से समस्त कंठ रोग मिटते हैं। 3) अच्छे और पके हुए केले खाने से मुँह से आने वाला खून बंद होता जाता है।

हिचकी रोग :- 1) गर्म दूध में घी पीने से अथवा गर्म घृत पीने से हिचकी मिटती है। 2) प्राणायाम करने से, किसी प्रकार की भयंकर बात कहने से या डर से हिचकी मिटती है।

बल पुरुषार्थ और मगज पुष्ट :- 1) सेव का मुरब्बा खाने से मगज पुष्ट होता है। 2) चिलगोजा खाने से शरीर में फुर्ती आती है। 3) बादाम की गिरी और भुने हुए चने छीलकर प्रतिदिन खाने से बल बढता है। 4) ब्राह्मी, मजीठ और वच इनके चूर्ण को प्रतिदिन शुद्ध चित्त होकर घी, दूध, शक्कर के साथ सेवन करने से व्यक्ति निरोग बन जाता है, उसकी शक्ति बढती है तो सौंदर्य से युक्त होकर एवं शास्त्रों को जानने वाला विद्वान् बन जाता है। 5) केला दूध के साथ खाने से शक्ति बढती है। इतनी शक्ति बढती है कि मांसाहारी जिस उद्देश्य से मांस खाते हैं उससे कई गुणा अहिंसक आहार केला और दूध से शक्ति मिलती है। इसका सेवन सभी करें। 6) ब्राह्मी, बच, कूट, सोंठी, मुंडी, जीरा इन छः चीजों को बराबर लेकर चूर्ण कर रखें। रोज सुबह 2.4 ग्राम चूर्ण ठंडे पानी के साथ लेवें। 50 दिन तक लेने से स्मरण शक्ति बढती है।

स्मरण शक्ति की कमजोरी (Weak - memory) :- सात दाने बदाम गिरी सांयकाल जल में भिगों दें। प्रातः छीलकर बारीक पीस लें। यदि आँखें कमजोर हो तो साथ ही चार काली मिर्च पीस लें। इसे उबलते हुए 250 ग्राम दूध में मिलाए । जब तीन उफान आ जाए तो नीचे उतार कर एक चम्मच देशी घी और दो चम्मच बूरा (या चीनी) डाल कर ठंडा करें। पीने लायक गरम रह जाने पर इसे आवश्यकता अनुसार 15 दिन से 40 दिन तक लें। यह दूध मस्तिष्क और स्मरण शक्ति की कमजोरी दूर करने के लिए अति उत्तम होने के साथ वीर्य बल वर्धक है।

विशेषः यह बदाम का दूध सर्दियों में विशेष लाभप्रद है और दिमागी मेहनत करने वाले एवं विद्यार्थियों के लिए अत्यंत उपयोगी है। प्रातः खाली पेट इस दूध को लेने के बाद दो घंटे तक कुछ न खाएं पीएं। उपर्युक्त बदाम का दूध तीन–चार दिन खाने से आधे सिर के दर्द में आराम होता है।

अन्य विधिः– यदि उपर्युक्त तरिके से बादाम का दूध लेना सम्भव न हो तो सात भिगोई हुई बादाम की गिरियाँ छिलकर (चार काली मिर्च के साथ घिसकर बारीक करके अथवा

वैसे ही) एक–एक बादाम को नित्य प्रातः खूब चबा–चबा कर खालें और ऊपर से गर्म दूध पी लें। स्मरणशक्ति की वृद्धि के साथ-साथ इससे आँखों के अनेक रोग जैसे - आँखों की कमजोरी, आँखों का थकना, आँखों से पानी गिरना, आँख आना आदि दूर हो जाते हैं।

नेत्र रोग :- 1) त्रिफला को भिगोकर प्रतिदिन आँखें धोने से आँखों के रोग प्रायः मिटते हैं। 2) आँखों की शक्ति बढाने हेतु हरे शाक, दूध आदि पदार्थों का सेवन ज्यादा से ज्यादा करना चाहिए। 3) सबेरे उठते ही अपने बासी थूक से अञ्जन करने से नेत्र रोग मिटता है। 4) गर्मी से आँखों की खराबी में गुलाबजल का फोहा बाँधने से आराम मिलता है। 5) स्त्री के दूध को आँखों पर टपकाने से नेत्र पीडा मिट जाती है। 6) आँखों की ज्योति बढाने के लिए कनपटी और आँखों के पपोठों पर लाल चंदन का लेप करना चाहिए। 7) जायफल को पानी में घिसकर लेप करने से आँखों की ज्योति बढती है। 8) घृत 37.5 ग्राम, मिश्री 37.5 ग्राम व कालीमिर्च .8 ग्राम (1 माशा) मिलाकर प्रतिदिन खाने से आँखों का धुंधलापन भी मिट जाता है। 9) गवार के पत्तों का साग खाने से रतौंधी मिट जाती है। 10) टमाटर ज्यादा खाने से रतौंधी मिटती है। 11) चंदन और केशर में लौंग घीसकर लगाने से आँखों की गुमडी मिटती है। 12) सुपारी का लेप करने से आँखों की सूजन मिट जाती है। 13) भीमसेनी कपूर को पुत्रवती स्त्री के दूध में घीसकर लगाने से मोतियाबिंद में फायदा होता है। 14) असली लाल चंदन लेकर आँखों में डालने से फूल मिट जाता है।

आँखों का दुखना :- 1) दो रत्ती फिटकरी बारीक तीस ग्राम गुलाब जल में घोलकर ड्रापर से आंखों में डालने पर आंखों संबंधी 80 प्रतिशत रोग दूर होते हैं एवं घी, बुरा, कालीमिर्च का सेवन करें। 2) आनार के पत्ते पीसकर टिकिया बनाकर बांधने से भी नेत्र पीडा दूर होती है। 3) वश्ल के कोमल पत्ते पीसकर घी में तलकर बांधने से अधिक पुराने दर्द में भी कुछ दिनों में ही लाभ हो जाता है।

दिवान्ध की दवा :- 1) लडकी की माता का दूध, बनफसा का तेल, कद्दू का तेल नाक में डाले इससे दिवान्ध रोग मिटे। 2) ठण्डे पानी में डुबकी लगाकर पानी के भीतर आँखें खोलें इससे दिन में दिखने लगेगा।

दृष्टि वर्द्धक उपाय :- 1) चमेली के फूलों की डंडी में समान भाग मिश्री मिलाकर खरल करें। फिर आँखों में आँजने से दृष्टि बढती है। 2) 125 ग्राम पानी में 1.2 ग्राम (1 ॥ माशा) नमक मिलाकर उसमें रुई भिगोकर बार-बार आँख पर रखें। इससे दुखती हुई आँखों को लाभ होता है। 3) सेंधा नमक 12.5 ग्राम और मिश्री 25 ग्राम को पीसकर काजल बनाले और अञ्जन करने से आँखों का मोतियाबिंद और जाला आदि कट जाता है।

कान रोग :- 1) आम के पत्तों के रस को गुनगुना करके कान में डालने से कान पीडा मिटती है। 2) बकरी के दूध को कान में डालने से पीडा मिटती है। 3) ऊँट का मूत्र कान में

डालने से कान पीडा मिटती है। 4) सहजना का गोंद पीसकर कान में बुरकाने से कान बहना मिटता है। 5) मेथीदाना दूध में पीसकर छान ले फिर गुनगुना कर कान में टपकाने से कान बहना मिटता है। 6) जीरा को दूध के साथ लेने से बहरापर मिटता है। 7) अर्जुन के पत्तों का स्वरस डालने से कर्णशूल मिट जाती है। 8) बादाम का तेल डालने से कान में शब्द होना मिट जाता है। 9) सरसों का तेल डालने से सर्दी से होने वाली कान की गुनगुनाहट मिटती है। 10) आक के नये पत्ते का रस गुनगुनाकर कान में निचोडने से सुनाई देता है। 11) पोदीना का अर्क और तिल का तेल बराबर गर्म करके कान में डालने से बहरापन मिटता है। 12) मेथी के चूर्ण को स्त्री के दूध में घोलकर टपकाने से कान का पीप बंद होता है।

नाक रोग :- 1) ठंडे पानी को सिर पर गिराने से नकसिर बंद होती है। अथवा बर्फ को सिर पर रखने से फायदा होता है। 2) गाय का कच्चा दूध एक पाव और मिश्री मिलाकर दिन में दो बार पीने से नकसिर मिटती है। 3) जीरे का चूर्ण घृत और शक्कर के साथ नाक में टपकाने से पीनस मिटती है। 4) दोब के रस की या दाडम के रस की नस्य देने से नकसिर मिटती है। 5) सौ बार धोयें घृत को मस्तक पर मलने से नकसिर मिटती है। 6) आंवला को घृत में भूनकर मस्तक पर लेप करने से नकसिर मिटती है। 7) नाक तथा मूत्र में रुधिर आवे तो दूब को मिश्री के साथ पीसकर पिलाना चाहिए। 8) आँवला, अंगुर, गन्ना, नींबू में से किसी एक के रस की चार बूँद नाक में डालने से नकसीर आना बंद हो जाता है। 9) पानी में मिश्री घोलकर तीन बूँद नाक में डालने से नाक से रक्त आना बंद हो जाता है।

नकसीर में लाभदायक पीपल पत्र :- नकसीर में पीपल के पत्तों को लेकर कूट पीस कर रस निकाल लें। 5-5 बूँद दोनों नासिका में टपका देने से शीघ्र नकसीर बंद हो जाती है। 30-40 पत्रों का रस निकालकर मिश्री मिलाकर पीने से शीघ्र लाभ होता है। रक्तस्राव में इसे 5-10 मि.ली.ग्राम प्रातः खाली पेट दें। शीघ्र ही लाभ होता है।

वमन रोग :- 1) सौंफ को पीसकर पानी में भिगोकर उस पानी को पीने से वमन मिटता है। 2) पांच लौंग का चूर्ण मिश्री की चासनी के साथ लेने से वमन मिटता है। 3) कोमल केला खाने से भी वमन मिटती है। 4) सफेद चंदन को घिसकर गोली बनाकर दिन में 2-3 बार लेने से खून का वमन मिटता है। 5) पिस्ते खाने से भी जी मचलना और वमन मिट जाता है। 6) घृत में दो पताशे डालकर खाने से एक घंटा में वमन मिट जाता है। 7) दो लौंग, तीस ग्राम पानी में पीस कर उबालें। उस गर्म पानी को पीने से उल्टीयां बंद होती है। 8) जीरा 3 ग्राम, बूरा 6 ग्राम चूर्ण पानी के साथ दिन में 2-3 बार लें। 9) उबाकाई आना, हिचकी आना, जी मचलना, उल्टियाँ होना इत्यादि शिकायत होने पर लौंग व छोटी इलायची चूसें शर्तिया दवा है। तुरंत लाभ होता है। पानी में उबालकर भी पीने को दे तो अति उत्तम।

वमन कराने के उपाय :- 1) तालु में अंगुली फेरने से वमन होता है। 2) राई के चूर्ण

को पानी में घोलकर देने से शीघ्र वमन होता है। 3) फिटकरी पीसकर पानी में पीने से वमन हो जाता है। 4) गर्म पानी में नमक अथवा तिल का तेल मिलाकर पीने से वमन होता है।

हैजा रोग :- 1) लाल मिर्च, हींग और वच की गोलियाँ बनाकर देने से हैजा रोग मिटता है। 2) नींबु में कालीमिर्च और नमक भरकर चूसने से हैजा में फायदा होता है। 3) हैजा रोग में वमन और दस्त होने के पश्चात् रोगी को थोडा पानी पिलाना भी हानिकारक है। 4) जावित्री सेक कर देने से हैजे का दस्त बंद हो जाता है। 5) जायफल को ठण्डे पानी में घिसकर मर्दन करने से हैजों में लगने वाली प्यास बुझती है। 6) हैजे की प्यास मिटाने को बर्फ चुसाना चाहिए अथवा नारियल का पानी पिलाना चाहिए। 7) जायफल को तेल में घिसकर मर्दन करने से हैजे में आने वाले बांइटे मिटते हैं। 8) नीम के तेल को मर्दन करने से विषूचिका में तथा बुखार में आने वाले बांइटे मिटते हैं। 9) तुलसी के पत्तों के रस में इलायची का चूर्ण मिलाकर पीने से हैजा रोग मिटता है।

दस्त :- 1) सूखा आंवला दस ग्राम, काली हरड पांच ग्राम को बारीक पीसकर चूर्ण बनायें नित्य एक ग्राम सेवन करें। 2) सौंफ, जीरा सफेद दोनों बराबर वजन तवे पर भून लें चूर्ण नित्य तीन ग्राम सेवन करें।

पथरी रोग :- 1) गोखरु के बीज दो आने भरकर पीस ले फिर बकरी के दूध में मिलाकर पीने से पथरी रोग मिटता है। 2) अंगुर के पत्तों का रस पीने से पथरी रोग मिटता है। 3) दाँये हाथ की बीच की अँगुली में लोहे की अंगुठी पहनने से पथरी रोग शांत होता है।

गुर्दे की पथरी :- 1) ताजी हरी मेहंदी की पत्तियाँ 12 ग्राम चार कप पानी में उबालें। पानी एक कप रह जाए तब सेंधानमक मिलाकर छान कर पी लें। सात दिन में नियम से पूर्ण लाभ होगा। 2) जवाखार सात ग्राम, कमली शोरा सात ग्राम, सुहागा सात ग्राम को बारीक पीसकर 21 पुडियाँ 1-1 ग्राम की। कुल्थी के काढे से नित्य सेवन करें। 3) छः ग्राम कुल्थी 1 गीलास पानी में उबालें। एक कप रह जाये तब पीऐं। लाभ होगा।

लीवर (यकृत) रोग :- 1) छाछ में हींग का बघार देकर जीरा, कालीमिर्च और नमक मिलाकर पीने से लीवर रोग में फायदा होता है। 2) लीवर में ताकद लाने के लिए अमर बेल का क्वाथ पीना चाहिए। 3) बडी इलायची का चूर्ण 5 ग्राम प्रमाण खाने से यकृत के घाव मिट जाते हैं। 4) अच्छे पके आम के रस में मिश्री मिलाकर खाने से प्लीहा मिट जाता है। 5) ब्राह्मी के क्वाथ में केसर बुरका कर देने से यकृत और प्लीहा के रोग में पैदा हुई उसासी मिटती है।

हृदय रोग :- 1) **निषेध** - चिंता, मैथुन, अति परिश्रम, ऊपर चढना, जोर से बोलना तथा थकावट आने पर काम करना इस रोग में सर्वथा वर्जनीय है। 2) **पथ्य** - भोजन में दूध, सेव या सेव का मुरब्बा सेवन करना चाहिए इसके अतिरिक्त हरे शाक, सब्जी तथा फल

आदि का विषेश सेवन करना चाहिए। 3) अर्जुन और गंगेरण की जड की छाल का चूर्ण बनाकर ऊपर दूध पीना चाहिए। इससे हृदय की बादी का रोग मिटता है। 4) छोटी इलायची और पीपलामूल के चूर्ण को घी के साथ चाटने से उपद्रव सहित कफ का हृदय रोग मिटता है। 5) अलसी के पत्ते और धनिया का क्वाथ पीने से हृदय की निर्बलता मिट जाती है। 6) नागरबेल के पान का शरबत पीने से हृदय को बल मिलता है। 7) हृदय रोग वाले को मुँह में स्वर्ण की डाली या दाँतों में स्वर्ण लगवाना चाहिए इससे फायदा होता है। 8) हृदय रोग वाले को मुक्तापिष्टि व प्रवालपिष्टि, दूध की मलाई या हलवा के साथ सेवन करने से लाभ होता है। 9) मुरब्बे के आंवलों को लगाकर सितोफलादि चूर्ण व मुक्तापिष्टि खाने से फायदा होता है। 10) पुनर्नवा, कुटकी, चिरायता और सोंठ का काढा लेने से समस्त हृदय रोग मिटते हैं। 11) हृदय रोग वाले हर व्यक्ति को हर समय अपने पेट को साफ रखने का खयाल रखना चाहिए क्योंकि कब्ज आदि के होने से गैस बनकर हृदय में गैस आने का खतरा बना रहता है। 12) कपूर की डली को शीशी में रखकर सूँघने से भी कभी-कभी हृदय रोग का दौरा निकल जाता है। 13) छाती के दर्द में विक्स व आयोडेक्स को आहिस्ता-आहिस्त मलना चाहिए। 14) अर्जुन की छाल का क्वाथ पीने से हृदय में बल मिलता है। 15) आंवलें का चूर्ण नित्य छः ग्राम सेवन करें। 16) सूखें आंवलें का चूर्ण उतने ही बूरे के साथ नित्य दो चम्मच सेवन करें।

लौकी का रस - हृदय रोग, अम्लपित्त, उदर रोग एवं मोटापे में लाभप्रद :- लौकी का रस 500 ग्राम, पुदीना पत्र 7 नग, तुलसी पत्र 7 नग। उक्त सभी से एक कप रस निकालकर प्रतिदिन प्रातःकाल खाली पेट पीने से हृदय की धमनियों में हुआ अवरोध भी खुल जाता है। अम्लपित्त एवं समस्त उदर रोगों का नाश करने के लिए लौकी रस का सेवन नियमित करना चाहिए।

गेंहू के ज्वारे का रस - कैंसर, एड्स रोग में लाभ दायक :-

विधि :- प्रतिदिन एक-एक गमले में या थोडी भूमि हो तो भूमि पर नौ दिन तक गेंहू उगाएँ। 10 वें दिन प्रथम गमले में उग आए, गेंहू की हरी पत्तियों को काट कर 10 ग्राम + 25 ग्राम (लगभग दो फिट लंबी व एक अँगुली जितनी मोटी) गिलोय लेकर थोडा पानी मिलाकर पीस ले, कपडे से निचोड कर एक कप की मात्रा में खाली पेट नित्य सेवन करें। खाली हुए गमले में अगली बार के लिए पुनः गेंहू के दाने उगा दें। उक्त रस का नियमित सेवन कैंसर जैसे भयानक रोग में शीघ्र मुक्ति प्रदान करने में सहयोग करता है।

दिल का दौरे से बचाव :- पोदीने की पत्तियाँ छाया में सुखाकर पीस कर रख लें। काली मिर्च पीस लें। नित्य दो चुटकी पोदीना का चूर्ण व एक चुटकी काली मिर्च का चूर्ण का सेवन करें।

रक्तचाप (ब्लडप्रेशर) :- 1) रक्तचाप के रोगी को हमेशा ही ताँबे के बर्तन का

पानी पीना चाहिए। 2) उच्च रक्त चाप में तरबूजे के बीज की गिरी व खस-खस (सफेद) पीसकर रख लें। नित्य एक चम्मच (तीन ग्राम) सेवन करें।

छाती का दर्द :- अजवायन दो चम्मच, 250 ग्राम पानी में चौथाई कम रहजाये इतना उबालें, इस काढे को नित्य प्राशन करें। शीत व अन्य रोग एक सप्ताह में दूर हो जायेगें।

चक्कर आना व सिर घूमना :- 1) पोस्त का दाना और काहू के बीज 2.4-2.4 ग्राम तथा मिश्री 2.4 ग्राम पीसकर खावें। यह मात्रा हैं। अनुपात बकरी के सौ ग्राम दूध में 25 ग्राम शरबत निलोफर मिलाकर पीवे। इससे चक्कर आना मिट जाता है। २) सूखा आंवला छः ग्राम, धनिया छः ग्राम अधकुआ, शाम को मिट्टी के बर्तन में २५० ग्राम पानी के साथ भिगो दें। प्रातः मसलकर छान कर दो चम्मच बूरा मिला लें। गर्मी संबंधी रोग भी दूर होते हैं।

उदर (पेट) रोग :- 1) एक माशा लवण भास्कर चूर्ण को छाछ के साथ सुबह-शाम लेने से पेट रोग मिटता है। 2) काला नमक व अजमोद की फक्की लेने से पेट की पीडा मिटती है। 3) खुरासानी अजवाइन और गुड मिलाकर लेने से पेट के वायु की पीडा मिटती है। 4) बडी इलायची के चूर्ण को नमक के साथ लेने से पेट शूल मिटे। 5) अनारदाना का रस पीने से पेट शूल मिटती है।

वात उदर रोग :- गर्म दूध में अरण्ड का तेल डालकर पीने से वातोदर रोग मिटता है।

कफोदर रोग :- 1) मिश्री, कालीमिर्च और पीपल के चूर्ण को पानी से पीने से पित्तोदर रोग मिटता है। 2) जवाखार, हींग और सोंठ युक्त मंदोष्ण दूध पीने से उदर महारोग मिटता है। 3) पेट आदि में शूल चले तो काँसा, पीतल या ताँबे के बर्तन में पानी भरकर फेरने से फायदा होता है। 4) राई व त्रिफला चूर्ण घृत तथा मिश्री की चासनी में लेने से सर्व प्रकार की पेट शूल मिटती है।

पेट की गैस (वायु) :- 1) हर एक साग-सब्जी में हींग भूनकर डालकर खाने से पेट की गैस कम हो जाती है। 2) गैस बढने पर आधा कटोरी पानी में नमक कालीमिर्च नग 4, लौंग नग 4 उबालकर पीने से आराम मिलता है। 3) भोजन के पश्चात् गर्म पानी में नींबू का रस डालकर पीने से गैस मिटती है। 4) जामुन के बीजों के चूर्ण में बराबर शक्कर मिलाकर लेने से पेट से खून आना बंद हो जाता है। 5) कालीमिर्च, सेंधा नमक का चूर्ण के सेवन से भी कम होता है। 6) सोंठ, जवाखार के चूर्ण की फांकी से भी लाभ होता है। 7) हरा आंवला, अंगुर, अनार के दाने व मशाला आदि मिलाकर चटनी बनाकर खाने से भी लाभ। 8) मनुक्क के बीज 30 ग्राम, 6 ग्राम सोंठ, 6 ग्राम सौंफ बडी, 3 ग्राम काली मिर्च, 3 ग्राम सेंधा नमक चटनी बनाकर एक चम्मच भोजन के साथ लेवें। 9) 125 ग्राम मट्ठे में दो ग्राम अजवायन, आधा ग्राम नमक डालकर दो सप्ताह लें। 10) सोंठ, हींग, सेंधा नमक का क्वाथ बनाकर पीने से पेट साफ होता है। व गैस मे आराम मिलता है।

अम्ल पित्त :- 1) जीरा और धनिया का चूर्ण 2.4-2.4 ग्राम की मात्रा में मिश्री के साथ लेने से अम्लपित्त में बहुत फायदा होता है। 2) भोजन के बाद आँवला का रस पीने से अम्लपित्त, वमन, अरुचि और मूत्र दोषों को मिटाता है।

कब्ज :- 1) कब्ज वाले रोगी को प्रातःकाल एरण्ड ककडी (पपीता) कई दिनों तक खाने से फायदा होता है। यह फल रक्तशोधक भी होता है। 2) केर के वृक्ष की छाल का चूर्ण खाने से बद्धकोष्ठ मिटता है। 3) बथुअे के पत्तों को पानी में उबालकर शक्कर मिलाकर पीने से दस्त साफ होती है। 4) दूध में उबालकर बीजो सहीत 10-12 मनुक्का दिन में 2-3 बार सेवन करें। 5) त्रिफला का चूर्ण चार ग्राम (एक चम्मच) 200 ग्राम हल्के गर्म दूध के साथ सेवन करें। 6) ईसबगोल की भूसी 5-10 ग्राम तक 200 ग्राम दूध के साथ लें (कब्ज के लिए)। दस्त लगने पर दही या छाछ के साथ लें। 7) खाली पेट एक सप्ताह तक 2-2 संतरों का रस नित्य पीवें।

भूख न लगना :- 1) पीपल, अजमोद और नमक का चूर्ण सेवन करने से भूख लगती है। 2) नारंगी की फाँक पर सोंठ बुरका कर खाने से भूख बढती है। 3) पीपल को दूध में औटाकर पीने से भूख बढती है।

अरुचि रोग :- 1) नींबू के रस में दोगुना पानी तथा लौंग व कालीमिर्च का चूर्ण मिलाकर पीने से अरुचि मिटती है। 2) अनार के रस में जीरा और शक्कर मिलाकर पीने से अरुचि मिटती है। 3) इमली के पानी के पीने से भूख बढती है और आँतों के घाव मिटते हैं।

पेट का कृमि रोग :- 1) रोजाना भोजन के पहले 1.2-1.6 ग्राम नमक फाकने से पेट में कृमि पैदा नहीं होते हैं। 2) नीम के पत्तों का सेवन करने से कृमि पैदा नहीं होते हैं। बथुआ का अर्क निकालकर पीने से कीडे नहीं होते। 3) मसूर की दाल का सेवन करने से आँतों के रोग मिट जाते हैं। 4) करेला के पत्तों का रस पीने से आँतों के कीडे दूर हो जाते हैं।

नाभी हटने से दर्द होने पर :- दो ग्राम सौंफ, बीस ग्राम गुड खायें दो या तीन दिन में पूर्ण लाभ।

भस्मक रोग :- 1) 125 ग्राम चावलों को आधासेर ऊँटनी के दूध में खीर बनाकर उसमें घृत डालकर खाने से 12 दिन तक भूख बिलकूल न लगे और भस्मक रोग मिट जाता है।

शरीर का मोटापा दूर करना :- 1) कुल्थी को पकाकर खाने से मोटापा मिटता है। 2) त्रिफला के काढे में मिश्री मिलाकर प्रातःकाल पीने से शरीर का मोटापा दूर हो जाता है। 3) 1 गिलास पानी में नींबू का रस प्रतिदिन सुबह पीने से शरीर का मोटापा मिटता है।

मोटापा कम करने की घरेलु विधि :- 1) चम्मच त्रिफला चूर्ण को रात्रि 200 ग्राम पानी में भिगोकर रखें। प्रातः गर्म करें, आधा शेष रहने पर छान लें। दो चम्मच

चासनी मिलाकर गर्म-गर्म रहता हुआ ही पीएं। कुछ ही दिन के सेवन से कई किलो वजन कम हो जाता है।

सर्व वात रोग :- 1) अरण्ड की लकडी की 25 ग्राम भस्म खाने से वात रोग मिट जाता है। 2) पीपल और पीपलामूल के चूर्ण का सेवन करने से छोटे जोडो का सूजन, पक्षाघात, कमर की पीडा आदि वात व्याधियाँ मिट जाती है। 3) अश्वगंध के पञ्चाङ्ग का पाक बनाकर खाने से वायु का समस्त विकार मिटता है। 4) निर्गुंडी के पत्ते गर्म करके बाँधने से बादी की गाँठे बिखरती है। 5) सहजना की छाल को उबालकर उसका पानी पीने से वायु का दर्द मिट जाता है। 6) ईंट को गर्म करके सेक करने से वायु का दर्द मिट जाता है। 7) सरसों के तेल में बारीक नमक मिलाकर लगाओ और धूप में सेकों तो वायु का दर्द मिटता है। 8) तारपीन का तेल 62.5 ग्राम, कपूर अच्छा डाली वाला 25 ग्राम मिलाकर आठ घंटे धूप में रखकर प्रत्येक दर्द पर मर्दन करने से फायदा होता है।

वात रोगों का घरेलु उपचार :- हल्दी 100 ग्राम, मेथी दाना 100 ग्राम, सोंठ 100 ग्राम, अश्वगंधा चूर्ण 50 ग्राम मात्रा में लेकर चूर्ण करे लें। **सेवन विधि -** एक-एक चम्मच नाश्ते व शाम खाने के बाद गुनगुने पानी से लेवे। इसके सेवन से जोडों का दर्द, गठिया, कमर दर्द आदि में विशेष लाभ होता है। 2) मोथा घास की जड जो कि एक गांठ की तरह होती है, उसका पाउडर करके 1 से 2 ग्राम सुबह-शाम पनीया दूध से लेने से जोडो का दर्द व गठिया में आश्चर्यजनक लाभ मिलता है। निर्गुण्डी के पत्तो का चूर्ण एक-एक चम्मच सुबह-शाम खाने के बाद पानी के साथ सेवन करने से वात रोगों का शमन होता है।

जोडों का दर्द व गठिया रोग :- 1) मेहंदी और अरण्डी के पत्ते पीसकर लेप करने से घुटनों का दर्द मिटता है। 2) साबुन और मेहंदी के पत्ते पीसकर लेप करने से घुटनों का दर्द मिटता है। 3) घुटनों पर तेल लगाकर ऊपर सोंठ बुरकाकर मसलकर पुरानी रुई बाँधने से पीडा मिटती है। 4) आक की जड को .1 ग्राम औटाकर पिलाने से जोडों की सूजन मिटती है। 5) हल्दी, चूना और गुड का लेप कई दिन करने से कलाई की जोडों का दर्द मिट जाता है। 6) तेल का मर्दन करके सोंठ बुरकाकर फिर तेल में चुपडकर अरंड के पत्ते गर्म करके बाँधने से जोडों का दर्द मिटता है। 7) धतूरे के पत्तों को गर्म करके बाँधने से भी जोडों का दर्द मिट जाता है। 8) इमली के पत्तों को उबालकर बफारा देने से जोडो का दर्द मिटता है। 9) अखरोट की गिरी खाने से खून शुद्ध होकर गठिया मिटती है। 10) मालकांगनी के बीजों की फाकी लेने से गठिया रोग और वात रोग मिटता है। 11) प्रतिदिन 50 ग्राम से बढाकर पावभर तक बादाम खाने से गठिया रोग मिटता है। 12) गज पीपल का पानी में घिसकर गर्म करके लेप करने से गठिया का दर्द मिट जाता है। 13) राई के तेल में कपूर मिलाकर मालिश करने से गठिया मिटती है। 14) राई का

प्लास्टर करने से गठिया का दर्द मिट जाता है। 15) कच्चे करेले के रस को गर्म करके लेप करने से गठिया मिटती है। 16) गठिया के दर्द पर केरोसिन तेल लगाने से भी फायदा होता है। 17) भेड के दूध में एरंड तेल मिलाकर कुछ गर्म करके दर्द की जगह मालिश करने से जोडों का दर्द मिटता है। 18) वथुआ के ताजा पत्तों का रस 15-20 ग्राम दो सप्ताह तक सेवन करें।

घुटनों का दर्द :- छः ग्राम विजय सागर की लकडी, 250 ग्राम दूध, 375 ग्राम पानी, दो चम्मच बूरा धीमी आंच पर गर्म करें। एक कप रह जाए तब छान कर पीलें। नित्य सेवन करने से घुटनों का दर्द पूर्ण ठीक हो जायेगा।

शून्य-वात - लकवा रोग :- 1) नीम के तेल को मर्दन करने से लकवा रोग मिट जाता है। 2) तुम्बे के बीजों को पीसकर लेप करने से लकवा (पक्षाघात) रोग मिट जाता है। 3) यदि चक्कर आते हो तो अगर की लकडी सूँघनी चाहिए। 4) उडदों के आटे बडों को तेल में पकाकर मर्यादित शुद्ध मक्खन के साथ खाने से मुँह का लकवा मिट जाता है। 5) अखरोट के तेल का मर्दन करने से सम्भातू के पत्तों का बफरा देने से मुँह का लकवा मिट जाता है। 6) लकवा होने वाले रोगी के मुँह में जायफल रखना चाहिए तथा उसे दर्पण दिखाना लाभदायक होता है।

कम्पवाय - हाथ-पैर काँपना :- असगंध का चूर्ण 2.4 ग्राम दिन में दो बार दूध के साथ लेने से कम्पवाय मिटती है।

अर्द्धाङ्गवाय :- उडदों को सोंठ के साथ औटाकर पीने से अर्द्धाङ्गवाय मिटती है।

शून्यवात :- 1) अगर और सोंठ का क्वाथ पीने से शरीर के हरेक अङ्ग की शून्यता मिटती है। 2) मालकांगनी के तेल की 10-15 बूँद दिन में दो बार लेने से शरीर की शून्यता मिटकर चैतन्यता आ जाती है और थोडी देर पीछे पसीना आकर शरीर हल्का हो जाता है। 3) अकरकरा और लौंग लेने से शरीर की शून्यता मिटती है।

हाथ-पैरों के ऐंठन (बाईन्टे) तथा चोट पर :- 1) आखरोट के तेल का मर्दन करें तो हाथ-पैरों का बायन्ट मिटता है। 2) अडूसे के पञ्चाङ्ग के क्वाथ या अवलेह के चाटने से आक्षेपक वायु और बाईन्टे मिटते हैं। 3) अडूसे के फूल तथा पत्तों को तेल में औटाकर उसका मर्दन करने से ऐंठन मिटती है। 4) बाईन्टे मिटाने के लिए .2 से .5 ग्राम तक कपूर लेना चाहिए।

चोट लगकर सूजन आने पर :- 1) यदि चोट से गाँठ बन जाय तो गेहूँ को जलाकर बुकनी बनाकर बराबर गुड मिलकार घृत के साथ 2-3 दिन खाने से फायदा होता है। 2) यदि चोट से खून जम जावे जो .8 ग्राम फिटकडी पीसकर 50 ग्राम घृत में भून ले और शक्कर तथा आटा (मैदा) मिलाकर हलुवा बनाकर खाने से 3 दिन में निश्चय ही आराम होगा। 3) सहेजना की पत्तियों को बराबर के तिल के तेल में पीसकर लगाने

से चोट से मोच आदि में लाभदायक होता है।

कमर और पसली की पीडा :- 1) अलसी के तेल में सोंठ डालकर गर्म करके मर्दन करने से पीठ की शूल मिट जाती है। 2) उदर और पसली का शूल मिटाने के लिए आक की छाल को पीस कर लेप करना चाहिए। 3) सोंठ के क्वाथ में एरण्ड का तेल मिलाकर पीने से बस्ति, कुष्ठि तथा कमर की शूल मिटती है।

सूजन-रोग (शोथ-रोग) :- 1) अडूसा और अरण्ड के पत्ते तथा अरण्ड के तेल को पानी में औटा कर बफारा देने से हरेक अङ्ग की सूजन उतर जाती है। 2) सूजन रोग में केवल बकरी का दूध सेवन करना लाभदायक होता है। 3) अलसी और दालचीनी को बराबर पीसकर पकाकर लेप करने से दर्द और सूजन मिट जाती है। इसे शिव लेप कहते हैं। 4) सोंठ और पीपल के चूरण को गुड में मिलाकर खाने से सूजन, आमाजीर्ण तथा शूल मिटती है। 5) बेहडा की मिंगी को पानी में पीसकर लेप करने से सूजन का दाह भी मिट जाता है।

मृगी रोग :- 1) 21 जायफलों की माला पहने रहने से मृगी रोग में फायदा होता है। 2) राई को पीसकर सूँघने से मृगी का वेग दूर हो जाता है। 3) वच के 6.4 ग्राम चूर्ण को दूध के साथ सेवन करने से पुरानी मृगी भी मिट जाती है। 4) अरोठा को कपडछान करके हमेशा सूँघने से मृगी रोग अवश्य मिट जाता है। 5) 12.5 ग्राम असली हींग को कपडे में बाँधकर गले में रखें जो उसकी गंध से मृगी के कीडे दूर होकर रोग मिट जाता है। 6) दूध में शतावरी डालकर पीने से पित्त की मृगी मिट जाती है। 7) अरीठा की थोडी-सी मिंगी मुँह में रखने से मृगी वाले रोगी को होश आ जाता है। 8) ब्राह्मी के रस में वच और सोंठ को महीन पीसकर 6.4 ग्राम मात्रा में पीने से मृगी मिटती है।

उन्माद (पागलपन) रोग :- 1) नींबू की गिरी निकालकर धूप में सुखाकर उन्माद वाले रोगी के तकिये के नीचे रखने से शांति मिलती है। 2) नींबू के रस का मस्तक पर मर्दन करने से पागलपन मिट जाता है। 3) ब्राह्मी के साथ गिलोय का क्वाथ पीने से उन्माद रोग मिटता है। 4) उन्माद मिटाने के लिए सरसों के तेल की नस्य व मालिश का प्रति-दिन प्रयोग करना चाहिए। 5) किसी मनुष्य के सिर के बाल जलाकर तिल के तेल में या रोगनगुल में मिलाकर नाक में टपकाने से पागलपन मिटता है। 6) घी और कालीमिर्च पीने से बादी का पागलपन मिट जाता है। 7) अच्छा जुलाब देने से पित्त का उन्माद मिटता है, वमन करने से कफ का उन्माद मिटता है। 8) प्रलाप करने वाले के सिर को मुण्डवाकर मस्तक पर आल की गिरी बाँधने से शांति मिलती है। 9) मेहंदी के बीजों की फाकी लेने से प्रलाप रोग मिटता है। 10) गोरखमुण्डी को दूध के साथ लेने से चित्तभ्रम रोग मिटता है और बुद्धि का विकास होता है। 11) अजवाइन 2.4 ग्राम दाख के साथ सेवन करने से चित्तभ्रम रोग मिटता है।

12) लोहे के टुकडों को गर्म लाल करके पानी में बुझावें और तीन बार कहें कि जिस तरह यह लोहा पानी में शांति पाता है, उसी प्रकार मेरा हृदय भी अमुक भय से शांत बने कहकर नौ बार णमोकार मंत्र जपने से शांति मिलती है, फिर उस पानी से मुँह धोवें और हृदय पर छिडके।

दाद और पाँव तथा खुजली रोग :- 1) 100 बार धोये घृत को पानी में धोकर लगाने से खुजली आदि रोगों में रामबाण दवा है। 2) आक के पत्तों का रस, हल्दी के काढे का रस इन दोनों को सरसों के तेल में पकाकर मर्दन करने से कुछ दाद मिट जाते हैं। 3) सुबह उठते ही अपने बासी थूक को लगाने से दाद मिटता है। 4) 100-50 वर्ष पुराना घृत दाद को रगडकर लगाने से दाद मिट जाता है। 5) 50 ग्राम सरसों को जल में महीन पीसकर गुनगुना करके उबटन करें फिर गर्म पानी से स्नान करें तो सूखी खुजली मिट जाय। 6) कपास के बीजों को नींबू के रस में पीसकर दाद को कण्डे से खुजलाकर लेप करने से दाद रोग मिटता है। 7) पुराने घी में आक का दूध मिलाकर आग पर चढा दो जब मात्र घृत रह जाय तो उतार लो, यह घृत दाद को थोडा रगडकर कई दिन लगाने से दाद मिट जाते हैं, और तो बिच्छि दाद का भी नाम-निशान नहीं रहता है। 8) कपूर 15 ग्राम, 70 ग्राम तारपीन का तेल। कपूर को बारिक पीसकर एक शीशी में भर लें, ऊपर से तारपीन का तेल डालकर इतना हिलाएं की दोनों मिश्रित हो जाएं फिर मजबूत कार्क लगाकर रखें। प्रातः व सांय रुई से लगाने से बिगडा से बिगडा दाद तथा चंबल दूर हो जाता है। 9) सरसों का तेल एक तोला, कालीमिर्च नग 8-10 और कर्पूर इनको पीसकर लगाने से दाद खाज मिटती है।

अग्नि से जलें हुए तथा अन्य अपाय :- 1) जौ को जलाकर राख बनाकर तिल के तेल में मिलाकर लेप करने से जले हुए में फायदा होता है। 2) दही (मट्ठा) में बारीक नमक मिलाकर जले हुए पर लगाने से तत्काल आराम हो जाता है। 3) चने के पानी में नारियल का तेल खूब मथकर लगाने से जले हुए में फायदा होता है। 4) सरसों का तेल लगाकर ऊपर पीसी हुई मेहंदी बुरकाने से जले हुए में आराम हो जाता है।

हाथ-पाँवों की व्याऊ फटने पर :- 1) पुराने गुड को गर्म करके लगाने से व्याऊ रोग मिटता है। 2) मोम को दीपक की लौ से गर्म करके व्याऊ में भरने से व्याऊ रोग मिटता है। 3) मोम, घृत और नमक इन तीनों को किसी पात्र में गर्म करके व्याऊ में लगाने से आराम मिलता है।

पाँव की एडी का दर्द :- 1) आमाहल्दी और इमली की पत्ती पीसकर गर्म करके लेप करने से चोट का व एडी का दर्द मिट जात हैं 2) पुरानी मिट्टी के दीपक को कन्डे की आग पर औंधा रखकर उस पर एडी रखना चाहिए, अथवा ईट या पत्थर को गर्म करके सेक करने से एडी की पुरानी पीडा भी मिट जाती है।

नख टुटने पर :- अनार की पत्ती और आमाहल्दी पीसकर बाँधने से टुटा हुआ नख

ठीक हो जाता है।

गुप्तेन्द्रिय रोग :- 1) यदि पुरुष के गुप्तेन्द्रिय पर रस्सी (मवाद) आवे तो - कहवा की बकल, कर्दब की बकल, तींडू की अन्तरछाल इनका काढा करके धोने से रोग मिट जाय। 2) यदि इन्द्रिय पर फुन्सियाँ होकर पक जाएँ तो - ठण्डे पानी से धोया घृत लेप करने से रोग तथा दाह मिटती है।

गाँठ के लिए लेप :- कालीमिर्च, पोहकरमूल, कूट, हल्दी और सेंधानमक इन्हें पीसकर लेप करने से सर्व प्रकार की गाँठ मिटती है।

अदीठ-फोडा :- कत्थे के पत्ते, बासा के पत्ते इनको एक हाँडी में डालकर आधा पाव पानी में औटावे जब पानी जल जाय तो पहले बफारा देवें फिर उन पत्तों को अदीठ पर बाँधने से अदीठ (फोडा) मिट जाता है।

विषाली रोग :- 1) मैदा लकडी, आमाहल्दी, खुरासानी आजवाइन सभी 12.5-12.5 ग्राम, इनको पीसकर 37.5 ग्राम गुड में मिलाकर गर्म करके विषकंटा की अँगुली पर लगाने से विषकंटा मिटती है तथा जलन भी मिटती है। 2) 12.5 ग्राम नीम के पत्तों को बकरी के दूध में पीस ले, फिर उसमें मैदा लकडी 25 ग्राम, खारी नमक 25 ग्राम मिला ले खूब पीसकर पका ले, इसे 3 दिन तक विषकंट की अँगुली पर लगाने से रोग मिट जाता है। 3) विषाली की अगुँली पर प्रारम्भ से ही एक शीशी में गाय का घृत भर कर उसमें अगुँली रखें इस तरह से उस घृत में अगुँली रहने से विषाली रोग मिट जाता है।

नहरुआ (बाला) रोग :- 1) 3.2 ग्राम हींग को 1 पाव गाय के दही में मिलाकर जाडे (ठण्ड) के दिनों में जिस व्यक्ति के बाला निकलता हो वह व्यक्ति 11 दिन तक सेवन करे तो बाला भीतर ही भस्म हो जाता है तथा फिर कभी बाला नहीं निकलता है। 2) गाय का घृत 250 ग्राम 3 दिन प्रतिदिन पीने से नहरुआ रोग मिटता है।

मधूमेह :- 1) बेल पत्र छः, छः नीम के पत्ते, छः बैंगन बेलियों के हरे पत्ते, तीन काली मिर्च साबुत, नित्य सेवन करें। कितनी बडी शुगर हो सामान्य हो जाती है पुनः शक्कर भी खा सकते हैं। 2) जामून के पत्ते या गुँठली भी लाभ दायक है। 3) जामुन की गुँठली, करेला का बीज, आंवला, बीज पत्र इन चारों को समभाग कूटकर चूर्ण नित्य सेवन करने से लाभ होता है। 4) मेथी पिसी या मेथी का पानी भी लाभदायक होता है।

मधुमेह के लिए घरेलू उपचार :- 1) खीरा, करेला और टमाटर एक-एक की संख्या में लेकर जूस निकालकर, सुबह खाली पेट पीने से मधुमेह नियंत्रित होता है। 2) जामुन की गुठली का पाउडर करके, एक-एक चम्मच सुबह-शाम खाली पेट पानी में लेने से मधुमेह रोग नियंत्रित होता है। 3) सात पत्ते नीम के सुबह खाली पेट चबाकर अथवा पीसकर पानी के साथ लेने से मधुमेह में आराम मिलता है। 4) सदाबहार के सात फूल

खाली पेट जल के साथ लेने से मधुमेह में लाभ मिलता है। 5) गिलोय, जामुन, कुटकी, नीम पत्र, चिरायता, कालमेघ, सूखा करेला, काली जीरी, मेथी इनको समान मात्रा में लेकर चूर्ण कर लें। यह चूर्ण एक-एक चम्मच सुबह-शाम खाली पेट पानी के साथ सेवन करने से मधुमेह में विशेष लाभ मिलता है।

मोटापा एवं मधुमेह नाशक दलिया :- गेंहू 500 ग्राम, बाजरा 500 ग्राम, चावल 500 ग्राम, साबूत मूंग 500 ग्राम। सभी को समान मात्रा में लेकर, सेंककर दलिया बना लें। इसमें अजवाइन 20 ग्राम तथा सफेद तिल 50 ग्राम भी मिला लें। आवश्यकतानुसार लगभग 50 ग्राम दलिया को 400 ग्राम पानी में डालकर पकाएँ, स्वादानुसार हल्का सेंधा नमक मिला लें। नियमित रूप से 15-30 दिन तक दलिया का सेवन करने से मधुमेह समाप्त हो जाता है। मोटापे से पीडित हृदय रोगी इस दलिया का नियमित सेवन कर निरपवादरूप से अपना वजन कम कर सकते हैं।

मेदोहर, मधुमेह व हृदय रोग में अत्यन्त लाभ प्रद अश्वगंधा पत्र प्रतिदिन सुबह-दोपहर एवं सायंकाल एक-एक अश्वगंधा के पत्ते को हाथ से मसलकर गोली बनाकर भोजन से एक घंटा पहले या खाली पेट जल के साथ लें। एक सप्ताह के नियमित सेवन के साथ ही फल, सब्जियाँ, दूध, छाछ एवं जूस पर रहते हुए कई किलो वजन कम किया जा सकता है।

बिवाई फटने पर :- राई डेढ तोला, काली मिर्च डेढ तोला, गाय का घी, चमेली का तेल छः तोला इन सबका मरहम बनाकर बिवाई पर लगाने से लाभ मिलता है।

पीपल की छाल, नीम की छाल का सर्वकल्प वृक्कदोषहर क्वाथ :- 5-5 ग्राम नीम व पीपल की छाल के चूर्ण को 400 ग्राम पानी में उबाले। 100 ग्राम शेष रहने पर छानकर खाली पेट सुबह नाश्ते से पहले एवं सांयकाल खाने से एक घंटा पहले पीए। इसके नियमित प्रयोग से कुछ ही दिनों में यूरिया एवं क्रिटनिन की रक्त में मात्रा घट जाती है।

शुष्कार्श एवं रक्तार्श (बवासीर सूखा एवं खूनी) की अचूक दवा आधा ग्राम देशी कपूर को एक केले के टूकडे में रखकर खाली पेट निगल जाए। एक ही खुराक में रक्तस्राव बंद हो जाता है। रक्तस्राव नहीं रुकने पर उक्त प्रयोग को तीन बार तक कर सकते हैं। इससे अधिक बार न करें।

चर्म रोग (भभूत) :- 1) मूली का बीज नींबू के रस में लगावें तो भभूत चर्म रोग नष्ट होता है। 2) नारंगी की कली पर सेंधानमक डाल चर्मरोग (भभूत) पर रगडने से नष्ट होता है।

डर-भय :- 1) पुरुष या स्त्री को रात में डर लगता हो तो 'करमाले की कली' पास में रखें। 2) असाध्य बिमारी भी करमाले की कली पास में रखने से ठीक हो जाता है। 3) ऊद, सलीद का छेद कर गले में बांधने से फीट, डर दूर हो जाते हैं (बच्चों के लिए)।

रोगों से बचाव

उषःपान से अनेक रोगों से मुक्ति/बचाव :– सायंकाल ताबें के बर्तन में पानी भरकर रख लें। प्रातः सूर्योदय से पूर्व उषःपान के रूप में उस बासी पानी को आठ अञ्जालि (250 ग्राम) की मात्रा में नित्य बांसी मुंह धीरे-धीरे पीए और फिर सौ कदम टहलकर शौच जाए। इससे कब्ज दूर होकर शौच खुलकर आने लगेगा। इस प्रकार उषःपान करने वाला व्यक्ति मलशुद्धि के साथ बवासीर उदररोग, यकृत-प्लीहा के रोग, मूत्र और वीर्य संबंधी रोग, कुष्ठ, सिरदर्द, नेत्र-विकार तथा वात-पित्त और कफ से होने वाले अनेकानेक रोगों से मुक्त रहता है। बुढापा उसके पास नहीं फटकता और वह शतायु होता है। **विशेषः** 1) यदि यह जल मुख की बजाय नासिका से पिया जाय तो सिरदर्द जुकाम चाहे नया हो या पुराना, नजला, नक्सीर आदि रोग जडमूल से दूर हो जाते हैं। नेत्र-ज्योति गुरूड के समान तीव्र हो जाती है। केश असमय सफेद नहीं होते तथा सम्पूर्ण रोगों से सदा मुक्त रहता है। 2) शीत ऋतु में जल अत्यन्त शीतल हो तो उसे थोडा गुनगुना करके पिया जा सकता है। 3) सुर्योदय से पूर्व पिया गया पानी माँ के दूध के समान गुणकारी माना गया है।

केशों की श्यामलता बनाये रखने के लिए – शीर्षासन अथवा सर्वांगासन ठीक ढंग से करते रहने से बालों की जडें मजबूत होती है। बालों का झडना बंद हो जाता है और बाल जल्दी सफेद नहीं होते। बाल काले चमकीले और सुंदर बन जाते हैं।

विशेष :– युवावस्था से ही दोनों समय भोजन करने के बाद वज्रासन में बैठकर 2-4 मिनट तक लकडी की कंघी से कंघी करने से बाल सफेद नहीं होते तथा वात और मस्तिष्क की पीडा सम्बन्धि रोग नहीं होते। सिरदर्द दूर होकर मस्तिष्क बलवान बनता है। बालों के जल्दी पकने के अलावा बालों का जल्दी गिरना, सिर की खुजली, सिर पिलपिला होना, चक्कर अथवा सिर की गर्मी आदि रोग दूर होने में सहायता मिलती है।

सिर के रोगों से बचने के लिए :– नहाने से पहले हमेशा पांच मिनट तक मस्तक के मध्य तालुवे पर किसी श्रेष्ट तेल (नारियल, सरसों, तिल्ली, ब्राह्मी, आंवला, भृंगराज) की मालिश कीजिए। इससे स्मरणशक्ति और बुद्धि का विकास होगा और बाल काले, चमकीले और मुलायम होंगे।

विशेष– रात सोने से पहले कान के पीछे की नाडियाँ, गर्दन के पीछे की नाडियाँ और सिर के पिछले भाग पर तेल की नर्मी से मालिश करने से चिंता, तनाव और मानसिक परेशानी के कारण उत्पन्न होने वाला सिर के पिछले भाग और गर्दन में दर्द तथा भारीपन मिटता है।

नेत्र–विकारों से बचाव :– सुबह दांत साफ करके, मुँह में पानी भरकर मुंह फूला ले। इसके बाद आँखों पर ठंडे जल के छीटें मारें। प्रति दिन इस प्रकार दिन में 3 बार प्रातः, दोपहर तथा सांयकाल ठंडे जल से मुख भरकर, मुँह फूलाकर ठंडे जल से आँखों पर हल्के

छींटे या छप्पके मारने से नेत्रों में ताजगी का अनुभव होता है और किसी प्रकार का नेत्र – विकार नहीं होता। कुछ मास के अभ्यास से नेत्रों का चश्मा अवश्य उतर जायेगा। लाभ तो एक मास में ही प्रतीत होने लगेगा।

सहायक उपचार :– (क) पाँव के तलुवों और अंगुलियों की सरसों के तेल से नित्य प्रातः मालिश करने से आँखों की ज्योति बढती है। पाँव के अंगूठों की सबसे पहले तेल से तर करके मालिश करनी चाहिए। पैरों के अंगूठों को तेल से तर करते रहने से किसी प्रकार का नेत्र रोग नहीं होने पाता और आँखों की रोशनी तेज होती है। इसके अतिरिक्त इससे पांव का खुर्दरापन, रूखापन तथा पाँव का सूज जाना शीध्र दूर होता है और पाँव में कोमलता तथा बल आता है। (ख) दोनों समय भोजन करने के बाद मुख धोकर दोनों हथेलियों को परस्पर रगडे और जब वे कुछ गर्म हो जाएं तो उन्हें नेत्रों पर हल्के से मला जाये या स्पर्श किया जाये तो नेत्रों में उत्पन्न हुए रोग नष्ट हो जाते हैं और नेत्र रोग होने की कोई संभावना नहीं रहती। ऐसा करने से नेत्रों के सामने अंधेरा छा जाना और दृष्टि फटना आदि दोष नष्ट हो जाते हैं।

विशेष– 1) हथेलियों को परस्पर रगडकर नर्मी से गालों के ऊपर आँखों की ओर ले जाकर फिर कनपटियों की ओर ले जाना चाहिए। 2) यदि हथेलियों को रगड करते समय निम्नलिखित मंत्र का पाठ करें और फिर अंतर्मन को यह सुझाव (Auto- Suggestion) देते हुए कि "मेरी आँखों की दृष्टि तेज हो रही है और आँखें स्वास्थ्य, सुंदर एवं आकर्षक बन रही है" आँखों का अपनी हथेलियों से स्पर्श किया जाए तो आश्चर्यजनक लाभ होगा–

अय मे हस्तो भगवा, नयं मे भ्रवत्तर
अयं मे विश्वभेषजो, यं शिवभिमर्शनः।

एक हाथ की अगुँलियों को दूसरे हाथ की उँगलियों से, जो समान शक्ति का प्रतीक है, रगडने से शरीर की, शरीर के लिए, और शरीर में बल और प्राणदा शक्ति प्राप्त होती है।

अतः भोजन करने के पश्चात् हाथ जल से धोने के बाद बिना पोंछे ही चिकने हाथों को परस्पर रगडकर चेहरे पर फेरने तथा दोनों हाथों की तर्जनी और मध्यमा उंगलियां नाक की ओर से कान की ओर आँखों पर सात बार हल्के स्पर्श के साथ रोजाना फेरने से साल भर में चश्मा छूट जाता है और आँखों की बीमारियाँ नहीं होती।

ध्यान रहे, लाली, सूजन, रोहे दोनों अर्बुद आदि आँखों की बीमारियों में यह क्रिया न करें। इससे कमजोर आँखों को बल मिलेगा ओर सामान्य आँखें स्वस्थ बनी रहेगी।

कान के रोगों से बचाव :– सप्ताह में एक बार भोजन करने से पहले कान में हल्का सुहाता गर्म सरसों के तेल की 2-4 बूँदे डालकर खाना खायें। कान में तकलीफ नहीं होगीं। यदि सप्ताह-पंद्रह दिन में एक बार 2-4 बूँद तेल डाला जाए, तो बहरेपन का भय नहीं रहता, दाँत भी मजबूत होगें। कानों में तेल डालने से अन्दर का मैल उगलकर बाहर आ जाता है।

विशेष– (1) यदि कोई व्यक्ति प्रतिदिन कानों में सरसों का तेल डालकर कुछ विश्राम करता है तो उसके शरीर पर वृद्धावस्था के लक्षण शीघ्र प्रतीत नहीं होते हैं। गर्दन के अकड जाने का रोग उत्पन्न नहीं होता है और न ही बहरापन होता है। नेत्र–ज्योति बढती है। और आँखें नहीं दुःखती।

नजला, जुखाम से बचाव :– रात के समय नित्य सरसों का तेल या गाय के घी को गुनगुना करके नाक द्वारा एक दो बूँद सूंघते रहने से नजला, जुखाम कभी नहीं होता। मस्तिष्क अच्छा रहता है। नाक के रोग नहीं होते।

विशेष – चार तुलसी के पत्ते और चार, काली मिर्च नित्य सबेरे खाते रहने से जुकाम एवं बुखार नहीं होते।

होठों का खुश्की से बचाव :– नाभि में रोजाना सरसों का तेल लगाने से होंठ नही फटते और फटे हुए होंठ मुलायम और सुन्दर हो जाते है। साथ ही नेत्रों की खुजली और खुश्की दूर हो जाती है।

विशेष– सरसों का तेल कनपटी में मलिए, कान में डालिए, नाक में सुडकिए, नाभि में लगाइए–इससे नेत्र ज्योति तथा मस्तिष्क-शक्ति बढती है। जुकाम कभी नहीं होता। सर्दी के दिनों में प्रतिदिन सरसों का तेल नाभि पर लगाने से हाथ पांव भी नहीं फटते और हाथ पैरों की चमडी खुरदरी नहीं होती।

दांतों की मजबूती के लिए :– यदि मल–मूत्र त्याग के समय रोजाना ऊपर नीचे के दांतों की भींचकर बैठा जाय तो दांत जीवन भर नहीं हिलते। इससे दांत मजबूत होते हैं और जल्दी नहीं गिरतें, लकवा मारने का डर भी नहीं रहता, इस प्रकार मल–त्याग और मूत्र–त्याग के समय दांतों कों आपस में दबाकर रखने से दांतों की सभी बिमारियों से बचाव होता है।

दाँत, जीभ व मुंह के रोगों से बचाव :– प्रातः कडवी नीम की 2–4 हरी पत्तियाँ चबाकर उसे थूक देने से दांत जीभ व मुँह एकदम साफ और नीरोगी रहते है। कडवी नीम की पत्तियो में क्लोरोफिल होता है। **विशेष–** नीम की दातुन उचित ढंग से करने वाले के दाँत मजबूत रहते हैं दाँतों में न तो कीडे ही लगते हैं और न दर्द होता है। मुख रोगों से बचाव होता है।

दाँत, खाने की नली और आंतें अच्छी रखने के लिए :– अति गरम, अति ठंडे और अति चटपटे मसालेदार पदार्थों के सेवन से बचना चाहिए। मुख का जितना ताप हो उससे अधिक गर्म खाद्य या पेय जैसे चाय, काफी और उससे अधिक ठंडे जैसे बर्फ, कुल्फी आदि से दाँत खराब होते हैं। गर्म भोजन के बाद एकदम ठंडे पानी से कुल्ला नहीं करना चाहिए। मुख शुद्धि प्रायः सायं एवं भोजन के पश्चात् अवश्य करनी चाहिए इससे गला खराब होने से बचाव होगा। इससे दंतावलि दीर्घकाल तक स्थायी एवं नीरोग बनी रहती है।

श्वास रोग :– श्वास रोगियों को श्वास बदलने की विधि- दाहिने स्वर का अधिकतम अभ्यास तथा दाहिने स्वर में ही प्राणायाम के अभ्यास द्वारा श्वास रोग नियत्रंण में सक्षम किया जा सकता है।

भ्रस्त्रिका प्राणायाम करने से दमा, क्षय आदि रोग नहीं होते। पुराने से पुराना नजला-जुकाम एक दिन में ही समाप्त हो जाता है, नाक व छाती के रोग नहीं होते। गले की पीडा और कफ का विकार नष्ट होता है।

हृदय तथा मस्तिष्क की बीमारियों से बचाव :–दक्षिण की और पैर करके सोने से हृदय तथा मस्तिष्क की बीमारियाँ पैदा होती हैं। अतः दक्षिण की तरफ पाँव करके न सोय। कारण यह है कि उत्तर से दक्षिण को पृथ्वी के ध्रुवों के कारण बिजली की तरगें जारी रहती हैं। उत्तरी ध्रुव में धनात्मक बिजली अधिक है और दक्षिण ध्रुव में ऋणात्मक इसी प्रकार मनुष्य के सिर में विद्युत् का धनात्मक केंद्र होता है और पैरों की और ऋणात्मक। यदि बिजली एक ही प्रकार की दोनों और से आमने–सामने लाई जाए तो एक–दूसरे से मिलती नहीं अपितु हटना चाहती है और यदि परस्पर विरोध वाली हो तो दौडकर मिलना चाहती है। यदि मनुष्य का सिर दक्षिण की और है तो सिर की धनात्मक और ध्रुव की ऋणातमक बिजली एक–दूसरें के सामने हो जाने से एक गति जारी हो जाती है क्योंकि दोनों मिलना चाहती हैं। किंतु यदि पाँव दक्षिण की ओर हो तो सिर की धनात्मक का मुख उत्तरी ध्रुव की धनात्मक बिजली की और होने से और पैरों की ऋणात्मक का मुख दक्षिणी ध्रुव की ऋणात्मक बिजली की ओर होने से वे एक-दूसरे को हटाती है, जिससे मस्तिष्क में आंदोलन होता रहता है। यही कारण है कि हमारे यहाँ मरते समय उत्तर की और सिर करके भूमि पर उतारने की प्रथा है। भूमि बिजली को शीघ्र खींच लेती है। बिजली की गति पर हटने से और भूमि में बिजली शीघ्र खिंचने से प्राण सुंगमता से निकल जाते और अंतिम समय में यही आवश्यकता है।

विशेष – नित्य प्रातः चार–पांच किलोमीटर तक चहल कदमी करने वाले व्यक्तियों को दिल की बिमारी नहीं होती।

गुर्दे की बिमारी से बचाव :–भोजन करने के बाद फौरन मूत्र त्याग करने से गुर्दा, कमर और जिगर के रोग नहीं होते। गठिया आदि अनेक बीमारियों से बचाव होता है।

वात रोगों से बचाव:– जो प्रतिदिन मालिश करतें हैं, उनको वायु के रोग नहीं होते हैं उनका शरीर थकान और चोट सहन करने में समर्थ हो जाता है। कम से कम महीने में चार बार तेल मालिश करनी ही चाहिए। केवल पाँव पर तेल मालिश करने से नजर तेज होने के साथ-साथ पाँव का खुर्दरापन, रूखापन और पाँव का सूज जाना शीघ्र दूर होता है। पाँव में कोमलता तथा बल आ जाता है। पाँव की तेल मालिश करने से सायटिका, पसली की नाडियों के दर्द अथवा रोग आदि भी नहीं होते।

मलेरिया से बचाव :– मलेरिया के मौसम में रोजाना प्रातः तुलसी की चार पत्तियाँ तथा चार काली मिर्च पीसकर गोली बनाकर पानी के साथ निगलने या वैसे ही चबा लेने से मलेरिया से बचा जा सकता है। मलेरिया के लिए यह कुनेन का काम करती है। इससे बुखार का भय जाता रहता है।

हैजा से शार्तिया बचाव :–1) एक नींबू एक गिलास पानी में निचोडकर एक चम्मच मिश्री अथवा चीनी मिलाकर शिकंजी बनाकर प्रातः पीना हैजा से बचने का अत्युत्तम प्रयोग है। यहाँ तक कि प्रारंभिक अवस्था में इसके 1–2 बार के सेवन से ही रोग शांत हो जाता है। 2) कपूर को साथ रखने से हैजा का असर नहीं होता। 3) नींबू की शिंकजी पीने से पीत्त, वमन, तृषा और दाह में फायदा होता है।

दूषित जल से बचाव :– दूषित जल में तुलसी की हरी पत्तियाँ (चार लीटर) जल में 50–60 पत्तियाँ डालने से जल शुद्ध और पवित्र हो जाता है। इसके लिए जल को कपडे से छानते समय तुलसी की पत्तियाँ कपडे में रखकर जल छान लेना चाहिए।

विष चिकित्सा

सर्प के काटने पर :- 1) घृत, मिश्री की चासनी, मक्खन, पीपल, कालीमिर्च, सेंधानमक इन सबको महीन पीसकर पीने से काले सर्प का भी जहर उतर जाता है। 2) सहजना के बीजों को सिरस के फूलों के रस की 7 पुट देवें, फिर उसका अञ्जन करे तो सर्प का जहर उतर जाता है। 3) राई व नौसादर को पीसकर घर में डालने से सर्प भाग जाता है। 4) जिस व्यक्ति को सर्प ने काटा हो उसके दोनों कानों में पीपल के हरे पत्ते दन्ठल सहित कान के परदे तक पहूँचा दो। जब तक जहर न उतर जाय तब तक कान में ही रखे तथा णमोकार मंत्र का जाप करते रहें, जब रोगी चिल्लाने लग जाय तब उन पत्तों को निकाल लो, रोगी का जहर निश्चित ही उतर जायेगा, उसके बाद रोगी को घृत और कालीमिर्च पिलावे, याद रहे 8 घण्टे तक रोगी नींद न लेने पावे। नोट - दन्ठल को पकडे रहें, जहर से खिंचकर कान के भीतर जा सकते हैं।

बिच्छु का जहर :- 1) दियासलाई (माचिस) की 5-7 कांडी (तुली) का रोगन उतारकर पानी में घिसकर डंक पर लगाने से तत्काल बिच्छु का जहर उतर जाता है। 2) बिच्छु के जहर को उतारने के लिए ॐ फू ॐ फू बोलकर 21 बार झाडने से जहर उतर जाता है। 3) नीला थोथा को नींबू के रस में घिसकर लगाने से बिच्छु का जहर उतर जाता है। 4) आक दूध काटे हुए स्थान पर मलने से बिच्छु का विष उतरता है।

पागल कुत्ता काटने पर :- 1) धतुरे का रस, आक के पत्तों का दूध, गुड, घृत इन सबको 19-19 ग्राम पीसकर लेप करने से पागल कुत्ते का जहर उतर जाता है। 2) धतुरे के

फूल तथा बीजों को चौलाई के रस में पीसकर लेप करने से श्वान जहर उतरता है। 3) कुकडा (मुर्गा) की बीट को पानी में पीसकर लेप करने से पागल कुत्ता का जहर नाश होता है। 4) ग्वारपाठा की गिरी और सेंधानमक को बाँधने से बावला कुत्ता का काटा हुआ अच्छा होता है। 5) गुड, तेल, आक का दूध पीसकर लेप करने से श्वान का विष उतरता है।

बर्र-ततैया के जहर पर :- गेंदे के पत्ते 12.5 ग्राम और कालीमिर्च नग 5 को पानी में पीसकर लेप करने से ततैया का जहर उतर जाता है।

खटमल और मच्छर भगाने के लिए :- भुसी, गुगल, गंधक की धुनी देने से मच्छर, डांस, खटमल सब भाग जाते हैं।

चींटीयाँ भगाने का उपाय :- कपूर को पीस कर जहाँ चीटीयाँ हो वहाँ बुरकाने से चींटीयाँ जल्द ही भाग जाती है।

टाँटीया और मधुमक्खियों का जहर उतारने का उपाय :- केरोसिन (मिट्टी का तेल) डालकर ऊपर बारीक नमक रगडने से टाँटीया तथा मधुमक्खियों का जहर तत्काल ही उतर जाता है।

भिलावा आदि के चढने पर उपाय :- घृत का लेप करने से कोछं का विष उतर जाता है। घृत का लेप करने से प्रायः सभी विष उतरते हैं।

मकडी के विष की चिकित्सा :- 1) नींबु के रस में चुना पीसकर लगावें। अथवा अमचुर पीसकर लगावें। 2) सफेद दूध और हल्दी पीसकर लेप करें।

मूषक विष :- सिरस के बीज, नीम के पत्ते, करंज की मिंगी को गौमुत्र में पीसकर लेप करें।

सर्प विष नाशक :- 1) आक के तीन कोपलें गुड में लपेटकर खिलावें और उसके ऊपर घृत पिलावें। 2) जामुन का 2॥ पत्ता पानी में पीसकर पीने से सर्प का विष उतरता है।

छिपकली का विष नाश करने के लिए :- घी या तेल में राख मिलाकर मलने से फायदा होता है।

विषैली हवा दूर करने के लिए :- गंधक की धूनी से विषैली हवा दूर होती है।

स्त्री-रोग चिकित्सा

प्रदर रोग :- 1) दही, संचर नमक, जीरा, मुलेठी, कमलगट्टा इनके काढे में मिश्री डालकर पीने से वात का प्रदर रोग मिटता है। 2) मुलेठी, कमलगट्टा और मिश्री इनको पीसकर चावलों के पानी से लेने से पित्त का प्रदर रोग मिटता है। 3) 8 ग्राम रसोत, 8 ग्राम चौलाई की जड का रस मिश्री डालकर 7 दिन तक पीने से सर्व प्रकार का प्रदर रोग

मिटता है। 4) 12.5 ग्राम नागरकेशर को पीसकर गाय की छाछ में 7 दिन पीने से श्वेत प्रदर मिट जाता है। 5) चावलों को भिगोकर फिर मथकर उस पानी को पीने से प्रदर रोग मिटता है। इस रोग में बकरी का दूध गुणकारी होता है।

रुका हुआ मासिक धर्म खुलने के लिए :- 1) मालकांगणी, राई, विजयसार और वच इनको महीन पीसकर 5 दिन तक ठण्डे पानी से लेने में स्त्री-धर्म होय तथा बान्झपन मिटे। 2) तिल खाने से अथवा उडद खाने से, तथा दही खाने से स्त्री धर्म हो जाता है।

श्वेत प्रदर, प्रमेह, धातुरोग एवं मासिक धर्म संबंधी अतिरक्तस्राव में लाभप्रद शीशम के पत्ते :- शीशम के पत्ते 8-10 व मिश्री 25 ग्राम दोनों को मिलकर घोंट-पीसकर प्रातःकाल सेवन करे। कुछ ही दिनों के सेवन से स्त्रियों के श्वेत प्रदर तथा पुरुषों के प्रमेह आदि रोगों में निश्चित लाभ होता है। मासिक धर्म के अन्तर्गत होने वाला अतिरक्तस्राव सामान्य हो जाता है। सर्दियों के मौसम में उक्त दवा में 4-5 कालीमिर्च मिलाकर सेवन करना चाहिए। यह अत्यंत शीतल है। अतः गर्मी से होने वाले रक्तस्राव में भी अत्यंत लाभप्रद, निरापद एवं सरल प्रयोग है। नोट - मधुमेह के रोगी मिश्री के बिना ही प्रयोग करें।

बवासीर व अति मासिकस्राव :- नारियल की दाढी (भूरे रेशे) को जलाकर राख बनाकर छानकर रख ले। तीन-तीन ग्राम नारियल का भस्म सुबह-दोपहर-शाम तीन बार खाली पेट छाछ से लेने से ही बवासीर ठीक हो जाता है। यह प्रयोग मासिक धर्म में अतिरक्तस्राव तथा श्वेत प्रदर में भी लाभप्रद है। वमन, हैजा, हिचकी में इस भस्म को एक-एक ग्राम की मात्रा में थोडे जल के साथ सेवन करने से विशेष लाभ होता है। मयूर-पिच्छ की भस्म की ¼ ग्राम मात्रा चासनी के साथ सेवन करने से हिक्का-हिचकी तुरंत बंद हो जाती है।

निषेध

क्वार करेला, चैत्र गुड, भादो मूली खाय।
पैसा जावे गाँठ का, रोग गले पड जाय॥
बिना चबाये उदर कोष्ठ में, करके भोजन की भरमार।
बेचारी आँतों के ऊपर, करते हो क्यों अत्याचार॥
गेहूँ के आटे में चोकर, होता मांड भात में सार।
इससे यही युक्ति संगत है, फेंकें नहीं उसे बेकार॥
सावन साग न भादो दही, क्वार करेला न कार्तिक मही॥
प्रातः खुले वायु मंडल में, विचरण करते हैं जो लोग।
वे स्वभावतः ही रहते हैं, तनु से पुष्ट तथा निरोग॥

उषाकाल में नासा द्वारा, पानी पीये बिना व्यतिरेक।
इससे नेत्र तथा मस्तक के, मिट जाते हैं रोग अनेक॥
तीन मील से लेकर दस तक, घूमो सुविधा अनुसार।
बिना मूल्य की सुलभ दवा यह, करती है भारी उपकार॥
जैसे तन की दुष्ट व्याधियाँ, करती है मन को बल हीन।
वैसे ही मन के विकार भी, करते हैं तन को बल हीन॥
जितना ही प्रभात का उठना, है उपयोगी मंजु मनोज्ञ।
उतना ही कच्चा निद्रा में, उठना है अत्यंत अयोग्य॥
सोना शीघ्र शीघ्र ही उठना, है यह दोनों ऐसे काम।
निसंदेह बनाते हैं जो सम्यग्ज्ञान विज्ञ बल धाम॥
नैसर्गिक नियमों को पाले, करे न तन पर अत्याचार।
यह रुज बाधा से बचने का, है अनुपात अतीव उदार॥
प्रेम दया संतोष शांति से, भरे हुए उत्कृष्ट विचार।
करते हैं बल वर्द्धनकारी, तत्वों का नित नव विस्तार॥
मधुर हास्य जिसके आनन पर करता रहता सदा विहार।
वह नर नहीं मनुष्य रूप में, किसी देव का है अवतार॥
निजानंद संतोष शांति की, जड प्रसन्नता ही है एक।
सबकी रंगत उड जाती है, उसमें पडते ही व्यतिरेक॥
काम क्रोध मद लोभ वृत्तियाँ, करती निज जीवन का ह्रास।
समता तुला बिगडती इससे, नहीं फटकता सुख निज पास॥
धोये बिना यथा विधिकर पद, भोजन करते नहीं सुजान।
गिनते हैं वे सदाचार को, रोगों का रिपु मुख्य महान्॥
हरड-बेहडा-आँवला, घी शक्कर से खाय।
हाथी दाबे काँख में, सौ कोस ले जाय॥

विशेष-नुस्खे प्रयोग संग्रह

1) सितोपलादि चूर्ण :- दालचीनी 12.5 ग्राम, इलायची 25 ग्राम, पीपल 50 ग्राम, बसलोचन 100 ग्राम और मिश्री 200 ग्राम को पीस छानकर चूर्ण करें। इससे रक्त पित्त, क्षय, श्वास, हिचकी, ज्वर, खाँसी, अरुचि और दाह आदि रोग मिटते हैं।

2) अश्वगंधादि चूर्ण :- असगंध 62.5 ग्राम, बिधारा 62.5 ग्राम, मिश्री 187.5 ग्राम, अकरकरो 25 ग्राम इन सब का चूर्ण घृत में भूनकर फिर मिश्री मिला लें और चूर्ण

को चिकने पात्र में रखें। मात्रा 4 ग्राम से 12.5 ग्राम लेकर ऊपर गर्म दूध पीवें, इससे धातु की कमी, प्रमेह, धातु विकार और दुर्बलता मिटती है।

3) अनेक रोगों की दवा अमृतधारा :- अजवाइन का सत् (फूल), पीपरमेंट और भीमसेनी कपूर इन तीनों को बराबर लेकर शीशी में बंद करें, इसे अमृतधारा कहते हैं। यह पेट दर्द, सिर दर्द, जी मचलना, आदि रोगों में लाभदायक होती है, इसे जीभ के छालों पर भी लगाई जाती है।

4) अजमोदादि चूर्ण :- अजमोद, वायविडंग, सेंधानमक, देवदारु, चित्रकमूल, पीपलामूल, सौंफ, पीपल और कालीमिर्च 12.5-12.5 ग्राम, छोटी हरड 62.5 ग्राम, बिधारा 125 ग्राम और सोंठ 125 ग्राम सबकों कूट छान कपड छान कर ले। मात्रा 0.8 ग्राम से 3.2 ग्राम तक प्रतिदिन दो बार गर्म पानी से लेना चहिए। यह चूर्ण आमवात, संधिवात, गृध्रसीवात, कमर, गुदा, पीठ और पेट के शूल में तथा उदरवात, वात विकार शोध और कफ दोष को मिटाता है।

5) हींग्वाष्टक चूर्ण :- सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, सेंधानमक, सफेदजीरा, स्याहजीरा, अजमोद, हींग भूनकर सबको समभाग लेकर कूट छान लो। यह चूर्ण हाजमा शक्ति प्रदान करता है तथा अजीर्ण नाशक एवं स्वादिष्ट होता है।

6) इसबगोल की भूसी 250 ग्राम, सौंफ बारीक 50 ग्राम, इलायची छोटी 25 ग्राम, बंसलोचन 37.5 ग्राम और मिश्री 125 ग्राम, पीछे की चारों वस्तुओं को कूट छानकर इसबगोल की भूसी में मिला लें। मात्रा 6.1 ग्राम प्रतिदिन दूध में लेने से पेट की आम, पित्त, कब्ज, शूल आदि रोगों को मिटाता है।

7) विश्वाद्य चूर्ण :- सोंठ, अजमोद, हल्दी, दारुहल्दी, सेंधानमक, बच, मुलेठी, कूट, पीपल और जीरा इन दशों को बराबर लेकर कूट छान लें। प्रतिदिन सुबह घृत के साथ मिलाकर चाटने से साक्षात् सरस्वती मुख में निवास करती है तथा इसके सेवन से उन्माद रोगी का चित्त सही हो जाता है।

8) पथ्यसकार चूर्ण :- सोंठ, सौंफ, सोनामूखी, सेंधानक और हरड समभाग लेकर कूट छानकर चूर्ण बनाले। मात्रा 3 से 4.8 ग्राम तक गुनगुने पानी से लें, यह अमीरी जुलाब है, कब्ज, आमवृद्धि, अजीर्ण, उदर वात आदि रोगों में लाभदायक है।

9) निम्बादि चूर्ण :- नीम के पत्ते 500 ग्राम, सोंठ, मिर्च, पीपल, जवाखार, सज्जीखार 50-50 ग्राम, अजवाइन 250 ग्राम सबका चूर्ण बनालें। मात्रा 2.4 ग्राम गर्म पानी से लें, इससे विषमज्वर मिट जाता है।

10) बाम :- वेसलीन 300 ग्राम, मोम 100 ग्राम, अमृतधारा (पीपरमेंट, अजवाइन के फूल, कपूर) 37.5 ग्राम, नीलगिरी का तेल 37.5 ग्राम और दालचीनी का तेल

12.5 ग्राम लेकर, पहले वेसलीन और मोम को गर्म कर लें, फिर तेल मिलाले फिर अमृतधारा मिलाकर अच्छी तरह हिलाकर मिलालें। इसकी मालिश करने से सिरदर्द, जोडों की पीडा, सूजन, अग्नि से जल जाने पर, शूल, वायु का दर्द, स्तन का फटना, जहरी जानवरों के काटने पर काम आती है।

11) लघु सुदर्शन चूर्ण :- गिलोय, पीपल, हरड, बहेडा, सफेद चंदन, कुटकी, नीम की छाल, सोंठ, देवदारु समभाग और सबसे आधा चिरायता मिलाकर बारिक चूर्ण बनालें। मात्रा 2.4 ग्राम से 4.8 ग्राम दिन में तीन बार पानी के साथ लें इससे सब प्रकार के ज्वर और सिरदर्द आदि मिटते हैं।

12) जात्यादि घृत :- चमेली के पत्ते, नीम के पत्ते, पटोल पत्र, मेनफल, हल्दी, दारुहल्दी, कुटकी, मजीठ, मुलेठी, करंज के पत्ते, नेत्रबाला, अनन्तमूल 12.5-12.5 ग्राम मिलाकर पानी में घोटकर लुगदी बनालें फिर लुगदी से चार गुना घाय का घृत और 16 गुना पानी मिलाकर मंदाग्नि से पकाकर घृत सिद्ध करें। इससे पुराना नासूर, व्रण, गम्भीर व्रण, दुष्टव्रण में फायदा होता है।

औषधिय वनस्पति-तेलादि से रोगोपचार

तुलसी :- तुलसी के पत्तों को पीसकर **घाव** पर लगाने से घाव जल्दी ठीक हो जाता है। **पेचिस** होने पर तुलसी के काढे में थोडी सी शक्कर मिलाकर सेवन करने से लाभ होता है। यदि जी मिचलाता हो या **उल्टी** होती हो, तो निजात पाने के लिए एक चम्मच तुलसी के रस में आधा चम्मच मुनक्का की चटनी एक चुटकी इलायची मिलाकर देने से लाभ होता है। यदि **आंतों में कीडें** हो तो एक-एक चम्मच तुलसी का रस दिन में दो बार तीन दिन तक लेने से लाभ होता है। बच्चों को **दाँत निकालने** में होने वाली कठिनाई को दूर करने के लिए तुलसी के रस में चासनी मिलाकर मसूडों पर लेप करना चाहिए। **मुँह में छाले** होने पर तुलसी और चेमली के पत्तों को मिलाकर चबाने से लाभ होता है। यदि **पेट दर्द** कर रहा हो तो तुलसी और सोंठ के रस को गर्म करके पीने से लाभ होता है। **चक्कर** आने की बीमारी में तुलसी के रस में मुनक्का मिलाकर सेवन करने से लाभ होता है। तुलसी में जीवाणुनाशक अद्भूत शक्ति है। हवा में व्याप्त जीवाणुओं को तुलसी के पौधे की गंध दूर कर देती है। अन्यथा न जाने ये जीवाणु कितने रोगों का वाहन बनतें। **बुखार** आने पर रोगी को तुलसी के पत्तों का काढा बनाकर पिलाना चाहिए। इस काढे को पीने के बाद पसीना आयेगा और बुखार छुमन्तर। **मलेरिया** से बचाव अथवा सुरक्षा के लिए भी तुलसी बहुत कारगर है। जब मलेरिया का अंदेशा हो, तो तुलसी के पत्ते करंज की गिरी व काली मिर्च को मिलाकर उसे कूट पीस लें और छोटी-2 गोलियाँ बना ले। दिन में तीन बार

एक-एक गोली दूध के साथ लें। **हैजा** फेलने पर पर तुलसी के पत्ते और कालीमिर्च को पीस कर खिलाना चाहिए। **प्रसव वेदना** कम करने के लिए प्रसव के समय थोडा सा तुलसी का रस पिलाना चाहिए। **मासिक धर्म** के समय यदि रक्तस्राव ज्यादा होता हो तो पान में थोडा सा तुलसी की जड का पाउडर मिलाकर सेवन करें। मासिक धर्म के दौरान यदि कमर दर्द हो तो एक चम्मच तुलसी का रस लें। **नाक के अंदर कोई जख्म** या फुंसी हुई हो तो तुलसी के सूखे पत्तों को मसलकर सुंघनी की भाँति सूंघने से लाभ होता है। **चेहरे के निखार** के लिए भी तुलसी उपयोगी है। **चेहरे के दाग धब्बे** साफ करने के लिए तुलसी के रस में बराबर मात्रा में नींबू का रस मिलाकर लगाना चाहिए यदि चेहरे पर **चेचक के दाग** है तो तुलसी की पत्तियों में थोडी सी अजवाइन मिलाकर पीस ले और लेप को प्रतिदिन लगायें।

यदि **आमाशय में दर्द** हो रहा हो, तो तुलसी के पत्तियों की चाय बनाकर पीने से राहत मिलती है। **प्रदर रोग** में दो-दो चम्मच तुलसी का रस चावल के मांड में मिलाकर सेवन करना चाहिए। **दाद** को जड से समाप्त करने के लिए तुलसी के पत्तों में थोडी सी लाला मिट्टी मिलाकर पीस लें प्रतिदिन दाद पर लगाऐं एक माह में दाद जड से नष्ट हो जायेगा। **बदनदर्द** में तुलसी की पत्तियों का रस निकालकर सम्पूर्ण शरीर पर मालिस करें, दर्द से राहत मिलेगी। यदि **मलेरिया** हो और बुखार तेज हो तो तुलसी के पत्तों के रस में मुनक्का एवं कालीमिर्च पीने से बुखार दूर हो जाता है। **होंठ यदि फट** गये हो, तो गुलाबजल में तुलसी की पत्तियों का रस मिलाकर लगाने से लाभ होता है। **सिरदर्द** हो, तो तुलसी प्रभावी औषधी है। तुलसी की पत्तियों में थोडा सा कपूर मिलाकर लगाने से सिरदर्द दूर होता है। तुलसी के रस में चाशनी मिलाकर देने से **बच्चों के सास रोग** में लाभ होता है। **आँखों की तकलीफ** में भी तुलसी का प्रयोग करें। यदि **आँखों में सूजन** हो या खुजली चलती हो, तो तुलसी की पत्तियों का काढा बनाले। गुलाबी फिटकरी को पीसकर एक चुटकी इस काढे में मिला दें। अब साफ रूई के फोये को उसमें भिगोकर पलकों पर रखे कुछ समय तक यह प्रक्रिया दोहराये। **सिर दर्द** की स्थिति में तुलसी के रस में कपूर मिलाकर माथे पर लगाना चाहिए। सर्दियों में **कान में दर्द** होता रहता है ऐसे में तुलसी के पत्तों का रस दो बूंद कान में डालने से राहत मिलती है। तुलसी कफनाशक भी है। यदि **कफ** अधिक मात्रा में बनता है तो मुनक्का, कपूर और तुलसी के पत्ते समान मात्रा में मिलाकर सेवन करने से लाभ मिलता है। **खाँसी** में भी तुलसी बहुत गुणकारी है। **पुरानी खाँसी** को भी ठीक करने की क्षमता इसमें है। अडूसे के पत्ते के रस में तुलसी के पत्तों का रस मिलाकर मात्रा में बराबर सेवन करना चाहिए। **हड्डियों और माँस पेशियों की मजबूती** के लिए बच्चों को प्रतिदिन आधा चम्मच तुलसी का रस लेना चाहिए। यदि

पेशाब करते समय **मूत्रनली में जलन** होती, हो तो तुलसी के पत्ते चबाने से लाभ होता है। यदि **दाँत में दर्द** हो, तो तुलसी का सेवन करें। तुलसी के पत्तों का रस निकाल ले जिस **दाँत में दर्द** हो उसके नीचे एक गोली रखे थोडी देर में राहत मिलेगी। पेट संबंधी तकलीफों विशेषकर **कब्ज होना या पेट फूलने** की शिकायत होने पर गुनगुने पानी में तुलसी के पत्ते डालकर पीने से लाभ होता है। दस्त खुलकर होता है। **अतिसार अथवा दस्त** लगने में भी तुलसी कारगार है। जायफल के साथ तुलसी के पत्तों का सेवन करने से लाभ होता है। **दाँत का दर्द** होने पर तुलसी के पत्तों को पीस ले तथा उसमें पिसी हुई कालीमिर्च डालकर छोटी-छोटी गोलियाँ बना लें। दर्द वाले दाँत के नीचे इस गोली को रख लें। तुरंत राहत मिलेगी। **बिच्छु के डंक** मारने पर काफी पीडा होती है ऐसे में डंक वाले स्थान पर तुलसी के पत्तों को पीसकर लगाने से लाभ होता है। गर्मी के दिनों में प्रायः **लू लगने** का खतरा रहता है लेकिन घर के बाहर निकलने से पूर्व यदि तुलसी के रस का शर्बत बनाकर पिया जाये तो लू से बचाव होता है। तुलसीदल और कालीमिर्च का काढा पीने से **ज्वर** का शमन होता है। तुलसी पत्र स्वरस 6 g.m. निर्गुण्डी पत्र स्वरस 6 g.m. पीपल चूर्ण 1g.m. मिलाकर पीने से ज्वर ठीक हो जाता है। तुलसी के पत्ते और अडूसे के पत्ते मिलाकर बराबर मात्रा में सेवन करने से **खाँसी** में लाभ होता है। तुलसीपत्र स्वरस कान में डालने से **कर्णसूल** शांत होता है। सरसों के तेल में तुलसीपत्र ओटावें जब पत्तियाँ जल जावे तब छानकर रख लें। **नाक के अन्दर पिण्डिका** में तुलसीपत्र बाँटकर सूंघने से आराम होता है। एक पाँव पानी, एक पाव दूध उसमें 2 तौला तुलसीपत्र स्वरस मिलाकर पीने से **मूत्रदाह** ठीक होता है। तुलसी-मंजरी और कालानमक मिलाकर खाने से **अजीर्ण** रोग में लाभ होता है। तुलसी पंचांग का काढा पीने से **दाँतों में आराम** होता है। तुलसी एक चम्मच सोंठ स्वरस एक चम्मच मिलाकर खाने से **पेट दर्द** में आराम होता है। तुलसीपत्र स्वरस में अजवाइन मिलाकर खाना चाहिए। कुछ समय तक नियमित तुलसी दल सेवन से लाभ होता है। तुलसीपत्र कालीमिर्च चूर्ण घृत के साथ सेवन करना चाहिए । भोजन के बाद तुलसीदल खाने से **मुख से बास** नहीं आती। तुलसी दल और चमेली के पत्तों को खाने से **मुख पाक** में लाभ होता है। तुलसी बीज का चूर्ण अशोक पत्र स्वरस के साथ सेवन करना चाहिए । तुलसी पत्र 5 g.m. पुनर्नवामूल 5g.m. मिलाकर पीने से लाभदायक होता है। तुलसीपत्र को गोघृत में मिलाकर पिलाने से हर प्रकार का **जहर** उतर जाता है। तुलसीदल 11, कालीमिर्च 11मिलाकर खाने से **सिरदर्द** ठीक होता है। इसी का नस्य लेने से **आधाशीशी** में लाभ होता है। तुलसीपत्र स्वरस सैंधानमक और घृत मिलाकर लगाने से **सूजन** नहीं आती है। दर्द में भी आराम होता है। **दाद** होने पर तुलसीपत्र स्वरस और नींबू रस मिलाकर लगाने से दाद ठीक होता है। **खाज–**

खुजली में नीमपत्र एवं तुलसीपत्र खाये भी और लगाये भी। गंगाजल के साथ तुलसीपत्रों को मिलाकर लगाना चाहिए **सफेद दाग** ठीक होते हैं। **बालतोड** होने पर तुलसीपत्र, पीपल पत्ती मिलाकर लगाने से आराम होता है। तुलसीपत्र स्वरस और फिटकरी बारीक पीसकर **घाव** पर छिडकने से घाव जल्दी भरता है। **कुष्ठ** में भी तुलसीपत्र एवं स्वरस लगाने एवं खाने से तथा सोंठ और तुलसी जड को पानी के साथ सेवन करने से आराम होता है। **अग्नि दग्ध** होने पर तुलसीपत्र स्वरस नारियल तेल मिलाकर लगाने से लाभ होता है और तुलसीपत्र स्वरस को **मसों** पर लगाने से वे मुरझा जाते हैं। **अपस्मार** में तुलसीपत्र स्वरस या तुलसीदल को बाँटकर शरीर में लेप करें। ये योग सर्वसाधारण जनता के हितार्थ लिखे जा रहे हैं। ये योग वैद्यों से प्राप्त किये गयें हैं। स्वअनुभूत हैं।

मुलेठी :– आयुर्वेद के मतानुसार मुलेठी शीतल, गुरू, मधुर रस युक्त नेत्रों के लिए हितकारी स्निग्ध, बलकारक, वर्ण को निखारने वाली, वीर्यवर्धक, केशों के लिए हितकर, स्वर को सुधारने वाली, पित्त, वात व रक्त के प्रकोप का शमन करने वाली एवं वमन, घाव, सूजन, विष, प्यास, ग्लानि एवं क्षयरोग को दूर करने वाली है। असली मुलेठी अंदर से पीली, रेशेदार व हल्की गंध वाली होती है। दो वर्ष से ज्यादा पुरानी मुलैठी हीन गुण हो जाती है अतः उसे काम में नहीं लेना चाहिए। मुलेठी का मधुर रस प्रधान घटक ग्लिसराइजिन होता है और ग्लिसराइजकएसिड के रूप में विद्यमान रहता है। इसके अतिरिक्त ग्लूकोज, स्टोरोइड, स्ट्रोजन, प्रोट्रीन, कैल्शियम्, पोटेशियम आदि तत्व भी इसमें विद्यमान रहते हैं। औषधि के अतिरिक्त मुलेठी विभिन्न खाद्य पदार्थों एवं पान मसाले में भी काम में ली जाती है। मुलेठी सरलता के साथ कफ को बाहर निकालकर **खाँसी** का निवारण करती है। **गले की सूजन, स्वाँश नली का स्रोत व जुखाम** में यह शीघ्र लाभ पहुँचाती है। इसका चूर्ण मुँह या क्वाथ में रखकर चूसने के रूप में प्रयोग किया जाता है। **क्षयरोग** में यह फेफडों के लिए शक्तिप्रद रसायन है। **खाँसी के साथ खूंन** आने की स्थिति में मुलेठी का सेवन लाभ कारी है। एक इसके चूर्ण की एक एक चम्मच की मात्रा दिन में तीन बार चाशनी या पानी के साथ लेनी चाहिए । मीठी या निरापद होने के कारण यह बच्चों के लिए भी **कफ** संबंधी विकारों में बहुत उपयोगी है। पेट में **अल्सर** को समूल नष्ट करने के लिए मुलेठी एक प्रभावी औषधी है। **आमाशय के घाव, पेट की जलन व अम्लपित्त** में यह अम्ल को कम करके तत्काल लाभ पहुँचाती है। डॉ. आर लोरेन्स के शोधपत्र के अनुसार मुलेठी की जड में विद्यमान एक ग्लाइकोसाइड उदर के भीतर घावों को भर देता है। यह तत्व पेट में श्लेष्मा की मात्रा को बढाता है तथा एसिड् को निष्क्रिय कर देता है। **अल्सर** में इसकी जड के 4 g.m. चूर्ण को दूध के साथ दिन में 2-3 बार लेना चाहिए। आमाशय या आंतों में होने वाली ऐठन व क्षोभ को भी मुलेठी दूर कर देती है। व्यापक

अनुसंधानों के बाद, पश्चिमी चिकित्सक के अनुसार – मुलेठी से आमाशय की रसग्रंथियों से ग्लाइको, प्रोटीनन्स नामक रस का स्राव बढ जाता है, जिससे कोशिकाओं के जीवन काल में वृद्धि होती है। इसके परिणाम स्वरूप **आँतें सशक्त** हो जाती है। **मूत्र मार्ग के संक्रमण** में भी यह बहुत उपयोगी है। मुलेठी से **पेशाब की जलन व घाव** में बहुत ही फायदा होता है। **हिचकी** आने पर मुलेठी के टुकडे चूसते रहने से लाभ होता है। **शारीरिक दुर्बलता** मिटाकर पुष्टि प्रदान करने में मुलेठी रसायन की तरह कार्य करती है। **प्रसूतास्त्रियों** में इसके सेवन से दूध की मात्रा व गुणवत्ता में वृद्धि होती है। मुलेठी के चूर्ण को सौंफ के साथ खाने से **नेत्र ज्योति बढती** है व जलन आदि विकारो का नाश होता है। यह वनौषधि **हृदय के लिए** बहुत पौष्टिक है। धढकन व घबराहट में आँवले के साथ इसको सेवन करना चाहिए। **नाडी तंत्र की दुर्बलता** व मिर्गी रोग में मुलेठी व जटामांशी का समान भाग 3-3 g. m. सुबह-शाम लेने से रोग में फायदा होता है।

मेहंदी :– यदि **टांसिल** बढ गये हो तो मेहंदी के पत्तों को जलाकर काढा बना ले और गरारे करें। **सर्दी, खाँसी और जुखाम** होने पर मेंहदी के पत्तों के रस में चासनी मिलाकर चाटने से लाभ होता है। **पीलिया** में मेंहदी का पानी लाभदायक होता है। इसके लिए एक गिलास पानी में 50 g. m. मेंहदी को कुचलकर भिगोदें। रात भर भिगोयें तथा सुबह पानी नितारकर पिलायें। एक सप्ताह तक यह क्रिया दोहरायें । इससे **बढी हुई तिल्ली** में भी लाभ होता है। यदि शरीर का कोई अंग **जल गया** हो तो वहाँ मेंहदी के पत्तों को पीसकर लेप करना चाहिए। इससे फफोले भी नहीं पडेगें और ठंडक भी मिलेगी। यदि शरीर में कोई **गांठ** हो गई हो तो मेंहदी के पत्तों को पीस कर उसकी पुलिटस बाँधने से लाभ मिलता है। मुँह के छालों में मेंहदी बहुत गुणकारी है। इसकी पत्तीयों को चबाने से **छाले** नष्ट हो जाते हैं। यदि चबाना अरूचिकर लगे तो मेंहदी पत्तियों को पानी में भिगोकर उस पानी से कुल्ला करना चाहिए। यदि **हथेली या तलुओं में जलन** हो रही हो तो मेंहदी का लेप करने से ठंडक व राहत मिलती है। मेंहदी के फूल **अनिद्रा** की प्रभावी औषधि है। अनिद्रा रोगियों को चाहिए कि वे अपने बिस्तर में मेंहदी के फूलों को रखकर सोये। फिर देखे कितनी गहरी नींद आती है। **दाह, खाज, खुजली आदि चर्म रोग** होने पर मेंहदी की छाल का काढा मुनक्का की चटनी के साथ सेवन करते रहने से कुछ ही दिनों में चर्म रोग समाप्त हो जाता है। **कुष्ट रोग** में भी मेंहदी गुणकारी है। प्रभावित हिस्सों पर मेंहदी लगानी चाहिए। **माइग्रेन यानी आधाशीशी** के दर्द मेंहदी की पत्तियों को पीसकर लेप करने पर राहात मिलती है। **गठियां के दर्द** में मेंहदी की पत्तियों का लेप करने से राहत मिलती है। यदि शरीर में **फोडे–फुन्सियाँ** हो रहे हो तो मेंहदी के पत्तों का काढा बनाकर फोडे–फुन्सियों पर लगाने से लाभ होता है। यदि **मसूडे कमजोर हो उनसे रक्त बहता हो** तो मेंहदी के पत्तों को उबालकर

ठंडा कर ले तथा उससे कुल्ले करें। दाँत संबंधि अन्य रोग भी नष्ट हो जाते हैं।

अडुसा :– 1) खाँसी के लिए अडुसा के पत्तों का रस 10 ग्राम मुनक्का की चटनी के साथ मिलाकर प्रातः - सायं सेवन करना चाहिए। ताजेपत्र न मिलने की स्थिति में छाया में सुखायें गये फूलों का चूर्ण मुनक्का की चटनी के साथ देना चाहिए। 2) बच्चों की काली खाँसी जिसे कुकुर-खाँसी भी कहतें हैं, अडुसा की जडका काढा डेढ दो चम्मच दिन में दो से तीन बार तक दिया जाय तो निश्चित ही लाभ होता है। **3**) वासा का मूल लेकर उसका शर्बत बनाकर विधि पूर्वक उसे प्रयोग में लाया जाय तो पुराने से पुरानी खाँसी और क्षयरोग तक नष्ट हो जाते है। 4)अडुसा के फूलों को दुगनी मात्रा में मिश्री मिलाकर मिट्टी या कांच के पात्र में रखने पर गुलकंद तैयार होता है और इसके 11 ग्राम मात्रा तक नित्य सेवन से कास–श्वास, पीनस (पुराना जुकाम) रक्त, पित्त, राजयक्ष्मा के रोगियों को अवश्य ही लाभ पहुँचता है। **5**) यह ज्वरनाशक तथा रक्तशोधक भी है। इसके अतिरिक्त यह रक्तस्राव रोकने वाला है। इसका प्रयोग सारे शरीर में धातु-निर्माण क्रिया को बढाने के लिए कमजोरी के बाद के टॉनिक रूप में भी होता है।

अर्जुन :-1) हृदय में शिथिलता आने पर या शोथ होने पर अर्जुन की छाल तथा गुड को दूध में मिलाकर औटाकर पिलाना चाहिए। 2) हृदयघात, हृदय–शूल में अर्जुन की छाल से सिद्ध दूध अथवा 3 से 6 ग्राम छाल घी या गुड के शर्बत के साथ देते हैं।
3) अर्जुन घृत बनाने के लिए आधा किलो अर्जुन की छाल जौकुट करके 4 किलो जल में पकाया जाता है। चौथाई जल शेष रहने पर अर्जुन कल्क 50 ग्राम तथा गाय का घी एक पाव मिलाकर पाक करते हैं। ध्यान रहें, जल उड जाने एवं घृत शेष रहने पर यह सिद्ध घृत बन जाता है। यह घी हृदय के समस्त रोगों में हितकारी है। इसकी मात्रा 6 से 11 ग्राम तक दी जाती है। 4) महिलाओं में होने वाले श्वेत प्रदर तथा पेशाब की जलन को रोकना भी इसके विशेष गुणों में है। 5) छाती में जलन, जीर्ण खाँसी आदि को रोकनें में यह सक्षम है। 6) हड्डी टूटने पर इसकी छाल का स्वरस दूध के साथ देते हैं। सूजन तथा दर्द को कम करने की शक्ति भी इसमें निहित है।

चिरायता :– चिरायता रस में तिक्त, वीर्य में शीत, गुण में रूक्ष एवं लघु, प्रभाव में रेचक है तथा सन्निपातज्वर श्वास, कफ-विकार तथा वात विकार नाशक है और हृदय के लिए हित कारी, पित्तविकार, दाह, काँस, शोथ, तृषा, रक्तविकार, कुष्ठ, ज्वर, व्रण तथा कृमिरोग का नाशक है। यह जीर्णज्वर, विषम ज्वर में क्वाथ (काढा) के रूप में दिया जाता है।

ईसबगोल :– आँव, दस्त पेचिश, मरोड, आमातिसार, खून के दस्त तथा पुराने आमांश के कारण पेट में वायु का प्रकोप और गैस होने पर इससे तकाल फायदा होता है।

5 से 10 ग्राम तक जल के साथ लेनी चाहिए। आमातीसार में खोये की मिठाई के साथ देने से ऐंठन, मरोड बंद होकर अतिसार खत्म हो जाता है।

चंदन :– चंदन दो प्रकार का होता है श्वेत चंदन तथा रक्त चंदन। यह प्रभाव में आह्लाद तथा श्रम, शोष, विष, कफ, तृषा, पित्त, रक्त, रक्तविकार तथा दाह का नाशक है। इसके सार से तेल प्राप्त किया जाता है।

नीम के विविध प्रयोग दांतो के लिए :- 1) नीम की टहनी (हरी एवं पतली शाख) को दातुन के रूप में प्रयोग में लाना हमारे देश में प्राचीन काल से ही प्रचलित है। नीम की छाल या पत्तों को सुखाने के बाद पीस कर बनाया गया मञ्जन दांतों के लिए लाभकारी होता है। नीम की नई कोपलें चबाने से दांतों के कीटाणु नहीं होते हैं तथा मसूडों का दर्द कम हो जाता है। **रक्तशोधक :-** रक्त में किसी प्रकार की खराबी हो, फोडे, फुंसी अधिक निकल रहे हो तो आधा कप नीम की पत्तियों व फूलों का रस खाली पेट 15 दिन तक पीये इसके अलावा यदि नीम के पांच-दस पत्तियाँ प्रतिदिन चबाई जाय तो रक्त की अनेक अशुद्धियाँ स्वतःही दूर हो जाती है। **भूख न लगने पर :-** नीम के पाँच फल (निम्बोली) लगातार 15 दिन तक खायें, पेट के सभी विकार दूर होगें व भूख खुलकर लगेगी। **कृमि हरण :-** बच्चों के पेट में अक्सर कीडे पाये जाते हैं, उनके लिए नीम की पत्तियों का चूर्ण अत्यन्त लाभकारी होता है। **घाव होने पर :-** घाव को नीम की पत्तियों की काढे से धोया जाय तो इसमें मवाद नहीं पडता तथा कीटाणु नहीं होते हैं व घाव जल्दी भरता है। **गठियाँ :-** गठियाँ या जोडों के दर्द में नीम की कोपलों का गाढा काढा बना लें तथा रुई की दो छोटी-छोटी गद्दीयाँ बनाकर सहन योग्य गर्म काढा उन पर लगाकर दर्द वाले स्थान पर सेंक करें। **कान का दर्द :-** कान में दर्द हो या कीडे पड जाय या कान से मवाद बहता हो तो नीम का तेल तीन-तीन घंटे बाद दो-दो बुंद डालने से आराम मिलता है। **बुखार :-** नीम की पत्तियों का रस या नीम की पत्तियों का काढा (दस मि.ली.) दिन में तीन बार तीन दिन तक पीये, इसके अलावा नीम की पेड की छाल का चूर्ण (25 ग्राम) गर्म पानी के साथ फांकने से बुखार उतर जाता है। **बिच्छु या कनखजूरा विष हरण :-** बिच्छु या कनखजुरा के काटने पर काटे हुए स्थान के ऊपर नीम के पत्तों की लुगदी बांध देने से आराम मिलता है। **मलेरिया :-** अनुसंधानों से यह सिद्ध हो चुका है कि नीम, 'कुनैन' से भी अधिक शक्तिशाली है। यह गुण इसमें गिडुनिंन नामक रसायन के कारण होता है। नीम के पत्तों का धुआँ मच्छरों को भगाने के लिए किया जाता है। **बिवाई फटना :-** थोडे मोम को आग पर पिघलालें फिर उसमें नीम का तेल मिलाकर मरहम तैयार करलें। इसे थोडा गर्म करके पैर की बिवाईयों को खूब ठीक प्रकार से लगाये। **श्वेत कुष्ठ (सफेद दाग) :-** नीम के मद का अर्क निकालकर प्रातः सायं 25-25 मी.ली. पीने से

श्वेत कुष्ठ तथा अन्य रक्त विकार दूर हो जाते है। सफेद दागों में लगातार कुछ दिनों तक नीम का तेल लगाने से आशातीत लाभ होता है। **दाद :-** नीम के पत्तों को दही में पिसकर दाद पर लगाने से दाद जडमूल से नष्ट हो जाता है। **मुँहासें :-** यदि चेहरे पर मुँहासें हो तो नीम वृक्ष की छाल को घिसकर मुँहासों पर लगायें तो मुँहासें दूर हो जायेंगे। **घाव एवं सडी हड्डीयाँ :-** नीम की पत्तियों को घी में भूनकर पीस लें और उसमें जितनी आवश्यकता हो ऊपर से और घी मिला लें। इसे छिछडे-दार-घावों और सडी हुई हड्डियों पर लगाने से बहुत लाभ होता है। **रगड के घाव :-** यदि किसी अंङ्ग में रगड लगकर घाव हो जाये तो वहा पर नीम की निमौलियों का तेल लगाने से रगड के कारण होने वाले घाव ठीक हो जाते हैं। **कच्चे घाव :-** नीम का तेल लगाने या इसके काढे से धोने से कच्चे घाव के खुंरड उतर जाते हैं। नीम की पत्तियों का रस निकालकर हल्दी के साथ फोडों पर लगाने से फूटे हुए फोडे शीघ्र ठीक हो जाते हैं। **बच्चों के घाव :-** 1) नीचे से कच्चे और ऊपर से सूखे हुए, बच्चों के घावों पर नीम का तेल लगाने से अतिशीघ्र लाभ होता है। 2) नीम तथा अरण्ड के हरे पत्ते समभाग छाया में शुष्क करके पीस लें। 4 ग्राम प्रातः सायं पानी के साथ 40 दिन तक प्रयोग करने से विषैले घाव ठीक हो जाते हैं। **घाव :-** पिसी हुई नीम की पत्तियों की टिकियां बनाकर उसके बीच में छेद करके घाव पर बाँधने से उसकी मवाद निकल जाता है तथा घाव ठीक हो जाता है। **घावों की शिथिलता :-** जिन घावों के मांस और चमडियाँ शिथिल हो जायें तथा किसी औषधि का शीघ्र प्रभाव न हो तो घावों पर कई दिनों तक निमौलियों का शुद्ध तेल लगाने से शिथिलता नष्ट हो जाती है। शिथिलता नष्ट होने के बाद भी यदि कुछ दिनों तक इस तेल का बराबर प्रयोग किया जाये तो विना किसी दूसरी औषधि के घाव जल्दी भर जाते हैं। **फोडे-फुन्सी :-** 1) नीम की पत्तियों की लुगदी बनाकर फोडे-फुन्सियों पर बांधने से वे जल्दी पककर फूट जाती है। 2) नीम की लकडी चंदन की भाँति पानी के साथ घिसकर लगाने से गर्मी से होने वाली फुन्सियाँ, जलन तथा सभी प्रकार के पित्त विकार ठीक हो जाते है। **खुजली :-** यदि यह घर में किसी एक को हो तो प्रायः अन्य को हो जाती है। अतः सबको सावधानी बरतनी चाहिए। नीम के पत्ते पानी में अच्छी प्रकार उबालकर उस पानी से नहायें। नहाने के लिए 'नीम सोप' प्रयोग करें। इसके अतिरिक्त कपडों और बिस्तरों को प्रतिदिन धूप में रखकर उनमें नीम के पत्ते रख दें। **चर्म रोग :-** नीम के बीज की गिरी या पत्ते एवं तिल दोनों 10-10 ग्राम पीसकर शरीर पर मालिश करें। हर प्रकार के चर्म रोग ठीक होंगे। **रक्त विकार :-** रक्त में किसी प्रकार के कोई भी विकार में नीम की पत्तियाँ प्रतिदिन 5-7 चबाने से दूर हो जाता है। **हथेलियों और तलुवों की जलन :-** प्रायः स्त्री-पुरुष को यह शिकायत हुआ करती है तथा उनको ऐसा मालूम होता है कि

जैसे हाथ की हथेलियों तथा पाँव के तलवों से आग निकल रही है। इसके लिए अति उत्तम विधि यह है कि नीम के फूल 15 ग्राम रात को 250 मिली. पानी में भिगों दें। सुबह को जल छानकर उसमें से थोडा-थोडा दिन में 2-3 बार पिलायें। 3-4 दिन में कष्ट दूर हो जायेगा।

सरसों का तेल :- 1) दांतों में दर्द होने पर नमक में थोडा सा सरसों का तेल मिलाकर मञ्जन करने से दाँतो का दर्द दूर हो जाता है। 2) सर्दी-जुकाम में नाक पर सरसों का तेल मलना चाहिए, इससे लाभ होता है। 3) जख्म पर तुरंत सरसों का तेल लगा देने से रक्त बहना रुक जाता है। 4) पैरों के तलवें पर सरसों का तेल मलने से आँखों की ज्योति बढती है। 5) सरसों का तेल की मालिश करने से हाथ-पैरों का दर्द दूर हो जाता है। 6) रात में सोते समय सरसों का तेल लगाएं मच्छर तंग नहीं करेंगे। 7) नींबू के छिलके में सरसों के तेल की कुछ बुंदे डालकर पीतल के बर्तन पर घिस लें, बर्तन चमक जायेंगे। 8) आँखें आ जाने पर सरसों का तेल लगाना लाभप्रद रहता है। 9) हल्दी और सरसों का तेल मिलाकर मञ्जन करने से दांतों की पायरिया बीमारी ठीक हो जाती है और दांत मजबूत व चमकदार बनते हैं। 10) यदि कान में कीडा चला गया हो सरसों का तेल गुनगुना करके डालें, कीडा स्वयं बाहर आ जाएगा। 11) बच्चों को सिरदर्द की शिकायत हो तो कान में गुनगुना सरसों का तेल डालें। 12) हाथों पर सरसों का तेल मलने से खुरदुरापन दूर हो जाता है तथा हाथ मुलायम बने रहते हैं। (जिजीविषा मैत्रेयी)

अमृतधारा के विविध प्रयोग :- अमृतधारा कई बिमारियों में ली जाती है। जैसे बदहजमी, हैजा और सिरदर्द, दातदर्द, पसलीदर्द, मच्छर-कीडे-बिच्छु काटने पर थोडेसे पानी में तीन-चार बुँद अमृतधारा डालकर पिलाने से बदहजमी, पेटदर्द, दस्त, उल्टी ठीक हो जाती है। चक्कर आने भी ठीक हो जाते हैं। एक-दो चम्मच पानी में दो बुँद अमृतधारा डालकर पीने से हैजा में फायदा होता है। अमृतधारा की दो बुँद ललाट और कान के आस-पास मसलने से सिरदर्द में फायदा होता है। मीठे तेल में अमृतधारा मिलाने कर छाती पर मालिश करने से छाती का दर्द ठीक हो जाता है। सुँघने पर साँस खुल कर आता है तथा जुकाम ठीक हो जाता है। थोडे से पानी में एक-दो बुँद अमृतधारा डालकर छालों पर लगाने से फायदा होता है। दाँत दर्द में अमृतधारा का फाया रखकर दबाये रखने से राहत मिलती है। नीलगिरी 10 मात्रा और अमृतधारा 2 मात्रा मिश्रण करके लगाने से खाँसी, जुकाम, सिरदर्द दूर होता है। 4-5 बुँद अमृतधारा ठंडे पानी में डालकर सुबह-शाम कुछ दिन पीने से श्वास, खाँसी, दमा और क्षय रोग में फायदा होता है। आँवलें के मुरब्बे में 3-4 बुँद अमृतधारा डालकर खिलाने से दिल के रोग में राहत मिलती है। बताशे में दो बुँद अमृतधारा डालकर खाने से पेट के दर्द में आराम मिलता है। नारियल तेल 10 मात्रा और अमृतधारा 2 मात्रा मिलाकर लगाने से सन्धिवात, आमवात रोग दूर होता है। भोजन के बाद दोनों वक्त ठंडे पानी में दो-तीन बुँद अमृतधारा डालकर पीने से मंदाग्नि, अजीर्ण,

बादी, बदहजमी एवं गैस ठीक हो जाती है। अमृतधारा की एक-दो बुँद जीभ में रखकर मुँह बंद करके सूंघने से चार मिनट में हिचकी में फायदा होता है। दस ग्राम नीम के तेल में पाँच बुँद अमृतधारा मिलाकर मालिश करने से हर तरह की खुजली में फायदा होता है। ततैया-बिच्छु-भँवरा या मधुमक्खी के काटने की जगह पर अमृतधारा मसलने से राहत मिलती है। 10 ग्राम वैसलिन में 4 बुँद अमृतधारा मिलाकर शरीर के हर तरह के दर्द पर मालिश करने से दर्द में फायदा होता है। फटी बिवाई और कटे होठों पर लगाने से दर्द ठीक हो जाता है तथा फटी चमडी जुड जाती है। (प्रो. ओमप्रकाशजी)

नीम के तेल में अमृतधारा मिश्रण करके लगाने से मच्छर नहीं काटते हैं। घी में अमृतधार मिलाकर लगाने से गर्मी शांत होती है। (वै. चंद्रशेखर)

कपूर :- कपूर रस में मधुर एवं तिक्त, गुण में लघु, वीर्य में शीत, प्रभाव में वृष्य, नेत्र के लिए हित, सुगंधित और कफ, पित्त, विषदाह, तृषा, विरसता में दोश तथा शरीर की दुर्गंध का नाशक है।

स्वास्थ्य के योग्य योगासनादि

स्मरण शक्ति वर्धक योगासन :- उपर्युक्त शारीरिक मल को जब अच्छी तरह से शरीर से निष्कासन नहीं किया जाता है तब वह मल शरीर के विभिन्न अवयव, मनोवाही नाडियाँ, तंत्रिका-तंत्र, ज्ञानेन्द्रियाँ एवं कर्म इन्द्रियों को विकृत कर लेना है। इसका कारण शारीरिक स्वास्थ्य तो खराब होता ही है परंतु ग्रहण-शक्ति, स्मरण-शक्ति, मेधा-शक्ति को भी विकृत कर लेना है। इसलिए मलमूत्र आदि का विसर्जन प्राकृतिक रूप से तथा यौगिक क्रिया से भी करना चाहिए । प्रातः उठकर जब शौच की बाधा हो तो अवश्य शौच जाकर शारीरिक मल निकाल देना चाहिए। नीम – बबूल आदि दंतन से मुख शुद्धि करनी चाहिए। जलनेती के लिए पहले नाक जल से साफ करके जलनेती की क्रिया करनी चाहिए। इससे नाक की सफाई होती है। नाक के भीतर स्थित ज्ञान तंतु के छोर अधिक कार्यक्षम बनते हैं, जुकाम, सर्दी, साइनस, आधा शीशी आदि रोग की चिकित्सा भी हो जाती है। इसी प्रकार वमन धौती करना चाहिए। इससे भी शारीरिक शुद्धता होती है एवं स्मरण शक्ति भी बढती है।

कपोलक रन्ध्रशोधन – दाहिने हाथ के अंगुठे के द्वारा प्रतिदिन सो के उठे तब और भोजन के अन्त में और सुर्यास्त के समय में कपाल रंध्र अर्थात् सिर के बिच में जो गढेला है उसे जल से ही साफ करें और इस प्रकार के अभ्यास से भीतर के कफों का दोष नाश हो जायेगा और नाडियाँ निर्मल हो जाती हैं और दृष्टि (निगाह) दिव्य (साफ) हो जाती है। दोनों हाथों के अंगुठे एवं तर्जनी से कपाल को दबाकर घर्षण करना चाहिए।

स्वच्छ समतल भूमि में समपाद में कायोत्सर्ग मुद्रा में खडे होकर सिर को आकाश

की और करके दोनों आँख खोलकर आकाश को देखना चाहिए और अति जोर-जोर से श्वास-क्रिया करनी चाहिए। कुछ समय विश्राम लेकर पुनः उपर्युक्त मुद्रा में आँख को बन्द करके ठोडी को कण्ठ में लगाकर जोर-जोर से श्वास-क्रिया करनी चाहिए। पुनःविश्राम लेकर उपर्युक्त मुद्रा में ही आँखों को डेढ मीटर दूरी पर जमीन में केंद्रित करके जोर-जोर से श्वास क्रिया करनी चाहिए।

कायोत्सर्ग/शवासन –शरीर को पुर्ण शिथिल और तनाव मुक्त करने के लिए कायोत्सर्ग खडे होकर या लेटकर भी किया जाता है। यह आसन योगासन के मध्य–मध्य में अध्ययन करते–करते जब शरीर अथवा मन थक जाता है तब तक करना चाहिए । इससे शारीरिक, मानसिक, एवं भावात्मक तनाव दूर होता है। एकाग्रता बढती है।

पद्मासन तथा ज्ञान मुद्रा- से मन की एकाग्रता बढती है, ज्ञान तंतु सक्रिय होती है। पद्मासन और योगमुद्रा से उदर दोष की निवृत्ति, मेरूदण्ड की स्वस्थ्यता, स्मरण शक्ति का विकास तथा मुख एवं मस्तिष्क के स्नायुओं को शक्ति मिलती है।

गोदुहासन – से चित्त की स्थिरता, ज्ञान की निर्मलता, अपान वायु की शुद्धि, भावना की विशुद्धि होती है।

सिंहासन – से नेत्रों की ज्योति बढती है। स्वर यंत्र सक्रिय बनने से उच्चारण शुद्धि होती है।

वज्रासन – भोजन के बाद करना चाहिए। इससे पाचनतंत्र उत्तम रहता है ब्रह्मचर्य की साधना में सहायक होता है। शरीर शक्ति संपन्न व तेजस्वी बनता है।

सिद्धासन – से काम शक्ति विजय, चित्त स्थिर, वीर्य -शुद्धि तथा शक्ति का जागरण होता है।

ताडासन – से आलस्य दूर होता है, स्नायु दुर्बलता मिटती है, शरीर की लम्बाई बढती है।

गवासन – (पंचागासन, ज्ञानासन) से थकान दूर होती है विनय प्रकट होता है, ज्ञान बढता है एवं मेरूदण्ड का व्यायाम होता है।

शीर्षासन – में मस्तिक के विकार दूर होते हैं, स्मरण शक्ति बढती है, दृष्टि, धातु दोष, सिरदर्द, हर्निया, दमा, मधुमेह में लाभप्रद है।

सर्वांगासन – से संपूर्ण का शरीर का व्यायाम होता है। इससे थाइराइड ग्रन्थि स्वस्थ रहती है, मेरूदण्ड की नाडियों के छोरों को पर्याप्त रक्त प्राप्त होता है, नाडी तंत्र, पाचनतंत्र के लिए टॉनिक है, नाक–कान की क्रिया-तंतु सबल होती है और अशुद्ध रक्त शुद्ध होता है।

शशांकासन – से शीतलता प्राप्त होती है, क्रोध उपशमन होता है, आवेश का भी उपशमन होता है, मानसिक शांति मिलती है,तीव्र रक्तचाप सामान्य बनता है, थकान दूर होती है। इसी ही आसन में दोनों हथेलियों से दोनों खुली आँखों को बंद करके अंधकार का अनुभव करना चाहिए, इससे आँखों की थकान दूर होती है, आँखों को विराम मिलता है। पुनः धीरे से उठना चाहिए। उठते समय आँखों को बन्द कर रखना चाहिए। दोनों हथेलियों को परस्पर रगड कर

जब हथेलियाँ गरम हो जावे तब बंद आँखों के ऊपर सहलाना चाहिए। अध्ययन करते–करते जब शरीर, मन एवं चक्षु थक जाते हैं तब इस आसन को करना चाहिए।

प्राणायाम– से पर्याप्त प्राणवायु मिलती है, अशुद्ध वायु का निष्कासन हो जाता है। इससे शरीरिक-मानसिक स्वास्थ्य उत्तम रहता है।

ध्यान – से मन शांत हो जाता है। इससे शारीरिक एवं मानसिक रोग दूर होते है। ज्ञान बढता है, ज्ञान में शुद्धता आती है।

वक्षः स्थल –शक्ति विकासक– विधिः खुली व उंगलिया आपस में सटी रहें; दोनों हाथो को धीरे–धीरे उठाएं साथ में श्वास भी भरते जायें तथा सिर को हाथ सहित सीधे आकाश को देखते हुए पीछे सहज स्थिति तक ले जाएं, कुछ समय फिर वापस श्वास निकालते हुए आएं। प्रारम्भ में 5 बार करें। **लाभः** वक्षःस्थल चौडा विकार रहित एवं शक्तिशाली होता हैं। फेफडे के समस्त दोष जैसे - टी.बी. दमा खांसी, कफ आदि दूर होता है।

उपस्थ तथा स्वाधिष्ठान चक्र शुद्धि :– विधि :- कायोत्सर्ग मुद्रा में खडे होकर श्वास स्वाभाविक रखते हुए उपस्थ को गुदा समेत अन्दर की शक्ति से ऊपर की और खींचे और ढीला छोडें। प्रारम्भ में 5 बार करें। खीचनें पर श्वास स्वतः जहाँ की तहाँ रुक जाती है। लाभः सूजाक, आतशक, प्रमेह, स्वप्नदोष, प्रदर, यौन संबंधी विकार, मधुमेह, बवासीर आदि दूर होंकर ब्रहाचर्य की पुष्टि होती है।

कुण्डलिनी शक्ति विकासक :– विधिः दोनों पैरों में चार अंगुल की दूरी रखें, दोनों पैरों को बारी–बारी से नितम्ब पृष्ठ पर जोर से मारें। नीचे आते समय पैर अपने स्थान पर आएं। प्रारम्भ में 5 बार करें। **लाभः** इस क्रिया के दैनिक अभ्यास से कुण्डलिनी शक्ति का जागरण एवं सत्य का ज्ञान होता है।

जानु-शक्ति-विकासक :- विधिः सीधे खडे होकर पिडंलियों से घुटने पर बल लगाकर जंघा के भाग को झटके से घुटने के ऊपर सीधा रखें और आगें-पीछे झटका दे। पुनः दूसरे पैर से करें। प्रारम्भ में 10 बार करें। **लाभः** गठिया, जोडो का दर्द दूर होने के साथ ही रक्त संचार संतुलित होता है।

शुद्धाखण्डैकमूर्त स्वरूपोऽहम्। मैं शुद्ध-अखण्ड- एक-मूर्ति स्वरूप हूँ।
अनन्त ज्ञान स्वरूपोऽहम्। मैं अनन्त ज्ञान स्वरूप हूँ।

आधुनिक मनोवैज्ञानिक चिकित्सा

पूर्व में बारबार वर्णन किया है कि दूषित मनोभाव से पाप कर्म का सञ्चय होता है और पाप कर्म से शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक रोग होता है। दूषित मनोभाव को प्राचीन चिकित्सा विज्ञान आयुर्वेद में प्रज्ञा अपराध कहा गया है। इस प्रज्ञा अपराध से जनित रोग को प्रज्ञापराध रोग कहते हैं। प्रज्ञापराध रोग से विमुक्त होने के लिए दूषित मनोभावों को त्याग करके नैतिक-धार्मिक आचार-विचार करना चाहिए। दूसरों के साथ मैत्री पूर्ण, वात्सल्य पूर्ण, उदार-निष्कपट सरल व्यवहार करना चाहिए। दूसरों के साथ अनैतिक, अधार्मिक, दूषित व्यवहार करने से मन विक्षुब्ध हो जाता है तथा मानसिक तनाव होकर मानसिक ग्रंथी पड जाती है। यह मानसिक तनाव एवं ग्रंथी ही अपस्मार (Histeria), मनःस्नायु दुर्बलता (Neurasthehia), चिंतामनःस्नायु विकृति (Anxiety psychineurasis), रक्तचाप, हृदयचाप, पागलपन आदि विभिन्न रोग उत्पन्न होते हैं। इसीलिए प्राचीन चिकित्सा विज्ञान में दूषित मनोभावों को त्याग करने के लिए विशेष महत्व दिया है।

त्यागः प्रज्ञापराधमिन्द्रियोपशमः स्मृति।
देशकालात्मविज्ञानं सद्वृत्तस्नायुवर्त्तनम्॥ अष्टा. सू. स्थानम् 32

प्रज्ञापराध का परित्याग, इंद्रियों की शक्ति अर्थात् इंद्रियों की अनर्गल, स्वच्छंद, अनैतिक प्रवृत्तियों का विरोध करना स्मृति देश-काल और आत्मा का ज्ञान सदाचार का पालन करना रोग चिकित्सा का प्रधान एवं प्रथम कारण है। अंग्रेजी में मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ के लिए एक महत्वपूर्ण नीति वाक्य है। "Healthy mind in a healthy body" अर्थात् स्वस्थ मन एक स्वस्थ शरीर के लिए कारण है। स्वस्थ मन अर्थात् पवित्र विचार वाला मन है। जिसका मन पवित्र एवं मानसिक रोग (क्रोध-द्वेष-तनाव आदि) से रहित है उसका शरीर भी स्वस्थ-सबल एवं दृढ होगा। जो जिस प्रकार अन्तरङ्ग में विचार करता है, उसका बाह्य आचरण भी विचार के अनुकूल होता है। अर्थात् पवित्र विचार वाला पवित्र आचरण करेगा और अपवित्र विचार वाला अपवित्र आचार करेगा। महान् क्रांतिकारी लेखक रॉम्यारोलॉ कहते हैं- 'Action is the end of thought' विचार का अंतिम छोर कर्म ही है। वर्तमान मनोवैज्ञानिकोंने इस क्षेत्र में अक्लान्त परिश्रम करके मनोवैज्ञानिक चिकित्सा का आविष्कार किया है। मानसिक स्वास्थ्य के लिए जीवन में क्या-क्या करना चाहिए, नीचे उसका वर्णन प्रस्तुत है।

मानसिक असमानताओं, विकारों और व्याधियों के ज्ञान और परिचय की आधारशिला, मानसिक स्वास्थ्य का ज्ञान और परिचय है और मानसिक स्वास्थ्य सरलता

से समझमें आता है जब हम इसकी तुलना शारीरिक स्वास्थ्य से करें। हम सब जानते हैं कि हमारा शरीर स्वस्थ है। यदि हमें कोई कष्ट, पीडा या बीमारी नहीं है और हम अच्छी तरह हाथ-पैर चला सकते हैं और इसी तरह हमारा मन स्वस्थ है, जब हमारा व्यक्तित्व भलिभाँति काम करता है और हम बारबार होने वाले संवेगात्मक विक्षोभों से मुक्त रहते हैं। यहाँ हम मन से स्वस्थ व्यक्ति के कुछ प्रमुख लक्षणों का उल्लेख करते हैं।

1) सामान्यतः मानसिक स्वास्थ्य का अधिकारी जीवन को आनंद मानता है और जो भी दुःख उसे अनुभव होता है उसका कारण वह जानता और समझता है।

2) कुछ थोडे लोगों के साथ उसकी घनिष्ठता होती है और उनके साथ उसका संबंध मधुर और संतोषजनक होता है। अधिक लोगों के साथ उसका संबंध मैत्रीपूर्ण होता है। सामान्यतः व्यवसाय में और दैनिक व्यवहार में वह अपने सहकारियों के साथ सद्भाव से, मिल-जुलकर काम करता है।

3) उसमें आत्मविश्वास और उत्साह रहता है, अपने भविष्य व सुविधाओं के विषय में वह आशावादी होता है। कभी-कभी वह हतोत्साहित हो जाता है, पर ऐसे समय वह अपना आपा नहीं खो देता।

4) जीवन की समस्याओं और कठिनाइयों के सम्मुख वह व्यग्र और विक्षुब्ध नहीं हो उठता और उनका उतनी ही चिंता और गंभीरता से सामना करता है जितना की उचित है। न तो वह उनसे भाग निकलता है, न वह दूसरों का मुँह ताकता है कि वे उसकी मुश्किलों को हल करें और न ही वह अपनी चिंताओं और तकलीफों के कारण दूसरों के नाक में दम करता है।

5) जब तक कोई विशेष और उचित वातावरण न हो वह लोगों, चीजों और स्थितियों से भय नहीं खाता।

6) उसका अन्तःकरण उसके आचरण को सन्मार्ग पर चलाता है और उसे अपने और दूसरों के कल्याण में प्रवृत्त रखता है। वह उसे छोटे से अपराध के लिए बहुत कडा दंड देता है।

7) वह बात-बात पर क्रोध नहीं करता और न ही हर व्यक्ति से बिगडता है। उसका क्रोध उचित होता है और वह उसे शिष्टता और मर्यादा से प्रकट करता है।

8) अपने स्वास्थ्य का उसे विचार रहता है पर उसके लिए वह उग्र रूप से चिंता नहीं करता।

इन लक्षणों को समझाने में उदार दृष्टिकोण रखना चाहिए। एक-दो बार इनमें से कुछ के अभाव से मानसिक स्वास्थ्य को क्षति नहीं पहुँचती। हम में से कौन इस मापदंड के अनुसार पूरा उतरता है। इस कारण पर हमें आत्मविश्वास नहीं खो देना चाहिए। उपर्युक्त लक्षणों का अभाव हम सब में कभी-कभी हो जाता है पर मानसिक स्वास्थ्य तभी बिगडता है जब यह अभाव चिरकाल तक बना रहता है और उपर्युक्त नियमों का बार-बार

उल्लघंन होता है।

ये नियम और लक्षण प्रायः धार्मिक और नैतिक उपदेश का विषय होते हैं। शिक्षा भी इन पर जोर देती है और बहुत से धर्मग्रंथ इन्हें उदाहरणों द्वारा बताते-समझाते हैं पर वर्तमान युग में हमारा दृष्टिकोण, हमारे प्रयास और नियम वैज्ञानिक रूप ले रहे हैं। जिस तरह शारीरिक स्वास्थ्य विज्ञान का विषय बन गया है इसी तरह मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान की नींव भी रखी गई है।

मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान (Mental hygiene)

मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का उद्देश्य मानसिक स्वास्थ्य को बनाये रखना है। जिससे मानसिक विरोधियों का निरोध हो। इस शताब्दी के आरंभ में मानसिक चिकित्सालय के एक रोगी बीयर्स (C.W.Biers) ने होश की हालत में देखा और जाना कि रोगियों के साथ जो बर्ताव किया जाता है वह क्रूर है। जब उसने ठीक होने पर अस्पताल छोड दिया तो उसने अपने अनुभव के आधार पर एक पुस्तक लिखी और बाद में विख्यात मनोवैज्ञानिक विलियम जेम्स (William James) और रूजवेल्ट (T.Roosevelt) की सहायता से मानसिक अस्पतालों की दशा सुधारने का प्रयास किया। उसके अंदोलन से 'मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान'' का आविर्भाव हुआ। जिससे उन्माद ग्रस्त रोगियों को संभालने के उपायों और कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण को सुधारा गया। मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के अध्ययन और प्रचार के लिए अमेरिका में एक राष्ट्रीय समिति (National commitee for mental Hygiene) स्थापित की गई। जिसका ध्येय और क्षेत्र क्रमशः विस्तृत होता गया और आज कई क्षेत्रों में उसकी शाखायें काम कर रही है। उसके सदस्यों के प्रयास से कई देशों में बालकों के कल्याण के लिए केंद्र स्थापित हुए हैं। जहाँ बालकों के आचरण और व्यक्तित्व की समस्याओं को सुलझाने की कोशिश की जाती है।

आज मानसिक स्वास्थ विज्ञान एक विशद और निश्चित शास्त्र बन गया है। उसके विस्तार प्रणालियाँ और मूल तत्त्व स्पष्टतया प्रतिपादित हो रहे हैं और आशा की जाती है कि उसके मूल तत्त्वों का परिचय प्राप्त कर और उसके निर्देशों पर अमल करके जीवन की उलझनों से भावी संतान की रक्षा की जा सकेगी।

''स्वास्थ्य और संतुलित समायोजन'' (Balanccd adjustment)

मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का विषय अपूर्ण और अनुपयुक्त समायोजन का निरोध है, और उसका लक्ष्य इस निरोध के उपायों का प्रतिपादन है। जिनके अनुसरण से असंतुलित विक्षिप्त व्यक्ति संतुलन और समता प्राप्त कर सके। हमारी समाजिक और भौतिक परिस्थितियों में परिवर्तन होते रहते हैं, हमारी अपनी शारीरिक और मानसिक

अवस्थाओं में परिवर्तन आता रहता है और इन दोंनो के परस्पर संबंध भी बदलते रहते हैं। जीवन इन परिवर्तनों के प्रति अनवरत समायोजन का प्रयास और प्रक्रिया है। समायोजन अनवरत और विषम है, वह व्यक्तित्व के किसी एक पहलू पर निर्भर नहीं रहता बल्कि व्यक्तित्व की समग्र रचना पर आधारित है। इसमें इतने प्रभाव काम करते हैं कि निश्चय से कहा नहीं जा सकता कि अमुक व्यक्ति किसी एक स्थिति में कैसा व्यवहार करेगा। समान परिस्थिति में भिन्न व्यक्ति भिन्न प्रकार से व्यवहार करते हैं। अधुरा और अनुपयुक्त समायोजन व्यक्ति और समाज के लिए आपत्तिकारक होता है। मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का ध्येय है कि बालकों की शिक्षा बडे सुचारु ढंग से हो और उनकी स्थितियों को बडे विवेक और समझदारी से संभाला जाय जिससे वे संतुलित और भली प्रकार से समायोजित व्यक्तित्व का विकास कर सके। अनुपयुक्त और दूषित समायोजनों को अल्पावस्था में ही जान लेने की कोशिश करनी चाहिए। जिससे उनका जल्दी उपचार हो सकें। मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान ऐसी विधियाँ और प्रणालियों को निर्धारित करता है जिनसे व्यक्ति अस्वस्थ समायोजन से मुक्त हो सके और मानसिक स्वास्थ्य फिर से प्राप्त कर सकें। व्यक्तित्व के सर्वाङ्गीण और समरस विकास व्यक्तित्व के तीन पक्ष है- ज्ञान, संवेग, क्रिया और इन तीनों का समरस, संतुलित विकास होने से सुख-शांति और कार्यक्षमता बढती है। आत्मज्ञान द्वारा आत्म-निर्देशन संयत रूप से होता है और किसी प्रकार की मनोभ्रंशताएँ पैदा नहीं होती। मानसिक विक्षोभ पनप ही नहीं पाता। स्वस्थ और सुंदर व्यक्तित्व ज्ञान, विवेक और विचारशीलता का परिचायक है जो कुछ किया जाता है पूरी तरह समझ-बुझ कर किया जाता है। उसका भावात्मक विकास ऐसा होता है कि उसके संवेगों से शिष्टता और संयम झलकते हैं और भावों की अभिव्यक्ति में मर्यादा और सभ्यता का पालन किया जाता है। क्रियात्मक पक्ष में सामर्थ्य, क्षमता और सफलता पाई जाती है और काम दत्त-चित्त होकर पूरे परिश्रम और लगन से किया जाता है। इन तीनों पहलुओं के समुचित विकास में कुछ विशिष्ट गुण निहित हैं। ज्ञान और विवेक के अन्तर्गत अंधविश्वास, पक्षपात, जल्दबाजी, अनिर्णय आदि का अभाव और सत्यवादिता, स्पष्टता, न्यायप्रियता आदि सद्गुणों का आविर्भाव अनिवार्य है। भावात्मक पक्ष के अंतर्गत आत्मविश्वास, आशावादिता, सहयोग, विश्वास, सहानुभूति, उदारता आदि गुण रहते हैं, और छल-कपट, नैराश्य, द्वेष, संदेह, संकीर्णता आदि अवगुणों का बहिष्कार होता है। क्रियात्मक पक्ष के अंतर्गत सुस्ती, ढील, लापरवाही आदि का त्याग परिश्रम और दृढता, संकल्प और कर्मपरायणता, कर्तव्य पालन और कर्मठता को अपनाया जाता है। स्वस्थ, सुंदर, समरस व्यक्तित्व सर्वगुण संपन्न होता है और मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का यह धेय्य है कि उसका स्पष्ट रूप से निरुपण करें, उसके समुचित विकास का मार्ग निश्चित करें, उसकी

सारणियाँ और प्रणालियाँ निर्धारित करे और संभ्याव्य विकारों, व्याधियों और असामन्यताओं से संरक्षण के हित परामर्श दें और उनके अविर्भुत होने पर उनके निराकरण एवं उपचार के साधन और विधियाँ भी बतायें।

निराकरणात्मक (Curative)

मानसिक स्वास्थ विज्ञान का प्रमुख विषय मानसिक विकारों, विक्षोभों, तनावों और व्याधियों की चिकित्सा और निराकरण की विधियों का है। इसका दृष्टिकोण मुख्यतः उपचार संबंधी है। इसीलिए यह मनःस्नायु-विकृतियाँ-(Psychoneuroses), मनोविकृतियाँ (Psychoses) तथा अन्य छोटे-मोटे विकारों के लक्षण, कारण और उपचार का विधिपूर्वक विस्तार से अध्ययन करता है। मानसिक विक्षिप्तता का निराकरण और निरोध इसका प्रधान विषय है। प्रयोग में यह विज्ञान मानसिक विकारों का इलाज भी करता है जिससे वे और न बढ पाएँ। यह इलाज है भी अत्यन्त आवश्यक, क्योंकि कुछ मनोविकार विशेषतायें एवं मनःस्नायु विकृतियाँ इतनी फैली हुयी है कि हम निश्चय से नहीं कह सकते कि कोई ऐसा व्यक्ति है जिसके एक न एक मनःस्नायु विकृति नहीं है और उनसे इतनी असमर्थता, क्षति, दुःख और कष्ट उत्पन्न होते हैं कि उनका अल्पवस्था में ही उपचार हो जाना आवश्यक है। बडी उम्र में ज्यादा बढ जाने से उनका इलाज अधिक कठिन हो जाता है। पर बाल्यावस्था में उन्हें रोका जा सकता है क्योंकि वे तब तक विषम नहीं होते। मनःस्नायु विकृतियों का तो निरोध ही तो हो सकता है, निराकरण नहीं हो सकता है।

पहला कदम तो है अध्ययन जिसमें निरीक्षण, विश्लेषण आदि सम्मिलित है। दूसरा है चिकित्सा (cure) तीसरा है निरोध (Prevlntion) और संरक्षण (Preservation) जिसमें उन सब सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और शैक्षणिक प्रगतियों तथा प्रयत्नों का समावेश है जो इसके नियमों और मूलतत्त्वों का प्रचार करते हैं और उनको व्यवहारिक तथा प्रयोगात्मक रूप देते हैं।

मानसिक स्वास्थ्य का महत्व :-

चूँकि मानसिक स्वास्थ विज्ञान मन की विकृत और रुग्ण अवस्था से संबंध रखता है। कई लोगों की यह धारण है कि इसका एक मात्र ध्येय लोगों को पागल होने से बचाना है। इसका अभिप्राय यह है कि प्रचलित विकार इस विज्ञान के नकारात्मक पक्ष को ही महत्व देते हैं। वास्तव में मानसिक स्वास्थ्य की समस्या सबके सामने आती है। इसमें संदेह नहीं है कि लाखों लोग जो पागल हो जाते हैं या मनोविकृतियों और मनःस्नायु विकृतियों के शिकार होते हैं, चिकित्सा रूपी सहायता के अधिकारी हैं जिससे उनका अपना दुःख, अशांति और समायोजन का अभाव हलका हो वे आस-पास के लोगों पर बोझ न बनें पर इसके अतिरिक्त सामान्य, स्वस्थ व्यक्तियों को भी अपने मानसिक स्वास्थ

की रक्षा के लिए कोशिश करनी है। जीवन के वे तरीके अपनाने हैं जिनसे अधिकाधिक संतोष, शांति और सुख मिले। मानसिक स्वास्थ्य असंतोष, चिंता और भय का विरोधी है और उसकी बदौलत लोग अपने जीवन और कार्य को अधिक रचनात्मक सुखी और उपयोगी बना सकते हैं। उदाहरण के तौर पर असामान्य अस्वस्थ व्यक्ति अपने संवेगों को बेलगाम व्यक्त करता है पहले तो क्रोध में अंदर ही अंदर उबलता रहता है फिर फूट पडता है, तो कुछ अनिष्ट कर बैठता है। तदुपरान्त उस पर कुढता है या पछताता है इत्यादि। कितना समय और शांति व्यर्थ जाती है। कितना काम और व्यक्तिगत संबंध बिगडते हैं और सिद्ध क्या होता है ? निंदा, वैमनस्य, गलत फहमियाँ, मन मुटाव, हीन भाव इत्यादि। मानसिक स्थिरता, संयम, ठहराव, धैर्य आदि गुणों वाला व्यक्ति सूझ-बूझ कर काम करता है और काम में पूरी शक्ति लगा सकता है। उसकी सफलता अधिक निश्चित होती है।

संवेगात्मक विक्षिप्तता (Emotional disorder) :-

यह एक ऐसी छूत की बीमारी है जिससे बात की बात में सैकडों-लाखों लोग उसके वश हो जाते हैं। सामूहिक मनोवृत्ति (Molla mentality) है ही ऐसी। देश के विभाजन के समय जो कुछ हुआ, जुलूसों और जन साधारण के हिंसात्मक संघर्षों में जो कुछ होता हैं अंतर्जातीय झगडे, हडताले, सडक पर की लडाइयाँ और मारपीट आदि मानसिक स्वास्थ्य के अभाव के परिचायक हैं। जब विवेकहीन, विचारहीन, वैमनस्य, फैशन-भक्ति आदि की लहरें व्यापक रूप में देश, जाति या संसार में फैलती है तो मानसिक स्वास्थ्य के अभाव का ही प्रमाण प्रस्तुत किया जाता है। एक समय था जब धर्म और सामाजिक समितियाँ इस दिशा में सहायता करती थी। पर उनका प्रभाव क्षीण हो जाने, उस प्रभाव के अभाव की पूर्ति मानसिक स्वास्थ्य के लिए राष्ट्रीय व्यवस्था द्वारा ही हो सकती है। प्रसन्नता की बात यह है कि हमारे देश में अभी-अभी कुछ ऐसी संस्थायें, स्थानीय उत्साह और रुचि की बदौलत बनी हैं। क्या यह अच्छा नहीं होगा कि जितना धन, समय और शक्ति पुलिस के निरोधात्मक प्रयास पर व्यय किया जाता है उसका कुछ भाग मानसिक स्वास्थ्य की समुन्नति (promotion) पर भी खर्च किया जाए। इधर विश्व विद्यालयों की अनुदान समिति (University Grants Commission) ने विश्वविद्यालयों के मनोविज्ञान-विभागों की उन्नति और विकास के लिए आर्थिक सहायता का प्रबंध किया है और संभव है कि आगे चलकर मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान की राष्ट्रीय समिति (National socicty of Mental Hygiene) की स्थापना भी हो।

अमेरिका जैसे शिक्षित और उन्नत देश में मानसिक स्वास्थ्य की रक्षा का प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण माना जाने लगा है। मानसिक स्वास्थ्य की समस्या सबके सामने है। कोई उससे अछूता नहीं बचा है। पर मानसिक स्वास्थ्य की रक्षा का सर्वोत्तम उपाय यह है कि

इसकी समस्या को उठने से रोका जाए। हमारे युग में इस बात पर बहुत जोर दिया जा रहा है कि मानसिक स्वास्थ्य की समस्याओं का अल्पावस्था में ही निरोध करना आवश्यक है।

1) **मानसिक स्वास्थ्य एक व्यक्तिगत समस्या है।** इस तथ्य के ऊपर बार-बार जोर दिया गया है कि प्रत्येक व्यक्ति स्वयं निर्धारित करता है कि सफल, संतोषजनक, समायोजन उसे किस प्रकार प्राप्त करना और बनाये रखना है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह इतना सरल काम नहीं जितना दिखाई देता है।

2) **व्यक्तिगत समस्याओं के समाधान में यथार्थवादी बनना चाहिए।** जिद, धन या जोश में शेखी बघारना, दूसरों के सामने बेवकूफ बनना ऐसे उद्देश्यों की सिद्धि का प्रयास करना जो असाध्य हो या ऐसे संघर्षों का शिकार बनना जिनसे बचना आसान हो, निष्प्रयोजन और व्यर्थ है। प्रत्येक स्थिति में ऊँच-नीच, हानि-लाभ पर विचार कर अपनी सामर्थ्य और क्षमता का सही अनुमान लगाकर अपना लक्ष्य एवं प्रयास स्पष्ट और निश्चित बनाकर अपने व्यक्तिगत मामलों को उसी दृष्टिकोण से सुलझाने की चेष्टा करना चाहिए। जिस तरह से गणित का सवाल हल किया जाता है या मशीन की मरम्मत की जाती है। यथार्थवादी ढंग से अपनी स्थिति और समस्या को समझा जाए और उसके समाधान की योजना बनायी जाये।

3) **आत्मपरिचय और आत्मज्ञान परमावश्यक है।** प्रायः असामान्य विकृत व्यक्ति अपने लक्ष्यों और इच्छाओं के बारे में अपने आपको धोखा देता है। असफलता और कुंठा से जो चिंता पैदा होती है उससे बच निकलने के लिए वह रक्षणात्मक मनोरचनाओं (Dipence mechanisns) का आश्रय लेता है। आत्म प्रवंचना आदत बन जाती है, मानसिक स्वास्थ्य के लिए उससे बचना चाहिए।

4) **चिंता से बचने की बजाय उसे स्वीकार करना चाहिए।** चिंता हमारे अनुभव का अनिवार्य अङ्ग है और उससे डर भी पैदा हो जाता है। उसका सामना करना हितकर है। कई लोग रोग का कष्ट दूर करने के लिए सुई लेने से घबराते हैं। उन्हें दर्द से डर लगता है। पर कई लोग सुई लगवाकर अनुभव करते हैं कि इतना अधिक दर्द तो नहीं होता। कुछ दर्द, दुःख या चिंता अनिवार्य हैं, और उसे स्वीकार करना ही स्वास्थ्यकर है।

मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान और धर्म :-

हमारे युग में उन्नत धार्मिक विचारों ने भी एक नयी करवट ली है। आज हमारे धर्म के उद्देश्यों में भी सुधार हुआ है। जीवन की सामाजिकता और रचनात्मकता पर अधिक जोर दिया जा रहा है। रचनात्मक समाज सेवा में जन-कल्याण, दलित जातियों का उद्धार और समाज की कुरीतियों का बहिष्कार करके लोगों के जीवन स्तर का सुधार एक धार्मिक महत्व रखने लगा है। आदिकाल से सब धर्म उपदेश दे रहे हैं कि अपने-आपको जानो। आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान है। मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान भी आत्मज्ञान के महत्व पर जोर देता है। पर एक

विज्ञान होने के नाते उसका दृष्टिकोण यथार्थवादी है। आत्मज्ञान से उसका तात्पर्य है अपनी योग्यता, सामर्थ्य और निर्बलताओं को जानना। यही नहीं, उन्हें जानकर स्वीकार करना। प्रत्येक व्यक्ति आत्मज्ञान की चेष्टा ही न करें, बल्कि आत्मज्ञान के परिणाम को स्वीकार करें। इसका अर्थ यह हुआ कि जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उसका प्रयास अपनी योग्यता पर और सामर्थ्य के आधार पर हो और सामाजिक संबंधों में वह अपना यथार्थ रूप ही प्रस्तुत करें। जिससे भ्रम, मिथ्याप्रभाव आदि की गुंजाइश न रहे। वास्तव में मानसिक स्वास्थ्य के सार को यदि तीन सूत्रों में व्यक्त किया जाये तो हम कहेगें -

क) अपने आपको जानो (Know Thyself) ख) अपने आपको स्वीकार करो (Accpt thyself) ग) अपना यथार्थ रूप ही प्रस्तुत करो (Be thyself)

इन सूत्रों पर आचरण करने में व्यक्ति रक्षणात्मक मनोरचनाओं (Defence mechanisms) का आश्रय लेकर उपने-आपको और दूसरों को धोखा देने से बच जाता है और चूँकि उसका प्रयास और लक्ष्य उसकी सामर्थ्य और योग्यता के अनुकूल होगा, उसकी कुंठा, विफलता और पराजय की तीव्रता कम हो जाएगी।

यूनान में मानसिक रोग का उपचार :-

यूनान के सुनहरी युग में मानसिक रोगों के अध्ययन और उपचार में नई लहर दौडी। यूनानी दार्शनिकों और रोम के चिकित्सकों ने असामान्य व्यवहार और मानसिक व्याधियों का उल्लेख किया है और वे उनके कारणों और उपचार पद्धतियों को जानने के बडे इच्छुक थे। उन्होंने मानसिक असामान्यताओं को अंधविश्वास और जादू-टोने से अलग करने की चेष्टा की, मानसिक व्याधियों को एक विकृत अवस्था सिद्ध करने की कोशिश की और असामान्य व्यक्तियों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार पर जोर दिया। यूनानी दार्शनिक एम्पीडाक्लीज (Empedocles) सन 410-431 ईसा पूर्व ने असामान्यता और मानसिक रोगों का कारण शरीरिक रसों (Humoms) का विकार बताया और उसके बाद हिपोक्रीटीज (Hippocrates) सन् 460-357 ईसा पूर्व ने उसके मत का समर्थन करते हुए मानसिक रोगों को विभिन्न श्रेणियों में बाटा और उनके कारण निर्धारित करने की चेष्टा की और हिपोक्रीटीज के प्रभाव और योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। बौद्धिक व्यापार का केन्द्रिय अङ्ग मस्तिष्क है और मानसिक रोग का कारण मस्तिष्क का विकार है। मस्तिष्क को क्षति पहुँचने से संवेदी और मानसिक विक्षिप्तताऐं पैदा होती है और कई मानसिक रोगों का कारण आनुवांशिकता होता है। इस प्रकार उसने भूत-प्रतों का बहिष्कार का जोर दिया कि मानसिक रोगों की उत्पत्ति प्राकृतिक कारणों से होती हैं। उसने मानसिक रोगों को तीन प्रकार से बताया - उन्माद (Mania), अवसाद (Melancholia) और मस्तिष्कार्ति (Phenitis)। अवसाद का उपचार उसने

पूर्ण विश्राम, शांतिपूर्ण जीवन, निरामिष आहार, साधारण व्यायाम और हर प्रकार की अति से परहेज बताया। उस युग के लिए ये एक क्रांतिकारी विचार थे और निसंदेह हिपोक्रीटीज अपने युग से बहुत आगे थे। उसने असामान्य मनोविज्ञान के विषय को पुरोहितों और नीम हकीमों के प्रभाव से हटाने की कोशिश कर वैज्ञानिक असामान्य मनोविज्ञान की नींव रखी। इससे असामान्य और विकृत व्यक्तियों के उपचारों में और उनके प्रति सामाजिक व्यवहार में अधिक सहानुभूति पूर्ण व्यवहार होने लगा। (असामान्य मनोविज्ञान-हंसराज भाटिया पृ.333)

अन्तःस्रावी तंत्र की कार्यिकी

एक मंदगति सेवा की भाँति अंतःस्रावी तंत्र कुछ रासायनिक पदार्थों-रासायनिक संदेश वाहकों (chemical messengers) को रक्त में मुक्त करके, बुद्धि, जनन, उपापचय, स्रावण, उत्सर्जन, पाचन आदि अनेक ऐसी क्रियाओं का नियंत्रण करता है, जिनका नियमन (Regulation) धीरे-धीरे और निरतंर लम्बे समय तक आवश्यक होता है। इसकी कार्यप्रणाली के अध्ययन को अंतःस्रावी विज्ञान (Endocrinalogy) कहते हैं। तंत्रिका तंत्र (Nervous system) से इसका घनिष्ठ संबन्ध होता है। मस्तिष्क का अधश्चेतक (हाइपोथैलेमस) अंतःस्रावी तंत्र का काफी समन्वय करता है। इसीलिए अब एक नई शाखा, न्यूरोऐण्डोक्राइनोलॉजी (Neuroendocrinology) का तेजी से विकास हो रहा है।

अन्तःस्रावी तन्त्र के कार्य-प्रणाली की प्रमुख बातें :- 1) कुछ विशिष्ट ग्रथियों एवं कोशिकाओं द्वारा कुछ विशिष्ट रासायनिक पदार्थों का संश्लेषण करके इन्हें रक्त में विमुक्त करना। 2) रक्त के माध्यम से इन पदार्थों का पूरे शरीर में अभिगमन। 3) शरीर कोशिकाओं की क्रियाओं पर इन पदार्थों का प्रभाव।

अन्तःस्रावी बनाम बहिःस्रावी ग्रन्थियाँ :-

शरीर की सभी ग्रंथियाँ एपीथीलियमी ऊतकों के वलय (Faldings) से बनती है। कशेरुकियों (Vertebrates) में निम्नलिखित ग्रंथियाँ होती है।

1) बहिःस्रावी ग्रन्थियाँ (Exocrine glands) :- ये सम्बन्धीत एपीथीलियमी स्तरों से संकरी नलिकाओं (Ducts) द्वारा जुडी रहती है। अतः इनके द्वारा स्रावित पदार्थ इनकी वाहिकाओं में बहकर सम्बन्धित अङ्ग विशेष में ही जाते हैं। इसलिए इन्हें वाहिनीयुक्त ग्रंथियाँ (Duct glands) भी कहते हैं। शरीर में यकृत (Liver), स्तनियों की स्वेद ग्रंथियों (Sweat glands), तैल या सिबेशियस ग्रंथियाँ, लार ग्रंथियाँ आदि इनके उदाहरण है।

2) अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ (Endocrine glands) :- सम्बन्धित एपीथीलिया से

सम्बन्ध समाप्त हो जाने के कारण ऐसी ग्रंथियाँ नलिकाविहीन (ductless) हो जाती है। इनमें फिर रुधिरवाहिनियों की संख्या बहुत बढ जाती हैं, क्योंकि इनमें स्रावित पदार्थ सीधे रक्त में मुक्त होकर सारे शरीर में पहुँचते हैं। इन ग्रंथियों से स्रावित स्राव को हार्मोन (Harmone) कहते हैं। थायराइड, पैराथाइराइड, ऐड्रीनल, पिट्युटरी, थाइमस और पीनियल ग्रंथियाँ इनके उदाहरण हैं।

3) मिश्रित ग्रन्थियाँ (Mixed glands) :- इस प्रकार की ग्रंथियाँ वाहिका युक्त होती हैं, लेकिन इनमें बहिःस्रावी तथा अन्तःस्रावी दोनों ही प्रकार के भाग या कोशिकाएं होती हैं, बहिःस्रावी भाग प्रमुख होता है। अग्राशय (Pancreas) एक ऐसी ही ग्रंथि होती है।

4) अन्य संरचनाएं :- उपर्युक्त ग्रंथियों के अतिरिक्त शरीर की कई अन्य संरचनाओं से भी हार्मोनों का स्रावण होता है। जैसे - त्वचा (Skin), आमाशय-आंत्रीय श्लेष्मिका (gastro-sntestinsl mucos), वृक्क (Kidneys), जनद (gonads), तथा अपरा (placenra)।

क्रिया विधि :- हॉर्मोन ऐसा रासायनिक संदेशवाहक होता है जो शरीर के एक भाग से सीधे रक्त में स्रावित होकर सारे शरीर में संचरित होता है और इसकी सूक्ष्म मात्रा ही किन्हीं विशिष्ट कोशिकाओं या विशिष्ट अङ्गो की कोशिकाओं की कार्यिकी को वातावरणीय दशाओं की आवश्यकतानुसार प्रभावित करती हैं।

स्रोत एवं रासायनिक प्रकृति (Source and chemical nature) :-

हॉर्मोन भोजन में नहीं होते। ये शरीर में ही अन्तःस्रावी ग्रंथियों या कुछ अन्य अङ्गों की अंतःस्रावी कोशिकाओं द्वारा स्रावित होते हैं। आधुनिक वैज्ञानिक अधिकांश हॉर्मोन के रासायनिक संयोजन का पता लगा चुके हैं और कुछ का कृत्रिम संश्लेषण भी कर चुके हैं।

रासायनिक स्तर पर हॉर्मोन मुख्यतः स्टीराएडस या प्रोटीन्स या प्रोटीन्स से व्युत्पन्न पदार्थ होते हैं। स्टीराँएड (steroid) हॉर्मोन का आधार कोलेस्ट्रॉल (cholesteral) होता है। कुछ हॉर्मोन टाइरोसीन (Tyrosin) नामक अमीनो अम्ल से व्युत्पन्न पदार्थ (Derivatives) होते हैं।

भौतिक एवं रासायनिक विशेषताएँ (Physical and Chemical Propesties) :-

1) अधिकांश हॉर्मोन का आणविक भार कम होता है। 2) ये जल में घुलनशील और ऊतकों (Tissues) में सरलतापूर्वक विसरणशील (Diffusible) होते हैं। 3) इनका स्रावण बहुत ही सूक्ष्म मात्रा में होता है, क्योंकि ये बहुत ही सक्रिय पदार्थ होते हैं। 4) हॉर्मोनों में शरीर में संचय नहीं होता। यकृत और वृक्क (Kidneys) इन्हें रक्त से जल्दी-जल्दी हटाकर इनका विघटन करते रहते हैं और विघटन करने के फलस्परूप बने उत्पादों का मूत्र के साथ उत्सर्जन होता रहता है। अतः दीर्घ समय तक प्रभाव के लिए

किसी हॉर्मोन का निरन्तर स्रावण आवश्यक होता है।

रुधिर में अभिगमन (Tronsport on blood) :- रुधिर द्वारा प्रत्येक हॉर्मोन का पूरे शरीर में अभिगमन होता है। अभिगमन के समय हॉर्मोन अणु, प्लाज्मा-प्रोटीन से बंध होने के कारण निष्क्रिय (inactive) होते हैं। रुधिर से ये ऊतक द्रव्य में आते-जाते रहते हैं। कोशिकाएं ऊतक द्रव्य से ही इन्हें ग्रहण करती है।

शरीर की कोशिकाओं पर प्रभाव (Effect on cells) :- कुछ हॉर्मोनों का शरीर की समस्त लेकिन अधिकांश का शरीर की कुछ सुनिश्चित (specific) कोशिकाओं पर ही अपना अलग, सुनिश्चित प्रभाव होता है। इन कोशिकाओं को संबन्धित हॉर्मोन की लक्ष्य कोशिकाएं (Target cells) कहते हैं। हॉर्मोन प्रायः लक्ष्य कोशिकाओं की उपापचयी अभिक्रियाओं में सीधे भाग न लेकर इनके संपूर्ण क्रियाशीलता स्तर (activity level) को प्रभावित और नियंत्रित करते हैं। इनके प्रभाव से उपापचयी अभिक्रियाओं की दर ही नहीं, बल्कि कोशिकाकला की पारगम्यता तथा कोशिकाओं का स्वरूप तक बदल जाता है।

हार्मोनों की क्रियाविधि (Mechanism of harmonal action)

1) जीन स्तर पर प्रोटीन-संश्लेषण को प्रभावित करना :- स्टीरॉएड हॉर्मोन लक्ष्य कोशिकाओं के केन्द्रक में पहुँचकर सुप्त जीनों को सक्रिय करने या सक्रिय जीनों को निष्क्रिय करने का प्रभाव रखते हैं। इससे संदेशवाहक (Ran) का संश्लेषण प्रभावित हो जाता है। फिर इसी के अनुरूप प्रोटीनों तथा एन्जाइमों का संश्लेषण बदलकर कोशिका के सारे उपापचय को तथा वृद्धि और संरचना को भी प्रभावित कर सकता है।

2) कोशिका कला के स्तर पर प्रभाव :- अधिकांश प्रोटीन हॉर्मोनों की लक्ष्य कोशिकाओं की कला पर बंधते ही कला के एन्जाइम तन्त्र को भी प्रभावित करते हैं। इससे या तो स्वयं कला की चयनात्मक पारगम्यता (selective permeablity) बदल जाती है या कला में उपस्थित ऐडीनिल साइक्लेज (adenyl cyclase) नामक एन्जाइम प्रेरित होकर कोशिकाद्रव्य के ATP अणुओं का चक्रिक (cyclic) Amp में विघटन कर देता है। चक्रिक Amp की मात्रा में परिवर्तन कोशिका के उपापचय को कई प्रकार से प्रभावित कर सकता है। इसे इसलिए हॉर्मोन का 'द्वितीय या अन्तः कोशिय दूत' (second or intercellular messenger) कहा गया है। कोशिकाद्रव्य में कैल्शियम की मात्रा हॉर्मोनी क्रियाशीलता को प्रभावित करती है ।

हॉर्मोनों का महत्व :- हॉर्मोन शरीर की रासायनिक क्रियाओं का नियंत्रण करके इसकी कार्यात्मक गति (functional Tempo) बनाएं रखते हैं। ये वृद्धि तथा विकास, सुरक्षा और आचरण, लैंगिक लक्षणों, जनन आदिका नियंत्रण करने के अतिरिक्त, बाहरी वातावरण की बदलती हुई दशाओं में, शरीर के अन्तः वातावरण (Internal environment as Milieu interieur of claude Benaed 1855) को अखण्ड बनाए रखने का महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। रुधिर तथा ऊतक द्रव्य (Tissue fluid) मिलाकर शरीर का अन्तःवातावरण अर्थात् बाह्यकोशीय द्रव्य (extrancellulas fluid - ECF) बनाते हैं। इसकी अखण्डता को बनाएं रखने अर्थात् इसके रासायनिक संयोजन को सामान्य बनाए रखने की क्रिया को वाल्टर केनन 1929 ने होमिओस्टैसिस (Homeostasis) का नाम दिया। शरीर कोशिकाएं अपना-अपना सामान्य कार्य तभी कर सकती है जब अन्तः वातावरण अखण्ड बना रहे और शरीर का एक जीव के रूप में अस्तित्व तभी बना रह सकता है जब विभिन्न भागों की कोशिकाओं की क्रियाओं में तालमेल और सामंजस्य बना रहे। अतः स्पष्ट है कि जिस प्रकार जीवाणुओं आदि के संक्रमण से संक्रामक (Infectious) तथा विटामिनों की कमी से अपूर्णता (deficiensy) रोग होते हैं। हॉर्मोन की गडबडियों से कार्यात्मक रोग (Functional diseases) हो जाते हैं। थॉमस एडिसन (1855) ने पता लगाया कि एड्रीनल ग्रंथि के वल्कलीय (certical) भाग को नष्ट कर देने पर एक रोग हो जाता है जिसे अब 'एडीसन का रोग' (Addison's disease) कहते हैं। इसी खोज के कारण थॉमस एडिसन को अन्तःस्रावी विज्ञान का पिता (Father of endocrinology) कहा गया। हॉर्मोन शब्द प्रयोग सर्वप्रथम स्टारलिंग (1905) ने किया।

ऊतक द्रव्य में मुक्त होने वाले हार्मोन :- कुछ हॉर्मोन रक्त में जाने के बजाय ऊतक द्रव्य (Tissues fluid - ECF) में ही रहते हैं। इनमें प्रमुख हॉर्मोन्स निम्नलिखित है।

1) न्यूरोहॉर्मोन्स या न्यूरोह्यूमर्स :- ये तन्त्रिका कोशिकाओं (Neurous) के अक्ष तन्तुओं (Axons) की छोर घुडियों से स्रावित होकर तन्त्रिकीय प्रेरणाओं को न्यूरान्स या अपवाही अङ्गे (पेशियों, ग्रंथियों) आदि में पहुँचाते हैं। इनमें एसेटिलकोलीन (Acetyl-choline) स्वायत तंत्रिका तंत्र के सारे पूर्व-गुच्छकीय (Preganglionic) तथा सारे परानुकम्पी (Parasympathetic) और कुछ अनुकम्पी (symparthetic) उत्तर-गुच्छकीय (Pasrganglionic) तन्तुओं के छोरों और तंत्रिका-पेशी संधि स्थानों के युग्मानुबंधनों (synapses) पर स्रावित होता है। दूसरा न्यूरोहॉर्मोन नोरएपीनेफ्रीन अनुकम्पी तंत्र के अधिकांश उत्तरगुच्छकीय तंतुओं के छोरों पर स्रावित होता है।

2) प्रोस्टाग्लैडिन्स् (Prostaglandins) :- ये वृक्कों, जनदों (Gonads), शुक्राशयों, थाइमस, मस्तिष्क आदि अङ्गो से ऊतक द्रव्य में स्रावित होते हैं। ये जंतु शरीर में अभी तक ज्ञात सभी पदार्थों से अधिक सक्रिय होते हैं। इनकी सूक्ष्म मात्रा से ही आरेखित पेशियों में संकुचन हो जाता है। पुरुष क शुक्राशयों से स्रावित प्रोस्टाग्लैडिन्स वीर्य (sperms) के साथ स्त्री की योनि में पहँचकर गर्भाशय की पेशियों को क्रियाशील बनाते हैं, गर्भनिरोध, प्रसव पीडा प्रारम्भ करने, गर्भपात (abortion), दमा (asthma) आदि में इन पदार्थों

का उपयोग किया जाता है।

3) फीरोमोन्स या एक्टोहॉर्मोन्स :- ये कुछ बाह्यस्रावी ग्रंथियों द्वारा बाहरी वातावरण में स्रावित होते रहते हैं और एक ही जीव-जाति के सदस्यों के बीच परस्परिक आचरण को प्रभावित करते रहते हैं। इस प्रकार ये स्पर्श, दृष्टि एवं ध्वनि के बजाय स्वाद तथा गंध द्वारा सदस्यों में परस्पर सूचना संचारण का काम करते हैं। उदाहरणार्थ - कुछ कीट अपने संगम साथी को आकर्षित करने हेतु बोम्बीकोल (Bomiycol) या जीप्लूर (Gyplure) का, कुछ अपने साथियों को भोजन स्रोत, खतरे आदि की सूचना हेतु जिरैनियाँल (Geraniol) का स्रावण करते हैं।

4) स्थानीय (Local) हॉर्मोन काइनिन्स (Kinins) :- शरीर में किसी भी ऊतक के ऊतक द्रव्य में मामूली-सा ही रासायनिक परिवर्तन हो जाने पर वहाँ तुरन्त काइनिन नामक पदार्थ बन जाते हैं। ये खोखले अंगों व रुधिर-वाहिनियों को फैलाकर रक्तदाब घटा देते हैं। साथ ही इनके प्रभाव से कुछ पीडा का अनुभव होता है। सम्भवतः ये 'प्रथम उपचार' (First aid) का काम करते हैं। जहरीले कीटो के विष, जलने, भीतरी चोट तथा जीवाणुओं के संक्रमण से होने वाली पीडा सम्भवतः काइनिन्स के कारण ही होती है।

मनुष्य-शरीर की कुछ विशेषतायें

1) हमारी आखों की मांसपेशियाँ एक दिन में लगभग एक लाख बार गति करती हैं। 2) हमारी लार ग्रंथियों से 1-1.5 लीटर लार प्रतिदिन निकलती हैं। 3) हमारे मस्तिष्क से शरीर के अन्य भागों को संदेश पहुँचाया जाता है। 4) पुरुष शरीर की त्वचा का क्षेत्रफल 1.8 वर्ग मीटर तथा महिलाओं का 1.6 वर्ग मीटर होता है। 5) मनुष्य के शरीर की सबसे बडी ग्रंथि यकृत है। जिसकी औसत मनुष्य में नाप 21.5 × 19 से.मी. होती है। 6) हमारे गुर्दे प्रति मिनट 120 मि.मि. रक्त छानते हैं। इस प्रकार एकदिन में पूरे शरीर का रक्त तीस बार छाना जाता है। 7) हमारा मस्तिष्क विभिन्न प्रकार के 10,000 ग्रंथों का भंडारण, पहचान और स्मरण रख सकता है। 8) शरीर में धमनियों द्वारा रक्त जाने तथा शिरों के द्वारा हृदय मे वापिस आने में एक मिनट लगता है। 9) हमारे शरीर में 24 तत्व होते हैं, जिसमें हायड्रोजन 63% तथा ऑक्सिजन 25.5% होती है। 10) पुरुष या स्त्री के शरीर पर बालों की संख्या औसतन 5 मिलियन होती है। 11) मानव मस्तिष्क का भार संपूर्ण शरीर का 3% होता है। यह हमारी सांस का 20% ऑक्सिजन का उपयोग करता है। हमारे भोजन की कैलोरी ऊर्जा का 20% तथा संपूर्ण शारीरिक रक्त संचारण का 15% का उपयोग करता है। 12) गर्भावस्था के दौरान एक स्त्री के रक्त का आयतन 50% तक बढ सकता है। 13) एक प्रौढ मानव शरीर में लगभग 650

मांसपेशियाँ, और 100 से ऊपर जोड, 1 लाख कि.मि. लम्बी रक्त नलिकाएँ और 13000 मिलियन तक तंत्रिका कोशिकाए होती है। 14) प्रौढ पुरुष की हृदय गति 70-72 प्रतिमिनिट तथा प्रौढ महिला की हृदय गति 78-82 प्रतिमिनिट होती है। तीव्र कसरत के समय यह बढकर 200 तक हो सकती है। 15) फेफडों में कुछ तीन लाख मिलियन रक्त कोशिकाएँ होती है जो फैलाने पर 24000 कि.मी. तक लंम्बी हो सकती है। 16) एक औसत मानव के जीवन में उसका हृदय 2000 मिलीयन से अधिक बार धडकता है तथा इस दौरान वह 500 मिलियन लिटर रक्त पंप करता है। 17) पश्चिम में एक व्यक्ति अपने जीवन काल में औसतन 50 टन भोजन खाता था और अपने जीवन काल में 50,000 लिटर (11,000 गैलन) द्रव्य पदार्थ पीता था। 18) मानव शरीर का सबसे बडा अङ्ग त्वचा है। अपने जीवन काल में हर व्यक्ति लगभग 18 कि.ग्रा. त्वचा धारण करता है। 19) मानव की सबसे लम्बी हड्डी फीमर है। 20) मानव की सबसे छोटी हड्डी स्टिरप है। 21) मानव का सबसे महत्वपूर्ण अङ्ग मस्तिष्क है। 22) शरीर में खून का रिजर्व भंडार तिल्ली में रहता है। 23) बच्चा दो मास से ही मुस्काना और आँखें घुमाना प्रारम्भ कर देता है। 24) बच्चों को तीन माह से माँ का ज्ञान होता है। 25) बच्चा नौ माह से दो अक्षरों के शब्दों का उच्चारण करता है। 26) मानव के गर्भ में सबसे पहल क्लेविकल (हँसुली) नामक अस्थि विकसित होती है। इस अस्थि का विकास गर्भकाल के सोलहवें से अठारवें सप्ताह में शुरु होता है। 27) अस्थि के द्वारा किसी व्यक्ति अथवा गर्भ में पल रहे बच्चे की उम्र निश्चित कर सकते हैं। कमर, कुहनी अथवा घुटनों के एक्स-रे द्वारा किसी की उम्र बता सकते हैं। जाँघ के ऊपर पेडू अस्थि, जबडे की अस्थि आदि के द्वारा किसी व्यक्ति का लिंग निर्धारण कर सकते हैं। एक ताजी अस्थि के टूकडे के द्वारा ब्लड ग्रुप बताया जा सकता है। 28) सौराष्ट्र विश्वविद्यालय के डॉ. पांडेय के अनुसार, वायुमंडल में कार्बनडाई आक्साइड के बढने से पृथ्वी गरम हो रही है एवं मानव को इस परिस्थिति में जीवित रहने के लिए शहरों को छोड पानी में रहना पडेगा। 29) अमेरिका के एच.एल. सेपिरो के अनुसार मस्तिष्क का आकार और भी बडा हो जाएगा तथा सिर पर बाल नहीं होगें। संभवतः भविष्य में पैर का अँगूठा भी नहीं होगा। 30) रूस के वैज्ञानिक ए.पी. बिस्टोल के अनुसार, मानव का विकास बहुत दिन पहले ही रुक गया। 31) मनुष्य के दिमाग में कोई एक खरब न्यूरान कोशिकाएँ और दस खरब ग्लिअल कोशिकाएँ होती हैं। 32) आमाशय में 3.5 करोड पाचक ग्रंथियाँ होती है। 33) चौबीस घंटो में आमाशय डेढ से दो लीटर पाचक रस बनाता है, जिसका अधिकांश नमक का तेजाब होता है। 34) शरीर के अनुपात में कुत्ते का आमाशय मनुष्य के अमाशय से बडा हेाता है। 35) स्नायुओं के सूत्र 140 फीट प्रतिसेकंड की गति से आज्ञा लाते हैं। 36) फेफडों में आकर

शुद्ध होने के सिलसिले में पूरे शरीर का ¼ भाग रक्त प्रायः हर समय रहता है। 37) त्वचा से पसीना हमेशा निकलता रहता है। हमारे शरीर से लगभग 20 औंस पसीना निकल जाता है। 38) छींक का वेग 100 मील प्रतिघंटा तक होता है। उसके इस जोर के कारण ही शरीर को गहरा धक्का लगता है। 39) शरीर को स्वस्थ और जीवित रखने के लिए हर घंटे करीब 18 सेर ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है।

परिसंचरण तंत्र :- परिसंचरण तंत्र द्वारा रक्त शरीर के हर हिस्से में पहुँचता है। यह तंत्र दो प्रकार है - एक तो शरीर का हृदय और हृदय का शरीर से तथा दूसरा फेफडों से हृदय तथा हृदय से फेफडों तक का तंत्र। हृदय इस तंत्र के पंपिंग स्टेशन के रूप में कार्य करता है। हृदय एक पेशीय अङ्ग है जिसका आकार एक बंद मुट्ठी के बराबर होता है। इसका भार पुरुषों में 340 ग्रा. तथा महिलाओं में 225 ग्रा. होता है। हृदय सामान्यतः छाती में बाई ओर रहता है। अरे ! महिलाएँ दिल की छोटी ! सच भी है।

चिकित्सा विज्ञान आज तक नहीं ढूँढ पाया कि हृदय क्यों धडकता है। फिर भी इतना पता है कि इस अङ्ग में सूचनाएँ किस प्रकार संचरित रहती है। ये संवेदनाएँ 'साइनु आरिकुलर नोड' के उत्तको में उत्पन्न होती है, जिससे उसके पेशी तंतु सिकुडते हैं। इस उत्तेजना की लहर द्वितीय गाँठ 'आरिकुली वेंट्रिकुलर नोड' पर दोनों वेंट्रिकिलों के बीच में पहुँचाती है तथा उसके बाद ये तंत्रीय तंत्र में फैल जाती है, जो वेंट्रिकिल के पेशी तंतु को क्रियाशील बना देती है, जिससे वे सिकुडकर धमनियों में रक्त प्रवाहित कर देती हैं। इस प्रकार की सिकुडने से रक्त झटके से धमनियों में प्रवेश करता हे, जिसके बार-बार होने से नाडी गति बनती है। मानसिक और शारीरिक रूप से आराम की स्थिति में रहने वाले प्रौढ पुरुष में नाडी की गति 65-70 प्रतिमिनट तथा महिलाओं में 70-75 प्रतिमिनट होती है। बच्चों में यह और अधिक होती है। तथा सुप्तावस्था में इनकी गति कम हो जाती है।

कभी-कभी हृदय में कुछ गडबडी आ जाती है, जिसे 'बाईपास सर्जरी' या अन्य तरीके से ठीक कर दिया जाता है, परंतु कभी-कभी यह अङ्ग पूर्णतः बेकाम हो जाता है। ऐसी अवस्था में इनके स्थान पर नया हृदय लगाने की आवश्यकता पड जाती है। विदेशों में यह काम पहले से ही हो रहा है। हमारे देश में भी इस तरह का प्रथम प्रयास डॉ. वेणुगोपाल द्वारा किया जा चुका है, किंतु यह खर्चिला है।

रक्त :- रक्त जीवनभर हमारे शरीर के हर अङ्ग के सम्पर्क में रहता है। यह वह राज मार्ग है जिससे इमदाद की पूर्ति शरीर रूपी राज्यों के हर हिस्से में होती रहती है। यह फेफडों से कोशिकाओं को ऑक्सीजन पहुँचाता है। पाचन अङ्गों से भोजन ले जाता है तथा कोशिकाओं से व्यर्थ पदार्थ वापस लाता है। यह शरीर के ताप को नियंत्रित करता है। अनेक हॉर्मोन इसी रक्त की धारा में गति करते हैं। इसकी 'श्वेत कणों की सेना' संदूषण की

संभावना जैसी जगहों पर रोगाणुओं से लडती है। रक्त लाल रङ्ग का चिपकने योग्य तथा नमकीन स्वाद वाला द्रव है। एक प्रौढ व्यक्ति में लगभग पांच लीटर तक रक्त रहता है। इसमें प्लाज्मा नामक एक द्रव पदार्थ होता है, जिसमें अनेक तत्त्व घूले रहते हैं। जैसे - लाल रक्त कणिकाएँ (इरीथ्रोसाइट), श्वेत रक्त कणिकाएँ (ल्यूकोसाइट) और प्लेटलेट्स (थ्रोबोंसाइट)। प्लाज्मा का लगभग 90% भाग पानी होता है। जिसमें थाइब्रिनोजिन, एल्बुमिन, ग्लोल्युलिन, शर्करा, वसा, अकार्बनिक लवण, यूरिया, यूरिक अम्ल, क्रियेटिन तथा प्रोटीन के विघटित पदार्थ भी होते हैं।

पुरुषों के एक घन मि.ली. रक्त में 50 लाख तथा औरतों में 45 लाख लाल रक्त कणिकाएँ होती है। प्रत्येक कणिका का व्यास 7/10,000 सें.मी. होता है। इस रक्त कणिका का प्रमुख भाग हिमोग्लोबिन होता है। जिसके कारण रक्त का रंग लाल रहता है। इसमें लोह युक्त पदार्थ हीम (HEME) और एक प्रोटीन ग्लोबिन होता है, जिनमें 1 : 24 का अनुपात होता है। एक पुरुष के प्रति 100 घन से.मी. रक्त में 14-15.6 ग्रा. हीमोग्लोबिन और औरतों में 11-14 ग्रा. तक हीमोग्लोबिन होता है। यह हीमोग्लोबिन ही आक्सीजन को साथ लेकर शरीर के हर अङ्ग में पहुँचाता है। ये लालरक्त कणिकाएँ 110 दिन से 120 दिन तक जीवित रहती है।

'श्वेतरक्त कणिकाएँ ' शरीर की 'सैन्य शक्ति' कही जाती है, इनकी संख्या लालरक्त कणिकाओं से कम होती है। सामान्यतः श्वेत और लाल रक्त कणिकाओं का अनुपात 1 : 400 या 500 होता है। इनमें हीमोग्लोबिन नहीं होता तथा हर कणिका में एक केंद्रक होता है। इन सभी रक्त कणिकाओं की आयु दो हप्ते से कम होती है। इन श्वेत कणिकाओं में मुख्यतः न्यूट्रोफिल लिम्फोसाइट, बेसोफिल, इयोसिनोफिल और मोनोसाइट भी होते हैं। न्यूट्रोफिल, बेसोफिल और इयोसिनोफिल अस्थि मज्जा में बनते हैं, जब कि लिफोसाइट लिम्कोटिक ऊतक में बनते हैं।

प्लेटलेट कणिकाओं का निर्माण अस्थिमज्जा की बडी कोशिकोओं मेघाकैरिओ साइटो में होता है। इनकी संख्या रक्त में दोलाख से पांच लाख प्रति मि.ली. होती है, इन्हीं में से विघटित होने पर एक प्रकार का पदार्थ थ्रोंबोकाइनेज या थ्रोंबोप्लास्टिन उत्पन्न होता है जो रक्त के थक्का बनने में सहायक होता है।

मानव की कार्य करने शक्ति का आधार स्तंभ पेशियाँ हैं ।

हमारे शरीर में विभिन्न प्रकार की 600 माँसपेशियाँ हैं। ये हमारे जीवन के लिए आवश्यक है, क्योंकि अपने सिकुडन तथा फैलाव द्वारा ये शरीर को गतिशील बनाती हैं। कुछ पेशियाँ अङ्गों को गतिशील बनाती हैं, तो कुछ पलकों को उठाती हैं, कुछ भोजन

पचाने में सहायक होती हैं।

हृदय भी मांसपेशियों का ही पुंज है, जो जन्म से मृत्यु तक लगातार कार्य करता रहता है। पेशियों का आकार बहुत बडे से लेकर अत्यंत छोटे तक होता है, जैसे कान की पेशी केवल एक मि.मी. लंबी होती है। ये पेशियाँ आपस में संयोजी ऊत्तक द्वारा जुडी होती है जो वास्तव में तंतुवत् रचनायें होती है। ये तंतु एक मि.मी. से 30 सें.मी. लंबे हो सकते हैं। कुछ पेशियाँ पट्टीदार होती हैं जिन्हें स्केल्टल पेशिया कहते हैं। ये मस्तिष्क द्वारा नियंत्रित होती है - जैसे पैर और हाथ की पेशियाँ। कुछ पेशियाँ चिकनी होती हैं तथा इनमें किसी प्रकार की तिरछी पट्टी नहीं होती। इन पेशियों पर हमारा या मस्तिष्क का कोई नियंत्रण नहीं होता। ये आमाशय आतों, बालों की जड, पलकों के पीछे पाई जाती है। हृदय की पेशियाँ भी चिकनी पेशियों की तरह होती हैं, परंतु इनमें स्केल्टल पेशियों की तरह कुछ पट्टीयाँ भी होती हैं। पेशियाँ कैसे सिकुड जाती हैं और उस समय उनमें क्या बदलाव आता है ? इसका पता इलेक्ट्रोन सूक्ष्मदर्शी से भी नहीं चलता। जैव-रसायनिक अध्ययन यह बताते है कि पेशियों में दो प्रकार के प्रोटीन होते हैं - ऐक्टिन और मायोसिन। मायोसिन प्रोटीन से बनी पेशियाँ छड के आकार जैसी होती हैं। ये तंतुओं में एक साथ अगल-बगल स्थित रहती हैं। पेशिके सिकुडते समय यह छड जैसी रचनायें एक-दूसरे पर चढ जाती हैं और इस तरह से पुरा तंतु सिकुड जाता है। इस सिकूडने का पूर्ण प्रभाव उल्लेखनिय है, क्योंकि पेशियाँ चिकनी होते हुए भी काफी शक्ति प्रदर्शित करती हैं। यदि एक ही समय में एक वर्ग सें.मी. सभी पेशियाँ सिकुडे तो वे लगभग 10 कि.ग्रा. का वजन उठा सकती है। चबाने में काम आने वाली पेशियाँ एक औसत भार के व्यक्ति को उठा सकती है।

पेशियों को ऊर्जा कहाँ से मिलती है ? पेशियों के कार्य के लिए ऊर्जा की अत्यंत आवश्यकता होती है। यह ऊर्जा स्टार्च, शर्करा, वसा आदि स्रोतों से प्राप्त होती है। जब हम किसी पेशी को सिकुडना चाहते हैं तो उसी समय उसके लिए ऊर्जा मिलनी चाहिए। इसकी पूर्ति होती है- फास्पोरस यौगिकों ATP के अपघटन से, क्योंकि शर्करा से परिवर्तित ग्लाइकोजन के टूटने में देर होती है। इसके आलावा एक दूसरा यौगिक फास्फोक्रियेटिन भी ऊर्जा प्रदान करने में सहायक होता है, जो पुनः ATP बनाता है, जिससे पेशियाँ पुनः अगली सिकुडन के लिए तैयार रहे। ग्लाइकोजन टूट कर लैक्टिक ॲसिड बनाता है जो फास्फोक्रियेटिन के बनने के लिए ऊर्जा प्रदान करता है। यदि बहुत मात्रा में लैक्टिक एसिड पेशियों में जमा हो जाता है तो पेशियाँ सिकुडना बंद कर देती है और थक जाती है।

मांस पेशियाँ स्वयं न तो सिकुडती है, न ही फैलती है। इसमें तंत्रिका तंत्र, मस्तिष्क, मेरू रज्जू भी भाग लेते हैं। इसमें तंत्रिका न्यूरान एक टेलिफोन लाइन की तरह कार्य करती है, जो मस्तिष्क के संदेश को पेशियों के पास पहुँचाती है। उसके बाद मांसपेशियाँ सामुहिक रूप से कार्य करती है।

पेशियाँ टेन्डेन (कंडरिका प्रतिक्षेपो) के साथ जुडकर काफि ताकतवर हो जाती है। ये संयोजि ऊतकों के समूह होते हैं, जो पेशियों को हड्डियों से जोडते हैं। एक छः मि.मी. व्यास का टेन्डेन 3-6 लोगों का भार उठा सकता है।

थकान क्यों लगती है ? पेशियों के कार्यशील रहते समय लैक्टिक एसिड उत्पन्न होता है। जब इसकी अधिक मात्रा संचित हो जाती है तो थकान लगती है। विश्राम करने पर थकान दूर हो जाती है, क्योंकि लैक्टिक एसिड का अपघटन हो जाता है। गरम पानी से सेकने से भी थकान दूर हो जाती है।

विश्वासं फलदायकम् (भावात्मक चिकित्सा)

परसिया के 'स्कूल ऑफ मेडिसन' की दीवार पर लिखा है - 'मैं घाव की मरहमपट्टी करता हूँ, उसे भरता तो ईश्वर ही है।

आज के मानव-जीवन में औषधियों का महत्वपूर्ण स्थान बन गया है। ऐसी औषधियाँ हैं, जो रोग की चिकित्सा करती हैं और ऐसी भी औषधियाँ हैं, जो रोग को आमंत्रित करती हैं। रोग आमंत्रित करने वाली औषधियों की इन दिनों भरमार है। ये औषधियाँ हैं मादक द्रव्य। इससे पूर्व मादक द्रव्य भी औषधि के रूप में प्रयुक्त होते थे, तब उन्हें नारकोटिक ड्रग्स कहा जाता था। किंतु आज मादक द्रव्यों का एक अन्य प्रकार है जिनका प्रयोग केवल मादकता के लिए किया जाता है। उनके प्रयोग से मादकता कितनी आती है यह तो प्रयोग करने वाले जानते होगें, किंतु संसार जो इस विषय में जानता है वह यह है कि इन मादक द्रव्यों का सेवन करने वाला घर-घाट से चला जाता है।

आज जब इन मादक द्रव्यों का अबाध प्रयोग होने लगा है तो उसके निवारण की ओर भी समाज का ध्यान गया है। उस निवारण प्रक्रिया में सबसे महत्वपूर्ण योगदान सेवन करने वाले का अपना विश्वास है। विश्वास स्वयं में और ईश्वर की कृपा में। वास्तविक घाव तो उसकी कृपा से ही भरता है। जितनी संख्या मादक द्रव्यों के सेवन करने वालों की बढ रही है, उतनी ही संख्या उससे छुटकारा पाने वालों की भी हो रही है।

मनुष्य स्वस्थ तभी रह सकता है जब वह स्वस्थ रहने के विषय में सोचे, विचार करे और तदनुरूप कार्य करे। जो लोग रोग से घबराने लगते हैं उनका रोग सहजता से ठीक नहीं होता। रोग का विचार छोड कर स्वस्थता का विचार कीजिए तो इससे लाभ होगा। जिस प्रकार सफलता की प्राप्ति के लिए सफलता का विचार, उसकी भावना, आशा,

आत्मविश्वास आदि आवश्यक है उसी प्रकार रोग से छुटकारा प्राप्त करने के लिए भी आरोग्य की भावना, आशा, विश्वास अनिवार्य है। तब तक मनुष्य के मस्तिष्क में शारीरिक अपंगता, दुर्बलता, रोग आदिकी बात घूमती रहेगी, जब तक मनुष्य के मस्तिष्क में रुग्णता की भावना चक्कर काटती रहेगी, तो शरीर भी उसके अनुसार ही कार्य करेगा क्योंकि मनुष्य का शरीर उसके विचारों के आधार पर गति करता है।

मनुष्य का मस्तिष्क जब पूर्णतया रोग की भावना को अपने में से निकाल देता है, उसका प्रतिवाद करने को उद्यत रहता है तो उसको सहसा रोग का आक्रमण नहीं होता। मनुष्य का निरोग रहना उसकी स्वाभाविक स्थिति है और रोग उसकी कृत्रिम स्थिति है, जो कि बाहर से उस पर थोपी गयी है।

सामान्यतया यह देखने में आता है कि जो चिकित्सक रोगी को देखता है, उसको केवल दवा दे देता है, उसकी ओर कम रोगी जाया करते हैं, भले ही उसकी औषधि से रोगियों को लाभ ही क्यों न हो रहा हो। रोगी चाहता है कि डॉक्टर उससे बात करे, उसका हालचाल पूछे, उसे सान्त्वना दे, उसके चित्त को आश्वस्त करे कि वह शीघ्र ही स्वस्थ हो जायेगा। जिस रोगी के चित्त में यह बात बैठ जायेगी कि वह शीघ्र ही स्वस्थ होने वाला है, वह उसके अनुसार स्वस्थ भी हो जाता है। जहाँ तक देखा गया है कि जो स्वयं को खूब पढें-लिखें और समझदार डॉक्टर समझते हैं और गर्व के कारण रोगियों के प्रति केवल देखना और औषधि देने तक का ही व्यवहार रखते हैं, वे रोग ठीक करने में असफल रहते हैं, जबकि उसी रोग को 'क्वेक' कहलाने वाले चिकित्सक सामान्य-सी चिकित्सा और 'हीलिंग टच' जैसी बात से बडी सरलता से स्वस्थ कर देते हैं। डॉक्टर कहलाने वाला समुदाय यद्यपि इससे रुष्ट होता है, किंतु जीवन का सत्य यही है और सत्य सदा कडवा होता है।

भारतीय चिकित्सा पद्धति में रोग-निदान और रोग-चिकित्सा पर विशेष ध्यान दिया गया है और चिकित्सक को बताया गया है कि वह स्वयं रोगी के अनुकूल बने, न कि रोगी को अपने अनुकूल बनाने की जिद करे। यही कारण है कि भारत में आज भी भारतीय चिकित्सा पद्धति पर भारतीयों का अटूट विश्वास जमा हुआ है, यद्यपि आधुनिक पद्धति ने उसको मिटाने में कोई कोर-कसर नहीं छोडी। न केवल इतना, अपितु अब इसका प्रभाव यह होने लगा है कि आधुनिक चिकित्सा के विद्यालयों में भारतीय चिकित्सा ग्रंथ 'चरक, सुश्रुत' आदि का विशेष अध्ययन कराया जाने लगा है।

एक विख्यात शल्य चिकित्सक ने एक बार बताया कि उसने एक बार नहीं, अनेक बार केवल दिखावे के ऑपरेशन किए हैं। उससे रोगी ठीक हो गए। ऐसी स्थिति में उस शल्य चिकित्सक ने बताया कि वह ऑपरेशन की सारी औपचारिकतायें पूर्ण करता है। रोगी को मूर्छित भी करता है और उचित समझता है तो रोग के स्थान पर हल्का-सा चीरा भी देता है

और फिर पट्टी कर देता है। इस प्रकार के ऑपरेशन से उसने अपेंडिसाइट तथा अन्य रोगों के रोगियों को ठीक किया है। ऐसा क्यों? वह केवल इसलिए कि रोगी के मन में यह दृढ धारणा बन गयी है कि उसका रोग केवल ऑपरेशन करने से ही जा सकता है। डॉक्टर ने इस मनोविज्ञान को जाना और उसका नाटकीय ऑपरेशन कर दिया, रोगी ठीक हो गया।

इसी प्रकार एक बडे अस्पताल के डॉक्टर ने भी बताया कि वह भी ऐसे दिखावे के ऑपरेशन करता रहा है। उसके अस्पताल में एक महिला आयी, जिसको यह भ्रम हो गया था कि उसके पेट में गिल्टी हैं। उसने डॉक्टर को सारी घटनायें बतायी और उसको कहा कि उसका ऑपरेशन होना ही चाहिए। डॉक्टर ने उसको देखकर निश्चय किया और जैसा कि उस महिला ने बताया था, तदनुसार उसका ऑपरेशन कर भी दिया। महिला कुछ ही दिनों में स्वस्थ हो गयी। किंतु उसका ऑपरेशन वास्तविक नहीं, सब नाटक था।

यह सब विश्वास की शक्ति का चमत्कार है, क्योंकि शल्य चिकित्सक के मन में यह निश्चित हो गया था कि बिना नाटक किये रोगी का ठीक होना संभव नहीं है, इसलिए वह उस नाटक के लिए तैयार हो गया। यह भी उसके विश्वास का ही प्रभाव था। डॉक्टर को अपनी नाटकीय चिकित्सा में यदि विश्वास न हो तो वह भी सफल नहीं हो सकता था।

जो योग्य चिकित्सक होते हैं वे किसी भी असाध्य रोगी को अंत तक यह नहीं कहते कि उसका रोग असाध्य है। यह बताना मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी उचित नहीं है। कभी-कभी इसका भयंकर परिणाम भी निकलता है। रोगी अपने असाध्यता के आघात से समय से पहले ही मर भी सकता है।

'मैं ठीक हो जाऊँगा' रोगी को जब यह विश्वास हो जाता है तो वह उसी दिन से ठीक होने भी लग जाता है। औषधि से बढकर विश्वास रूपी औषधि अमोघ सिद्ध होती है। इस विश्वास के आधार पर असाध्य से भी असाध्य रोग साध्य बन जाते हैं। रोग के दूर होने में रोगी को चिकित्सक पर विश्वास बहुत बडा साधन सिद्ध होता है। जिस चिकित्सक पर रोगी का विश्वास होता है वह चिकित्सक यदि रोगी को औषधि के स्थान पर केवल रंगीन पानी भी मिक्स्चर के रूप में दे देता है तो वही उसको औषधि का काम करता है और रोगी ठीक हो जाता है।

विश्वास के आधार पर ठीक होने वाले रोगों और रोगियों की लम्बी शृखंला देखने, सुनने और पढने में आती है। यह सब विश्वास का ही तो चमत्कार है। हमारे ग्रंथों में इसलिए कहा है - **''विश्वासं फलदायकम्''**।

किसी का कहना है कि 'औषधि विज्ञान का इतिहास वास्तव में विभिन्न प्रकार की चिकित्साओं में लोगों के विश्वास में उतार और चढाव का इतिहास है।' विगत काल में हजारों औषधियाँ ऐसी थी कि जिन पर लोगों का अटूट विश्वास था, किंतु आज वे

निरर्थक सिद्ध होती है। अब लोगों का उन पर विश्वास क्यों नहीं रहा? 'पेनसिलीन' का ही उदाहरण लीजिए। वर्षों पूर्व जब पेनसिलीन का आविष्कार हुआ था, लोगों का उस पर अथाह विश्वास था, किंतु आज कोई उसका नाम भी लेना नहीं चाहता। डॉक्टर भी जिसको पेनसिलीन देता है उससे पूर्व उसका परीक्षण कर लेता है कि कहीं रोगी पेनसिलीन के प्रति 'ऐलर्जिक' तो नहीं है। इस प्रकार सब कुछ मनुष्य के विश्वास पर आधारित होता है, उस पर ही निर्भर करता है।

यही स्थिति डॉक्टर की भी है। कुछ लोगों को अपने डॉक्टर, किसी विशेष डॉक्टर पर विश्वास होता है। औषधि के नाम पर यदि वह पानी दे दे तो रोगी ठीक हो जाता है। किंतु जब किसी कारण से उस पर से विश्वास उठ जाता है तो फिर वह कितनी ही उत्तम चिकित्सा करें, रोगी उससे ठीक नहीं होगा, क्योंकि अब उसका उस डॉक्टर पर से विश्वास उठ गया है।

पुराने जमाने में टोने-टोटके बहुत चलते थे, चलते तो आज भी है, किंतु कुछ कम। पाश्चात्य लोग भारत को टोने-टोटके का देश कहते रहे हैं, किंतु क्या वे स्वयं इनमें विश्वास नहीं करते? उनके यहाँ भी वह सब टोने-टोटके चलते हैं, जो भारत में।

उदाहरण के रूप में न्यूयॉर्क में एक चर्च में संत ऐनी की बरसी के अवसर पर हजारों लोग एकत्रित होते हैं। वहाँ जाने वालों में उसकी बरसी मनाने वालों की संख्या तो नगण्य ही होती है, किंतु संत ऐनी, जो कि कभी की मर चुकी है और जिसकी बाहु की एक हड्डी उस चर्च में एक कांच के डिब्बे में सुरक्षित रखी है, उसके स्पर्श से अपने रोग दूर करवाने के लिए जाने वालो की संख्या अनगिनत होती है। उस हड्डी के स्पर्श मात्र से रोग दूर हो जाता है, ऐसा उनका विश्वास है।

क्या आप इस बात पर विश्वास करेंगे? आप करें या न करें, ऐसा होता है। उन रोगियों का यह विश्वास ही उन्हें ठीक करता है कि संत ऐनी के स्पर्श मात्र से उनका रोग दूर होगा। वे लोग नहीं जानते कि वह संत ऐनी के हाथ की हड्डी है, वह किसी अन्य भाग की हड्डी भी हो सकती है, अथवा हो न हो, वह किसी अन्य व्यक्ति की हड्डी हो या फिर किसी पशु की ही हड्डी हो। किंतु नहीं। लोगों का विश्वास है कि वह संत ऐनी के हाथ की हड्डी है और उसके स्पर्श से रोग दूर होते हैं। इसलिए वह किसी की भी हड्डी हो, वह संत ऐनी के हाथ की ही हड्डी मानी जा रही है। यह विश्वास की बात है। यह है विश्वास का चमत्कार।

हम पहले ही कह आये हैं कि भारत में भी इस प्रकार के विश्वासों का बडा प्रचलन है। यहाँ पीरों के मजार, संत की समाधि, देवी-देवताओं की मूर्तियों के दर्शन आदि-आदि अनेक बाते प्रचलित हैं और वे सब विश्वास के आधार पर अपना-अपना कार्य करती है। समाज सुधारक कहे जाने वाले लोगों ने इसके विरुद्ध बहुत कुछ किया है,

किंतु यह विश्वास न पाश्चात्य देशों में मिटा और न भारत में। विपरीत इसके हमने ऐसे बहुत-से लोग देखे हैं, किंतु परोक्ष में स्वयं भी यदि किसी संकट में पड जाते हैं और जब उससे उबरने के सब उपाय निरर्थक सिद्ध होते हैं तो प्रयोग के रूप में वे भी इसको करते ही हैं। किंतु उनका उसमें विश्वास कम होता है, इसीलिए उनको फल भी कम ही मिलता है।

इस सबको देखते हुए क्या तो क्रिश्चियन साइंस, क्या मेंटल साइंस, क्या डिवाइन साइंस या कोई अन्य साइंस, ये सब साइंटिस्ट ईश्वर पर विश्वास करते हैं और उनका यह भी विश्वास है कि ईश्वर मनुष्य के द्वारा अपना कार्य करवाता है। क्या यह केवल उनका विशुद्ध विश्वास ही नहीं है ?

हमारे विषय की वास्तविकता, हमारा अस्तित्व, इस संसार का अस्तित्व, हमारे सारे क्रियाकलाप, यह सारा संसार चक्र, सब भगवान् पर विश्वास के आधार पर चल रहा है। भगवान् के बिना मनुष्य का किञ्चित् भी अस्तित्व नहीं है। अपने को नास्तिक कहने वाले लोग भी, किसी न किसी प्रकार से भगवान् पर विश्वास करने लगे हैं। भले ही वे उसे प्रकृति का नाम दें या कुछ और कहें। यही स्थिति उन वैज्ञानिकों की भी हो गयी हैं, जो कभी ईश्वर के अस्तित्व और उसके कर्तृत्व को स्वीकार नहीं करते थे। अब वे भी उसके विषय में सचेत हैं।

यह सब क्या है ? केवल विश्वास ! विश्वास के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं।

जब मैं अपने मन में पूर्ण स्वास्थ्य का विचार कर लेता हूँ तो मैं केवल स्वयं को मात्र मनुष्य ही नहीं समझता। मैं स्वयं को परमेश्वर का अंश मानता हूँ। यही मेरे जीवन का विजयी पक्ष है, दैवी भावना है। यह मेरा आदर्श है जिस पर मैं हमेशा दृढ रहना चाहता हूँ। इस प्रकार परमात्मा में विश्वास करने से मैं जानता हूँ कि, मेरा मस्तिष्क सब कुछ ठीक-ठीक ही सोचेगा, जिसके परिणाम-स्वरूप मेरा स्वास्थ्य ठीक रहेगा और मेरी सामाजिक स्थिति उन्नत होगी। यह मेरा विश्वास ही तो है।

दूसरी ओर यदि मैं अपने विषय में यही सोचूँ कि मुझमें रोग के लक्षण दिखाई देने लगे हैं, क्योंकि मैं थोडा-सा काम करने पर थकान अनुभव करता हूँ, तब हो न हो, मुझे कोई रोग भीतर-ही-भीतर दुर्बल कर रहा है। यदि मैं निरन्तर यही सोचता रहूँ और स्वयं से ही कहूँ कि मैं तो रोगी हूँ, पता नहीं मुझे कौन-सा रोग लग गया है, हो सकता है, यह मेरे उन पूर्वजों का रोग हो जिनकी मृत्यु कैंसर से हुई थी, पेट के रोग से हुई थी, जिगर के बिगडने से हुई थी, मेदा खराब हो गया था, दिल का दौरा पडा था आदि-आदि, तो निश्चय जानिए कि मैं उनमें से किसी न किसी रोग को अपने शरीर में आश्रय देकर ही रहूँगा।

यह सब क्या है ? केवल मनुष्य का विश्वास। यदि वह विश्वास करे अपने स्वस्थ होने पर तो वह स्वस्थ ही रहेगा। यदि उसको विश्वास हो जाय कि किसी रोग ने उस पर आक्रमण कर दिया है तो वह रोगी बनकर रहेगा। जब तक मनुष्य स्वास्थ्य के सिद्धान्तों

का विचार नहीं करेगा, वह स्वस्थ नहीं रह सकता। मनुष्य को अपने मन में यह विश्वास करना होगा कि वह निरोग है, स्वस्थ है, सबल है, सर्वथा निरोग है, क्योंकि उसका मन स्वस्थ है, इसलिए उसका शरीर भी स्वस्थ है। भगवान् ने उसे स्वास्थ्य की अमूल्य निधि, अक्षय, सम्पत्ति प्रदान की है। वह सम्पत्ति है उसका विश्वास, ईश्वर के प्रति उसका विश्वास। वह जानता है कि यह शरीर ही नहीं यह सारा जीवन ईश्वर प्रदत्त है। ईश्वर की दी हुई वस्तु कभी रोगी हो ही नहीं सकती।

कोई भी स्वस्थ व्यक्ति जब किसी अस्पताल में जाता है, तो वहाँ के वातावरण में घुटन अनुभव होती है। इससे यह सिद्ध हुआ कि मनुष्य के लिए सबसे हानिकारक तत्व अस्पताल का वायुमंडल होता है। यहाँ उसको निरंतर रोगों के बारे में देखने, सुनने को मिलता है। इस कारण मनुष्य के मन और मस्तिष्क में निरंतर रोग और रोगियों का ही ध्यान समाया रहता है। किसी भी क्षण उसके मन में यह विचार दूर होता ही नहीं। वह रोगियों को मरते देखता है तो उसे मृत्यु का भय सताता है।

मैंने हाल में ही एक महिला के विषय में सुना है, जो बहुत समय से रुग्ण थी। वह किसी मनोचिकित्सक के पास गयी। वह चाहती थी कि उसके सम्मुख वह स्पष्ट शब्दों में अपनी सारी कथा रखें, क्योंकि उसको रोग के कारण बहुत कष्ट सहना पडा था। वह जीवन से बडी ही निराश भी हो गयी थी। कभी-कभी वह इसको परमात्मा की इच्छा मानकर अपने रोगी जीवन को ही स्वीकार कर लेती थी। मनोचिकित्सक के पास जाते समय भी उसके मन में यही विचार आ रहा था कि कहीं वह ऐसा करके परमेश्वर को रुष्ट तो नहीं कर रही?

उसको अनेक प्रकार के रोग तो थे ही, उनमें से एक रोग जो स्पष्ट दिखायी देता था, वह उसकी गर्दन की गिल्टी थी। वह डॉक्टर को कहती थी कि वह उसकी गिल्टी को देखे, उसका इतिहास सुने, उसके बिना वह भली प्रकार चिकित्सा नहीं कर पायेगा। नित्य प्रति ही डॉक्टर उसको देखता रहे तो वह कुछ आराम अनुभव करती थी, किंतु जिस दिन डॉक्टर न आये, वह दिन उसके लिए मरण का-सा दिन हो जाता था।

जब वह मनोचिकित्सक के पास गयी तो डॉक्टर ने सबसे पहले उसका स्वागत करते हुए सुंदर फूलों का एक गुलदस्ता भेंट किया। ऐसा गुलदस्ता कि जिसको देखकर उसके शरीर का अङ्ग-अङ्ग मुस्करा उठा, खिल उठा। उस गुलदस्ते के फूलों का रङ्ग बडा जीवंत था। वह महिला आधे घण्टे तक उसको थामें हुए उससे खेलती रही, सहलाती रही।

गुलदस्ता थामें हुए उस महिला के अङ्ग-अङ्ग में जो थिरकन हो रही थी, डॉक्टर उसको देख रहा था। वह उसको देखकर मंद-मंद मुस्करा रहा था। उसने महिला से कहा कि वह उसकी बात अभी नहीं सुनेगा। वह पहले स्वयं उसका निरीक्षण-परीक्षण करेगा, उसके बाद उसकी बात सुनेगा।

उस मनोचिकित्सक ने उस महिला के लिए वहीं पर स्वस्थ वातावरण प्रस्तुत किया। स्वयं उस महिला को कहा कि वह अपने मन में स्वस्थ होने की बात सोचे। रोग का विचार अपने मन से निकाल दे। अपने मन में आदर्श विचारों को स्थान दे। वह उस परमात्मा का चिंतन करे जिसने यह संसार बनाया है, वह गुलदस्ता बनाया है, मनुष्य बनायें हैं। उसने महिला को कहा कि वह अपने मन में किसी रोग अथवा दुर्बलता के विचारों को प्रविष्ट न होने दे।

महिला ने उसकी सारी बातों का अनुकरण किया। उस दिन वह प्रसन्नता से अपने घर गयी और वहाँ जाकर उसने वही सब कुछ किया जो डॉक्टर ने उसे करने के लिए कहा था। परिणामस्वरूप कुछ ही दिनों में वह महिला पूर्णतया स्वस्थ हो गयी।

यदि मनुष्य अपने चारों ओर के वातावरण से प्रसन्नता प्राप्त कर सके, ईश्वर की रचना के प्रति विश्वास उत्पन्न कर सके, यदि वह सदा स्वस्थता ही विचार अपने मन में ला सके, यदि उसको यह विश्वास हो कि वह सदा स्वस्थ और सबल बनेगा तो कोई कारण नहीं कि वह स्वस्थ और सबल न बने। केवल विश्वास के बल पर मनुष्य सब कुछ पा सकता है।

मुक्त वार्तालाप - उपचार

मनोविश्लेषण के विकास के प्रारम्भिक चरण में फ्रायड को पता लगा कि उसका एक रोगी-लगातार तेज बुखार से पीडित, एक युवती - बिना किसी दवा के केवल मुक्त वार्तालाप से ही ठीक हो गयी थी। चिकित्सा व्यवसायियों के लिए, विशेषकर फ्रायड जैसे लोगों के लिए जो कि हरेक दुर्घटना में से कोई न कोई महान् सत्य ढूंढ निकालने की फिक्र में रहते थे, इस प्रकार का अनुभव एक विचित्र घटना थी। मुक्त वार्तालाप की इस प्रणाली को फ्रायड ने 'भाव विरेचन' कहा जिसे बाद में 'मुक्त साहचर्य' की प्रविधि में प्रयुक्त किया गया जो मानव मन की अचेतन गहराइयों तक पहुँचने की प्रभावशाली साधना सिद्धि हुई।

साधारण रूप में तो हम मुक्त साहचर्य प्रणाली या अन्य मनोविश्लेषणात्मक प्राविधियों को काम में नहीं ला सकते किंतु इनका आदिम रूप 'मुक्त वार्तालाप प्रणाली' अपेक्षाकृत सरल है। यह प्रणाली अदृष्ट एवं संवेदनशील तथ्यों को अनावृत कर उन्हें तथ्य एवं चिंतन की कसौटी पर कसने, उनका विश्लेषण करने और हमारे दिल के घावों पर सांत्वना का मरहम लगाने में प्रभावकारी सिद्ध हुई है। हम अपने अपमानों, अवमाननाओं, कष्टों और दुःखद स्मृतियों को दबा दिया करते हैं। अत्यन्त संवेगपूर्ण कटु अतीत या तो भुला दिया जाता है या ऐसा लगता है कि हम उसे भूल चुके हैं। ये स्मृतियाँ चेतन से दूर होती जाकर और गहरी होती चली जाती हैं और ज्यादा-ज्यादा दृढ बनकर विवेकहीन आवेश का रूप ले लेती हैं। इन विस्मृत गहराइयों से वे हमारे व्यवहार को विकृत करती

रहती हैं। हमें अस्थिरचित्त बनाती है, कभी हम क्रुद्ध और रुष्ट होते हैं तो कभी अवसादमय और विमुख प्रकृति वाले दिखायी पडते हैं। ये हमारी चिंतन और अधिगम प्रक्रिया को भी अवरुद्ध कर सकती है।

हम अतीत को भूलाकर उससे अपना पल्ला नहीं झाड सकते। उपयोगी प्रणाली यह होगी कि हम मैत्रीपूर्ण वातावरण में खुल कर साफ-साफ बातें करें, या उससे भी बेहतर यह होगा कि हम इन कटु अनुभवों को पूरी तरह लिख डालें ताकि मन के अँधेरे में जो कूडा करकट जमा है उसकी तीखी सडाँध से बचने के लिए उसकी अच्छी तरह सफाई की जा सके और अपने ही विवेक से अतीत का विश्लेषण करके उसे वास्तविक जगत् के प्रकाश में लाया जा सके। (मानसिक स्वास्थ्य - डॉ. हरद्वारीलाल शर्मा)

आत्म विश्वास का अभाव

विचाराधीन केस एक महिल से संबंधित है जिसे हमेशा यहीं संदेह रहता था कि क्या वह वहीं कुछ कह रही है जो वह कहना चाहती थी। उसका संदेह असीमित था और साथ ही असामान्य भी। वह इस बात तक से आश्वस्त नहीं थी कि उसने अपनी उत्तरपुस्तिका में नहीं लिखा है जो उसे लिखना चाहिए था। उसे अब यह संशय हो गया कि वह अपनी उत्तर-पुस्तिका में अपना नाम लिखना भूल गई थी; आत्मसंशय उसके दिमाग पर एक भारी बोझ बनकर रह गया था जो किसी भी व्यक्ति के जीवन को नारकीय बना देने के लिए काफी है।

इस सबका क्या कारण है ? उसकी माँ अत्याधिक छिद्रान्वेषी थी और पिता अत्यन्त कठोर एवं आग्रही स्वभाव का। बेटी चाहे कुछ भी काम कर ले परंतु माँ उससे कभी संतुष्ट नहीं रहती थी। वह उसमें हमेशा दोष ही ढूँढती रहती थी और फिर झिडकती थी। बचपन में उसने अपने आत्मविश्वास और स्वाभिमान के विरुद्ध माँ-बाप के आक्रमणों का सामना भी करने की कोशिश की। पहले तो वह थोडी रुष्ट और क्रुद्ध हुई, बाद में उसने उसका प्रतिरोध किया, किंतु अन्त में किसी घटना विशेष से हताश होकर वह बिल्कुल ही टूट गई। उसमें मिथ्या आत्म-तदात्मीकरण पनपने लगा। इसमें उसके पिता का योगदान था जो अपनी इस जिद पर अडा था कि वह अपनी मनपसंद के व्यक्ति से विवाह नहीं कर सकती।

मिथ्या आत्म-तदात्मीकरण जीवन में अनेक दुःखों का कारण बन सकता है। सामान्य बालक विकास क्रम की सामान्य प्रक्रिया में अपने मात-पिता से तादात्म्य स्थापित करना चाहता है। उनकी कुछ बातें वह आत्मसात् कर लेता है साथ ही अपना निजी अस्तित्व भी बनाए रखता है किंतु माता-पिता यदि अपनी ही बातों को अच्छा समझ, बच्चे पर हठपूर्वक और बल पूर्वक अपनी ही इच्छाएँ लादने की कोशिश करते हैं, तो बच्चे में सम्भवतः उपर्युक्त आत्म-तादात्म्य की भावना नहीं विकसित हो सकेगी और फलतः उसका आत्मविश्वास

डगमगा जाएगा। जब बच्चे में आत्म-तादात्म्य और आत्मविश्वास ही विकृति की चरम सीमा पर पहुँच जाते हैं, तो उसका जीवन अत्यन्त दुःखमय हो जाता है। (मानसिक स्वास्थ्य)

तनाव और थकान

इस अध्याय में हम एक तनावग्रस्त तंत्रिकातापी रोगी का चित्र प्रस्तुत करने जा रहे हैं। रोगी की टांगे काँप रही थी, उसमें अनिश्चितता पूर्वक इस बात का भेद खोला की परमदाता के कमरे में घुसते समय वह झिझक रहा था। फिर भी उसने अंदर जाकर पूर्ण मुद्रा में आसन ग्रहण किया। हालांकि कुछ परेशान-सा था; बाल ठीक से संवरे हुए थे और वेश-भूषा से एकदम टीपटॉप था ऐसा लगता था कि मानों वह फोटो खिंचनेवाने के लिए तैयार होकर आया हो। किंतु उसके चहरे पर कठोरता की रेखाएं स्पष्ट नजर आती थी और उसकी बॉहों की मांसपेशीयाँ लोहे कसे हुए तारों जैसी तनी और खिंची हुई थी। उसकी गर्दन ऐसी तनी और अकडी हुई थी कि जो भी वह बोलता था वह हताश हुआ-सा लगता था। उसने यह माना की वह थका हुआ-सा महसूस कर रहा है।

वह तनाव युक्त भी था और थका हुआ भी था। दोनों दशायें एक साथ देखने में आती हैं। पेशियों और तंत्रिकाओं का ढीला हो जाना तनाव और थकान कम करने का प्राकृतिक उपाय है। नींद में लगभग पूरे चक्रिय अनुक्रम से ऐसा ही होता है। हमेशा तंत्रिकीय या पेशी तनाव की स्थिति में बने रहने का मतलब है शरीर की कोशिकाओं में एकत्रित ऊर्जा का क्षय होते रहना। आराम के क्षणों में व्यक्ति की क्षयित ऊर्जा फिर से पुरी हो जाती है और फिर उसमें स्फूर्ति आ जाती है। किंतु अनवरत तनाव जीव की तंत्रिकीय और प्राणदायक कार्य सार्थकतामें गंभीर बाधा डालते हैं।

विचाराधीन मामले में रोगी अपने ही पूर्णतावादी प्रयासों का शिकार था। बेहतर काम करना या यथा शक्ति उत्तम काम करने के लिए प्रयत्नशील रहना एक शुभ लक्षण है। किंतु अन्य सभी से अच्छा करना और सभी प्रतिस्पर्धियों को मात दे देने की कोशिश में लगे रहना हमेशा संतुलित मनोदशा का परिचायक नहीं होता। विशेषकर जब कोई व्यक्ति अपनी सीमित योग्यता को ध्यान में न रखकर पूर्ण बनने और सर्वप्रथम रहने का प्रयास करता है तब यह एक गंभीर तंत्रिकाताप का रूप ले लेता है।

पूर्णतावादी प्रयास आदमी को चैन और आराम से नहीं बैठने देते हैं; तनाव पैदा कर देते हैं जिससे आदमी थक कर चूर-चूर हो जाता है। सौभाग्यवश इस रोगी को मालूम था कि उसकी पेशियाँ थकी-माँदी हैं और वह थकान की अनुभूतिमें और अंतहीन तनावों के बीच जाने की चेष्टा में सक्रिय महत्वपूर्ण भलि-भाँति अवगत था।

परिपूर्णता की कामना कभी नहीं करनी चाहिए। पूर्णता इस संसार में कहीं नहीं

है। सर्वप्रथम आने की चेष्टा तो कीजिए किंतु प्रयत्न करने पर भी यदि दूसरे नंबर पर रह जाते हैं तो उसे सहर्ष स्वीकार कीजिए। तीसरे, चौथे आदि नंबर पर भी रहने का प्रयत्न करते रहिए। किंतु हताश कभी ना हो क्योंकि हमेशा और हर क्षेत्र में आपका ही अव्वल आना जरुरी नहीं है। (मानसिक स्वास्थ्य)

स्वास्थ्य का रहस्य

विचार मस्तिष्क का निर्माण करते हैं। मस्तिष्क हमारे शरीर का विकास करता है। अतः हम जैसा सोचते हैं वैसा ही बन सकते हैं। किसी ने कहा है - ''वे मित्र भी हमारे सबसे बडे शत्रु है जो हमारा हाल-चाल पुछने के बहाने हमारे मन में अपने स्वास्थ्य के प्रति विभिन्न प्रकार की कुशंकाएं उत्पन्न कर देते हैं।'' आपने देखा होगा कई लोग दूसरे के स्वास्थ्य पर युँही टीका-टिप्पनी करते रहते हैं। ऐसी नुक्ताचीनी मस्तिष्क पर ऐसा प्रभाव डालती है कि हम अपनी शक्तियों के प्रति साशंकित हो जाते हैं।

आशंकाओं और सुझावों की शक्ति का अनुमान वे ही लोग कर सकते हैं जिन्होंने किसी व्यक्ति को हीप्नोटिज्म के प्रभाव के अंतर्गत देखा है। हिप्नाटाइज्ड किया हुआ आदमी बिल्कुल चेतनाशून्य होता है और बाहरी पीडाओं को अनुभव नहीं कर पाता है। कई बार हिप्नोटाइज्ड व्यक्तियों के हाथ नीचे जलती हुई मोमबत्ती रख दी गई परंतु उन्हें सम्मोहन टूट जाने के बाद ही जलने का अनुभव हुआ। एक ऐसे ही सम्मोहीत व्यक्ति को यदि साधे पानी का गिलास शराब का जाम बताकर पीलादीया जाए तो वह नशे में झूमने लगता है। डॉक्टर ईडन ने पेरीस के प्रोफेसर डेबोव की सम्मोहन शक्ति के कई उदाहरण दिये हैं। इन्होंने लिखा है कि डेबोव अस्पताल में एक आदमी को पानी का गिलास देते हैं और कह देते कि उसमें शराब है। सम्मोहित व्यक्ति जल पीकर इस प्रकार झूमने लगता जैसे उसे गहरा नशा हो गया हो, ऐसे ही वे किसी को एक छपा हुआ कागज देते हैं और मनवा लेते हैं कि कागज कतई कोरा हैं या कागज पर बेलबुटे कढे हुए हैं या कागज जंगली तस्वीरों से भरा पडा है। मंत्र मुग्ध मनुष्य जो डाक्टर कहते वही देखता रहता। कई बार तो डाक्टर के मजाक की हद ही हो जाती। वे किसी मरीज की आँखे बंद करवाने के बाद उससे कहते 'देखों, आँखे खोलो और बताओ मेरा सिर कहाँ है?'' मरीज आँखे खोलकर डाक्टर पर नजर डालता है और उसे लगता है कि डाक्टर का सिर सचमुच ही गायब है। बेचारा भौचक्का रह जाता और डेबोव ठहाका लगारक आगे चल देते।

मैंने तो घोडों तक को सुझाव के प्रयोग द्वारा बीमार बनाये जाते देखा है। मेरे सामने एक घोडे को कम्बलों से ढक दिया गया। उसे दवाईयाँ पिलाई गयी और देखते-देखते वह घोडा अपनी पाचन शक्ति खो बैठा और बीमार पड गया। इसी तरह एक और

घोडे की भली-चंगी टाँग पर पट्टी बाँध दी गई। थोडी देर बाद ही वह घोडा उस टाँग से लंगडाकर चलने लगा।

सब जानते हैं कि बच्चे कई बार केवल माताओं की आशंकाओं के कारण ही बीमार पड जाते हैं। जल्दी घबरा जाने वाली माँ सदैव उन बिमारियों से घबराई रहती है जिनसे बच्चों को किसी भी तरह का खतरा हो सकता है। अडोस-पडोस में चोट लगने की खबर सुनकर ऐसी माताओं के दिल अकारण धडकने लगते हैं और उनकी इस उत्तेजना का सीधा प्रभाव नवजात शिशु के मन पर पडता है। मैं हाल में ही जिस घर में गया था वहाँ माँ अपने बच्चे को सदैव यही बताती रहती है कि उसने दवाई नहीं पी, वह कमजोर हो गया है; वगैरह-वगैरह। साथ ही साथ वह बच्चे के गले में एकाध दवाई भी उडेलती रहती थी। उसे हर समय यही चिंता रहती थी कि बच्चे कहीं बाहर खेलने चले गये तो उन्हें चोट लग जायेगी। नतीजा यह था कि उसके परिवार के सारे सदस्य छुई-मुई के पौधे बन गये थे और अधिकांश बारह-मासी रोगी थे। माँ बच्चों की और परिवार के अन्य सदस्यों की रुग्णता के कारण न कहीं आ जा पाती है न घर में ही चैन से बैठती है। बच्चों के पिता की हालत भी अपने संतान जैसी ही थी। वह स्त्री अपने पति को भी कमोवेश अपने शिशुओं की ही भाँति देखभाल करती थी और फलस्वरूप वह बेचारा भी मोम का गुड्डा बनकर रह गया था।

इस सारे वृत्तान्त से यह निष्कर्ष निकलता है कि माँ-बाप आवश्यकता से अधिक ध्यान दे तो बच्चे आखिरकार उन्हीं बिमारियों के शिकार हो जाते हैं। जिनसे माँ-बाप उन्हें बचाना चाहते हैं। अगर बच्चे बहुत अधिक लाड-प्यार से पाले जायेगें तो स्वभावतः बिगडेगें। बच्चों कि बिमारियों से बचाने का उपाय दवाइयाँ नहीं, संयम तथा नियमित देखभाल है। बच्चों के दिमाग से बिमारी का भय निकाल देना बहुत आवश्यक है ताकि वह पूरी तरह स्वस्थ रहे।

प्रायः देखा गया है कि चिकित्सा-विज्ञान के विद्यार्थी एक दिन मुर्दे चीरते-चीरते इतने परेशान हो जाते हैं कि उनके सामने हर वक्त लाशों की सडाँध सी छाई रहती है। लेकिन इसके विपरीत जो विद्यार्थी प्रसन्नचित्त वातावरण में रहते हैं वे शरीर और मन दोनों से प्रफुल्लित प्रतीत होते हैं। वास्तव में बीमार व्यक्ति का मस्तिष्क बडी दयनीय अवस्था में होता है और उसे आसानी से प्रभावित किया जा सकता है। स्वस्थ आदमी का मस्तिष्क आसानी से प्रचार अथवा सुझावों की पकड में नहीं आता। वह औरों द्वारा बताई गई बातों के स्थान पर अपनी सूझ-बूझ से निर्णय करता है।

जिन लोगों के व्यक्तित्व में यह स्वतंत्र विचार-शक्ति विद्यमान रहती है वे औरों को भी अंधेरे से निकालकर रोशनी में ला सकते हैं। ऐसे लोगों से बातचीत करने पर एक

विशेष प्रकार की संतुष्टि मिलती है। इसके आलावा दूसरी किस्म के वे लोग होते हैं जिनका अपना व्यक्तित्व एक टूटा हुआ दर्पण होता है और उनसे मिलने वाला व्यक्ति भी उन्हीं की भाँति हताश और निरुत्साहित हो जाता है। दुःख दर्द की हालत में हम ऐसे लोगों से मिलना तक पसंद नहीं करते। इन लोगों के साथ-साथ एक अजीब किस्म का अनिष्ठकारी दायरा चलता है जिसका कडवा प्रभाव वे जहाँ कहीं जाते हैं, पडता है। यदि आप ऐसा नहीं बनना चाहते तो अपने मस्तिष्क को अधकचरे सुझावों और दूषित विचारों के फन्दे से बचाइये।

मन पर सुझावों का ज्यादा प्रभाव लगभग चमत्कारी होता है। जीवन में संघर्षरत लोग ऐसी तनाव की स्थिति में होते हैं कि प्रत्येक विचार का उन पर बिजली का-सा असर होता है। अगर कोई ऐसे लोगों को कोई उचित ढंग से सुझाव दे दे तो बस, सोने पे सुहागा है। ठीक समय पर दिये गये उपदेश या आत्मोन्नति के सुझाव व्यक्ति की जीवनधारा में एक नया मोड ला देते हैं। विश्व का धार्मिक इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा पडा है। जहाँ लोग झरनो पर नहाने, पवित्र तीर्थों को जाने या यात्रायें करने से निरोग होते देखे गये हैं। छुट्टियों के लिए स्वास्थ्य वर्धक स्थानों पर जाने वाले लोगों के स्वास्थ्य में भी छुट्टियों के बाद एक क्रांतिकारी परिवर्तन पाया जाता है, भले ही उन्हें पहाडों पर घर जैसी सुविधायें प्राप्त न हुई हो। वे हंसते-खेलते छुट्टियाँ बिताके लौट आते हैं और उनके गालों की लाली, शारीरिक स्फूर्ति पहले से ज्यादा बढ जाती है। इन परिवर्तनों में वातावरण के प्रभाव की उपेक्षा नहीं की जा सकती, किंतु वस्तुतः इनका आधार आत्म-विश्वास तथा उत्प्रेरक स्फूर्ति है। मन का निश्चय, साहस, विनोदप्रियता, दुनिया की समस्त औषधियों से अधिक गुणकारी है।

हममें से अधिकांश लोग मानसिक शक्तियों के रोगोन्मूलक गुणों से लगभग अपरिचित रहते हैं। चिकित्सक यह मानते हैं कि प्रेम, सौहार्द, सहानुभूति का प्रभाव, औषधियों से भी अधिक होता है। माँ का प्यार बच्चे को मौत की उन भयंकर घाटियों से बचाकर ले आता है जहाँ बडे से बडा चिकित्सक भी नहीं पहुँच पाता। पिता की गोद में बैठा हुआ बालक दुनियाँ की समस्त चिंताओं से मुक्त होकर निर्द्वन्द किलकारियाँ मारता है। मुसीबत के मित्र चाहे कोई आर्थिक सहायता न दे पायें पर उनका संग मात्र बहुत बडा आसरा बना रहता है। माँ की ममता, प्रेमीका का स्नेह, मित्रों का सौहार्द ऐसे कवच है, जिन्हें दुनियाँ का कोई रोग नहीं भेद सकता।

फिर इन सारी सांसारिक शक्तियों से परे ईश्वर हमारी रक्षा कर रहा है। उस सर्वशक्तिमान, दयालु परमपिता की कृपा सबसे बडा आधार है। बडी से बडी विपत्ति में सच्चे हृदय से की गई प्रार्थना हृदय से चिंताओं की शिला का भार हल्का कर देती है। कडी से कडी मुसीबत बच्चों का खेल लगने लगती है। भक्तवत्सल भगवान् अपने भक्तों के शरणदाता है। एक बार प्रभु के, इस विश्व की सारी शक्तियों का संचालन करने वाली

परमसत्ता के चरणों में मुक्त भाव से हृदय उडेल देने के बाद कोई संताप, भय, विकार, देह में बाकी नहीं रह जाता। सच्चे हृदय से की गई प्रार्थना मन के उन कपाटों को खोल देती है जिन पर बहुत समय से बंद रहने के कारण जंग लग जाता है। प्रभू पारस है और पारस को छू लेने के बाद कोई भी धातु निकम्मी नहीं रह जाती।

हम लोग कभी यह नहीं सोचते कि हमारे मस्तिष्क पर निराशावादी विचारों का कितना बुरा प्रभाव पड सकता है। हजारों लोग सिर्फ इसलिए कम-उम्र में मर गये क्योंकि उनका विश्वास था कि वे एक खास उम्र तक ही जियेगें। कई लोग यह सोचते हैं कि क्योंकि उनके माँ-बाप की मौत जल्दी हो गई थी इसलिए वे भी लम्बी उम्र नहीं भोग सकते। न्यूयार्क की बात है, एक पूरी तरह स्वस्थ आदमी ऐसी ही कुशंकाओं का शिकार होकर मर गया, उसके मन में कहीं से यह बात बैठ गई कि वह अपने अगले जन्म-दिन पर मर जायेगा। सगे-सम्बन्धियों ने बहुत समझाया कि ऐसी आधारहीन बातों से सिर्फ हानि ही होती है, लेकिन समझाने का कोई लाभ न हुआ।

आखिर जन्मदिन भी आ पहुँचा। सुबह होते ही उसने दफ्तर जाने से इंकार कर दिया और यह कहकर बिस्तर में लेट गया कि जब आधि रात से पहले मर ही जाना है तो काम में खपने से क्या लाभ। पत्नी ने बहुत आग्रह किया लेकिन जब बात न बनी तो फैमिली-डॉक्टर को बुलावा भेजा। डॉ. ने निरीक्षण किया और बताया कि वह पूर्णतः स्वस्थ है। लेकिन यह महोदय फिर भी नहीं माने, सारा दिन कुछ नहीं खाया और विश्वास करिये, रात होते ही दूसरी दुनिया के लिए कूच कर गये। अब जरा अन्दाजा लगाईये कि अगर वहाँ कोई और आदमी होता जो इन महाशय को समझा-बुझाकर अपना संकल्प बदलने पर विवश कर देता तो शायद ऐसी सम्भावना कभी न आती और यह महोदय बरसों लम्बी उम्र के बाद सुख से मरते। परंतु ऐसा नहीं हुआ और एक आदमी अपने विचारों के हाथ बेमौत मारा गया।

ऐसा बहुत से लोगों के साथ होता है। हमारे मन में यह बात ठोक-ठोककर बिठायी जाती है कि बुढापा आते ही आदमी किसी काम का नहीं रहता। हम अपने इर्द-गिर्द सैकडों आदमियों को देखते हैं जो उम्र के बढने के साथ-साथ इतने हतोत्साहित हो जाते हैं कि खुद-ब-खुद काम छोड देते हैं और सिवाय पडे-पडे बुढापे को कोंसने के अलावा कुछ नहीं करते। क्या आपने कभी सोचा है कि ये लोग जो खाते हैं, पीते हैं, सैर करते हैं, बच्चों को पीटते हैं और सारे दिन खाली बैठे अडोसी-पडौसियों का मगज चाटते हैं, काम क्यों नहीं कर सकते? उत्तर स्पष्ट है - शारीरिक रूप से समर्थ होते हुए भी ये लोग मानसिक रूप से अपने आप को इतना अयोग्य कर लेते हैं कि किसी काम के नहीं रह जाते। विचार बूढे होते ही बुढापा आ घेरता है। बुढापे के अहसास से शरीर ढीला पडेन

लगता है। मनहूसियत और आलस्य को बढाने वाला यह दर्शन पता नहीं किस आदमी के दिमाग की उपज है। लोग बिना सोचे-समझे विश्वास कर लेते हैं कि बुढापा आने से मस्तिष्क बेकार हो जाता है। बुढापे से मस्तिष्क कमजोर नहीं पडता; मस्तिष्क कमजोर पडने से बुढापा आ जाता है।

यौवन का रहस्य हमारे मन में है। कोई आदमी खिजाब लगाने से, रंग-रोगन पोतने से या बाहरी तडक-भडक से जवान नहीं दिख सकता, जवानी कैमिस्टों की बोतलों, दर्जियों की दुकानों या नाईयों के यहाँ मिलने वाली चीज भी नहीं है। यौवन तो केवल अनुभूति करने की बात है। जब तक मन जवान है, बनाव-शृंगार की कोई जरुरत नहीं। अगर हम लगातार बुढापे को फटकाते रहेगें तो वह कभी हमारी देह के दरवाजे पर हाथ नहीं फैलायेगा। जो यह मानते हैं कि सदा प्रसन्नचित्त बने रहना जीवन की अनिवार्यताओं में से है, वे कभी बूढे नहीं दिखाई दे सकते। एक बार अपने आपको यकीन दिला लीजिये कि आप बूढे नहीं हो सकते-जवानी तमाम उम्र आपका साथ नहीं छोडेगी।

कठिनाई यह है कि बुढापे का भय हमें बहुत जल्दी आ घेरता है। जिंदगी की कटुतायें, दिमाग में हर वक्त समायी रहने वाली चिंता मन को ऐसी सिलों के नीचे दबा देती है कि भावना के अंकुर कुचलकर मर जाते हैं। आज का यांत्रिक जीवन मन की इस दुर्दशा के लिए बहुत बडी सीमा तक उत्तरदायी है। फिर बहुत से लोग हद से ज्यादा जिम्मेदार बनने की कोशिश करते हैं। उन्हें लगता है कि मानो वे धरती की धुरी है और दुनिया का सारा कारोबार उन्हीं के कन्धों पर आ पडा है। फल यह होता है कि वे निरन्तर तनाव की दशा में रहते हैं। छोटी-छोटी बातें उन्हें असंतुलित कर देती है। मानसिक थकान, नसों की उलझन और चौबिसों घंटे की चख-चख उन्हें समय से पहले बूढा कर देती है। कई बार यही लोग अपने दुःख दर्द में इतना डूब जाते हैं कि उन्हें दुनिया केवल विपत्तियों का एक अथाह समुद्र मालूम होती है। ऐसे लोगों का विकास रूक जाता है। वे नये विचारों को ग्रहण करना बंद कर देते हैं। चालीस तक पहुँचते-पहुँचते उन्होंने अपने मस्तिष्क को एक ऐसे ढाँचे में जकड लिया होता है, जिससे छूटना उनके वश में नहीं रह जाता।

इस दयनीय स्थिति से बचने के लिए आवश्यक है कि हम मन से उम्र के साथ-साथ टूटने के भय को निकाल दें। बुढापा सोचने से आता है। अगर आप अपने भूतकाल की उधेड-बुन में नहीं फँसे रहेगें, बडे-छोटे के साथ निर्मुक्त, निर्द्वन्द्व भाव से पेश आयेगें, नये-नये कामों से नहीं डरेगें तो बुढापा आपके मन में नहीं बैठेगा। बासी दिमाग बहुत जल्द भय और चिंता का शिकार बनता है। जो लोग नई-नई बातें सोचते रहते हैं नये-नये कामों में दिलचस्पी दिखाते हैं और नौजवानो के खिलन्दडेपन पर नाक, भौं नहीं सिकुडते वे निश्चित रूप से प्रफुल्ल रहते हैं। यौवन का हँसना, खेलना स्वप्न कभी मत तोडिये। वे तमाम आदर्श, कल्पनायें

और आशायें जो आपको प्रेरित करती हैं, यौवन का रहस्य हैं। इन कल्पनाओं की रोशनी मंद्धिम न पडने दीजिए। आपके जीवन में बुढापे का अंधेरा कभी नहीं छायेगा।

मनुष्य मूलतः एक सामाजिक प्राणी हैं। मनुष्य का व्यक्तित्व का निर्माण केवल उसके अपने विचारों से ही नहीं बल्कि बाह्य प्रभावों से भी होता हैं। वातावरण, परम्पराओं, संगीत का एक अपना महत्व है। इस महत्व की अपेक्षा करते हुए यह बात सदैव ध्यान में रखनी चाहिए कि हम दूसरों से बहुत कुछ सीख सकते हैं। वास्तव में औरों से सीखना जरूरी भी हैं। हमारे अस्तित्व का निर्माण ही इस प्रकार हुआ हैं कि हम औरों से कटकर नहीं जी सकते, इसीलिए आदमी को कभी भी सीखना बंद नहीं करना चाहिए ,औरों से सीखकर अपने जीवन को समृद्ध बनाया जा सकता हैं।

उम्र भर विद्यार्थी बने रहने की प्रवृत्ति विश्व के सारे महापुरुषों में मिलेगी। निरन्तर सीखते रहने का मतलब हैं निरन्तर विकास। हम जहाँ कमजोर हैं वहाँ औरों से शक्ति प्राप्त कर सकते हैं। कोई भी आदमी बिना नुकसान उठाएँ बिल्कुल अकेला नहीं रह सकता। औरों से सम्पर्क तोड देने का अर्थ है जीवन की प्रगति से किनारा बचाकर निकल जाना। इसका सीधा प्रभाव हमारे व्यक्तित्व के विकास पर पडता है। नये विचारों का आदान-प्रदान रूक जाने से थमे हुए पानी की तरह व्यक्ति के मस्तिष्क में सडांध उत्पन्न हो जाती हैं।

निरन्तर अपनी मौत के बारें में सोचते रहने से भी आदमी बूढा होता है। मौत के बारे में सोचते रहने का मतलब है कि हम हमेशा उस स्थिति से भयग्रस्त रहते हैं जब शरीर की रचनात्मक शक्तियों का पूर्ण ह्रास हो जाता हैं। अपनी कार्यशक्ति के समाप्त हो जाने की कल्पना मात्र ही दुःख का स्रोत है। ऐसे आत्मघाती विचारों का प्रभाव व्यक्तित्व की प्रेरणा-शक्ति को निर्बल करता है। परिणामतः हम बुढापे से हार मान लेते हैं। हमारी आँखों के सामने हमेशा कब्र के दरवाजे और जीर्ण-शीर्ण शरीर झूलता रहता है।

डर हड्डियों को गलाना शुरु कर देता है। फाँसी की सजा पाये हुए कैदी की तरह हम अपने-आप को एक ऐसे गहरे कुएँ में धकेल देते हैं जिसका अंधेरा काला नाग बनकर हमारी रचना-शक्ति को डस लेता है। बुढापे का भय शरीर के पोषक तत्त्वों को अपना काम ही नहीं करने देता। अगर कहीं दुर्भाग्य वश इस मानसिक हालत में हम बीमार हो जाये तो देह रोगों का सामना करने की बजाय उन्हें भाग्य की देन समझकर घुटने टेक देती है। अच्छा भला आदमी अपने दुःस्वप्नों के हाथ बिक कर बेकार हो जाता है।

यह कितने आश्चर्य की बात है कि हम हानिकारक अफवाहों को तो सच मान लेते हैं लेकिन वैज्ञानिकों के निष्कर्षों पर विश्वास नहीं करते। 'पास्चयर इंस्टीट्यूट आफ पेरिस' में मनुष्य-शरीर की गतिविधियों के विषय में अनुसंधान करने के बाद डॉ. मैशिकोफ का कहना है कि ''मनुष्य को औसतन 110 वर्ष तक जीना चाहिए। कोई कारण नहीं कि

थोडी सी सावधानी से चलने वाला मनुष्य इससे जरा भी कम जिए।

और फिर बुढे तो वे होते हैं जो हिम्मत हार बैठते हैं। सदा मन को क्रियात्मक रखने वाले कभी बुढे नहीं होते। आशा आदमी को सदैव नौजवान बनाये रखती है। लंदन की बात है, एक नवयुवती के उसका प्रेमी छोडकर चला गया। परिणामतः वह सोचने विचारने की शक्ति खो बैठी, किंतु उसका प्रेम नहीं मरा। उसका विश्वास उसे रोज खिडकी के पास खडे होने को विवश कर देता। उसे यकीन था कि उसका प्रेमी आयेगा। इस नैसर्गिक भावना ने उसे बुढापे की उम्र तक इतना सशक्त रखा कि उसके न कोई सफेद बाल आया और चेहरे पर कोई झुर्री। उसकी त्वचा में वैसी ही स्कूल के दिनों वाली कांति विद्यमान थी। सत्तर वर्ष की उम्र में जब उसे कुछ अजनबी डॉक्टरों ने उस खिडकी में देखा और उन्हें उसकी सही उम्र बताई गयी तो उन्होंने मानने से इंकार कर दिया क्योंकि वह बीस-बाईस के आस-पास की लगती थी। उम्र का अहसास खो जाने से उसने कभी नहीं जाना कि कितने-कितने वसन्त आये और पतझड गये। बस, अपने प्रेमी की लौ से लगन लगाये उसने इतने वर्ष गुजार दिये। जिसे उम्र के गुजरने की फिक्र ही न हो वह बूढा कैसे हो सकता है?

कहावत है कि "चलता हुआ आदमी और दौडता हुआ घोडा कभी बूढे नहीं होते"। बुढापा रूक जाने का नाम है। अपने मन में दृढ विश्वास रखिये कि यौवन प्रकृति का वह उपहार है जो सबको भरपूर मिला है। मूर्ख इसे गवाँ देते हैं। बुद्धिमान बनाये रखते हैं। बार-बार दोहराईयें कि देखने-सुनने में बूढे हो जाना आपकी इच्छा शक्ति पर निर्भर है, मैं जवान हूँ; अगर मैं बुढापे के बारे में न सोचूँ तो कभी बूढा नहीं हो सकता। लोगों को बकने दीजिए। आपके दोस्त मित्र कह-कहकर आपको बूढा कर देगें। ऐसे दुनिया की बातों पर कान रखने से कभी कोई जिंदा रहा है। जो आप रहेगें। अपना भला-बुरा खुद सोचकर आगे बढने की हिम्मत, सिद्धान्त, सत्य, सौन्दर्य कभी बुढे नहीं होते। फिर इनमें विश्वास रखने वाला कैसे यौवन को खो सकता है?

सोते समय इस बात का ध्यान रखिये कि आपके मन में कहीं बूढे हाने का चोर ना छुपा हो। सोने से पहले प्रफुल्ल होना बहुत आवश्यक है। सोने से पहले सारी फिक्रों को दियासलाई दिखा दीजिए वरना ये चिंतायें रात भर आपको याद रहेगी। और परेशान करेंगी। सोना एक ऐसी प्राकृतिक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से व्यक्ति के व्यक्तित्व का पुनर्निर्माण होता है। इस प्रक्रिया में किसी भी तरह खलल नहीं पडना चाहिए। सोते वक्त उन तमाम बातों के बारे में सोचिए जो आपको सबसे ज्यादा प्रिय है। वे तमाम सुनहरे सपने सोते समय आपकी आँखों में होने चाहिए जिनके लिए आप सुबह से शाम तक मेहनत करते हैं। नींद के दौरान जब मस्तिष्क स्थिर होकर शिथिल हो जाता है तो चिंतायें उसे कुरेदने लगती है। इसलिए दिन-भर भले ही चिंताओं की गठरी ढोईयें लेकिन इसे अपने

सोने वाले कमरे से बाहर निकालिए। सुबह हल्के होकर उठिये और एक बार फिर यह संकल्प दोहराइये कि आप जवान है, आप बूढे नहीं हो सकते; बुढापा खुद भाग जायेगा।

इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि आप जितना काम करेगें, थकान उतनी ही और बढेगी। लेकिन जीने की कला इसी में है कि यह थकान शरीरिक है, मानसिक नहीं, विकास जिन्दगी जीने से घटती नहीं, सिर्फ अनुभव से ग्रहण करती है। आयु क्षय की नहीं, विकास की सूचक है। वैज्ञानिक सिद्धान्त है कि ज्यों-ज्यों कार्य किया जाये शक्ति का विकास होता है फिर यह कैसे संभव है कि आदमी ज्यों-ज्यों कार्य करें त्यों-तों उसकी शक्ति का ह्रास होता जाये? प्रकृति भी इस सिद्धान्त के विरुद्ध है। हमारे शरीर की रचना ही इस प्रकार हुई है कि सैल्ज अपना काम बंद नहीं करते। शरीर जहाँ-जहाँ से टूट-फूट जाता है, वहाँ तत्काल पुनर्निर्माण आरम्भ हो जाता है।

मृत्यु भी शारीरिक प्रतिक्रियाओं के मद्धिम पड जाने का नहीं, रुक जाने का नाम है। शरीर-वैज्ञानिक बताते हैं कि हमारे कुछ अङ्ग रोज पुनर्निर्मित होते हैं, लेकिन इस सारी प्रक्रिया का मस्तिष्क से सीधा संबंध होता है। इसलिए सभी चिंताएं अपना सर्वनाशक प्रभाव सारे शरीर पर डालती है। यही नहीं, थका देने वालों विचारों की अनिष्टकारी छाया नये सैल्ज को भी विषाक्त करती है। यदि मन में नये-नये विचार हो तो सैल्ज जवान रहते हैं। दूसरे शब्दों में शरीर को बूढा बना देने वाली रासायनीक प्रक्रियायें तब तक प्रारम्भ नहीं होती जब तक मन बूढा न हो जाये। नये विचार पुरानी बोतलों में भरी नई शराब की तरह जीवन-शक्ति में कोई कमी नहीं आने देती।

किंतु निराशावादी विचार इस सतत पुनर्निर्माण की प्रक्रिया में बहुत बडी बाधा है। इन विचारों के आधिक्य से शरीर का विकास रूक जाता है। स्वार्थ, मोह, लोभ, व्यसन, बुढापे के पक्के दोस्त हैं। एक बार इनसे परिचय प्राप्त करते ही बुढापा कभी आपका साथ नहीं छोडेगा। निराशावाद से बढकर तो कोई यौवन का शत्रु है ही नहीं। जीवन को खंडहर समझने वाला निराशावादी न उन्नति करता है, न यौवन भोगता है, न आगे बढता है। निरंतर अंधेरे में रहने से अंधे हो गये कैदी की तरह। उसके लिए खुशी एक ऐसा सपना होती है, जिसकी उसने अपने हाथों गर्दन मरोडकर हत्या कर डाली है। धरती पर फैली हुई धन-सम्पत्ति, सुख-सम्पदायें ऐसे आदमी के लिए बेकार होती है। असमय में मृत्यु का ग्रास बन जाने वाले लोगों का जीवन इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि जवान बने रहने के लिए आशावादी होना बहुत आवश्यक है।

कुछ लोग सिर्फ इसलिए बूढे नहीं होते वे सदैव अपना पुनर्निर्माण करते रहते हैं। वे न काम करने से उबते हैं, न संघर्षरत रहने से, थकान और उदासी तो उन्हें छू तक नहीं जाती। दूसरी और ऐसे भी लोग होते हैं जो कभी खुलकर नहीं हँसते, बुढापा जिन्हें कभी

नहीं छोडता, जो सदैव भविष्य की चिंता से घिरे रहते हैं। इन लोगों में और दूसरे लोगों में बाहर से देखने पर कोई विशेष अंतर नहीं लगता, पर दूसरी किस्म के लोगों के शरीर में अंदर ही अंदर धुन की तरह एक ऐसा कीडा लग जाता है जो अनवरत प्राणदायक सैल्ज को, कर्मशक्ति को सोखता रहता है। परिणामतः ये लोग भरी जवानी में ही बूढे दिखने लगते हैं। ऐसे लोग भूल जाते हैं कि आदर्शों में अपूर्व जीवन्त प्रेरणा होती है किसी ऊँचे तथ्य की सतत साधना करने वाला आदमी कभी बूढा नहीं हो सकता। योजनाओं को क्रियान्वित करते समय हमारा संपूर्ण व्यक्तित्व एक विद्युत् प्रेरणा से परिचालित रहता हैं जो सेल्ज को कभी पुराना नहीं करने देते। जीने का, कर्मरत जीवन का अपना एक आनन्द और यौवन पर्यायवाची है। अगर हम आनंदपूर्वक नहीं जी सकते तो जवान भी नहीं रह सकते।

यौवन को अक्षय बनाये रखने के लिए मानव बहुत शुरु से प्रयत्नशील रहा है। पहले राजा लोग कीमती भस्में या दवाईयाँ बनवाते थे। आजकल लोग ऑपरेशन या प्लास्टिक सर्जरी का सहारा लेते हैं। लेकिन सच यह है कि यौवन का रहस्य दावाइयों में नही, प्रेरणा में हैं। हमारा अपना दृष्टिकोण हमें जवान या बूढा बनाता है। शांति और सादगी को अक्षय बनाये रखने के लिए बहुत जरुरी है। लडाई-झगडे मस्तिष्क को थका देते हैं। इस थकान का सीधा प्रभाव सैल्ज पर पडता है। यह बात अनियंत्रित वासनाओं के विषय में भी सच है। वासनायें असंयमित हो जाने पर शरीर को असमय ही नष्ट कर देती है। वासनाओं से प्राप्त होने वाली प्रसन्नता केवल घर जलाकर की गई रोशनी-जैसी क्षणिक होती है। मन को कर्तव्य पालन में लगाना चाहिए। जो लोग हितकारी कामों में लगे रहते हैं उन्हें कभी अपने अस्तित्व का पश्चाताप नहीं कुरेदता। काम करने वाले आदमी को इतनी फुर्सत भी कहाँ मिलती है कि वह ऐसी वाहियात बातें सोचे। अनुभवी आदमी ज्यों-ज्यों बडा होता है उसकी उपयोगिता बढती जाती है। उपयोगी आदमी अपनी शक्तियों को सदैव क्रियाशील रखता है। उसकी कार्य-शक्ति नष्ट नहीं हो जाती है।

अगर एक बार निश्चय कर लिया जाये कि आयु शरीर पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकती तो शरीर भी आलसी नहीं बनता। ईश्वर ने सृष्टि का, मनुष्य का निर्माण इसलिए किया था कि वह लम्बी आयु भोगे, सृष्टि के सारे सुखों का आनंद उठाकर मरे। मनुष्य की औसतन आयु अधिकांशतः अन्य सभी प्राणियों से लम्बी है। मनुष्य के कंधे पर सृष्टि को सुंदरतर से सुंदरतम बनाने का उत्तरदायित्व है। मनुष्य का जन्म बुढापे के भय से एडियाँ रगड-रगडकर मरने की अपेक्षा कर्मरत रहकर जीने के लिए हुआ है। मनुष्य की सारी शरीरिक रचना में कहीं इस बात का संकेत तक नहीं मिलता जो उसे कमजोर या बेकार रहने के लिए प्रेरित करें। व्यक्तित्व का ह्रास समस्त प्राकृतिक सिद्धान्तों के विरुद्ध है। प्रकृति की प्रत्येक रचना का उद्देश्य अबाध प्रगति करना है।

एक बार इस सत्य को समझ लेने के बाद मनुष्य बुढापे का कैदी नहीं रह जायेगा। एक समय आयेगा जब लोग बुढापे को अभिशाप समझना बंद कर देगें। व्यक्ति ईश्वर की प्रतिच्छाया है। ईश्वर सत्य है। मनुष्य में झलकता सत्य का प्रतिबिम्ब उसे उच्चादर्शों की ओर प्रेरित करेगा। परंतु यह बिम्ब तभी स्पष्ट होगा जब मन निर्मल होगा। निर्मल हृदय व्यक्ति निर्बाध रूप से प्रगति करता हुआ निरन्तर पूर्णता के आदर्श की ओर बढेगा। आने वाली पीढियों का यह प्रतिनिधि बुढापे के भय से मुक्त, 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की साकार प्रतिमूर्ति होगा। (स्वेटमार्डन)

मस्तिष्क का प्रभाव स्वास्थ्य के ऊपर

मस्तिष्क की संरचना अपने आप में अत्यन्त रहस्यमय है। वैज्ञानिक निरन्तर इसकी खोज कर रहे हैं। मस्तिष्क के गहरे अध्ययन के प्रयास आज भी चालू हैं। यह तो निश्चित हो गया है कि शरीर का संचालन मस्तिष्क है। प्रत्येक विचार का प्रभाव हमारी शारीरिक संरचना पर पडता है। प्रोफसर गेट्स द्वारा किए गये प्रयोगों से सिद्ध हो गया है कि दूषित भावनाएं हमारा रक्त दूषित कर देती हैं। उनके हमारे मन में आते ही कुछ विशेष तत्त्व अपना कार्य बंद कर देते हैं। फलतः रक्त दूषित होना शुरु हो जाता हैं। कुविचारों का जहरीला प्रभाव हमारे शरीर के पोषक तत्वों पर पडता है। वह निश्क्रिय हो जाया करते हैं। इस कारण हमारा शरीर दुर्बल और आलस्य से भी भर जाता है। जब कभी कोई कुविचार हमारे मन में आता है, तो उसका प्रभाव मस्तिष्क पर पडने के कारण मस्तिष्क की कुछ क्षमताएं रुक जाती हैं। रक्त प्रवाह पर प्रभाव पडने के कारण हमारा शरीर प्रभावित होता है और उससे हमारा स्वास्थ्य बिगडता है। कुविचार मन में रहते हैं तो ऐसा आदमी दुर्बल पड जाया करता है। हमेशा गंदे वातावरण में रहने वाला, कुविचार रखने वाला मनुष्य आपको दुर्बल ही नजर आयेगा। उसका चेहरा ही बतलायेगा छोटी आँखें, कपोलो की उठी हड्डियाँ और आँखों के नीचे के सपाट गड्ढे आदि इसका प्रमाण होते हैं। सीधा सादा निष्कर्ष यह निकलता है कि स्वास्थ्य दवाइयों के बल पर नहीं; विचारों के बल पर अधिक निर्भर रहता है। जिस प्रकार के आपके विचार होगें, व वैसा ही आपका स्वास्थ्य बनेगा। अतः चिकित्सकों का कहना है कि कोई भी आदमी संयम से लगातार शारीरिक और मानसिक रूप से बराबर निरोग रह सकता है। वह अपने शरीर का कायाकल्प कर सकता है। आवश्यकता केवल नियमित अभ्यास की है।

मन में अच्छे सुंदर विचारों का आह्वान करने से शरीर को पोषक तत्व मिलते हैं। प्रतिदिन केवल आधा घंटे का समय ही आप अपने मन में अच्छे विचारों के लिए लगायें तो एक माह में ही आपका कायाकल्प हो जायेगा। आपको अपने शरीर में पहले से ज्यादा

स्फूर्ति और शक्ति का एहसास होगा। आपकी चालढाल में परिवर्तन हो जाएगा। आपका व्यवहार, बातचीत गरिमामय हो जायेगी। आपका आत्मविश्वास बढ जायेगा। आप इस प्रयोग को करके देखें।

सुविचार आपके मसित्ष्क के कोषों को मजबूत बनायेगें और बलवान् मस्तिष्क हर समय बडी कुशलता के साथ आपके शरीर का नियंत्रण करता रहेगा। इस प्रकार आप केवल नाम मात्र का समय देकर अपना स्वास्थ्य सुंदर और अपना चेहरा कांतिवान् कर सकते हैं। असुंदर चहरों पर भी आप सद्विचारों के कारण कांति देख सकते हैं। प्रत्येक स्वस्थ पुरुष व नारी के चहरे पर आभा होती है। यह आभा या प्रभामंडल मन के विचारों का होता है। इससे चेहरा दैदीप्यमान हो उठता है। अगरआपके मन में सद्विचार रहेंगे तो आपके चेहरे पर एक लुभावना, आकर्षित देखने वालों को मुग्ध कर देने वाला एक प्रभामंडल रहेगा। जो कुत्सित विचारों से भरा रहता है, उनके चेहरे पर कोई आभा नहीं रहती है। उनके चेहरों पर बुझा-बुझापन सा झलकता रहता है। डिजरायली ने कहा है, **''मेरे दोस्त ! अगर तुम अपना स्वास्थ्य खराब करना चाहते हो तो इसके लिए शराब, तम्बाकू, बेहयागिरी पर पैसा खर्च करने की तकलीफ न करो। केवल आप अपने को गुस्से से भरा रखो। गुस्सा आपके रक्त में इतना विकार पैदा कर देगा कि आपका खून जहरीला हो जायेगा।''**

डिजरायली का यह कथन ठीक है। वास्तव में आप अपना स्वभाव चिडचिडा कर लें। निरन्तर उठा-पटक बराबर करें। स्वभाव तो जायेगा ही साथ आप पागल भी हो सकते हैं। आपकी मौत भी नजदीक आ सकती है। वैज्ञानिकों ने अब तक अनेक प्रयोग कर लिए हैं और मनुष्य के आचरण तथा स्वभाव के नाना प्रकार के परिणाम अब तक सामने आ चुके हैं। मनुष्यों का परीक्षण करके देखा गया है कि गरमी से निकलने वाले स्वाभाविक पसीने से भय या उत्तेजना के कारण निकलने वाले पसीने से भिन्न होता है। एक ही कमरे में कई व्यक्ति हो और भिन्न-भिन्न भावावेशों के कारण उनको पसीना आ रहा हो तो डाक्टर बतला सकता है कि कौन व्यक्ति किस भावावेश में हैं।

हम अपने भावावेशों से स्वयं परिचित होते हैं। खुशी के अवसर पर निकले आंसू इसके प्रमाण है। दुःख में भी आंसू आते हैं। दुःख के आंसू खुशी के आसुओं की अपेक्षा ज्यादा नमकीन होते हैं। यह हमारे भावावेश ही होते हैं कि जिनके वशीभूत होकर हम नाना प्रकार के कार्य कर डालते हैं। हत्या, आक्रमण, चोरी, डकैती, लूट-मार यह सब हम भावावेश के कारण करते हैं। इनके ही वशीभूत हो जाने पर ऐसा करते हैं। रोमांचक और साहसिक कार्य भी मनुष्य इनके ही वशीभूत होकर करता है। अपने मनोभावों की इस शक्ति हम परिचित होते हैं। तो हमें अब यह भी मानना चाहिए कि यह सब हमारे शरीर पर

भी अपना पभाव डालते हैं। हमारे शरीर के संपूर्ण स्नायुओं पर उनका प्रभाव पडता है। यह सीधे हमारी रक्त प्रणाली को पकड लेता है। क्रोध मनुष्य के लिए जहर है, यह आदमी पर घातक प्रभाव डालता है। इसके कारण आदमी की मृत्यु भी हो सकती है। भय सीधे-सीधे रक्त में विकार उत्पन्न करता है। विचारों-विकारों का प्रभाव न केवल मनुष्यों पर वरन् पशुओं पर भी पडता है। पशु भी अपमानित होने पर उत्तेजित हो जाया करते हैं। उन पर भी शारीरिक प्रतिक्रिया होती है। छोटे बच्चों को छोड दीजिए आप। वे फूट-फूट कर रोने लगते हैं। यदा-कदा मानसिक उद्वेग की एक रात जीवन भर के लिए एक गहरी छाप छोड जाती है। स्वस्थ शरीर कौन नहीं चाहता ? स्वस्थ जीवन किसे नापसंद है ? आपका वर्तमान शरीर चाहे किसी रूप-रेखा, आकार-प्रकार का हो, आपका कायाकल्प हो सकता है। बिना किसी दवा के आप ऐसा कर सकते हैं। क्या आप अपना कायाकल्प करना चाहते हैं ? क्या आप आरोग्य की कुंजी को प्राप्त कर जीवन भर स्वस्थ नीरोग बने रहना चाहते हैं, तो शास्त्र हमारे पास है। अगर आप उस पर चलेंगे तो सफलता पा लेगें। आपका कायाकल्प हो जायेगा। आपको नया जीवन, सुखमय जीवन मिलेगा। आपके हाथ में सब कुछ है। आप में आमूल परिवर्तन आ सकता है। इस बातों का पालन करने से ही यह संभव हैं। कई लोग इस राह पर चल कर सुखद फल प्राप्त कर चुकें है। तब भला आप क्यों चूकते हैं। आप इस तथ्य को अपने मन में बैठा लें। यह सब व्याधियाँ केवल उन लोगों के पल्ले पडती है, जो जीवन के तथ्यों को जानते हुए भी उनकी उपेक्षा कर देते हैं। प्रकृति की कभी यह नियती नहीं होती हैं कि कोई मनुष्य बीमार पडे। प्रकृति ने तो मनुष्य को इस प्रकार तत्त्व और शक्तियाँ उनके मन में, शरीर में दी है कि वह रोगों के जीवाणुओं से लड सकता है। अब अपनी शक्ति को मनुष्य अपने कुविचारों, राग, द्वेष, क्रोध, चिंता को गले लगा कर कमजोर कर डाले, तो उसमें बेचारी प्रकृति का क्या दोष है। जिस प्रकार एक कुशल डॉक्टर किसी मरीज के जहर दवा देने पर उसे तत्काल उसका प्रभाव खत्म करने वाली दवा देता है, उसी प्रकार हमें भी उपरोक्त विचारों का विष उतार देना चाहिए। जो व्यक्ति अपनी मानसिक प्रतिक्रियाओं से भली-भाँति परिचित नहीं है, वह शीघ्र ही अपने तनावों के काण अपने स्वास्थ्य का सत्यानाश कर लेते हैं।

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार हमारे मस्तिष्क में आश्चर्य रूप से चिकित्सा शक्तियाँ छिपी है। हम इनका उपयोग कर सदा निरोग रह सकते हैं।

अगर मस्तिष्क को बराबर सजग रखा जाये और इन शक्तियों को जाग्रत रखा जाये जो कोई सवाल ही नहीं पैदा होता है कि हम कभी बीमार पडे।

प्रसिद्ध विचारक रेमण्ड बुल्फ का कथन है कि मनुष्य का मस्तिष्क उसका सबसे बडा डॉक्टर है। बिना कोई फीस लिए वह सभी बीमारियाँ खत्म कर सकता है। अव्वल तो

बीमारियों को वह पास फटकने नहीं देता है और बीमारियाँ आ भी गयी तो उनको रूकने नहीं देता है, उखाड कर फेंक देता है। अतएव हमें अपने मस्तिष्क पर अधिक भरोसा रखना चाहिए। डाक्टर बुल्फ के कथनानुसार हमें अपना मस्तिष्क हमेशा शांत और प्रसन्न रखना चाहिए।

मस्तिष्क पर किसी भी प्रकार के बोझ या तनाव हमेशा हानिकारक होते हैं। मस्तिष्क की जब तक इनसे सुरक्षा होती रहेगी, तब तक आपको किसी भी प्रकार का रोग नहीं पकडेगा। मस्तिष्क को मानसिक यंत्रणाएँ बिल्कुल नहीं मिलना चाहिए। मस्तिष्क अगर पीडित नहीं रहेगा तो वह शरीर के तंतुओं को ठीक रखेगा, और आने वाली बीमारियों को रोकेगा। कुछ लोग बीमार होते ही कुछ देर में ठीक हो जाते हैं। अनर्गल या अवांछित पदार्थ अगर खा भी लेते हैं, तो तत्काल वमन कर देते हैं। थोडी देर उनको किसी रोग के कारण पीडा होती है। फिर वह ठीक हो जाते हैं। संसार का कोई व्यक्ति इस बात का दावा नहीं कर सकता है कि आज तक वह बीमार नहीं पडा। कुछ न कुछ, एकाध बीमारी उसको अपने जीवन काल में अवश्य होती हैं। भला संक्रामक रोगों से भी कोई अछूता बचा है, पर इसके बावजुद स्वस्थ शरीर वाला अधिक समय तक बीमार नहीं रह सकता है। वह शीघ्र छुटकारा पा लेता है। मस्तिष्क की स्वस्थता आवश्यक है। इसी मानसिक स्वस्थता के न होने के कारण मनुष्य अपराध करता है, आत्म-हत्या करता है। स्नायविक कमजोरियां उसे इसके लिए प्रेरित करती हैं। मनुष्य के मस्तिष्क के असंतुलित होने पर उसमें स्नायविक कमजोरियाँ आ जाती हैं। उनका मन इतना अधिक दुःखी हो जाता है कि वह आत्महत्या कर लेता है। स्नायविक कमजोरियाँ मनुष्य के दिल दिमाग को सर्वथा निराशा और उदासीनता से भर दिया करती हैं। वह बेहद टूट जाता है। मस्तिष्क पर जब बेहद तनाव का भार पडता है, तो स्नायविक दुर्बलताएँ अपना प्रभाव जमा लेती हैं। तनाव का भार बढता जाता है। और अन्ततः वह जीवन व्यर्थ मान आत्महत्या कर लेता है।

यदा-कदा ग्लानि की पराकाष्ठा के कारण भी ऐसा होता है। ग्लानि से उत्पन्न मानसिक तनाव मनुष्य को तोड देता है और तब उसको अपना जीवन एक क्षण के लिए भी व्यर्थ लगता है। बस! वह जीवन लीला समाप्त कर डालता है।

जिस मस्तिष्क के द्वारा मनुष्य अपने जीवन का अंत कर डालता है, उसी मस्तिष्क के बल पर वह अपना जीवन प्राप्त कर सकता है, या आरोग्य लाभ कर सकता है। इससे ही हमें मस्तिष्क की महानता का पता चलता है।

हममें से बहुत से लोग ज्ञान न होने के कारण दुःखों का शिकार बनते हैं। हमारी शारीरिक व्यवस्था को अत्तेजक विचार बेहद क्षति पहुँचाते हैं। इनका हमारे शरीर पर ऐसा प्रभाव पडता है कि तीस-पैतीस साल की उम्र में ही हम बहुत बूढे दीखने लगते हैं। आपने

देखा होगा, कुछ लोग अपने उमर से ज्यादा बूढे लगते हैं। इसका कारण उनके मानसिक तनाव ही हैं। इसके कारण ही शरीर के अवयव उनकी उमर ज्यादा ही दिखला देते हैं। मानसिक तनाव मनुष्य के शरीर को बेहद क्षति पहुँचाते हैं।

बीमारी का और मस्तिष्क का परस्पर गहरा संबंध होता है। चिकित्सक का जब रोगी से आत्मीय संबंध बन जाता है, जो रोगी ठीक हो जाता है। वह उस डॉक्टर का प्रशंसक बन जाता है, कि बडा अच्छा इलाज करता है। आपने सुना होगा कि कुछ लोग डॉक्टर विशेष की प्रशंसा करते रहते हैं - अमुक डाक्टर बडा अच्छा है। उसकी दवा बहुत लाभदायक है - दवा तो सभी डाक्टर एक समान करते हैं, पर डॉक्टर विशेष की दवा व्यक्ति विशेष को आत्मीयता के कारण संतुष्ट करती है। अस्पतालों या नर्सिङ्ग होमों में नर्सों (परिचारिकाओं) की परम्परा इसी आधार पर हुई है। वह रोगियों के मानसिक धरातल पर आत्मीयता कायम कर लेती हैं। यह आत्मीयता दवा से ज्यादा कारगर सिद्ध होती हैं। रोगी अपेक्षाकृत शीघ्र ठीक हो जाता है।

कम से कम मानसिक उत्तेजना बडी हानिदायक है। मानसिक उत्तेजना को शांत करना कोई कठिन कार्य नहीं है। हम अपने मस्तिष्क में आ गयी गरमी को गरम लोहे के समान ठंडा भी कर सकते हैं।

जब कभी नहाने का पानी बहुत गर्म हो जाये तो उसमें ठंडा पानी मिलाकर उसका तापमान कम किया जा सकता है। इसी प्रकार जब कभी भी किसी प्रकार की मानसिक उत्तेजना बढती सी नजर आये तो पूरी ताकत से अपना ध्यान कहीं और लगा दें। किसी कारण से आपकी उत्तेजना बढ रही है, उस और ध्यान ही न दे। उदाहरण के लिए मान लें कि आपके मित्र ने किसी प्रकार का आपके साथ गहरा विश्वासघात किया है। इस विश्वासघात के कारण आपकी मानसिक उत्तेजना बेहद बढ गयी है, आप बेचैन, परेशान है, मित्र को बार-बार कोस रहे हैं। अपमान को बहुत महसूस कर रहे हैं, आपके मन को एक पल का चैन नहीं है, बस! आप तुरंत उस पर से ध्यान हटा लें। मित्र और उसके विश्वासघात की बात को भुलाकर किसी अन्य विषय पर सोंचे। कहीं और चले जायें। किसी मनोरंजन में अपना मन लगाने की पूरी कोशीश करें। इस प्रकार इस गहरी उत्तेजना से मुक्ति पाले।

उत्तेजना से मुक्ति पाले, कहना और लिखना आसान है, पर कार्य रूप में परिणत करना आसान नहीं है। इसके लिए आपको अपना मन बडा कडा करना पडेगा। अपना मन पूरी ताकत से किसी और विषय की ओर लगाना बडा कठिन होता है। इस कारण शुरु-शुरु में आपको उत्तेजना का सामना करते समय उसे रोकने में बडी कठिनाई होती है, पर जितना भी आप रोक सकें, रोकें, पूरी कोशिश करे। प्रारम्भ में आपको पूरी सफलता नहीं मिलेगी। फिर भी हिम्मत न हारें। हर बार आप उन पर प्रयोग करे। एक वक्त ऐसा

आएगा कि आप सफल हो जायेंगे। उत्तेजना पर अगर आपने कन्ट्रोल करना सीख लिया, तो जीवन में आप बहुता कुछ सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

मनःचिकित्सकों के अनुसार उत्तेजना ही जीवन को बहुत कुछ अस्त-व्यस्त कर देती है। उत्तेजना के कारण मनुष्य अपना बहुतसा नुकसान कर लेता है। न केवल शारीरिक वरन् मानसिक रूप से बहुत आघात पहुँचाती है। इससे उत्पन्न भावावेश के कारण मनुष्य गलत काम कर बैठता है। इस कारण अनावश्यक रूप से दुश्मनी, द्वेष के कारण अपने ही दायरे को अपने गले में फांसी का फंदा बना लेता है। इससे उसकी सफलताएँ अटक कर मर जाया करती हैं।

वैसे विचारों का संतुलन तथा मानसिक नियंत्रण कतई मुश्किल काम नहीं है। अपने मन को सरल तथा उद्वेग हीन बनाए रखने क लिए केवल थोडे से आत्मबल की आवश्यकता है। अगर एक बार व्यक्ति संतुलित विचारों की महत्ता को समझ लें, तो फिर कठिन से कठिन समय में भी मनुष्य बौखला नहीं सकता और वह अपना संतुलन बनाए रख सकता है। वह गंभीर रहकर अपने व्यक्तित्व की गरिमा को बनाये रख सकता है। प्रत्येक आने वाली विपत्ति का सामना करने के लिए वह अपने को मानसिक रूप से तैयार रख सकता है। जब आप उत्तेजनाओं पर नियंत्रण करना सीच लेते हो, तो निश्चित जानिये कि आपका शरीर आधे से अधिक रोगों पर विजय प्राप्त कर चुका है। जैसा कि आरम्भ में बताया जा चुका है। हमारी बुरी आदतों और विचारों का प्रभाव हमारे शरीर पर भी पडता है। अतएव आरंभ में हमें सदा सतर्क रहना चाहिए। इस प्रकार आप अपना जीवन सफल बना सकते हैं। (स्वेट मार्डन)

जैसा मन वैसा शरीर

डॉक्टर सेमुअल का नाम चिकित्सा विज्ञान में अनजाना नहीं है। उन्होंने अपने एक विद्वतापूर्ण निबंध में यह प्रमाणित किया है कि जैसा मन रहेगा, वैसा ही शरीर। शरीर मन पर आश्रित हैं। मन में रोग की भावना है, तो रोग शरीर में अवश्य रहेगा। मन स्वस्थ है, तो शरीर भी स्वस्थ रहेगा। इसी बात पर दार्शनिक अरस्तु का कथन है कि, स्वस्थ मन, स्वस्थ शरीर में ही रह सकता है। शरीर और मन के स्वस्थ संतुलन पर ही मनुष्य सुख और शांति का अनुभव कर सकता है। जब यह संतुलन बिगड जाता है तो मनुष्य को नाना प्रकार की व्याधियाँ पकड लिया करती हैं। जिस व्यक्ति का शरीर स्वस्थ न हो, वह भला सशक्त चिंतन या कार्य कैसे कर सकता है। वह तो बीमारी के कारण खाट पर पडा कराहता ही रहेगा। रोग से उत्पन्न पीडा के कारण बेचारा स्वयं वह घटता ही रहता है। जो अस्वस्थ होगा, उसके विचार भी अस्वस्थ होते हैं। रोगी व्यक्ति मौत को सन्निकट जानकर निराशावादी हो जाता है। उसको अपना सारा भविष्य अंधकारमय नजर आता है, जिसके मन में बराबर रोग-बीमारियों के विचार रहेगें, वह

भी अपना शरीर स्वस्थ नहीं रख सकता है। मन के विचार शरीर पर अपना जबरदस्त प्रभाव डालते हैं। स्वस्थ मन और स्वस्थ शरीर जीवन की पहली आवश्यकता है। इस बल पर ही मनुष्य प्रसन्न रह सकता है और कुछ भी कार्य कर सकता है।

मनुष्य का शरीर और मन दो प्रकार की स्थितियों में बहता है। पहली स्थिति जाग्रत अवस्था की है और दूसरी सुप्तावस्था की। जागृति की दशा में मनुष्य सजग और सचेष्ट दशा में रहता है। उसका शरीर सक्रिय रहता है। ज्ञानेंद्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ जागृत रहती हैं। उसका सम्पर्क संबंध बाह्यजगत् से बना रहता है। इसी को चेतनावस्था कहते हैं। जब तक हम जगे रहते हैं, इसके विपरीत सुप्तावस्था में अर्थात् जब हम निद्रामग्न हो जाते हैं, तो हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ सुप्त हो जाती हैं। केवल हमारा मस्तिष्क कार्यरत रहता है। हम निष्क्रिय बिस्तर पर पडे सोये रहते हैं और नाना प्रकार के स्वप्न देखते हैं। बाह्य जगत् से हमारा कोई सम्पर्क नहीं रहता है। ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ सक्रिय न रहने के कारण हम ऊट-पटांग सपने देखते हैं। आकाश से गिरना, पहाडों को उठाना आदि अकल्पनीय, असंभव दृश्य देखते रहते हैं। हम सुप्तावस्था में अवचेतन या अचेतन दशा में रहते हैं।

सुप्तावस्था को साधारण भाषा में नींद कहा जाता है। नींद प्रकृति का एक सिद्धान्त है। प्रत्येक जीव के लिए नींद अत्यावश्यक है। यह संतुलन बनाये रखती है। इसी निद्रा के लिए प्रकृति ने रात का समय बनाया है। नींद प्रत्येक जीव को तरोताजा रखती है। उसे कार्य शक्ति प्रदान करती है। बिना नींद के हम कुछ समय तक रह सकते हैं पर हमेशा बिना नींद के नहीं रहा जा सकता है। बिना नींद के हमारा शरीर संतुलन बनाये ही नहीं रख सकता है। इसका अभाव मनुष्य का शरीर एकदम तोडकर रख देता है। नींद का प्रत्येक जीव के लिए महत्व है। नींद के संबंध में अब तक काफी वैज्ञानिक खोजें हो चुकी है। यह धारणा है कि हम नींद में अचेत रहते हैं। शरीर और मन निष्क्रिय रहता है, गलत है। वास्तव में हमारा शरीर नींद में उसी प्रकार बढता रहता है, जिस प्रकार जाग्रत अवस्था में। हमारे बाल, नाखुन भी नींद में बढते, बदलते रहते हैं। चेहरे की झुर्रियाँ, आँखों के नीचे के काले गड्ढे सब नींद में बनते रहते हैं। कई लोगों को नींद में बोलने की आदत भी रहती है। वह लोग नींदकी अचेतनावस्था में ही उठकर घर से बाहर निकल पडते हैं और फिर वापस आ जाया करते हैं। अतएव यह मानना पडता है कि नींद की दशा में शरीर या मन की क्रिया बंद नहीं होती है, वरन् चलती रहती है। यह बात अलग है कि मनुष्य को नींद के कारण ज्ञान नहीं रहता है। निद्रावस्था में भी हमारा मन शरीर को अपने नियंत्रण में रखता है।

जो लोग अपने व्यवसाय या कर्म के तरीकों के कारण तनावपूर्ण दिन व्यतीत करते हैं, वह रात के समय नींद में बडबडाते हैं, स्त्रियों में भी इसी प्रकार की आदत होती है। वह नींद में कुढती और बेचैन रहती है। नींद में बडबडाने या कुढने वाले व्यक्ति को अपनी

क्रियाओं का कुछ भी ज्ञान नहीं रहता है। उसके पास लेटने वाले व्यक्ति को ही इसका आभास रहता है। नींद टूटने या उसके जागने पर जब उसे बतलाया जाता है कि वह इस तरह कर रहा था, तो उस व्यक्ति को स्वयं इस पर आश्चर्य होता है। अपनी निद्रा अवस्था के कारण उस बेचारे को कुछ ज्ञान ही नहीं रहता है। जो लोग नकली जीवन जिया करते हैं। उनकी दशा हमेशा तनावपूर्ण होती है। मन चिंता से बराबर भारी रहता है। निरन्तर वह भीतर ही भीतर सोचते रहते हैं। उनके मन पर बोझ होता है। रात में वही सब उनके मन में घूमता रहता है। फलतः मन के दबाव के कारण वहीं बातें होठों से बाहर आ जाया करती है।

बहुत से लोगों का जीवन इतना तनावपूर्ण होता है कि उन्हें रात के समय नींद नहीं आती और आती भी है, तो इतनी कच्ची या हल्की कि जरा सी आहट या झटके से खुल जाती हैं। अगर खुल गयी तो फिर नींद आने का नाम नहीं लेती। रात के अंधकार में वह बिस्तरपर करवटें बदलते हुए अनेक प्रकार की चिन्ताओं और भयावह विकारों से ग्रस्त हो जाते हैं। ऐसे लोगों का स्वास्थ बराबर बिगडता जाता हैं और वह क्रमशःअनिद्रा के रोगी हो जाते हैं। बहुत से आपने इस प्रकार के लोग भी देखे होंगे कि जिनको नींद ही नहीं आती हैं। उन्हें नींद आने की गोलियाँ या दवाइयाँ अथवा इंजेक्शन लेने पडते हैं। कृत्रिम नींद में जीते हैं! कुछ लोग मादक द्रव्यों का सेवन करने लगते हैं । अन्ततः एक न एक दिन इस प्रकार के लोग आत्मघात कर लेते हैं। अथवा बडा ही कष्ट पूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। जिस किसी भी व्यक्ति को ठीक से नींद नही आती हैं, उसका स्वास्थ्य बडा कमजोर हो जाता हैं। उसके स्वभाव में चिडचिडापन आ जाता हैं। मन और तन दोनों रोगग्रस्त हो जाया करते हैं।

प्रकृति द्वारा नियोजित तथा निर्धारित स्थिति का ही नाम निद्रा हैं। सारे दिन काम करने से मनुष्य का शरीर, मन थक जाता है। कार्यरत रहने से हमारे शरीर में बना लैक्टिक एसिड समाप्त हो जाता हैं। यही लैक्टिक एसिड हमारे शरीर के अंगो में शक्ति का संचालन करता है। इसके समाप्त हो जाने पर हम थकावट काअनुभव करते हैं। लौक्टिक एसिड हमारे शरीर में वही कार्य करता है, जो मोटर में पेट्रोल। मोटर में पेट्रोल नहीं है, मशीनरी ठीकठाक है, पर चलेगी नहीं। यही स्थिति लौक्टिक एसिड हमारे शरीर में रखता है। लैक्टिक एसिड हमारे खान-पान से ही हमारे शरीर में बनता है। जब हम विश्राम करते हैं, तो यह शरीर में बनने लगता हैं। इस कारण हमें विश्राम ओर निद्रा की नितान्त आवश्यकता पडती है। निरन्तर क्रियाशील रहने से शरीर के साथ-साथ मन भी थक जाता है। जब शरीर और मन दोनों थक जाते हैं तो हमें आलस्य आने लगता है, ऊँबासियाँ आने लगती हैं। नींद के कारण शरीर और मन दोनों विश्राम चाहते हैं इस प्रकार रात में हमारे शरीर में पर्याप्त लैक्टिक एसिड बन जाता है और सुबह हम तरोताजा उठते हैं।

निद्रा से ही शरीर और मस्तिष्क को विश्राम मिलता है। निद्रा पूरी करने के बाद ही

हम तरोताजा और काम करने लायक होते हैं। इसी कारण जब हम सोकर उठते हैं, तो हमारा शरीर तरोताजा और फुर्तीला मालुम पडता है। जो लोग सोकर उठने के बाद अपने को चुस्त-फुर्त नहीं पाते हैं, उनमें कोई न कोई दुर्बलता रहती है। जिन लोगों को नींद नहीं आती है या कम आती है, उनके शरीर और मस्तिष्क को विश्राम नहीं मिलता। इस कारण उनका शरीर धीरे-धीरे क्षीण होता रहता है, वे शिथिल और सुस्त हो जाते हैं। उनकी कार्यशक्ति कम हो जाती है। चिंतन मन की शक्ति घटती जाती है। इसका प्रभाव उनके कार्यों पर पडता हैं उनका अपना व्यवसाय या जहाँ वे कार्य करते हैं वह कार्य प्रभावित होने लगता है। वे योग्य ठंग से संपादन नहीं कर पाते हैं। इस प्रकार उनके जीवन की सुख-शांति समाप्त हो जाती है।

जब आदमी की आँखों में नींद नहीं उतरती है, तो इसका मतलब है कि चिंता या उद्वेग से वह ग्रस्त है। जो लोग हमेशा चिंता ग्रस्त रहते हैं या कुछ उद्वेग उनके मस्तिष्क में समाये रहते हैं, उनके मस्तिष्क को विश्राम का समय नहीं मिलता है। जब तक मनुष्य के दिमाग में तनाव बना रहेगा, उसे नींद नहीं आ सकती है। नींद लाने के लिए मस्तिष्क में तनाव नहीं होना चाहिए। मस्तिष्क शांत और निर्मल होना चाहिए। मन हल्का हो। नींद से ही मनुष्य का स्वास्थ्य बनता है। नींद अच्छी न आने से मनुष्य का स्वास्थ्य क्रमशः गिरता जाता है। कुछ लोग दफ्तर या दुकान से आने के बाद भी बिस्तर पर लेटकर उन्हीं बातों पर सोचते रहने से तनाव बढता है। तब ऐसी दशा में भला कैसे नींद आ सकती है। ऐसा करने से लोग इस बात को समझते हैं कि इस प्रकार रात-दिन काम करने या चिंता करने से वह अपने व्यापार या कार्य में उन्नति कर लेगें, लेकिन वह इस बात को नहीं सोचते कि इस प्रकार करने से वह जब अपना स्वास्थ नष्ट कर लेगें तो उन्नति क्या कर सकेगें? इस प्रकार कष्ट उठाकर वह अपना मार्ग रोक लेते हैं। स्वस्थ रहने के लिए कम से कम छह घंटे की नींद आवश्यक है।

कुछ लोग लडते-झगडते या सोचते हुए बिस्तर पर जाते हैं। इस प्रकार करने से नींद आ सकती है ? ऐसा करने से आप नींद को आने से भगा देते हैं। कुछ लोग रात को सोने से पहले अपनी पत्नी से किसी न किसी बात पर झगडा कर लेते हैं। कुछ औरतें भी रोती झींकती बिस्तर पर जाया करती हैं। ऐसी दशा में अगर इस प्रकार के लोगों को नींद न आये, तो इसमें किसका दोष है ? तनावपूर्ण दशा में अगर नींद आ भी जाये तो वह लाभदायक नहीं होती है। ऐसी ही नींद में आदमी बडबडाता या दुःस्वप्न देखा करता है। इस प्रकार की दशा में अपनी नींद पूरी कर लेने के बाद भी मनुष्य अपना शरीर स्वस्थ और हल्का महसूस नहीं करता है। स्वस्थ निद्रा की पहिचान यही है कि सुबह उठने पर शरीर एकदम हल्का-फुल्का और फुर्तीला होना चाहिए। इसी प्रकार कुछ लोग चिंताओं और भय का बोझ सिर पर रख कर सो जाते हैं। उन्हें रात भर 'भय' सा बना रहता है और नींद बडी कच्ची होती है। प्रायः ऐसे लोगों को बहुत भयावह डरावने स्वप्न आया करते हैं। इस

कारण उनकी नींद अचानक टूट जाय करती हैं। यह ठीक से सोच भी नहीं पाते।

सपने क्यों आते हैं ? वैज्ञानिकों की दृष्टि में इसके दो कारण है। शारीरिक और मानसिक। पेट के रोगों या खानपान के कारण आते हैं। इस प्रकार के कारण शारीरिक माने जाते हैं। मानसिक कारण हमारे मन में दबी अतृप्त इच्छाओं के कारण बनते हैं। वही अतृप्त इच्छाएँ स्वप्न में नाना प्रकार के रूप धारण कर प्रगट होती है। नींद के समय अवचेतन मन से यह अतृप्त इच्छाएं बाहर निकलकर स्वप्नों में बिखर कर हमको जकड लिया करती हैं। हम उनमें खो जाते हैं। स्वप्न अच्छे भी होते हैं, बुरे डरावने भी होते हैं। रङ्ग रूप के अनुसार हमारे शरीर के स्वास्थ पर अपना प्रभाव डालते हैं अगर भला स्वप्न होगा तो वह हमारी शारीरिक रचना को प्रफुल्लित रखेगा। हमारा स्वास्थ बना रहेगा। भयावह डरावने पर इनका गहरा प्रभाव पडता है। कई बार इस प्रकार के स्वप्न देखकर अचानक हमारी नींद टूट जाया करती है। फिर हम उसके बारे में सोचते रह जाते हैं। नींद तब आती या देर से आया करती है। इन स्वप्नों के कारण कई बार हम अपने अनिष्ट की भी कल्पना कर सकते हैं। इस प्रकार दुःस्वप्नों का हमारे शरीर पर दोहरा प्रभाव पडता है।

अपने दिल-दीमाग पर बोझ लेकर सोने से नाना प्रकार के स्वप्न आप पर अपना प्रभाव डालते हैं। अतएव दिल-दिमाग पर किसी प्रकार का बोझ लेकर बिस्तर पर न जायें। हमेशा प्रसन्न मन से निद्रा का आह्वान करें।

ऐसी बात नहीं है कि स्वप्न देखना ही नहीं चाहिए। सच्चाई तो यह है कि संसार का प्रत्येक मनुष्य स्वप्न देखता है। ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं है जो इस बात का दावा कर सके कि वह स्वप्न नहीं देखता है। प्रत्येक मनुष्य निद्रावस्था-सुप्तावस्था में स्वप्न अवश्य देखता है। स्वप्न भी दो प्रकार के हैं। एक तो वह जो हमें याद नहीं रहते। इतना जरुर याद रहता है कि हमने सपना देखा है। पर कैसा और क्या ? सोकर उठने पर हमको याद नहीं आता है। इस प्रकार के सपने हल्के तथा अप्रभावशाली होते हैं। इनका शरीर या मस्तिष्क पर किसी भी प्रकार का कोई प्रभाव नहीं पडता है।

स्वप्नों से, जो घबराहट कारक होते हैं, छुटकारा पाना आवश्यक है। इस संबंध में एक व्यापारी का उदाहरण प्रस्तुत है। उसे रात के समय नींद न आती थी। वह सो नहीं पाता था और प्रायः डरावने स्वप्न देखा करता था। इस प्रकार उसका स्वास्थ गिरने लगा। उसने एक मनःचिकित्सक से राय ली।

मनःचिकित्सक ने पूछा, ''क्या तुम घर पर काम काज करने भी ले जाते हो ?'' हाँ ! ''हमेशा व्यापार की सोचते हो !'' हाँ उसका जवाब था। तब मनःचिकित्सक ने उसको सलाह दी अपने कार्यालय का कार्य वह अपने घर एकदम न लाया करे। जो कार्य हो कार्यालय में ही बैठकर करें। भले ही देर से घर लौटे। घर आने पर अपने व्यापार के बारे

में एकदम न सोचें। अपना व्यापारी रूप एकदम भूला दो केवल घरेलु आदमी बनकर आये। अपनी बीवी, बच्चों को प्यार करें, उनके साथ खेले-कुंदे।

उस व्यापारी ने इसका पालन किया। घर पर काम लाना बंद कर दिया। जितना हो सकता कार्यालय में करता वरना छोडकर चला आता था। घर आते ही यह भूल जाता कि वह व्यापारी है। एकदम घरेलु आदमी बन जाता। पत्नी, बच्चों से अपना मन बहलाने लगा। कुछ ही दिनों में एकदम ठीक हो गया। अपनी सारी गंभीरता अपने बाहर के सारे रूप, परिवार में प्रवेश करते समय हटा दीजिए। एकदम पारिवारीक व्यक्ति बन जाइये। ऑफिस की या व्यापार की चर्चा कोई बात न करिये। मस्तिष्क पर किसी भी प्रकार की समस्या या तनाव लेकर मत लेटिये। देखिए आपको बडे सुख की नींद आती है।

सुखद नींद का अर्थ है, अच्छा स्वास्थ। अच्छे स्वास्थ का अर्थ है, अतिरिक्त कार्य क्षमता। आप प्रतिदिन स्वस्थ रहकर पूरी शक्ति के साथ अपना कार्य कर सकते हैं। आपको स्फूर्ति और प्रसन्नता कायम रहेगी।

मुश्किल की बात तो यह है कि हममें से बहुत कम लोग विश्राम की कला जानते हैं। विश्राम करना भी एक कला है। इस कला को भी सीखना, जानना पडता है। विश्राम करने का यह मतलब नहीं जब जहाँ मन में आया लेट लिया और मान गये कि हमने विश्राम कर लिया है। इस तरह विश्राम करना विश्राम नहीं कहलाता है। वरन् समय नष्ट करना और उद्विग्नता बढाना होता है। चाहे जहाँ जैसे भी लेट लेने की बात नहीं बनती है। स्थान और समय का ध्यान भी रखना पडता है। विश्राम जबतक मन भार मुक्त न हो किसी प्रकार लाभदायक नहीं हो सकता है। स्थान और समय का भी अपना महत्व है। कुछ लोगों को आपने देखा होगा। अपरिचित और नये स्थान पर जल्दी नींद नहीं आती है। इसका कारण उनके मन का समन्वय न बैठना है। अपने परिचित स्थान पर मनुष्य जितनी निश्चिन्तता के साथ सो सकता है। उतनी निश्चिन्तता के साथ अन्य स्थान पर नहीं। यही बात है कि यात्रा में, मेलो-ठेलों में, ट्रेन-बसों में या हॉटलों के कमरों में जल्दी और सरलता से नींद नहीं आती है।

वैसे भी आज दिन-ब-दिन मनुष्यों का जीवन इतना व्यस्त और विस्तृत होता जा रहा है कि उसके लिए चैन नामक चीज दुर्लभ बनती जा रही है। आराम से सो पाना भी मुश्किल हो रहा है। इसी कारण आज मनुष्य मानसिक बिमारियों से ज्यादा ग्रसित होता जा रहा है। दिल का दौरा, हृदय रोग, ब्लड प्रेशर आदि मानसिक तनाव वाली बीमारियाँ बढती जा रही है। कुर्सी पर बैठकर कार्य करने का समय दिन-ब-दिन बढता जा रहा है और इस कारण क्लर्कों, बुद्धिजीवियों, कुर्सी पर बैठकर काम करने वालों को गैस की बीमारी हो जाती है। इस बदलते भौतिक, औद्योगिक युग में सुख की नींद बडी महंगी होती जा रही है। स्वास्थ्य के लिए सुख की नींद आवश्यक है।

वैसे मनःचिकित्सक इसके लिए कई प्रकार के मनोवैज्ञानिक तरीके बतलाते हैं। पर सबसे आसान तरीका जो सबके लिए उपयोगी है, इस प्रकार है। अपने कमरे में अंधकार कर चुपचाप लेट जाइये। अपना सारा शरीर ढीला छोड दें। आँखें बंद कर लें और केवल अपने जीवन की प्यारी-प्यारी, सुखद घटनाओं को दोहरायें; आपका मन प्रसन्न और हल्का हो जायेगा। इस प्रकार सोचते-सोचते आपको सुखद नींद आ जायेगी। बहुत अधिक परेशानी हो तो टेबल लॅम्प जलाकर किसी अच्छी पुस्तक को पढना शुरू कर दें। इस प्रकार उसमें अपना मन लगाये रहें। पुस्तक पढते-पढते आपको थकावट आ जायेगी और आप खुद सो जायेगें। नींद आने के लिए अपना मन खुश रखना, हल्का रखना आवश्यक है। मन में सुखद से सुखद कल्पनायें करें और सो जाये, मन में इस भावना को बराबर बैठाये रहें कि आज मुझे बडी प्यारी, खूब मीठी और अच्छी नींद अवश्य आयेगी। जैसे-जैसे यह भावना मन में बलवती होती जायेगी आपको नींद आ जायेगी। सोते समय बिस्तर पर एकाकी लेट कर गंदी बाते सोचना या उनकी कल्पनायें करना हानिकारक है। इसका आपके मन और शरीर पर अच्छा प्रभाव नहीं पडेगा।

स्वस्थ नींद और उचित विश्राम हमारे शरीर और मन के स्वास्थ्य के लिए लाभदायक है। यदि रात को अच्छी तरह नींद आ जाये और दिल-दिमाग में किसी प्रकार का बोझ या तनाव न हो तो सुबह बिस्तर से उठते ही आपको अपना शरीर एकदम तरोताजा और फूल-सा हल्का मालुम पडेगा। जिनका मन और शरीर स्फूर्ती और ताजगी भरा होता है उनका मस्तिष्क भी उतनी ही ताजगी भरा होता है। शरीर और मन दोनों की कार्यक्षमता परिश्रम, अध्यवसाय, चिंतन मनन की जितनी आवश्यकता है, उतनी ही उचित विश्राम की भी।

मनोवैज्ञानिक खोजों के अनुसार स्वस्थ नींद से एक और लाभ है। नींद के समय जब मन बाह्य जगत की चिंताओं से घिरा रहता है, तो अनेक ऐसी समस्यायें जिन पर व्यक्ति दिन भर विचार करता रहता है, नींद के समय अवचेतन मन से उठकर चेतन में चली जाती है। तब मन स्वयं ही उनपर विचार करने लगता है। अक्सर नींद में इस प्रकार की समस्यायें हल हो जाती है। कई लोगों का अनुभव है कि अनेक ऐसे प्रश्न जिन्हें वह दिन के समय लाख प्रयत्न करने पर भी हल नहीं कर सकें रात के समय नींद में अपने आप हल हो गये। रेखा गणित का जन्म सपने में ही हुआ। कई चित्रकारों को चित्र रंग सपने में ही सूझे। लेखकों को लिखने की प्रेरणा मिली। अंग्रेजी के महान् कवि व्यूबोल्क को अपनी प्रसिद्ध रचना नींद में सपने में सूझी। सिलाई मशीन के आविष्कर्ता एलियास ओबे को अपनी सिलाई मशीन को लेकर परेशानी थी। उसकी सूई का धागा टूट जाया करता था या उलझ जाता। मशीन ठीक थी, परेशानी केवल सूई से थी। रात को उसने सपना देखा एक आदिवासी बार-बार उसको भाला मारने के लिए तान रहा है। अनायास उसके भाले पर नजर गई तो नोक के पास एक छेद भी चमक रहा

था। वह आदिवासी अपना भाला दिखाकर भाग गया। अचानक एलियास की नींद टूट गई। वह खुशी से उछल पडा। उसने ऐसी सूई बनाई जिसमें नोक के पास ही छेद था और जब उसमें धागा डाला तो सारी समस्या हल हो गई। इतिहास में और महापुरुषों के जीवन चरित्र में इस तरह के सैकडों उदाहरण भरे पडे हैं। स्वस्थ निद्रा आपकी अनेक समस्याओं का हल कर देती है। हमेशा कुछ न कुछ नये सुझाव और नयी बाते आपको सुझती ही रहती है।

स्वस्थ निद्रा को स्वास्थ्य और सफलता के लिए अत्यावश्यक माना गया है। इसको ही आधार मान कर मनोवैज्ञानिकों ओर डाक्टरों ने स्वस्थ निद्रा को आवश्यक माना है। कम से कम छह घंटे की नींद प्रत्येक व्यक्ति के लिए जरूरी है। वैसे उम्र के साथ-साथ नींद का समय भी कम हो जाता है। बाल्यकाल में नींद सबसे ज्यादा आती है। यौवन काल में कुछ कम हो जाती है। वृद्धावस्था की और जाते समय और कम हो जाती है। क्रमशः तब केवल तीन या चार घंटे नींद रह जाती है। उम्र के बढते प्रभाव के कारण ऐसा होता है फिर भी मन प्रसन्न रहने पर भी वृद्धावस्था में अच्छी निद्रा आ सकती है। मन का शरीर पर गहरा प्रभाव पडता है। अनेक प्रकार के शारीरिक रोग मन की अस्वस्थता के कारण उत्पन्न होते है। मन के अस्वस्थ होने पर मन के नियंत्रण में कार्य करने वाले अनेक कोष, तंतु, ग्रन्थियां निष्क्रिय हो जाती है। फलतः उनकी इस दुर्बलता का लाभ उठा कर रोग के कीटाणु आक्रमण कर बैठते हैं। हमारा शरीर रोग ग्रस्त हो जाता है। आपने अपना मन चिंतित, उदास कर लिया तो मन ठंडा, बुझा-बुझा सा हो गया आपकी कार्य शक्ति, आपका उत्साह ठंडा पड गया। हो सकता है, कुछ देर में आपका सिर भारी हो जाये। सिर दर्द होने लगे। शरीर में ऐंठन, टूटन मालूम पडे। कमर में, जोड-जोड में दर्द सा प्रतीत हो। मन का दुःख ही कुछ देर बाद किसी न किसी रोग में बदल जाता है। डाक्टर बराबर अनुसंधान कर रहे हैं। अगर आप आरोग्य जीवन व्यतीत करना चाहते हैं, स्वस्थ रहना चाहते हैं, बीमारियों से बचना चाहते हैं तो स्वस्थ निद्रा को अवश्य ग्रहण करें। बार- बार प्रयास करें और सुख की मजे की नींद सोयें। जब तक इस प्रकार आपकी आदत न पड जाये, बराबर प्रयत्न शील रहें। बडे से बडे दुख और संकट काल में भी आप मजे से सोयें। नींद का सुख कभी न खराब करें, नींद से आप बदला क्यों लेते हैं? एक बार एक युवक को फांसी की सजा मिली थी। फांसी का दिन आ गया। उसे बतला दिया गया कि दो दिन बाद फांसी लगेगी। पहरेदार उसे खर्राटे मार कर सोते देखकर दंग रह गये। उनको बडी ही हैरानी हुई। पूछने पर बोला "मरना तो है ही। क्या मेरे जागने, न सोने से फांसी की सजा टल जाएगी।" उसका यह जबाब एकदम सही था। यह बात अलग है कि वह फांसी पर लटका दिया गया पर एक सशक्त प्रमाण है कि उस दशा में भी मनुष्य सुख की नींद सो सकता है। व्यर्थ रात भर छटपटाना, रोना, पीटना, जागना, यह सब क्या हैं ? मन पर आप इतना संयम कर लेगें तो शायद ही कभी आप बीमार पडे।

अब तक डाक्टर ने अपनी खोजों से सिद्ध कर दिया है कि तिल्ली में अमाशय की खराबियों, ईर्ष्या, स्वार्थ, लोभ के कारण होती हैं। डाक्टर स्नो ने प्रमाणित कर दिया है, स्तन और मूत्र नलिका का नासूर प्रायः उद्वेग, तनाव और चिंता के कारण होता है। मानसिक चिंताओं के कारण रक्त में खराबी आती है। चर्म संबंधी नाना प्रकार के रोग हो जाया करते हैं। ब्लड प्रेशर की बीमारी तो मानसिक चिंताओं के कारण ही होती है तथा घटती बढती हैं। आजकल यह बीमारी आम हो रही है। मनः दशा ही हमारे शरीर को प्रभावित करती हैं। आरोग्य की कुंजी यह है कि अपनी मनः दशा प्रसन्न रखें।

बहुत गुस्से या भय के कारण कई प्रकार के शारीरिक विकार उत्पन्न हो जाते हैं। तीखे क्रोध के कारण भी किसी रोग का होना डाक्टरों द्वारा सिद्ध हो चुका है। जब कोई गहरा उद्वेग होता है या मानसिक आघात लगता है, तो मनुष्य को अर्धांग या लकवा मार जाता है। इसी प्रकार मस्तिष्क संबंधी अनेक रोग भी मनः दशा के कारण होते हैं । शरीर का स्वास्थ मन के स्वास्थ पर निर्भर करता है। अतएव शरीर से कहीं अधिक पहले मन के स्वास्थ पर ध्यान देना चाहिए। हमेशा अपना मन स्वस्थ प्रसन्न रखें। मन को छोटा या दुःखी न करें। खुशदिल रहें और मजे की नींद सोयें। शायद ही, तब आपको कोई बीमारी पकड सके।

वैसे कुछ लोगों का स्वभाव ही 'रोगी' हो जाता है। वह अपने कथन से, अपने मन से रोगी बने रहते हैं। ऐसे लोगों को हकीम लुकमान की भी दवा अपना प्रभाव नहीं दिखला सकती है। ऐसे लोगों के मन में ही रोग की भावना जम जाती है। वह हर दम अपने को रोगी ही प्रकट करते रहेंगे। वह जहाँ कहीं भी जायेगें या किसी से मिलेगें, तो उनका पहला वाक्य होगा, ''भाई मैं तो बीमार रहता हूँ।'' स्वास्थ के बारे में इस प्रकार का दृष्टिकोण अत्यन्त हानिकारक माना गया है। अपने को हमेशा रोगी समझने और कहने वाला व्यक्ति भला कभी स्वस्थ रह सकता है। इस प्रकार सोच-सोच कर वह अपना स्वास्थ चौपट कर लेता है। यदि आपको कोई रोग भी है, तो बार- बार उसकी ही माला जपने से आपका ही नुकसान है। उसका उचित इलाज करें। रोग ठीक हो गया, यह भावना बलवती करें। डॉक्टर की सलाह लें। उसकी सलाह का पालन करें। चिंता करने से तो रोग और जोर पकडेगा। जो रोग शरीर में भी न होगा, वह हो जाएगा, चिंता करके, बार- बार माला जप कर आप नाना प्रकार के रोग उत्पन्न कर लेते हैं। रोग होने पर उसकी चर्चा भी न करें। भीषण से भीषण रोग को मामूली समझें। हर मिलने जुलने वाले से उसकी चर्चा करना बेकार ही समझे। रोग होने पर भी आप अपने को स्वस्थ समझें। अपने मन में बार-बार यह भावना लायें कि आप ठीक हैं, स्वस्थ है।

अगर आपको इस बात का संदेह हो जाये कि आपको कोई रोग है, तो इसकी चर्चा भी अपनी जुबान पर न लायें। सीधे डॉक्टर के पास जाकर सलाह लें। यदि आपको

वास्तव में कोई रोग है, तो वह आपको उचित सलाह देगा। आपको दवा देगा। आपका रोग ठीक हो जाएगा। अगर आप डाक्टर को दिखलाने की बजाय स्वयं को रोगी समझने लगें, तो भी कई रोग न होने पर भी आपको हो जाएगा। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है। कुछ लोगों का स्वभाव ही ऐसा होता है कि, वह हमेशा ढीले-ढाले, शिथिल तथा अनावश्यक रूप में सुस्त बने रहते हैं। ऐसे लोगों को जरा भी बीमारी हो जाये, चोट-चपेट लग जाये या बुखार चढ जाये, तो वह झट बिस्तर पकड लेते हैं। सचमुच वे फिर गहरे बीमार पड जाते हैं। उदास रहना, अवसाद ग्रस्त रहना, सुस्त बने रहना यह सब ढंग बीमारी को नियंत्रण कर देते हैं। अतएव इस प्रकार के विचारों से सदा अपने को मुक्त रखे। यदि मन के भाव रोगी के समान है, तो शरीर अवश्य ही रोगी हो जायेगा।

बहुत से लोगों का ऐसा खयाल है कि विचारों का कोई महत्व नहीं होता है। उसका मन पर या जीवन पर कोई असर नहीं होता है। उनका आम तौर पर कथन है ''भाई सोचने से क्या होगा। जो होना होगा सो हो जायेगा।'' इस प्रकार के लोग इस बात को नहीं जानते की मनुष्य के विचार ही उनका भाग्य बनाते हैं, भविष्य का निर्माण करते हैं। भविष्य को जानना ही तो भाग्य को पढना है। अपना अतीत जानकर कोई क्या करेगा। अतीत उसका भोगा, देखा, जाना रहता है। वह तो भविष्य जानना चाहता है कि कल क्या होगा ? कल का भविष्य आप पर नहीं विचारों पर निर्भर करता है। जैसी आपकी विचार धारा होगी, वैसा ही आपका भविष्य होगा।

शरीर तो पशु-पक्षियों का भी होता है, लेकिन वे इस प्रकार कि सभ्यता-संस्कृति का निमार्ण नहीं कर पाये, जैसे कि मनुष्य नामक शरीर धारी ने की है। मनुष्य ही एक मात्र अकेला ऐसा प्राणी है जिसने इस पृथ्वी पर इतनी उन्नति की है। यह उन्नति कैसे संपन्न हुई? विचारों से, कल्पना से , कार्य से, उत्साह और उन्नति से। विचार कोई अमूर्त कमजोर धारणाएं नहीं है। वरन् जीवन्त और गतिशील धारणाएँ है। यह एक बार प्रकट हो जाने पर दबाई नहीं जा सकती है। एक बार मनुष्य के मन में कोई विचार आ जाये वह मनुष्य को उसी प्रकार से प्रभावित करता है जैसे जलवायु फसलों को। फसलों का उन्नत होना, उन्नत न होना सब जलवायु पर निर्भर करता है। अच्छी जलवायु फसल को बढिया करती है। विपरीत जलवायु के कारण सूखे की संभावना बढती है। तब फसल ही ना हो, खेत काटा ही ना जाय, उसी प्रकार शुभ और अच्छे विचार मनुष्य को सुख, समृद्धि और सफलता की ओर ले जाते हैं। गंदे, अशुभ विचार इसका विपरीत फल देते हैं।

विचारों की अवहेलना या उपेक्षा कभी नहीं करना चाहिए। उनके महत्व को समझकर शुभ विचारों को ग्रहण करना चाहिए। अशुभ विचारों को अपने पास मन में न आने दें। अपने स्वास्थ के हेतु कम से कम इसका ध्यान अवश्य रखें। जब तक आपके मन

में स्वस्थ विचार बने रहेगें, तब तक आपके लिए स्वास्थ सम्बन्धी खतरा नहीं है।

स्वास्थ की आधारशिला है संतुलन और नियम। जिस मनुष्य का दैनिक जीवन नियमित नहीं होता है उसका स्वास्थ कभी ठीक नहीं रह सकता। हमारा शरीर एक यंत्र के समान है। यह यंत्र प्राण शक्ति से संचालित है। मन ही इसका संचालन करता है। मन के कहने से ही हम हर काम करते हैं, हिलते-डुलते, उठते-बैठते, चलते-फिरते हैं। जब मन जो इसका चालक है, ठीक न रहेगा तो शरीर क्या चलेगा। बहुत से लोगों को आपने कहते सुना होगा। ''आज मन ठीक नहीं है'' और वह आपको सुस्त नजर आये होगें। मन के कारण ही वे असमर्थ बैठे रह जाते हैं। हमारा मन विचारों से प्रभावित होता है। विचारों से मन, मन से शरीर चालित है। अतएव हमारे विचारों का नियम पूर्वक होना आवश्यक है। अपने विचारों पर नियंत्रण रख मन का चालन करें, मन शरीर का चालन करेगा। जीवन में संतुलन की महत्ता का अनुमान आप इसी से लगा सकते हैं कि हमारे शरीर के सभी अङ्ग एक सुनिश्चित संतुलन की दशा में कार्य करते हैं। जब कभी शरीर का संतुलन बिगड जाता है, तो शरीर के विभिन्न अङ्ग अपना निर्धारित कार्य समय पर नहीं कर पाते और वे रोगी हो जाया करते हैं। नियमित और संतुलित जीवन व्यक्ति के स्वास्थ्य को कभी बिगडने नहीं देता। अपने जीवन को नियमित और प्रफुल्लित बनाइयें तब आप कभी बीमार न पडेगें, सदा आरोग्य जीवन बीताते रहेगें। साथ ही सफलता और समृद्धि आपको मिलती रहेगी। जैसा आप अपना मन रखेगे वैसा आपका शरीर होगा। मन पर विचारों की अशुभ छाप न आने दे। अशुभ विचारों से शरीर का संतुलन बिगड जाता है। दूषित विचार सबसे बडे शत्रु है। प्रायः गंदे विचार हमें एकांत में या रात को सोते समय घेर लिया करते हैं। इनके स्थान पर आप अच्छी बातों का चिंतन करें। गंदगी के स्थान पर भावनापूर्ण प्रेम-प्यार की कल्पना करें। व्यवहारिक रूप में होने वाला कार्य कल्पनाओं में सोच-सोच कर अपना मन खराब न करें। जो सुख व्यवहार में है, वह कल्पनाओं में कहाँ है। अतएव उस पर सोचे ही नहीं। अपने परिवार के साथ सुख-शांति के साथ रहें और मिठी नींद में सो जाए।

बिसेन्ट चर्चिल इंग्लैड के सबसे लोकप्रिय प्रधानमंत्री रहे हैं। वह असेम्बली में प्रधानमंत्री बने रहते थे, पर घर में कदम रखते ही उनका प्रधानमंत्री रूप समाप्त हो जाता था। वह तब एकदम घरेलु हो जाया करते थे। उनसे प्रशासन संबन्धी या राजनीति की कोई बात करता था, तो वह उसे फौरन मना कर देते थे। एक बार एक पत्रकार ने उनका इंटरव्यू लेना चाहा। 'आप कृपया कल दोपहर आयें।'' क्या शाम को आप के घर पर -----''
'' जी नहीं घर में मैं केवल चर्चिल हूँ, इस बात को आप ना भूलें।'' उनका कठोरता के साथ जवाब था। इस प्रकार बिसेन्ट प्रधानमंत्रीत्व को अपने साथ घर न ले जाते थे। इसी प्रकार का व्यवहार आप को भी करना चाहिए। व्यापार और अपना पारिवारिक व्यवहार

अलग-अलग रखें। इससे आपके मन, दिमाग पर तनाव न होगा। आपका पारिवारीक जीवन सुखी और प्रसन्नता पूर्ण होगा। अपने जीवन को आरोग्यमय रखने के लिए अपने मन को निरोगी रखना पहली शर्त है। शरीर का आकार-प्रकार कैसा भी क्यों न हो, रूप-रङ्ग कैसा भी हो, मन ठीक तो सब ठीक, जैसा मन वैसा शरीर। आप इस बात को कदापि न भूले। यही आरोग्यता की एक कूंजी है। (स्वेट मार्डन)

व्यग्रता को दूर करने के उपाय

व्यग्रता मुख्य रूप से कुछ छिपे हुए कारणों का शरीर-विज्ञान सम्बन्धी लक्षण है। जिनमें से कुछ का सम्बन्ध आहार और जीवन शैली से जुडी आदतों से हैं। यह कोई कमजोरी नहीं जिसे छिपाया जाये। बल्कि एक लक्षण है, जिस पर ध्यान देने की जरुरत है। योग इसे इसी रूप में लेता है।

योग व्यग्रता जैसी किसी भी शरीर या मस्तिष्क से जुडी समस्या के लिए आहार को प्रथम रक्षापंक्ति के रूप में देखता है। आहार पर इतना जोर दिये जाने की वजह साधारण है। दरसल योग पूरी तरह से वैज्ञानिक नजरिये से मार्गदर्शित है। विटामिन 'ए' जल्दी से जज्ब कर लिया जाता है, जिससे स्ट्रैस होर्मोन बनते हैं। व्यग्रता विटामिन 'सी' के स्तर को बहुत जल्दी बिगाडती है। जिसके कारण शरीर में इसकी माँग बढ जाती है। विटामिन 'सी' तनाव (स्ट्रैस) से शरीर में हुई जैव-रासायनिक प्रतिक्रियाओं के कारण पहुँचे नुकसान को दुरुस्त करती है। कैल्शियम की कमी और व्यग्रता के लक्षणों में काफी समानात है। जैसे - बात-बात पर खींसना, तनाव, अवसाद, कमजोर याद्दाश्त और नींद न आना। तेज श्वास लेना व्यग्रता का एक और परिणाम है। इससे खून में कैल्शियम की मात्रा कम हो जाती है। नतीजतन उलझन, चक्कर आना और माँसपेशियों में ऐंठन की समस्या होने लगती है। व्यग्र लोगों में मैग्निशीयम और जिंक की कमी से बाल झडने लगते हैं। प्रतिरोधी क्षमता कम हो जाती है और घाव भरने में ज्यादा वक्त लगता है इसलिए झगडालु व्यक्ति का घाव देरी से भरता है। मैग्नेशियम की कमी से नींद नहीं आती और धडकन बढ जाती है।

यदि आप व्यग्रता से सात्विक तरीके से निपटना चाहते हैं तो, फलियाँ योगर्ट और डेयरी उत्पाद गौ-रस, हरी और पत्तेदार सब्जियाँ, गहरे रङ्ग की सब्जियाँ और फल, गिरी व बीज, सोयाबिन और उसके उत्पाद, जैतुन के तेल, जई कैमोमाइल टी (बबून फूल की चाय), ब्रुअर यीस्ट और साबुत अनाज खाइये। इसमें पाये जाने वाले तत्त्व शरीर व मस्तिष्क को ठंडक पहुँचाते हैं। अक्सर यह उन लोगों को बहुत राहत पहुँचाता है जिन्हें दीर्घ कालिक तनाव की समस्या रहती है या व्यग्रता के दौरे पडते हैं। इसका नतीजा भी लगभग तुरंत ही दिख जाता है। दरसल लोगों को बहुत जल्दी यह अहसास हो जाता है कि काम की अत्याधिक व्यस्तता

या बहुत तनाव की समस्या रहती है या व्यग्रता के दौरे पडते हैं। इसका नतीजा भी लगभग तुरंत ही दीख जाता है। दरसल लोगों को बहुत जल्दी यह अहसास हो जाता है कि काम की अत्याधिक व्यस्तता या बहुत तनाव की स्थिति में खाने को नजर-अंदाज करके उन्होंने कितनी बडी मूर्खता की है। इसके बाद योग भंडार में योग संबन्धि शारीरिक अभ्यास है इनमें जल नेती जैसी क्रियायें शामिल है। क्योंकि ये दायें और बायें अर्ध गोलार्ध के बीच संतुलन स्थापित करती है। एक व्यग्र या उद्विग्न व्यक्ति अधिकतर दायें अर्धगोलार्ध की अत्यधिक प्रतिक्रिया से पीडित रहता है। बायें नथुने को सक्रिय करने पर हमारे शरीर के तार्किक और शांत हिस्से भी सक्रिय हो जाते हैं। ये हिस्से डर या भावनाओं से उतना अधिक संचालित नहीं होते। योग संबन्धि दूसरी संतुलनकारी क्रिया विधियाँ नाडी शोधन, शुद्ध हवा की प्राप्ति के लिए कपालभाति जैसे प्राणायाम और भस्त्रिका है। इनसे तनाव के कारण होने वाले सिरदर्द या माइग्रेन से निपटने में सहायता मिल सकती है। या फिर शांत करने वाले प्राणायाम जैसे भ्रामरी और शीतली या शीतकारी अपनाइयें। ये तनाव या चिंता से होने वाले आंतरिक रोगों को संबोधित करते हैं। तनाव से राहत पहुँचाने का एक अन्य तरीका है, उज्जयी या श्वास पर विजय प्राप्त करना। इसका असर तुरंत होता है। दरसल उज्जयी के अंतर्गत गर्दन में स्थित वगुस नामक नस पर मालिश की जाती है। पैरासिम्पैथिटिक नर्वस सिस्टम की यह नाडी शरीर के बहुत से महत्वपूर्ण कार्यों जैसे- श्वसन-दर, धडकन, रक्तचाप, रक्त-रसायन, पाचनतंत्र, संचारतंत्र आदि के संपर्क में रहती है।

जब हम व्यग्र या फिर तनाव में होते हैं तो ये सभी तंत्र हाई-अलर्ट की स्थिति में आ जाते हैं। आधुनिक युग में जिसे हम भावनात्मक तनाव नाम से संबोधित करते हैं। यह उसके प्रति शरीर-विज्ञान की पूरी प्रतिक्रिया है। कल्पना कीजिए अगर हम एक ब्लैंक कॉल के निपटारे के लिए पूरी फौज को बुलाते रहे तो क्या होगा। ऐसा ही शरीर के अंदर होता है। एक उद्विग्न व्यक्ति कुछ आदतों की वजह से ''भेडिया-भेडिया'' चिल्लाता रहता है। कुछ समय के बाद शरीर की चौकस व्यवस्था इससे थक जाती है। नतीजतन नियमित थकान और तनाव से होने वाले साइको-सोमेटिक संकटों का दुश्चक्र चलने लगता है। इन साइको-सोमेटिक संकटों में पाचन संबन्धि अधिकतर समस्याएं, हृदय संबन्धि बहुत सी बिमारियाँ और संचार तंत्र से जुडी समस्यायें जैसे-कॉलेस्ट्रॉल, रक्तचाप (कम और ज्यादा दोनों), सिरदर्द और माइग्रेन, शरीर दर्द, कमर दर्द, श्वसन संबन्धी अधिकतर समस्यायें और जीवाणुओं और संक्रमण को आमंत्रित करने वाली कमजोर प्रतिरोधी क्षमता शामिल है। परिणाम स्वरूप जब परिस्थितियाँ शरीर के वश से बाहर हो जाती है, तो वह ऐसा रास्ता निकालता है जिससे कि उसे आराम मिल सके। व्यक्ति को किसी बिमारीयों के जरिये चलने-फिरने की हालत में नहीं छोडता। यानि आराम के लिए परिस्थितयाँ उत्पन्न कर देता है। मगर यकीनन आज के युग में इस

आराम की किमत बहुत ऊँची है। इसीलिए तनावग्रस्त व्यक्ति दूविधा में फंस जाता है। एक ओर वह लगातार अपने भीतर चल रही इस अव्यवस्था से आराम पाना चाहता है। तो दूसरी ओर ऐसा करने में खुद को अक्षम पाता है। योग इसके लिए उपाय सुझाता है। वह कहता है कि हम अभ्यासों की सहायता से अपना नजरियाँ ही बदल लें तो प्रत्यक्ष रूप से तनाव के दौरों से झूझ रहे सभी तंत्रों को फिर से सेहतमंद बनाया जा सकता है। यह उद्विग्न व्यक्ति को कुछ हद तक नियंत्रण प्रदान करता है। जिससे तनाव के इस दुष्चक्र को तोडने में सहायता मिलती है। यदि आप पहले से ही योगाभ्यास कर रहे हैं और तनाव से छुटकारा पाना चाहते हैं तो इन अभ्यासों को भी शामिल कर लिजिए। ये गुस्से के प्रबंधन में भी सहायक है। योग मुद्रा शशांकासन, वालासन, पश्चिमोत्तानासन, योगनिद्रा और त्राटक कहा जाता हैं। अंतिम दो अभ्यास रात को सोने से पहले करने पर भयहीन और सुकून की नींद आती है। यदि आप को अपने-आप योग निद्रा करना मुश्किल लगता हो तो आप कैसेट का इस्तेमाल कर सकते हैं। जिनमें निर्देश रिकार्ड किये रहते हैं। ये सभी अभ्यास ठंडक पहुँचाने वालें है और हमारे भावों में काफी हद तक बदलाव लाते हैं। पाया गया है कि उद्विग्नता असहाय स्थिति का वह स्तर है जिसे आप सीखते हैं तो इन आसनों, प्राणायाम और ध्यान के नियमित समर्पित अभ्यास की सहायता से इसे अपने शरीर से उखाड फेंकना भी सीखना चाहिए। (योगाचार्य शमीम अक्खतर)

कुंठा की प्रतिक्रियाएं

व्यक्ति की अनेक आंतरिक, बाह्य एवं शारीरिक आवश्यकताएं होती है, जिनकी पूर्ति हेतु व्यक्ति सतत् प्रयासरत रहता है और अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है। यदि व्यक्ति अपने लक्ष्य तक पहुँच जाता है, तो उसे संतुष्टि होती है तथा एक प्रकार के संतोष का अनुभव करता है। परंतु यदि व्यक्ति अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाता है तब उसे एक विशेष प्रकार की संवेगात्मक वेदना की अनुभूति होती हैं। व्यक्ति की इसी अतृप्त वेदना पूर्ण संवेगात्मक तनाव की स्थिति को कुंठा कहते हैं, अर्थात् कुंठा मानसिक निराशा एवं अतृप्तता की संवेगात्मक वेदना की स्थिति है।

मनोविश्लेषणवादियों के अनुसार व्यक्ति की अनेक कुंठाएं उसके अहम (इगो) की व्यावहारिक अकुशलताओं से उत्पन्न होती है अर्थात् जब व्यक्ति का इगो और सुपर इगो के कठोर आदेशों एवं इद्म के आवेशों के मध्य समन्वय स्थापित करने में असफल हो पाता है तब व्यक्ति कुंठाग्रस्त हो जाता है।

कुंठा के प्रति व्यक्ति की प्रतिक्रिया लगभग 50 प्रतिशत नकारात्मक होती है और लगभग 50 प्रतिशत सकारात्मक। नकारात्मक एवं सकारात्मक प्रतिक्रियाएँ व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य, उसके पारिवारिक संस्कार एवं उसके चारों तरफ के जैविक वातावरण

पर निर्भर करती है।

सकारात्मक अभिव्यक्ति :- व्यक्ति अपने लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु प्रयासों को तीव्र करता है। उदाहरणार्थ कभी-कभी कोई युवक अपनी मनपसंद युवती से विवाह करने में असफल हो जाता है। इसका कारण यह है कि उसने वह वांछित शैक्षिक योग्यता प्राप्त नहीं की, जितनी लडकी वाले चाहते थे। अतः अब नवयुवक अपने लक्ष्य प्राप्ति हेतु (उसी युवती से विवाह) अथक प्रयास द्वारा वांछित शैक्षिक योग्यता प्राप्त कर लेता है, अतः उसकी कुंठा के प्रति सकारात्मक प्रतिक्रिया हुई। कुंठा के प्रति एक सकारात्मक प्रतिक्रिया उस स्थिति में भी देखने में आती है, जबकि कुंठित होने पर अपने लक्ष्य में वह थोडा आवश्यक परिवर्तन कर लेता है। उदाहरणार्थ कोई युवक एम.एससी. उत्तीर्ण नहीं हो पाता, तब वह अपनी व्यावहारिक कुशलता से अपने लक्ष्य में थोडा आवश्यक परिवर्तन करके एम.एससी. के बजाय एम.ए. की परीक्षा देता है और उत्तीर्ण हो जाता है। और एक कटु-स्थिति से सफलतापूर्वक बच निकलता है। कुंठा के प्रति सकारात्मक प्रतिपूर्ति (कम्पनसेशन) भी दो प्रकार की होती है। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष

जब व्यक्ति अपनी कुंठाजन्य क्षति की प्रतिपूर्ति कुंठा के क्षेत्र में ही विशेष प्रयासों द्वारा प्राप्त कर लेता है, तो इसे प्रत्यक्ष प्रतिपूर्ति कहते हैं। उदाहरणार्थ - जब असाधारण शारीरिक निर्बलता से निरंतर पीडित व तंग होकर एक व्यक्ति दैनिक प्राणायम, व्यायाम, आत्मविश्वास एवं संतुलित भोजन द्वारा पुनः स्वस्थ नवयुवक बन जाता हैं तब यहाँ अपनी शारीरिक निर्बलता के प्रति कुंठा की सकारात्मक प्रतिपूर्ति का यह एक प्रत्यक्ष उदाहरण है। परंतु एक विकलांग व्यक्ति के लिए यह संभव नहीं है कि वह प्रयासों द्वारा अपना लंगडापन दूर कर सके और चलने, खेलने एवं दौडने आदि की क्रियाओं में प्रयास द्वारा उन्नति कर सके। तब इसकी क्षतिपूर्ति हेतु वह एक कुशल मूर्तिकार, गायक या चित्रकार बन जाता है। यह उसकी कुंठाजन्य अभाव की सकारात्मक क्षतिपूर्ति का एक अप्रत्यक्ष उदाहरण है। इसी प्रकार एक अंधा व्यक्ति कुशल गायक अथवा वाद्य यंत्रों से मधुर ध्वनि निकालने वाला वादक बन जाता है। यह उसके अंधे होने की कुंठा की क्षतिपूर्ति का सकारात्मक पहलु है। इसी प्रकार कम सुंदर लडकी अपनी कुंठा की क्षतिपूर्ति हेतु अधिक से अधिक डिग्रियाँ प्राप्त करने का प्रयास करती देखी गयी है। अथवा उस कुंठा की क्षतिपूर्ति हेतु अपने व्यवहार में अतिशिष्टता प्रदर्शित करती हुई अथवा समाज सेवा या उच्च पद प्राप्त करने का प्रयास करती हुए देखी गई है।

ये समस्त उदाहरण सकारात्मक कुंठा की प्रत्यक्ष क्षतिपूर्ति प्रतिक्रियायें हैं। इसी प्रकार कुंठा जन्य निराशा के प्रति कभी-कभी व्यक्ति विभिन्न परिष्कृत रूपों में व्यक्त करता देखा गया है। जैसे कुंठित एवं निराश प्रेमी अपनी दमित भावों की अभिव्यक्ति सुंदर काव्य रचनाओं के माध्यम

से करता है। मनोविश्लेषणवादियों के अनुसार यहाँ व्यक्ति का अहम् अपने इद्म की कुंठित इच्छाओं का एक ऐसा सुंदर चित्रण है जो पराहम् (सुपर इगो) की दृष्टि में सामाजिक एवं नैतिक रूप से स्वीकृत तथा अनुमोदित है। सकारात्मक इसलिए है कि यह साहित्य के क्षेत्र में किया गया श्लाघनीय कार्य है। अब हम कुंठा के प्रति नकारात्मक प्रतिक्रिया का भी उल्लेख करेगें। कोई विद्यार्थी कक्षा में सामान्य है, क्योंकि वह सामान्य बुद्धि-लब्धि का बालक है। अपनी इस कुंठा की प्रतिक्रिया स्वरूप वह लोकप्रिय बनना चाहता है। इस कारण वह कक्षा में शरारत करके कक्षा के बालकों एवं शिक्षकों का ध्यान अपनी तरफ आकर्षित करने का प्रयास करता है। तथा शिक्षक की डाँट-फँटकार सुनने के पश्चात भी अपनी उदंडता दिखाता रहता है। यह बालक की कक्षा में सामान्य या उससे न्यून उपलब्धि की कुंठा की नकारात्मक प्रतिक्रियायें हैं। कुंठा के प्रति नकारात्मक प्रतिक्रिया के स्थिति-जन्य कारण भी है। उदाहरणार्थ आधुनिक समाज में व्यक्ति का विवाह लगभग 25 वर्ष या उसके पश्चात् होता है। जब कि साधारणतः दैहिक दृष्टि से 18 वर्ष की आयु में ही व्यक्ति काम हेतु परिपक्व हो जाता है। ऐसी स्थिति में यदि उसका इद्म उसके पराहम् (सुपरइगो) पर हावी हो जाता है तो वह परस्त्री गमन या बलात्कार जैसे जघन्य कार्य प्रतिक्रिया स्वरूप कर बैठता है। कभी-कभी व्यक्ति स्वयं या उसके अभिभावक उसकी कुंठा के स्रोत बन जाते हैं। व्यक्ति अपनी वास्तविकताओं से विचलित हो जाता है। परिणाम स्वरूप चाहने वाला फल प्राप्त नहीं होता और कुंठा से घिर जाता है। इस प्रकार की कुंठा की नकारात्मक प्रतिक्रिया कभी-कभी आत्महत्या के रूप में भी परिणीत होती देखी गई है। यह प्रवृत्ति किशोर-किशोरियों में अत्याधिक मात्रा में पाई जाती है। अतः यह आवश्यक है कि विभिन्न प्रकार के शिक्षण-प्रशिक्षण कार्यक्रमों में प्रशिक्षणार्थियों को यह बतलाया जाय की कुंठा क्या होती है। तथा इस कुंठा की नकारात्मक प्रतिक्रिया को किस प्रकार सकारात्मक प्रतिक्रिया में परिवर्तित किया जाय? यह प्रशिक्षण समाज के प्रत्येक व्यक्ति के लिए भी आवश्यक है। क्योंकि वर्तमान युग कुंठा का युग है। प्रत्येक व्यक्ति कुंठा ग्रस्त है तथा वह कभी-कभी अपनी कुंठा के प्रति नकारात्मक अभिव्यक्ति व प्रतिक्रिया व्यक्त कर समाज को हानि पहुँचाता है। प्रवीण महाजन द्वारा अपने बडे भाई प्रमोद महाजन पर गोलियों की बौछार करना कुंठा के प्रति नकारात्मक अभिव्यक्ति का ताजा उदाहरण है। अतः समाज के प्रत्येक व्यक्ति को ऐसा प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए कि वह अपने इद्म व पराहम् (सुपर इगो) में एक समन्वय स्थापित कर कुंठा की नकारात्मक प्रतिक्रिया को सकारात्मक प्रतिक्रिया में रूपांतरित करना सीख जाय। (डॉ. ज्ञानप्रकाश गुप्ता)

फोबिया (डर) का कारण एवं निवारण :-

कैसे पहचाने ? :- ज्यादातर लोगों को तीन तरह के नाकरात्मक रिएक्शन प्रतिक्रियायें होती हैं। पहली होती है चिंता। यह शरीर की एक डिफेंस मेकेनिज्म है। जो तब सामने आती है जब हम किसी तरह की हानि या हिंसा का अनुभव करते हैं। दूसरा है डर, यह एक तरह का व्याकुल भाव होता है। इसका अनुभव हम तब करते हैं जब हमको किसी चीज का डर सताने लगता है। और अंतिम है फोबिया। यह इस तरह का अनजाना डर होता है जो तर्क संगत नहीं होता। उदाहरण के लिए आपको कुत्तों से फोबिया हो लेकिन सच्चाई यह है कि कुत्ते हमेशा नुकसान नहीं पहुँचाते हैं।

जब डर बढता जाय फोबिया का पता या तो खुद अनुभव करके होता है, या फिर किसी और को देखकर। एक बार यदि आप किसी चीज से डरने लगते हैं तो उस चीज से दूरी बना लेते हैं। आप जितनी बार उससे दूर भागते हैं डर और बढता जाता है। इसके आलावा किसी डर वाली बात को किसी वस्तु से जोडकर देखने से भी उससे डर लगने लगता है। कई बार फोबिया का लिंक जेनेटिक भी होता है। मनोचिकित्सक डॉ. निलोफर बलसारा कहती है - ''फोबिया होने का कोई कारण नहीं होता, यह एक तरह की चिंता या डर होता है।''

फोबिया के प्रकार :-

सोशल फोबिया :- इसे शोसल एंग्जाइटी डीसऑर्डर (एस.ए.डी.) भी कहते हैं। यह किसी तरह की सामाजिक परिस्थिति का डर होता है। जो दूसरों की वजह से उत्पन्न होता है। **ग्लेसो फोबिया** यानि बहुत सारे लोगों के बीच बोलने से डरना एक ऐसा फोबिया है, जो टीन एजर्स में बहुत ज्यादा देखने को मिलता है।

एगोरा फोबिया :- भिडभाड वाली परिस्थिति या जगह से डरना। एग्रोरेफोबिक लोग अपने घर तक ही सीमित रहते हैं और उन्हें बाहर घूमने जाने में परेशानी होती है।

स्पेसिफिक फोबिया :- बिना कारण या अतार्किक डर जो किसी वस्तु या परिस्थिति से होता है। जिन लोगों को इस तरह का फोबिया होता है वे उन चिजों से दूर रहते हैं। जिनसे उन्हें डर लगता है। यदि उनके सामने उस वस्तु या परिस्थिति का जिक्र भी कर दिया जाय तो वे घबरा जाते हैं।

जंगली चीजों का फोबिया :- * ऑरनीथो फोबिया - पक्षियों से डर * सिलेखो फोबिया - शार्क मछली से डर। * ओफिडियों फोबिया - साप से डर। * इल्यूऐ फोबिया - बिल्लियों से डर।

प्राकृतिक चीजों से डर :- * हाईड्रो फोबिया - पानी से डर। * ब्रान्टो फोबिया - बिजली कडकने से डर। * एक्रो फोबिया - ऊँचाई से डर।

परिस्थितियों से डर :- * नाईक्टो फोबिया - अंधेरे से डर। * एवियो फोबिया - हवा में उडने से डर। * सिबो फोबिया, सिटो फोबिया या सिटियो फोबिया - भोजन या खाने से डर। * नेक्रो फोबिया - मरने से डर या फिर मरी हुई चिजों से डर। * हिमो फोबिया या हिमेटो फोबिया- खून से डर। * एक्मो फोबिया - सूई या नुकीली चीजों से डर। * एट्रो फोबिया :- डॉक्टर से डर, अस्पताल जाने से डर।

कैसे बचे :- इससे बचने के लिए आप पहले खुद को शांत करे। इसके लिए तेज और लंबी सांसे ले और योग का सहारा ले। उन चिजों के संपर्क में आयें जिनसे आपको डर लगता हो। ताकि आपका शरीर उस वस्तु को देखकर कोई प्रतिक्रिया व्यक्त ही न करे। यदि आप ऐसा लगातार करते रहेगें तो जल्दी ही आपको फोबिया से छुटकारा मिल जायेगा।

डॉ. तेंदुलकर कहते हैं यदि आप किसी बहुत ही डरावने हादसे से गुजरे हैं, जिससे फोबिया का जन्म हुआ है तो फिर आपको इसके लिए काउंसलिंग की जरुरत है। बजाय इससे खुद निपटने के।

कब ले विशेषज्ञ की राय :- यदि आपका डर इस हद तक पहुँच चुका है कि आपका काम और स्वास्थ प्रभावित हो रहा है, तो आपको डॉक्टर की सहायता लेनी चाहिए। कुछ मरिज तो अपने फोबिया से इतना घबरा जाते हैं कि अवसाद के शिकार हो जाते हैं। ऐसे में विशेषज्ञ की राय जरुर ले।

कैसे उबरे :- * अंधेरे से उबरने के लिए अपने आस-पास के वातावरण को सुगम्य बनायें। जितना हो सके अपने दोस्तों की मदद से अंधेरे के सम्पर्क में आये। अंधेरे में ज्यादा समय बिताये। * कुत्ते बिल्लीयों या अन्य पशुओं से फोबिया होने पर उन जानवरों की देखरेख की आदत डाले। उनसे नजदीकियाँ बढाये, हो सके तो उन्हें पाल लें। * चुहे, कॉकरोच, मकडी या साँप आदि से डर दूर भगाने के लिए इनके बारे में सोच कर देखें, इन्हें टी.वी. पर भी देखे। * पानी से डर दूर करने के लिए पानी में चलकर देखे। यदि आपको डर लगता है तो इससे जुडे खेलों या अपने परिवार के बारे में सोच कर देखें।

खुश रहिए, रोग भगाइए

एक जाने-माने भारतीय अमरीकि तंत्रिका विज्ञानी द्वारा लिखी गई पुस्तक में कहा गया है कि अगर लोग हमेशा खुश एवं संतुष्ट रहने की कोशिश करें तो वे कई बिमारियों को पास फटकने से रोक सकते हैं।

हर्ली मेडिकल सेंटर में तंत्रिका विज्ञान विभाग के निर्देशक डी.वी. पासूपुलेती ने अपने पुस्तक में लिखा है कि किसी भी व्यक्ति को अपनी पीडा का दर्द का समाधान ढूंढने के

लिए डॉक्टरों के पास जाने से पहले एक बार जरुर सोचना चाहिए कि कहीं उनकी समस्या की जड उनकी नकारात्मक सोच तो नहीं है। हो सकता है कि अगर आप सकारात्मक सोचना शुरु कर दें तो आपकी यह बीमारी या पीडा तुरंत मिट जाए। अधिकांश बीमारियों का समाधान तो व्यक्ति के दिमाग में हैं। अवसाद और तनाव बीमारियों का घर है। अवसाद और तनाव से दिमाग को अनुशासित रखकर बचा सकते हैं। उनका कहना है कि कोई भी व्यक्ति अपनी जरुरतों और अपने दायरों को समझ कर अपनी खुशी के लिए माहौल खुद पैदा कर सकता है।

पासूपुलेती मिशीगन इंस्टीट्यूट विश्वविद्यालय में प्रोफेसर भी है। पासूपुलेती लिखते हैं कि खुश रहने का तरीका हासिल करना न तो कठिन है और न ही रहष्यमयी बात। उन्होंने कहा कि लोग सहज ही खुश रहने की प्रवृत्ति पैदा कर सकते हैं। वर्षों तक तंत्रिका विज्ञानी के तौर पर काम करते रहने से मुझे यह अहसास हुआ कि अधिकांश लोगों की ज्यादातर समस्याओं की जड उनकी सोच है। उनकी पुस्तक 'चेंज योर माइंड : ए न्यूरोलॉजिस्ट गाइड टु हैप्पीनेस' में खुश रहने के कई तरीके सुझाए गए हैं। इनमें माँ से लेकर कॉरपोरेट जगत् के अधिकारियों, छात्रों सभी के लिए खुश रहने के तरीके बताए गए हैं। उनके अनुसार दुनिया में लाखों लोग अवसाद के शिकार है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक रिपोर्ट के मुताबिक धनी देशों के 15 फीसदी लोग अवसाद की गिरफ्त में हैं। (न्यूयार्क)

गम दूर करने के उपाय

एड्रिनल या स्ट्रेस ग्लैंड्स छोटे, तिकोने आकार की होती है। ये गुर्दों के ऊपरी भाग में स्थित होती है। इनका काम शरीर के स्रोतों को बनाना होता है। कई लोग अक्सर तनाव में ही रहते हैं जिससे उनके शरीर में तनाव से बचने की क्षमता नहीं रहती। इसका असर सीधा एड्रिनल ग्लैंड्स पर पडने लगता है और हम तनाव से मुकाबला नहीं कर पाते।

फ्लैश लाईट जैसा काम :- ये ग्लैड्स हमारे शरीर के लिए एक फ्लैश लाइट का काम करती है। ये एक ऐसे चार्ज से भरपूर होती है जिनसे हमारा शरीर काम करने में सक्षम होता है और जरुरत के समय हमें एक्स्ट्रा ताकत देता है। जितनी बार हम इस फ्लैश लाइट का इस्तेमाल करते हैं बैटरी में से चार्ज भी कम होता रहता है। आश्चर्य की बात तो यह है कि यह बैटरी खुद-ब-खुद पौष्टिक भोजन और आराम के जरिए रिचार्ज हो जाती है। साफ शब्दों में कहा जाए, तो अगर एड्रिनल ग्लैंड्स में एड्रिनल की कमी हो जाए, तो हमारा शरीर काम नहीं कर सकता।

कमी के लक्षण :- एड्रिनल की कमी का लक्षण बार-बार थकावट महसूस करना होता है। इसके आलावा और भी कई लक्षण है जैसे नींद पूरी होने के बावजूद भी आराम न

मिलना, तनाव, भूलने की आदत, बार-बार बीमार होना, एकाग्रता भंग होना, डिप्रेशन, मूड में बदलाव होते रहना, परेशान रहना, वजन बढना, कमजोरी और हार्मोनल इम्बैलेंस आदि।

यूं करें मुकाबला :- * जबरदस्ती कामों में न उलझे रहें। शरीर क्या चाहता है उसे समझने की कोशिश करें। अगर शरीर थकावट महसूस करता है तो आँखें बंद कर के कुछ देर गहरी सांस लें। हो सके तो थोडे समय के लिए ब्रेक भी ले सकते हैं ताकि शरीर को भी आराम मिलें। * किसी तरह का कोई वहम न पालें। चिंता, दोष, डर को शरीर से निकाल फेंके। इनसे एड्रिनल ग्लैंड्स को नुकसान पहुँचता है। * रिलेक्शन टेक्नीक्स को सीख कर तनाव का मुकाबला करें। * रात को सोने से पहले लैवेनडर ऑयल पानी में डाल कर हॉटबाथ लें। इस तेल से आपकी नसों को शांति का एहसास होगा और आप चैन की नींद ले सकते हैं। * विटामिन बी-5 एड्रिनल हॉर्मोन बनाने के लिए जरुरी है। इसका इस्तेमाल एड्रिनल ग्लैंड्स के लिए भी फायदेमंद रहता है। (डॉ. रीता)

छोटी-छोटी बडी बातें

* भोजन, विद्याध्ययन, शयन और स्त्री-सहवास - ये चारों काम संध्या समय में कदापि नहीं करना चाहिए। संध्या समय = दिन व रात का संधिकाल होता है और यह समय प्रभु-स्मरण करने का होता है इसलिए सूर्यास्त के समय ईश-प्रार्थना व उपासना करना ही श्रेष्ठ एवं श्रेयस्कर है।

* सिर्फ नेत्रहीन ही अन्धा नहीं होता बल्कि आंख वाले अन्धे भी होते हैं। ऐसे लोग अक्ल के अंधे होते हैं जिनमें कोई क्रोध से अन्धा होता है, कोई लाभ लालच के वश में हो कर अन्धा होता है तो कोई कामवासना के कारण अन्धा हो जाता है। कुछ लोग मोह में अन्धे होते हैं तो कुछ लोग नशे के कारण अन्धे हो जाते हैं। ये सभी प्रकार के अन्धे अपने शरीर और स्वास्थ्य का तो नाश करते ही है इसके साथ-साथ आत्म को भी मलिन करते रहते हैं। इसलिए जो अपना भला-बुरा नहीं देखता है वह आँखों के होते हुए भी अन्धा ही है।

* यदि बहुत लम्बी आयु सुखपूर्वक जीना चाहते हो तो अच्छे परोपकार के काम करना चाहिए, अपने शरीर और स्वास्थ्य की रक्षा करना चाहिए और किसी के प्रति वैर भाव नहीं रखना चाहिए।

आध्यात्मिकता से सम्पूर्ण स्वास्थ्य लाभ

आध्यात्मिकता का स्वरूप

धर्मं कर्म निवर्हणं संसार दुःखतः सत्वान् यो धरत्युत्तमे सुखे ॥ र.श्रावकाचार

अर्थात् धर्म संसारी जीवों को समस्त मानसिक, शारीरिक एवं आध्यात्मिक दुःखों के कारण भूत कर्मों को नाश करके अनंत सुख में धारण कराता है। इससे सिद्ध होता है कि धर्म के माध्यम से अधिदैविक, अधिभौतिक एवं आध्यात्मिक तथा इहलोक, परलोक आदि के भय एवं दुःखों से निवृत्ति होती है एवं जीव को शाश्वतिक, अतीन्द्रिय, आध्यात्मिक अंनत सुख प्राप्त होता है। कहा भी है -

यस्मात् अभ्युदय निश्रेयस् सिद्धिः स धर्मः ।

जिससे स्वर्गादि का अभ्युदय सुख एवं निर्वाण रूपी परम सुख की सिद्धि होती है, उसको धर्म कहते हैं। कहा है - **''धर्मः सर्वसुखाकरो हितकरो''** अर्थात् - धर्म सर्व प्रकार के सुख को देने वाला है, धर्म से ही निर्वाण अथवा मोक्ष सुख मिलता है। इसलिए हे ! सुख इच्छुक भव्य जीवो ! धर्म को ही संचित करीए। धर्म को छोडकर संसारी जीवों का कोई भी हित करने वाला नहीं है। धर्म का मूल दया है अर्थात् करूणा या अहिंसा है। धर्म में ही मैं अपने चित्त को प्रतिदिन लीन करता हूँ। हे जगत् उद्धारक ! सुख-शांतिप्रदायक ! धर्म मेरा पालन कीजिए।

पवित्र क्रियते येन येनैव ध्रियते जगत् ।
नमस्तस्मै दयार्द्राय धर्म कल्पाङ्घ्रिपाय वै ॥

जिससे जीव पवित्र हो जाता है और जो विश्व को धारण करता है, दया से आर्द्र धर्म रूपी कल्पवृक्ष के चरण को मैं नमस्कार करता हूँ। अर्थात् धर्म से ही पतित जीव पावन हो सकता है, दानव मानव बन सकता है, मानव महामानव और भगवान् बन सकता है। यह संपूर्ण चराचर विश्व धर्म पर आधारित है।

धर्मो गुरुश्च मित्रं च धर्मःस्वामी च बांधवः ।
अनाथ वात्सल सोऽयं यः त्राता कारणं विना ॥

धर्म ही गुरु है, मित्र है, स्वामी है, बंधु है, अनाथ का रक्षक है और बिना स्वार्थ के रक्षण करने वाला है।

धम्मो मङ्गलमुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो ।
देवा वि तस्स पणमंति जस्स धम्मे सयामणो ॥

धर्म ही लोक में उत्कृष्ट मङ्गल है, अहिंसा धर्म है, संयम धर्म है एवं तप धर्म है। जिसका मन सर्वदा धर्म में लीन रहता है, उसको स्वर्ग के देव भी नमस्कार करते हैं।

वत्थु सहावो धम्मो, अहिंसा खमादि आद धम्मो ।
रयणत्तयं य धम्मो अणेयंत सुभावणा धम्मो ॥ आ.कनकनंदी

वस्तु का स्वभाव धर्म है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह एवं उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिञ्चन्य, ब्रह्मचर्य ये आत्म धर्म हैं। रत्नत्रय अर्थात् सम्यक्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र धर्म है। अनेकांत (स्याद्वाद), बारह भावना एवं मैत्री, प्रमोद, करुणा एवं माध्यस्थ भाव भी धर्म हैं। इस संक्षिप्त गाथा सूत्र में जो धर्म की विभिन्न परिभाषायें दी गयी हैं, शब्दतः पृथक्-पृथक् होते हुए भी भाव से एक ही है। इसमें प्रायः विश्व में प्रचलित संपूर्ण संप्रदाय की धार्मिक परिभाषायें गर्भित हैं। वस्तु-स्वभाव धर्म यह सामान्य परिभाषा है। चेतन-अचेतन द्रव्य में जो स्व-स्वभाव है, वही धर्म है, जैसे- पुद्गल का धर्म जडत्व एवं जीव का धर्म चेतनत्व है। इस गाथा में संम्पूर्ण परिभाषाएँ चेतन द्रव्य अर्थात् जीव द्रव्य का स्वभाव रूप धर्म की परिभाषाएँ हैं। उपर्युक्त धर्म से समस्त शारीरिक, मानसिक, पारिवारिक, भौतिक, सामाजिक सुख से लेकर आत्मोत्थ अनंत अक्षय आध्यात्मिक सुख की उपलब्धि होती है। उपर्युक्त आध्यात्मिकता/धर्म से विपरीत अधर्म से विभिन्न दुःख/रोग उत्पन्न होते हैं। यथा -

हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनम् ॥

The destructive or dangerous (and) censurable (character of the 5 faults) injury, etc. in this (as also) in the next world (ought to be) meditaed upon.

हिंसादिक पाँच दोषों में ऐहिक और पारलौकिक अपाय और अवद्य का दर्शन भावने योग्य है।

अभ्यूदय और निःश्रेयस् के साधनों का नाशक अपाय है, या भय का नाम अपाय है। अभ्यूदय (स्वर्गादि इहलौकिक संपदा) और निःश्रेयस् (मोक्ष) की क्रिया एवं साधनों के नाशक अनर्थ को अपाय कहते हैं। अथवा इहलोक भय, परलोक भय, मरण भय, वेदना भय, अगुप्ति भय, अनरक्षक भय, अकस्मात भय, इन सात प्रकार के भय को अपाय कहते हैं।

गर्ह्य निंदनीय को अवद्य कहते हैं। ऐसा चिंतवन करना चाहिए कि हिंसक नित्य उद्विग्न रहता है। सतत अनुबद्ध वैर वाला होता है। इस लोक में वध (मारण) -बंधन, क्लेश आदि को प्राप्त करता है और मरकर परलोक में अशुभ गति में जाता है और लोक में भी निंदनीय होता है। अतः हिंसा से विरक्त होना ही कल्याण कारी है। मिथ्याभाषी का कोई विश्वास नहीं करता है। असत्य वादी इस लोक में जिह्वाच्छेद आदि के दंड को भोगता है। जिसके संबंध में झूठ बोलता है वे उसके वैरी हो जाते हैं। अतः उनसे भी अनेक आपत्तियाँ आती हैं। मरकर अशुभ गति में जाता है और निंदनीय भी होता है। अतः

असत्य बोलने से विरक्त होना कल्याण कारी है। परधन के ग्रहण करने में आसक्त चित्त वाला चोर सर्वजनों के द्वारा तिरस्कृत होता है, निरंतर भयभीत रहता है। इस लोक में अभिघात (मारपीट), वध-बंधन, हाथ-पैर, कान-नाक, ओष्ठ आदि का छेदन-भेदन और सर्वस्व हरण आदि दंड भोगता है (प्राप्त करता है) और मरकर परलोक में अशुभ गति में जाता है। अतः चोरी से विरक्त होना ही श्रेयस्कर है, तथा अब्रह्मचारी (कुशील सेवी) मानव मदोन्मद हाथी के समान हथनी से ठगाया हुआ हथनी के वशीभूत हुआ हाथी - मारन-ताडन-बंधन-छेदन आदि अनेक दुःखों को भोगता है। उसी प्रकार परस्त्री के वश हुआ मानव वध-बंधनादि को भोगता है। मोहाभिभूत होने के कारण कार्य (करने योग्य) अकार्य (नहीं करने योग्य) के विचार से शून्य होकर किसी शुभ कर्म का आचरण नहीं करता है। परस्त्री का आलिंगन तथा उसके संग में रति करने वाले मानव का सर्व लोक वैरी बन जाता है। परस्त्रीगामी इस लोक में लिंग छेदन, वध-बंधन, क्लेश, सर्वस्व हरणादि के दुःखों को प्राप्त होते हैं। तथा मरकर परलोक में अशुभगति में जाते हैं और यहाँ निंदनीय होते हैं। अतः अब्रह्मसे विरक्त होना ही श्रेयस्कर है, आत्महित कारक है, तथा परिग्रहवान् पुरुष मांसखंड को ग्रहण किये हुए पक्षी की तरह अन्य पक्षियों के द्वारा झपटा जाता है। चोर आदि के द्वारा अभिभवनिय (तिरस्कृत) होता है। उस परिग्रह के अर्जन, रक्षण और विनाश कृत अनेक दुःखों को प्राप्त होता है। जैसे - इंधन से अग्नि तृप्त नहीं होती उसी प्रकार परिग्रह से तृप्ति नहीं होती। लोभ कषाय से अभिभूत होने से कार्य अकार्य से अनभिज्ञ हो जाता है। परिग्रहवान् मानव मरकर परलोक में नरक, तिर्यञ्चादि अशुभ गति में जाता है। ''यह लोभी है, कंजूस है'' इत्यादि रूप से निंदनीय होता है। अतः परिग्रह का त्याग करना ही श्रेयस्कर है। ये हिंसादिपाप अपाय और अवद्य के कारण हैं ऐसी निरंतर भावना भानी चाहिए।

दुःखमेव वा।

One must also meditale, that the five faults, injury ect. are pain personified, as they themselves are the veritable wonbs of pain.

अथवा हिंसादिक दुःख ही हैं ऐसी भावना करनी चाहिए।

दुःख के कारण होने से हिंसा,असत्य, चोरी, अब्रह्मचर्य एवं परिग्रह दुःख स्वरूप हैं। क्योंकि हिंसादिक पाप से इहलोक में शारीरिक, मानसिक, आर्थिक , सामाजिक आदि दुःख मिलते हैं और परलोक में भी नरक-तिर्यञ्च आदि दुर्गति में जीव को अनेक कष्ट प्राप्त होते हैं। इसका कारण यह है कि हिंसादिक पाप असाता वेदनीय कर्म के आस्रव के कारण हैं और असाता वेदनीय दुःख का कारण है इसलिए दुःख के कारण या दुःख के कारण के कारण जो हिंसादिक हैं उनमें दुःख का उपचार है।

जिस समय जीव हिंसादि पाप करता है उस समय में उसका भाव दूषित होने के कारण जो कर्मास्रव होता है वह कर्मास्रव पाप प्रकृति रूप में परिणमन कर लेता है। यह पाप ही उस पापी को अनेक प्रकार का दुःख देता है। पाप प्रवृत्ति के समय जो दूषित भाव होता है उससे मानसिक-तनाव, मानसिक उद्वेग, चिंता, भय आदि उत्पन्न होते हैं जिसके कारण उसे तत्काल भी मानसिक कष्ट एवं यातनाएं मिलती हैं जिससे विभिन्न मानसिक रोग के साथ-साथ शारीरिक रोग होता है। जैसे- ब्लेड प्रेशर बढना, सिरदर्द, कैंसर, टी.बी, हृदय गति रुकना (हार्ट फेल), उन्माद, पागलपन आदि रोग होते हैं। इतना ही नहीं इस लोक में ही अपमान, प्रताडना, जेल जाना, सामाजिक प्रतिष्ठा का ह्रास, अविश्वास, शत्रुता, कलह यहाँ तक कि प्राण दण्डादि कष्ट मिलते हैं। जो हिंसा करता है उसके फलस्वरूप इस जन्म में उसकी हिंसा हो सकती है पर जन्म में अकाल मरण, रोग आदि यातनाएं सहन करनी पडती हैं।

झूठ बोलने से दूसरों का विश्वास झूठ बोलने वाले पर से उठ जाता है जिह्वा छेद आदि दण्ड मिलता है। केवल एक बार झूठ बोलने पर राजा वसु का स्फटिकमय सिंहासन फट गया। वह नीचे गिरा तथा पृथ्वी भी फट गई और वह पृथ्वी में समावेश होकर नरक में गया। मिथ्या बोलने वाला परभव में गूंगा (मूक) होता है, मुँह में घाव होता है और मुँह में से बदबू आती है।

चोरी करने वाला इस जन्म में अनेक शारीरिक दण्ड को पाता है। उस पर कोई विश्वास नहीं करता है। राजा सरकारादि उसके धन अपहरण करके जेल में दण्ड देते हैं, यहाँ तक कि कभी-कभी प्राण दण्ड मिलता है। परभव में भिखारी बनता है एवं उसका भी धन अपहरण अन्य के द्वारा किया जाता है।

मैथुन सेवन से शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक कष्ट होता है क्योंकि आयुर्वेद के अनुसार एक बार संभोग से जो वीर्य क्षय होता है उतना वीर्य कुछ दिन के भोजन से तैयार होता है। इससे सुजाक , मस्तिष्क दुर्बलता , शारीरिक शक्ति का ह्रास, स्मरणशक्ति का ह्रास, रोग प्रतिरोधक शक्ति की कमी आदि अनेक विपत्तियाँ आ घेरती हैं। वर्तमान में जो एड्स रोग ने विश्व में आंतक फैलाया है उस महा रोग की उत्पत्ति एवं वृद्धि अब्रह्मचर्य से ही हुई है। अब्रह्मचर्य से ही जन संख्या की वृद्धि होती है और इसकी वृद्धि से खाद्याभाव, आवास का अभाव, प्रदूषण में वृद्धि, भुखमरी , समूचित शिक्षा-दीक्षा का अभाव आदि अनेक समस्यायें उत्पन्न होती हैं। अब्रह्मचारी - अति कामुक व्यक्ति हिताहित विवेक से रहित होकर परस्त्री गमन, वेश्या गमन आदि कार्य भी करता है । जिससे उसे अपमान , दण्ड, सामाजिक अप्रतिष्ठा आदि अनेक समस्यायें आ घेरती हैं। कभी-कभी कुशील सेवन से प्राणदण्ड तक मिलता है।

इष्टोपदेश में पूज्पाद स्वामी ने काम भोग से उत्पन्न दुःख का वर्णन निम्न प्रकार

किया है-

आरम्भे तापकान्प्राप्तावऽतृप्तिप्रतिपादकान् ।
अन्ते सुदुस्त्यजान् कामान्, काम कः सेवते सुधीः ॥ 17

आरम्भ में सन्ताप के कारण और प्राप्त होने पर अतृप्ति के करने वाले तथा अंत में जो बडी मुश्किल से भी छोडे नहीं जा सकते , ऐसे भोगोपभोग को कौन विद्वान्-समझदार-ज्यादती व आसक्ति के साथ सेवन करेगा?

किमपीदं विषयमयं, विषमतिविषमं पुमानयं येन।
प्रसभमनुभूयं मनोभवे-भवे नैव-चेतयते ॥

अहो ! यह विषयमयी विष कैसा गजब का विष है कि जिसे जबर्दस्ती खाकर यह मनुष्य, भव-भव में नहीं चेत पाता है।

"जैन धर्म में हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील को जैसे पाप माना है वैसे ही परिग्रह को भी पाप माना है । पाप का अर्थ है- पतन। जिसके कारण जीव पतित होता है उसे पाप कहते हैं। सचित्त एवं अचित्त परिग्रह के कारण जीव अनेक कष्टों को उठाता है तथा अनेक पापों को करता है। परिग्रह संचयके कारण ही समाज में धनी-गरीब, शोषक-शोषित, मालिक-मजदूर आदि विपरीत विषम परिस्थिति से युक्त व्यक्ति का निर्माण होता है। जिसके पास परिग्रह रहता है वह अधिक लोभी, अधिक शोषक, गर्वी बन जाता है। क्योंकि परिग्रह के कारण उसे धनमद हो जाता है। इसे ही कबीरदास ने कहा है-

कनक-कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय।
वे खाये बौराय नर, वे पावे बौराय ॥

कनक (धन ,सम्पत्ति) कनक (धतुरा, विषाक्त फल) से भी सौ गुनी मादक गुणयुक्त है । क्योंकि कनक (धतुरा) को खाने पर जीव नशायुक्त (पगले) हो जाते हैं, कनक (धन सम्पत्ति) को प्राप्त करते ही जीव मदयुक्त हो जाता है।

धन सम्पत्ति (परिग्रह) सर्वथा, सर्वदा दुःखदायी है। पूज्यपाद स्वामी ने इष्टोपदेश में कहा भी है-

दुरर्ज्येनासुररक्ष्येण, नश्वरेण धनादिना ।
स्वस्थं मन्यो जनः कोऽपि ज्वरानिव सर्पिषा ॥ 13

जैसे कोई ज्वर वाला प्राणी घी को खाकर या चुपड कर अपने को स्वस्थ मानने लग जाय, उसी प्रकार कोई एक मनुष्य मुश्किल से पैदा किए गए तथा जिसकी रक्षा करना कठिन है और फिर भी नष्ट हो जाने वाले हैं, ऐसे धनादिकों से अपने को सुखी मानने लग जाता है।

अर्थस्योपार्जने दुःखमपर्जितस्य च रक्षणे ।
आये दुःखं व्यये दुःखं, धिगर्थ दुःखभाजनम् ॥

धन अर्जित करने में दुःख, उसकी रक्षा करने में दुःख, उसके जाने में दुःख, इस तरह हर हालत में दुःख के कारण रूप धन को धिक्कार हो।

दहनस्तृणकाष्ठसंचयैरपि तृप्येदुदधिर्नदीशतैः ।
न तु कामसुखैः पुमानहो, बलवत्ता खलु कापि कर्मणः ॥

यद्यपि अग्नि घास लकडी आदि के ढेर से तृप्त हो जाये, समुद्र, सैकडों नदियों से तृप्त हो जाये, परंतु वह पुरुष इच्छित सुखों से कभी भी तृप्त नहीं होता। अहो ! कर्मों की कोई ऐसी ही सामर्थ्य या जबरदस्ती है।

आध्यात्मिक विहीनता से विविध रोग-दुःख

1) असंयम-जीभ को असंयमी रखने से वह चाहे जैसे स्वाद में रस लेने लगती है और चाहे-जितना खाने को आतुर रहती है। परिणाम स्वरूप पेट में अधिक अयोग्य भोजन जल्द चला जाता है। और वह पेट या आंतडियों में रोग उत्पन्न करता है। इसी प्रकार जीभ के असंयमी होने पर यदि वह चाहे जैसी वाणी उच्चारण करें तो जीभ द्वार सम्बन्धित मस्तिष्क के ज्ञान तंतुओं को हानि पहुँचती है। कुछ समय पश्चात् जीभ कैंसर या लकवा हो जाने की स्थिति में पहुँच जाती है। जन्म से उत्पन्न गुंगे बालक वाणी के दुरुपयोग का दंड इस नये जन्म में पाते हैं। असंयमी व्यवहार से ही अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार चक्षु, कर्ण, स्पर्श, घ्राण, मन, धन, समय, श्रम, वचन आदि के असंयम से भी तन-मन-धन-स्वास्थ्य-समय-साधन सम्बन्धी अनेक समस्यायें उत्पन्न होती है। जैसा कि स्पर्शन इंद्रिय, काम-चेतना के असंयम से वेश्या रमण, परस्त्री गमन से एड्स आदि भयंकर रोग होते हैं। जिसकी चिकित्सा एवं औषधि का शोध-बोध-आविष्कार अभी तक नहीं हो पाया है। इसी प्रकार यातायात आदि के असंयम से दुर्घटना होती है, जिससे जन-धन की क्षति होती है। इसी प्रकार मानसिक असंयम (तनाव, क्रोध, हीन भावना, अहं भावना, निषेध परक चिंतन आदि) से अनेक शारीरिक, मानसिक रोग हो जाते हैं।

2) असत्य :- असत्य बोलने वाले व्यक्ति की जीवन शक्ति नष्ट हो जाती है और वह सामान्य रोग का भी भोगी बन जाता है। जीवन शक्ति आधार 'तेज' है और वह तेज असत्य से नष्ट हो जाता है। असत्य बोलने वाला तेज हीन हो जाता है साथ ही असत्य बोलने से हृदय और मस्तिष्क के ज्ञान तंतुओं की हानि होती है। कुछ समय पश्चात् वह हृदय के रोग, पागलपन, पथरी, लकवा आदि रोगों से भी दुःखी हो जाए तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। असत्य चिंतन, कथन, व्यवहार, लेखन आदि से मस्तिष्क, बुद्धि को अतिरिक्त शक्ति का उपयोग अथवा यथार्थ से कहे तो दुरुपयोग करना पडता है। संक्लेश, तनाव, भय, व्यग्रता, ग्लानि, अस्थिरता, मानसिक चंचलता, अशांति आदि झेलना पडता है।

3) अभिमान :- मनुष्य में वायु, पित्त और कफ तीनों को एकसाथ सन्निपात के रूप में

उत्पन्न करने वाला अभिमान है और इसीसे किसी कवि ने कहा है कि - ''पाप मूल अभिमान'' यह अभिमान ही मनुष्यों के दुर्गुणों का राजा है और सब दोषों तथा रोगों को आकर्षित करके लाने वाला बलवान् लोहेका चुंबक है। अभिमानी व्यक्ति वायु, पित्त और कफ के छोटे-बडे अनेक रोगों से दुःखी रहता है। मनोविज्ञानानुसार अभिमान को अहंग्रंथि कहते हैं। इसके कारण व्यक्ति स्वयं की छोटी-खोटी सी उपलब्धि को बहुत बडी मानता है और दूसरों की या स्व शुद्धात्मा की महान् उपलब्धि को छोटी-खोटी मानता है, जिससे व्यक्ति का सर्वाङ्गीण सर्वोच्च विकास नहीं हो पाता है। अभिमान के कारण व्यक्ति के शरीर-मन-वचन-व्यवहार में विनम्रता, सरल-सहजता, परिवर्तनशीलता, अभंगुरता के परिवर्तन में अकडपना, जकडपना, कठोरता आदि दुर्गुण होते हैं। इससे कुंठा, तनाव, व्यग्रता, गर्व (अहंकार) का खर्ग (खंडन) होने का भय आदि शारीरिक, मानसिक रोग हो जाते हैं। इसलिए कहा है - **''विद्या ददाति विनयम्, विनयात् याति पात्रताम्। पात्रतात् धनमाप्नोति, धनात् धर्मं ततः सुखम्।''**

4) ईर्ष्या :- ईर्ष्या करने वाले मनुष्य में पित्त बढ जाता है जिससे उस मनुष्य की इंद्रियों की तेजस्विता नष्ट हो जाती है। ऐसे मनुष्य की बुद्धि और हृदय पित्त के तेजाब में जल जाते हैं एवं वह किसी काम में प्रगति नहीं कर पाता। ऐसे मनुष्य पित्त, पथरी, जलन, लीवर खराबी आदि रोगों से दुःखी रहते हैं। ईर्ष्या के कारण व्यक्ति दूसरों की अच्छाई, सच्चाई, प्रगति, प्रशंसा, संपत्ति, बुद्धि, त्यागवृत्ति, सेवा आदि उत्तम प्रसंशनीय गुणों से भी जलता है। वह स्वयं की रेखा को बिना बढाये दूसरों की रेखा को छोटा कर/मिटाकर स्वयं की रेखा को बडा करना चाहता है। इसे विध्वंसात्मक प्रतिस्पर्धा कहते हैं।

5) दंभ :- दंभी लोग कफ के परिणाम में गडबड उत्पन्न करते हैं। उनके दंभी स्वभाव से उनमें कफ के समान भारी पन आ जाता है। उनकी समस्त इंद्रियां तेजस्विता छोडकर स्थूल होती जाती हैं। शरीर की पूरी बनावट भारीपन, गैस और इसी प्रकार कफजन्य अनेक रोग दंभ के कारण ही होते हैं।

6) क्रोध :- बिगडे हुए मन से अशक्य-जैसी अनेक कामनाओं के पूर्ण न होने से अथवा उनमें विघ्न आने से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रुद्ध मनुष्य दूसरे की हानि कर सकेगा या नहीं यह तो दैवाधीन है, परंतु सर्वप्रथम वह स्वयं की हानि करता ही है। क्रोध करने में मनुष्य के मस्तिष्क को अपने बहुमूल्य एवं अधिक ओजः शक्ति का उपयोग करना पडता है। इस प्रकार अमूल्य ओज नष्ट हो जाता है और परिणाम स्वरूप जीवन शक्ति नष्ट होती चली जाती है। तदुपरांत क्रोध के मस्तिष्क में आते ही ओज के विशाल एवं विकृत प्रवाह से मस्तिष्क के ज्ञानतंतु क्षीण हो जाते हैं। बिजली का प्रवाह घर में लगे हुए परिमाणीक मात्रा में आने पर बल्ब जलता है परंतु अधिक मात्रा में आने पर बल्ब को नष्ट कर देता है और

कभी-कभी तो घर को हानि भी पहुँचाता है। इससे रक्षा पाने के लिए घर के बाहर फ्यूज की व्यवस्था की जाती है। संयम और विवेक ही हमारे फ्यूज हैं। इन्हें त्याग देने पर ओज का अत्याधिक प्रवाह क्रोध के रूप में उत्पन्न हो जाता है और मस्तिष्क के कितने ही भागों को जोखिम में डाल देता है। विशेष रूप से क्रूद्ध मस्तिष्क को अधिक मात्रा में रक्त की आवश्यकता पडती है। वह रक्त राशि मस्तिष्क की ओर जाने वाले लघु रक्त प्रवाह को खींच लेती है। क्रोधी मनुष्य की मुख और आँखें कैसी लाल हो जाती है। यह सबको अनुभव होगा। हँसते समय मुँह लाल होता है क्योंकि मुँह की समग्र पेशियाँ विकसित होने से हृदय की ओर से खून खिंच आने से ऐसा होता है। विशेष शुद्ध खून मिलने से वैसी ही पेशियाँ पुलकित होने से यह लालिमा लाभप्रद है और सौंदर्य वर्धक भी है, परंतु ठीक इसके विपरीत क्रोधी की शक्ल बिगडती जाती है और उसके बुद्धि-बल भी धीरे-धीरे क्षीण होने लगते हैं।

7) हिंसा :- हिंसा क्रोध और अभिमान से उत्पन्न होती है। इसमें प्रवृत्त रहने वाले व्यक्ति का रक्त सदा खौलता एवं गर्म रहता है। हिंसामें मस्तिष्क और हृदय दोनों गंदे होते हैं। अभिमान और क्रोध से उत्पन्न रोगों के उपरान्त ऐसे मनुष्य में हृदय से उत्पन्न रोग भी होते हैं। पराया दुःख देखकर जो हृदय एकदम नरम बनकर द्रवित होने लगता है, वही हृदय अपने दुःखों के सामने वज्र-जैसा कठोर भी बन जाता है। यह हृदय की सत्य और वास्तविक स्थिति का गुण है। हिंसावाले मनुष्य हृदय के ये गुण नष्ट हो जाते हैं। वह लोगों का दुःख देखकर हँसता है और अपने ऊपर दुःख पडने पर निम्नश्रेणीका भीरु बन जाता है। तत्पश्चात् हृदयमें और सम्पूर्ण शरीर में गर्म रक्त भ्रमण करने से शरीर में वायु, पित्त और कफ - इन तीनों को उत्पन्न करता है, जिससे वह महाभयंकर रोगों का शिकार बन जाता है। ''क्रिया प्रतिक्रिया सिद्धान्त'' के अनुसार जो दूसरों की हिंसा करता है उसकी भी हिंसा होती है, दुर्घटना-रोग आदि से अपमृत्यु होती है।

8) छल-कपट :- कपटकरने वाला व्यक्ति भी सुक्ष्मरूप से हिंसा ही करता है। परन्तु उसकी हिंसा करने की युक्ति मायामय-कपटमय होने से दिखायी नहीं देती। वह असाधारण विष-जैसी होती है। इससे ऐसे मनुष्य भी ऊपर वर्णित हिंसावाले व्यक्ति के समान ही रोगों का शिकार बन जाते। परन्तु उसे जो रोगों का दण्ड मिलता है, वह धीरे-धीरे असर करने वाले विष के समान ही होता है। छल-कपट करने वाला व्यक्ति इस भय से चिन्तित, व्यग्र, भयभीत रहता है कहीं मेरे छल-कपट प्रगट नहीं हो जावे - इससे अनेक दैहिक-मानसिक रोग उत्पन्न हो जाते हैं; जिसके कारण मुँह से अधिक दुर्गन्धी आती है, भोजन सही रूप से पाचन नहीं होता है ,कब्जियत रहता है, मल-मूत्र का विसर्जन देरी से होता है।

पाप ,अधर्म,असंयमादि से जायमान विविध कष्ट, दुःख, समस्या, रोग आदि का शोध-बोध करके प्राचीन भारतीय मनीषियों ने उससे बचने के उपायभूत पुण्य, धर्म,

आध्यात्मिक, संयम, उदारता आदि का प्रतिपादन भी किया है।

हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम्।

व्रत Vow is to be free from - हिंसा Injury, अनृत Falsehood, स्तेय Thift, अब्रह्म Unchastity और परिग्रह Worldly attachment (of worldly objects) से निवृत्त होना व्रत है।

आस्रव पदार्थ के व्याख्यान की प्रतिज्ञा करके आस्रव के एक सौ आठ भेदो की संख्या का अनेक रीतियों से विचार किया है अर्थात् आस्रव के भेद कहे हैं। पुण्यरूप और पापरूप कषायों का निमित्त होने से वह आस्रव दो प्रकार का है-एक पुण्यास्रव, दूसरा पापास्रव। उन पुण्य एवं पाप आस्रवों में से अब पुण्यास्रव का वर्णन करते हैं। पुण्यास्रव प्रधान है, क्योंकि मोक्ष पुण्यास्रव पूर्वक ही होता है अर्थात् आस्रव के विचार में कहा गया पुण्यास्रव मोक्ष में परम्परा से कारण होने से इस समय व्याख्येय है।

विरमण का नाम विरति है। चारित्रमोहनीय कर्म के उपशम, क्षय और क्षयोपशम के निमित्त से औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक चारित्र की प्रकटता होने से जो पापों विरक्ति होती है, उसे विरति कहते हैं।

अभिसंधिकृत नियम व्रत कहलाता है। बुद्धिपूर्वक परिणाम वा बुद्धिपूर्वक पापों का त्याग अभिसंधि है। 'यह ऐसा ही करना है, अन्य प्रकार से निवृत्ति है;' ऐसे नियमों को अभिसंधि कहते हैं। अभिसंधिकृत (बुद्धिपूर्वक किया हुआ) नियम सर्वत्र व्रत कहलाता है। अर्थात् शुभ कार्यों में प्रवृत्ति और अशुभ से निवृत्ति ही व्रत है। व्रत में किसी अन्य कार्य से निवृत्ति ही मुख्य होती है।

हिंसादि पाँच पापों के त्याग से केवल शुभास्रव नहीं होता है; परंतु अशुभ आस्रव का निरोध (संवर) भी होता है। पाँच पापों के त्याग से केवल परलोक ही नहीं सुधरता है; परंतु इहलोक अर्थात् वर्तमान जीवन भी आदर्श एवं सुखमय बनता है। जैन धर्म में तो हिंसादि पाँचों पापों तथा अहिंसादि पाँचों व्रतों का वर्णन अत्यन्त विस्तार से विभिन्न दृष्टिकोणों से सटीक किया गया है। अन्य धर्म में भी इसका वर्णन यत्र-तत्र पाया जाता है। हिंदु धर्म के महान् ऋषि याज्ञवल्क्य आदि ने भी अहिंसादि को धर्म कहा है। यथा -

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
दानं दया दमः क्षान्तिः सर्वेषां धर्मसाधनम्॥

अहिंसा, सत्य, अस्तेय (अचौर्य), शौच (शुद्धता, निर्लोभता, पवित्रता), इंद्रिय निग्रह (संयम), दान, दया, दम (दुष्प्रवृत्तियों को रोकना), क्षाति (क्षमा धारण करना) ये सब धर्म के लिए साधन स्वरूप हैं।

पातञ्जल योगदर्शन में महर्षि पातञ्जलि ने भी अष्टांग योग का वर्णन करते हुए

यम को प्रथम स्थान दिया है। बिना यम आगे के सात अंगों से भी योग (ध्यान) की सिद्धि नहीं हो सकती है। जैन धर्म में जिसको पञ्चव्रत कहा है उसको पातञ्जलि ने यम कहा है। पाँच यम यथा -

अहिंसा सत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः॥30

अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पांच यम कहे जाते हैं।

हिंसादि पाँचों पापों के त्याग से एवं अहिंसा आदि पांच व्रतों के सेवन से जो लाभ होता है उसका वर्णन स्वयं पातञ्जलि ने निम्न प्रकार किया है -

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सान्निधौ वैरत्यागः॥35

अहिंसा विषयक पूर्ण स्थिरता हो जाने पर अहिंसा प्रतिष्ठ योगी की सन्निधि में आने पर प्राणियों का स्वाभाविक वैर भी निवृत्त हो जाता है (उस समय नेवला- साँप-चूहा, शेर-बकरी भी अपना वैर भूला देते हैं)।

सत्य प्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्॥36

सत्य विषयक प्रतिष्ठा की प्राप्ति होने पर शुभाशुभ क्रिया से होने वाले धर्माधर्म एवं इस धर्माधर्म का फल स्वर्ग-नरकादि का आश्रय योगी बन जाता है।

अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपरस्थानम्॥37

अस्तेय विषयक प्रतिष्ठा की प्राप्ति होने पर सभी प्रकार के रत्नों की उपस्थिति होती है; कहने का तात्पर्य यह है कि अस्तेय प्रतिष्ठ योगी की इच्छा होने पर देश-देशान्तरों के सब प्रकार के हीरे, मोती आदि रत्न उपस्थित हो जाते हैं।

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः॥38

ब्रह्मचर्य विषयक प्रतिष्ठा प्राप्त होने पर वीर्य (सब प्रकार की विशिष्ट शक्ति) का लाभ होता है।

अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः॥39

अपरिग्रह विषयक स्थिरता प्राप्त होने पर भूत, भावी तथा वर्तमान जन्म तथा उन जन्मों की विशिष्टता का साक्षात्कार इस योगी को होता है।

शौचात्स्वाङ्गजुगुप्सा-परैरसंसर्गः॥40

शौच के पूर्णतः अनुष्ठान से अर्थात् शौच की स्थिरता से योगी के मन में अपने अङ्गों के प्रति ग्लानि अथवा घृणा उत्पन्न होती है और दूसरों को स्पर्श करने का भाव दूर हो जाता है अर्थात् चाहे व्यक्ति कितना ही पवित्र क्यों न हो योगी का मन उसे स्पर्श करना नहीं चाहता है।

1) सापेक्ष विचार, अनेकान्त सिद्धान्त, सहिष्णुता (उदारता) :- विश्व के प्रत्येक द्रव्य/घटक/घटनाओं के अनेक गुण-धर्म/पक्ष/कारण होने के कारण उन्हें उन-उन दृष्टियों

से देखना चाहिये, समझना चाहिये, कथन करना चाहिये। इसे ही अनेकान्त सिद्धान्त, स्याद्वाद आदि कहते हैं। इसके कारण बौद्धिक विकास, भावात्मक विशालता, आत्मा की पवित्रता, कथन में लचीलापन/मृदुता आती है, जिससे सत्यग्राहिता, नम्रता, सहिष्णुता आती है तथा संकीर्णता, कटुता, झगडा, कलह, द्वेष, कूट, युद्ध, विग्रह, हिंसा, मानसिक रोग आदि घटते हैं। यह गुण उस व्यक्ति में प्रगट होता है जो अंधविश्वास, संकीर्णता, घमंड, पूर्वाग्रह, हठाग्राही, मायाचारी आदि दुर्गुणों से रहित होता है।

2) अहिंसा - पवित्र भाव होना भाव अहिंसा है, और भाव अहिंसा सहित स्व-पर का मन-वचन-काय, कृत-कारित-अनुमति से क्षति नहीं पहुँचाना द्रव्य अहिंसा है। इससे स्व-पर की समग्रता से सुरक्षा, समृद्धि होती है। स्व तथा भाव अहिंसा होने पर ही, स्व-पर तथा द्रव्य अहिंसा का पालन हो सकता है। अहिंसा के कारण राग-द्वेष, अपना-पराया, भेद-भाव, ऊँच-नीच, ईर्ष्या-कलह, युद्ध, आतंकवाद, हत्या, आक्रमण आदि का अभाव हो जाता है, जिसके कारण विश्व में सुख-शांति-समृद्धि होती है। इसीलिए **''अहिंसा परमो धर्मः,'' ''अहिंसामृतम्''** है। इससे **'सह अस्तित्व' 'सहयोग' 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' 'जीओ और जीने दो' 'पर्यावरण सुरक्षा' 'पारिस्थितिकी सिद्धान्त'** को बल मिलेगा, जिससे विश्व की समस्या स्वरूप बिखराव, भेदभाव, संकीर्ण-कट्टर राष्ट्रवाद, धर्मोन्माद के कारण जायमान हिंसा, आतंकवाद, राष्ट्रीय गृह कलह से लेकर विश्व युद्ध, पर्यावरण असन्तुलन से जायमान अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूकम्प, बवण्डर, चक्रवात, अकाल, बाढ, मृदा-जल-वायु-ध्वनि-भाव प्रदूषण तथा विभिन्न रोग दूर होंगे।

3) सत्य :- सत्य ही सार्वभौम, सार्वकालिक, त्रैकालिक अबाधित होने के कारण समस्त विश्व से लेकर राष्ट्रीय, पारिवारिक एवं व्यक्तिगत प्रतिष्ठा, स्थिति, समृद्धि, शांति भी सत्य में निहित है। वस्तु स्वरूप, स्वशुद्ध आत्मस्वरूप सत्य होने के कारण सत्य में किसी भी प्रकार की विकृति, समस्या संभव नहीं है। निश्चयतः स्व-आत्म स्वरूप में स्थित होना परम सत्य है जिसे मोक्ष, निर्वाण, ईश्वरत्व कहते हैं। व्यवहारतः दूसरों की सत्ता, सम्पत्ति, विभूति, प्रसिद्धि, बुद्धि, कृति, जमीन आदि का अनैतिकतापूर्वक अपना नहीं मानना एवं नहीं बनाना, सत्य है। दूसरों की सत्ता, सम्पत्ति आदि को स्वीकार करना एवं मान्यता देना भी सत्य है। पूर्वोक्त दोषों से रहित होकर यथार्थ स्वरूप को स्वीकार करना सत्य है। इससे व्यक्तिगत कलह, तनाव से लेकर राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय कलह, तनाव, कानूनी लडाई, वैमनस्य, पक्षपात आदि समस्याएँ समाप्त हो जाती हैं।

4) अचौर्य :- दूसरों की सत्ता, सम्पत्ति का अनैतिक रूप से बलात् या धोखाधडी से स्व-अधिकार में नहीं करना अचौर्य है। इससे चोरी, डकैती, भ्रष्टाचारी, मिलावट, घोटाला, घुसपैठ, घूसखोरी, अपहरण, दूसरे देश पर आक्रमण, सैल्सटैक्स-इनकमटैक्स चोरी,

कर्तव्य चोरी आदि समस्यायें दूर हो जाती हैं।

5) अपरिग्रह :- आध्यात्मिक दृष्टि से स्व-आत्म द्रव्य को छोडकर अन्य किसी चेतन-अचेतन द्रव्य को ग्रहण करना परिग्रह है। व्यवहार से अनैतिक चेतन-अचेतन द्रव्यों को ग्रहण करना, अति संग्रह करना, अति लालसा या गृद्धता रखना परिग्रह है। उपरोक्त परिग्रह से विपरीत अपरिग्रह है अर्थात् निश्चय से स्व-शुद्ध आत्मा ही अपरिग्रह है और व्यवहारतः आवश्यक वस्तु को छोडकर अन्य वस्तुओं को ग्रहण नहीं करना अपरिग्रह है। इससे गरीब-अमीर, शोषक-शोषित, मजदूर-पूंजीपति, नौकर-मालिक, शोषण-मिलावट, चोरी, डकैती, बेईमानी, रिश्वतखोरी, कालाबाजारी, महंगाई, अभाव, भूखमरी आदि समस्यायें संभव ही नहीं होती हैं।

महावीर भगवान् का अपरिग्रहवाद पूर्ण आध्यात्मिक, नैतिक, साम्यवाद, समाजवाद है। इसके लिए किसी प्रकार बल-प्रयोग, हिंसात्मक कार्यवाही की आवश्यकता ही नहीं होती क्योंकि यह सब स्वेच्छा से, आत्म प्रेरणा से होता है। परिग्रह के कारण जायमान बडे-बडे उद्योग, फैक्ट्री, यान-वाहन से उपजी ध्वनि-वायु-जल-मृदा प्रदूषण, ग्रीन हाउस प्रभाव, ओजोन परत में छेद, कृत्रिम तापमान की वृद्धि आदि समस्याएँ नहीं होती हैं, जिससे अनेक शारीरिक-मानसिक रोग नहीं होते हैं।

6) ब्रह्मचर्य :- ब्रह्म यानि आत्मा में रमण करना ब्रह्मचर्य है। व्यवहारतः समस्त स्त्री-पुरुष जनित भोग का त्याग करना ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्याणुव्रत में स्व-स्त्री या स्व-पुरुष से मर्यादित, नैतिक संभोग करना ब्रह्मचर्याणुव्रत है। इससे अब्रह्मचर्य से जायमान जनसंख्या वृद्धि, एड्स रोग आदि बीमारियाँ दूर होती हैं। जनसंख्या वृद्धि से उपजी अनेक समस्याएँ यथा- निवास, यातायात, भोजन, पानी, शिक्षा, स्वास्थ्य, कुपोषण आदि का भी निराकरण होता है। इसीलिए भगवान् महावीर ने पंचशील को अभ्युदय एवं मोक्ष का कारण कहा तो पाँच पापों को **''दुःखमेव वा''** अर्थात् पाँच पाप दुःख स्वरूप ही हैं - कहकर संक्षिप्ततः विश्व की सभी समस्याओं को गर्भित कर लिया तथा सम्पूर्ण निदान भी दे दिया।

उपर्युक्त दृष्टि से जैन सिद्धान्त विश्व के सर्वश्रेष्ठ, सामाजिक, राजनैतिक, आध्यात्मिक, वैज्ञानिक, स्वास्थ्यकर, महान् क्रांतिकारी सर्वोदयी सिद्धान्त हैं, इन्हें किसी भी काल, राष्ट्र, जाति, पंथ, परम्पराओं की सीमा में आबद्ध नहीं किया जा सकता है। इसलिए ये सिद्धान्त पहले जैसे प्रासांगिक, आधुनिक, सम-सामायिक थे, उसी प्रकार अभी भी हैं और आगे भी रहेंगे, क्योंकि परम सत्य सदा-सर्वदा अबाधित, अपरिवर्तनशील, नित्य-नूतन, चिर-पुरातन होता है। इसीलिए हे विश्व मानवों ! यदि शांति एवं स्वास्थ्य चाहिए तो समस्त सामाजिक, जातिगत, क्षेत्रगत, राष्ट्रगत संकीर्णताओं को छोडकर इन सिद्धान्तों को अपनाकर स्व-पर-विश्व को सुख-शांति एवं समृद्धिमय बनाओं।

जैन धर्म में वर्णित आध्यात्मिक-स्वास्थ्य के उपाय

दुःखाद्बिभेषि नितरामभिवाञ्छसि सुखमतोऽहमप्यात्मन् !
दुःखापहारि सुखकरमनुशास्मि तवानुमतमेव ॥ 2

हे आत्मा ! तू दुःख से बहुत डरता है और सुख को सर्व प्रकार से चाहता है; इसलिए मैं भी दुःख दूर करने वाले और सुख उत्पन्न करने वाले वाञ्छित अर्थ का उपदेश करता हूँ ।

विषयविषमाशनोत्थितमोहज्वरजनिततीव्रतृष्णस्य ।
निःशक्तिकस्य भवतः प्रायः पेयाद्युपक्रमः श्रेयान् ॥ 17

तू विषयरूपी विषम भोजन से उत्पन्न मोहरूपी ज्वर से पैदा होने वाली तीव्र तृष्णा के कारण शक्तिहीन हो गया है, अतः तुझे अनुक्रम से पेय आदि का ग्रहण ही कल्याणकारी है।

जैसे किसी को प्रतिकूल भोजन से उत्पन्न ज्वर के कारण बहुत प्यास लगती है और वह कमजोर हो जाता है तो उसे पेय पदार्थों के भोजन का अनुक्रम ही लाभदायक होता है। यदि वह गरिष्ट भोजन करेगा तो उसे पचेगा नहीं, और इससे उसका रोग ही बढेगा। उसी प्रकार हे शिष्य ! तुझे विषय वासना से उत्पन्न मोह के कारण परवस्तु की तृष्णा हुई है और जिससे तेरी आत्मशक्ति घट गई है , इसलिए तुझे अणुव्रतरूप साधन का अनुक्रम ही लाभदायक है।

धर्मारामतरूणां फलानि सर्वेन्द्रियार्थसौख्यानि ।
संरक्ष्य तांस्ततस्तान्युच्चिनु यैस्तैरुपायैस्त्वम् ॥ 19

समस्त इन्द्रिय- विषयों के सुख धर्मरुपी बाग के सम्यक्त्व और संयमादिक वृक्षों के फल हैं। इसलिए तू किसी भी उपाय से उन वृक्षों को सुरक्षित रखकर उनके फल को ग्रहण कर।

जिस प्रकार समझदार पुरुष बाग में लगे हुए अच्छे फल देने वाले वृक्षों की रक्षा करता हुआ उनके फल को ग्रहण करता है, उसी प्रकार हे शिष्य ! तू जिस धर्म के अङ्गों का फल सुखरूप है, उस धर्म के अङ्गों की रक्षा करते हुए उससे उत्पन्न होने वाले सुख को भोग। ऐसा करने पर ही सुख का नाश नहीं होगा अर्थात् हमेशा सुख प्राप्त होता रहेगा।

धर्मः सुखस्य हेतुर्हेतुर्न विराधकः स्वकार्यस्य ।
तस्मात् सुखभंगभिया मा भूर्धर्मस्य विमुखस्त्वम् ॥ 20

धर्म सुख का कारण है और जो सुख का कारण होता है, वह अपने कार्य का विरोधी नहीं होता, इसलिए तू सुख भंग होने का भय करके धर्म से विमुख मत हो।

लोक में यह बात प्रसिद्ध है कि जो जिस कार्य का कारण होता है, वह उस कार्य

का विरोधी अर्थात् नाश करने वाला नहीं होता। यहाँ सुख कार्य है और धर्म कारण है, तो धर्म सुख का नाश कैसे करेगा? क्योंकि सुख तो धर्म का फल है, अतः धर्म अपने फल का घात कैसे करेगा? इसलिए धर्म- साधन करने पर मेरे सुख में बाधा उत्पन्न होगी- ऐसे भय से धर्म का अनादर मत कर। कारण से कार्य की वृद्धि होती है, इसलिय धर्म- साधन करने पर सुख की वृद्धि ही होगी - ऐसा निश्चय करके धर्म में प्रीति करना योग्य है।

धर्मादवाप्तविभवो धर्मं प्रतिपाल्य भोगमनुभवंतु ।
बीजादवाप्तधान्यः कृषीवलस्तस्य बीजमिव ॥ 21

जिस प्रकार बीज से अन्न प्राप्त करने वाला किसान उस के बीज को सुरक्षित रखता है, उसी प्रकार जिस जीव ने धर्म से सुख-सम्पत्ति रूप वैभव प्राप्त किया है, उसे धर्म का पालन करते हुए भोग भोगना चाहिए।

जिस प्रकार बीज बोने पर ही अन्न उत्पन्न होता है; बीज बोये बिना कठिन परिश्रम करने पर भी अन्न उत्पन्न नहीं होता, अतः चतुर किसान विचार करता है - ''मुझे बीज से अन्न की प्राप्ति हुई है, इसलिए बीज को सुरक्षित रखने पर आगे भी अन्न की प्राप्ति होगी, अतः बीज को सुरक्षित रखकर ही अन्न को भोगना चाहिए।'' उसी प्रकार सुख की प्राप्ति धर्म करने पर ही होती है; धर्म किए बिना कठिन परिश्रम करने पर भी सुख प्राप्त नहीं होता। हे शिष्य ! तू समझदार है अतः विचार कर - ''मुझे धर्म के फल से ही सुख प्राप्त हुआ है इसलिए वर्तमान में भी धर्म-साधन करने से ही भविष्य में सुख प्राप्त होगा, अतः धर्म को सुरक्षित रखकर सुख भोगना चाहिए।'' इस प्रकार विचार करके जिस प्रकार धर्म सुरक्षित रहे, उस तरह पुण्य के उदय से उत्पन्न होने वाले सुख को भोगना चाहिए।

संकल्प्यं कल्पवृक्षस्य चिन्त्यं चिन्तामणेरपि ।
असंकल्प्यमसंचिन्त्यं फलं धर्मादवाप्यते ॥ 22

कल्पवृक्ष का फल तो संकल्प योग्य वचनों से याचना करने पर मिलता है और चिंतामणि का फल भी चिंत्वन योग्य मन द्वारा याचना करने पर मिलता है, परंतु धर्म से ऐसा अद्भूत फल मिलता है, जो संकल्प और चिंत्वन योग्य नहीं है; अर्थात् उसकी प्राप्ति के लिए संकल्प या चिंत्वन की आवश्यकता नहीं है।

परिणाममेव कारणमाहुः खलुः पुण्यपापयो प्राज्ञाः ।
तस्मात् पापापचयः पुण्योपचयश्च सुविधेयः ॥ 23

बुद्धिमान पुरुष निश्चय से आत्मा के परिणाम (भावों) को ही पुण्य-पाप का कारण कहते हैं, इसलिए भले प्रकार से पाप का नाश और पुण्य का संचय करना चाहिए।

कुछ लोग शरीर की सामर्थ्य न होने पर, कुछ लोग धनादिक न होने पर और कुछ लोग अन्य सहायक न होने पर धर्म-साधन नहीं हो सकता है - ऐसा मानते हैं, परंतु

यह उनका भ्रम है। तुम पर को दोष देकर, उपदेश को निरर्थक मत करो। सुनो ! पुण्य और पाप का कारण परिणाम ही है, क्योंकि दूसरों के द्वारा पुण्य-पाप उत्पन्न नहीं होते, अपने ही परिणामों से पुण्य-पाप उत्पन्न होते हैं। इसलिए तुम्हें अशुभ परिणाम छोडकर पाप का नाश और शुभ परिणाम करके पुण्य का संचय करना चाहिए।

कृत्वा धर्मविघातं विषयसुखान्यनुभवन्ति ये मोहात्।
आच्छिद्य तरून्मूलात् फलानि गृह्णन्ति ते पापाः ॥ 24

जो जीव मोह या भ्रम के कारण धर्म का घात करते हुए विषय-सुख को भोगते हैं, वे पापी वृक्ष को मूल से उखाड कर फलों को ग्रहण करते हैं।

जिस प्रकार कोई पापी फल को ही चाहता है, परंतु रौद्र भावों से वृक्ष को जड से उखाड कर जो फल हाथ लगें, उन्हें ग्रहण करता हैं, उसी प्रकार मोही जीव सुख को ही चाहता है, परंतु पाप बुद्धि से धर्म का घात करके जो सुख उदय में आए, उसे ही भोगता है।

यहाँ ऐसा समझना कि जिस प्रकार वृक्ष को काटें या रखें, फल तो जितना होता है उतना ही हाथ लगता है। लेकिन वृक्ष को काटने से भविष्य में फल की प्राप्ति नही होगी, भविष्य में फल की प्राप्ति वृक्ष को रखने से होगी; उसी प्रकार धर्म को रखे या उसका घात करे, जितना पुण्य का उदय होगा उतना सुख होगा। धर्म का घात करने से भविष्य में सुख की प्राप्ति नहीं होगी, धर्म करने से ही भविष्य में सुख की प्राप्ति होगी।

प्रश्न :- धर्म का घात करके सुख भोगना क्या है ? और धर्म को रखकर सुख भोगना क्या है ?

उत्तर :- धर्म के प्रसंग में भी पापरूप रहना (पाप कार्यों में प्रवृत्ति करना, तथा पापरूप भाव रखना) अन्यायरूप पाप कार्य करना, उपलब्ध विषयों से अधिक विषयों की तृष्णा करना, कषाय-परिणाम तीव्र रखना - इत्यादि प्रवृत्तियों सहित विषय-सुख भोग ही धर्म का घात करके सुख भोगना है।

धर्म के प्रसंग में धर्म-साधना करना, अन्याय रूप पापकार्य नहीं करना, उपलब्ध विषयों में ही संतुष्ट रहना, बहुत कषाय नहीं करना- इत्यादि प्रवृत्ति सहित किञ्चित् विषय-सुख भोगना ही धर्म रखकर सुख भोगना है।

जहाँ कषाय ही नहीं होती, वहाँ विषय-सामग्री का त्याग करने पर, दुःख-सामग्री मिलने पर भी जीव निराकुल रहता है - यह परमार्थ धर्म को रखकर परमार्थ सुख को भोगना है।

कर्तृत्वहेतुकर्तृत्वानुमतैः स्मरणचरणवचनेषु।
यः सर्वथाभिगम्यः स कथं धर्मो न संग्राह्यः ॥ 25

जो धर्म कृत, कारित, अनुमोदना के साथ मन, वचन, काय के द्वारा सर्व प्रकार से प्राप्त करने योग्य है, उनका संग्रह क्यों नहीं करना चाहिए ?

यदि धर्म एक ही प्रकार का होता तो समस्त विषयों का त्याग करने पर ही धर्म होता; परंतु जब तक समस्त विषयों का त्याग सम्भव न हो सके, तब तक अनेक प्रकार से थोडे-थोडे धर्म का ही संचय करना चाहिए।

जिस प्रकार अनेक प्रकार के व्यापार से धन-संचय किया जाता है, उसी प्रकार अनेक प्रकार के धर्म-साधनों से धर्म का संचय करना चाहिए। धर्म का संचय नौ प्रकार से होता है। मन से धर्म करना, कराना और अनुमोदना करना; वचन से धर्म करना, कराना और अनुमोदना करना तथा काया से धर्म करना, कराना और अनुमोदना करना।

धर्म के अनेक अङ्ग है, उनमें जो धर्म करना संभव हो, वही धर्म करना चाहिए। एक अङ्ग भी थोडा-बहुत जितना बने, उतना ही करना चाहिए। इस प्रकार सभी प्रकार से धर्म का संचय होता है। अतः तू कठिनाई बताकर धर्म कार्य में निरूद्यमी (आलसी) रहना चाहता है, लेकिन जिस प्रकार आलसी व्यक्ति दरिद्री होकर दुःख प्राप्त करता है, उसी प्रकार तू भी पुण्यहीन होकर नरकादि में दुःख प्राप्त करेगा। इसलिए धर्म का संग्रह करना ही योग्य है।

धर्मो वसेन्मनसि यावदलं स तावत् , हन्ता न हन्तुरपि पश्य गतेऽथ तस्मिन्।
दृष्टा परस्पर हतिर्जनकात्मजानां रक्षा ततोऽस्य जगतः खलु धर्म एव ॥ 26

हे शिष्य ! तू देख, जब तक मन में धर्म रहता है, तब तक यह जीव अपने घात करने वाले का भी घात नहीं करता; तथा मन में धर्म न होने पर पिता-पुत्र में भी परस्पर घात क्रिया देखी जाती है। इसलिए यह बात प्रत्यक्ष है कि इस जगत् की रक्षा धर्म से ही है।

धर्म बुद्धि होने पर कोई किसी को नहीं मारता और धर्म बुद्धि न हो तो लोग एक-दूसरे को मारते हैं, क्योंकि बलवान् निर्बल को मारता है और उससे भी बलवान् उसे मारता है। इस प्रकार सर्व लोक नष्ट हो जाएगा, परंतु लोक में धर्म की प्रवृत्ति सहज है, इसलिए जीवों में परस्पर रक्षा करने के परिणाम भी होते हैं। तिर्यञ्च आदि भी बिना प्रयोजन छोटे जीवों को मारते हुए नहीं देखे जाते। इसलिए धर्म ही लोक का रक्षक है। जो धर्म लोक का रक्षक है, वह अपने साधने वाले का रक्षक कैसे न होगा ? इसलिए धर्म को ही अपना रक्षक जानकर उसका सेवन करना चाहिए।

न सुखानुभवात् पापं पापं तद्हेतुघातकारम्भात्।
नाजीर्णं मिष्टान्नान्नतु तन्मात्राद्यतिक्रमणात् ॥ 27

जिस प्रकार मिष्टान्न भोजन से अजीर्ण नहीं होता, उसकी मात्रा के उल्लंघन से अजीर्ण होता है; उसी प्रकार सुख भोगने में पाप नहीं है, सुख के कारणभूत धर्म का घात करने वाले कार्यों का आरंभ करने से पाप होता है।

जिस प्रकार मिष्ट भोजन अजीर्ण का कारण नहीं है, आसक्ति वश अधिक भोजन करना अजीर्ण का कारण है, उसी प्रकार विषय सेवन पाप का कारण नहीं है, धर्म का घात

करके कषायों की तीव्र प्रवृत्ति पाप का कारण है। इन्द्रादिक देव अथवा भोग भूमि के जीव अथवा तीर्थङ्करादि के विषय सामग्री होती है; वे उसका सेवन भी करते हैं; परन्तु उन्हें नरकादिक के कारणभूत पाप का बन्ध नहीं होता, तन्दुल-मच्छादिक को अति तृष्णा से अथवा - पर्वतादिक को मिथ्यात्व आदि से धर्म का घात करने के कारण बहुत विषय-सेवन किए बिना ही नरकादिक के कारण भूत पाप का बन्ध होता है। इसलिए, मुझसे विषय नहीं छूटते हैं, और विषय-सेवन छूटे बिना धर्म नहीं होता - ऐसी आशंका करके धर्म में अरुचि नहीं करना चाहिए।

प्रश्न :- यदि ऐसा है तो विषयों को छोडकर मुनिपद का ग्रहण क्यों किया जाता है ?

उत्तर :- नरक, तिर्यञ्च आदि गतियों के बंध के कारणभूत पाप का अभाव तो गृहस्थ अवस्था में ही धर्म-साधन करने से हो जाता है, परंतु यह धर्म-साधन स्वर्ग आदि का तथा परंपरा से मोक्ष का कारण है। इसलिए जो जीव धर्मवृद्धि करके साक्षात् मोक्ष को साधना चाहते हैं, वे समस्त विषयों को छोडकर मुनिपद अंगीकार करते हैं।

पुण्यं कुरुष्व कृतपुण्यमनीदृशोऽपि, नोपद्रवोऽभिभवति प्रमवेच्च भूत्यै।
संतापयन् जगदशेषमशीतरश्मिः, पद्मेषु पश्य विदधाति विकासलक्ष्मीम् ॥ 31

हे भव्य ! तुम पुण्य करो क्योंकि पुण्य करने वाले को, जिसके समान दूसरा कोई न हो ऐसा उपसर्ग भी पीडित नहीं करता है। जिस प्रकार जगत् को आताप देने वाला सूर्य कमलों को विकास रूप लक्ष्मी प्रदान करता है, उसी प्रकार वह उपसर्ग तुझे विभूति का कारण हो जाता है।

यद्यपि उपसर्ग दुःख का कारण है, तथापि वह पुण्यवानों को दुःख देने में समर्थ नहीं है। जिस प्रकार सूर्य औरों को आताप उत्पन्न करता है, परंतु कमलों को प्रफुल्लित करता है उसी प्रकार जिनके पाप का उदय होता है उन्हें उपद्रव दुःखदायक होता है, लेकिन जिनके पुण्य का उदय है उन्हें वह विभूति देने वाला होता है - ऐसा प्रत्यक्ष देखा जाता है। जिस उपद्रव से सबको बहुत दुःख हो, परंतु जिसके पुण्य का उदय होता है, उसे उस उपद्रव में ही धनादिक का लाभ हो जाता है। इसलिए धर्मात्मा पुरुष उपसर्ग आने पर भी धर्म को छोडकर हिंसादि पाप रूप प्रवर्तन नहीं करते।

पिता पुत्रं पुत्रःपितरमभिसंधाय बहुधा।
विमोहादीहेते सुखलवमवाप्तुं नृपपदम् ॥
अहो मुग्धो लोको मृतिजननदंष्ट्रान्तरगतो।
न पश्यत्यश्रान्तं तनुमपहरन्तं यममुम् ॥ 34

मोह के कारण जिसमें सुख का अंश भासित होता है - ऐसे राजपद की अभिलाषा से पिता पुत्र को और पुत्र पिता को ठगता है। अहो ! बडा आश्चर्य है कि मूर्ख लोग

जन्म-मरण रूपी दाढ के मध्य में स्थित, शरीर को निरन्तर हरण करने वाले यम को नहीं देखते हैं।

जैसे किसी सिंह की दाढ में आया हुआ पशु अपने शरीर को खाने वाले सिंह का विचार तो नहीं करता और क्रीडा करने का उपाय करता है तो बडा आश्चर्य होता है। उसी प्रकार यमराज की दाढ के बीच में काल (मृत्यु) को प्राप्त यह लोक अपनी आयु को हरण करने वाले कालरूपी सिंह का तो विचार नहीं करता और राज्य आदि पद को प्राप्त करने के लिए अनेक उपाय करता है - यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है, अतः ऐसी मूर्खता को छोडकर यम का चिंत्वन करते हुए विषयों की वांच्छा छोडनी चाहिए।

अन्धादयं महानन्धो विषयान्धीकृतेक्षणः।
चक्षुषाऽन्धो न जानाति विषयान्धो न केनचित् ॥ 35

जिसके सम्यग्ज्ञान रूपी नेत्र विषयों से अंधे हो रहे हैं वह अन्धों से भी महा अंध है, क्योंकि जो अंधा है वह मात्र नेत्रों से ही नहीं जान पाता, परंतु जो विषयों से अंधा है वह किसी भी इंद्रिय से नहीं जानता।

अंधे पुरुष को मात्र नेत्रों से नहीं दिखता, परंतु मन से विचार करना और कानों से सुनना आदि ज्ञान तो उसके पाया जाता है। लेकिन जो विषय-वासना से अंधा हो गया है, उसे किसी भी इंद्रिय के द्वारा ज्ञान नहीं होता। विषयों से दुःखी व्यक्ति को यद्यपि नेत्रों से दिखना, मन से विचारना, भाव-भासना करना, शिक्षा देने वाले की सुनना इत्यादि ज्ञान के कारण मिलते हैं, तथापि वह विषयों की वासना में अंधा होकर किसी की परवाह नहीं करता। इसलिए अंधा होना निषिद्ध है (ठीक नहीं है) लेकिन विषयों का अंधा होना तो अतिनिषिद्ध जानना चाहिए।

आशागर्तः प्रतिप्राणि यस्मिन् विश्वमणूपमम् ।
कस्य किं कियदायाति वृथा वो विषयैषिता ॥ 36

अहो प्राणी ! प्रत्येक प्राणि में आशारूपी गड्ढा इतना गहरा है कि जिसमें तीन लोक की विभूति अणु के समान सूक्ष्म है। यदि तीन लोक की विभूति एक प्राणी को मिल जाये तो भी उस की तृष्णा शांत नहीं होगी, तो फिर बँटवारे में किसको कितनी विभूति मिलेगी कि सबकी तृष्णा शांत हो जाय। इसलिए तेरी विषयों की इच्छा व्यर्थ है।

तीन लोक का वैभव तो अल्प है और प्रत्येक जीव का आशारूपी गड्ढा इतना गहरा है कि उसमें तीन लोक का वैभव अणु के समान (अति अल्प) है, तो एक जीव का गड्ढा भी पूरा कैसे होगा ? इसलिए विषयों की अभिलाषा करना व्यर्थ है।

आयुः श्रीवपुरादिकं यदि भवेत् पुण्यं पुरोपार्जितं,
स्यात् सर्व न भवेन्न तच्च नितरामायातितेऽप्यात्मानि।
इत्यार्याः सुविचार्य कार्य कुशलाः कार्येऽत्र मंदोद्यमा,
द्रागागामिभवार्थमेव सततं प्रीत्या यतन्ततेराम् ॥ 37

इस जीव को देव-मनुष्य आदि भवों में दीर्घायु, लक्ष्मी, सुंदर शरीरादि पूर्वजन्म में उपार्जित पुण्य से होते हैं। जिसने पुण्योपार्जन किया है, उसे सभी अनुकूलतायें होती है। यदि पूर्वकृत पुण्य न हो तो अनेक प्रयत्न करके खेद करने पर भी कुछ भी अनुकूलता नहीं होती। इसलिए कार्य कुशल पुरुष भली-भाँति विचार करके वर्तमान भव सम्बन्धी कार्य में मन्द उद्यमी होते हैं और आगामी भव के कार्य में तत्काल प्रीति सहित निरन्तर अत्यन्त प्रयत्न करते हैं।

जिसने पूर्व भव में दया, दान, तप आदि से विशेष पुण्य का उपार्जन किया हो, उसे ही दीर्घायु, स्वस्थ-सुंदर शरीर आदि विभूतियाँ होती है और जिसने पुण्योपार्जन नहीं किया, वह बहुत प्रयत्न करके अति खेद-खिन्न हो, तो भी उसे कुछ प्राप्त नहीं होता - ऐसा विचार करके विवेकी पुरुष इस भव के कार्यों में तो मंद उद्यमी होते हैं और पर-भव सुधारने के लिए अति प्रीति पूर्वक शीघ्र ही प्रयत्न करते हैं।

स धर्मो यत्र नाधर्मस्तत्सुखं यत्र नासुखम्।
तज्ज्ञानं यत्र नाज्ञानं सा गतिर्यत्र नागतिः ॥ 46

धर्म वही है, जिसमें अधर्म नहीं; सुख वही है जिसमें दुःख नहीं; ज्ञान वही है, जिसमें अज्ञान नहीं और गति वही है, जिसमें अगति (पुनरागमन) नहीं।

जहाँ लेशमात्र भी हिंसादि पाप है, वहाँ धर्म नहीं है; जहाँ संक्लेशरूप दुःख है, वहाँ सुख नहीं है; जहाँ संदेहरूप अज्ञान है, वहाँ ज्ञान नहीं है और जहाँ जाकर पुनः आना पडे अर्थात् जन्म-मरण हो, वहाँ गति नहीं है।

वार्तादिभिर्विषयलोल विचार शून्यं, क्लिश्नासि यन्मुहुरिहार्थपरिग्रहार्थम्।
तच्चेष्टितं यदि सकृत् परलोकबुद्ध्या न प्राप्यते ननु पुनर्जननादि दुःखम् ॥ 47

हे विषय लोलुपी ! विचार हीन ! इस लोक में धनोपार्जन के लिए असि, मसि, कृषि, वाणिज्यादि प्रयत्नों से तू जो कष्ट बारम्बार करता है, यदि एक बार पर-लोक के लिए ऐसा प्रयत्न करे तो तुझे जन्म-मरणादि दुःख न होंगे। अतः तू धन का साधन छोडकर धर्म का साधन कर।

विषय लोलुपी और विचार रहित लोग खेती आदि उपायों से धनोपार्जन के लिए बारम्बार प्रयत्न करते हैं। श्रीगुरु दयालु होकर भव्य जीवों को उपदेश देते हैं - ''अहो ! तू धन के लिए बारम्बार जैसा कष्ट करता है वैसा उद्यम यदि एक बार भी पर-लोक के लिए करे तो तू पुनः जन्म-मरणादि दुःख नहीं पायेगा अर्थात् भवसागर से तिर जाएगा।

कुबोधरागादिविचेष्टितैः फलं त्वयापि भूयो जननादिलक्षणम्।
प्रतीहि भव्य प्रतिलोमवृत्तिभिः ध्रुवं फलं प्राप्स्यासि तद्विलक्षणम् ॥ 106

हे भव्य ! तूने स्वयं कुज्ञान और रागादिरूप विपरीत चेष्टाओं के द्वारा जन्म-

मरणादि रूप फल प्राप्त किया है। अतः अब तू ऐसी प्रतीति कर कि इनसे विपरीत प्रवृत्तियाँ करके उनके फल से विपरीत फल (मुक्ति) प्राप्त हो।

लोक में भी ऐसा नियम है कि जिस कारण से जो कार्य उत्पन्न होता है उससे विपरीत कारण से विपरीत फल उत्पन्न होता है। जैसे- गर्मी से होनेवाला रोग उससे विपरीत शीतल वस्तु से नष्ट हो जाता है। अतः हे भव्य ! तूने अज्ञान और असंयम से जन्म-मरणादि के दुःखरूप फल पाये हैं। यदि किसी कारण से एक ही बार कोई कार्य उत्पन्न हो तो यह भ्रम हो सकता है कि यह कार्य किसी और कारण से उत्पन्न हुआ होगा, परंतु संसारी जीव तो अनादि से बारम्बार अज्ञान और असंयम का सेवन कर रहे हैं और उन्हें जन्म-मरण का दुःख होता दिख रहा है इसलिए यहाँ कोई भ्रम भी नहीं है।

किसी पदार्थ को जब-जब खायें, तब-तब वही रोग उत्पन्न हो तो जानना चाहिए कि यह पदार्थ ही इस रोग का कारण है। यदि किसी और को रोग हुआ हो तो भी (रोग के कारण के सम्बन्ध में) भ्रम हो सकता है। अतः तू स्वयं ही विचार कर कि ''मैं कैसा परिणमन कर रहा हूँ और क्या फल पा रहा हूँ।'' इसलिए यदि तुझे यह फल बुरा लगता हो तो तू जैसे अज्ञानरूप परिणमन कर रहा है, वैसे परिणमन करना छोड।

अज्ञान और असंयम से विपरीत सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र हैं, उनका सेवन करने पर जन्म-मरणादि फल से विपरीत अविनाशी सुखरूप मोक्ष-फल प्राप्त होता है। इसमें कोई भ्रम भी नहीं है, क्योंकि सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र का सेवन करने वाले जीव थोडे हैं उन्हें अज्ञान-असंयम जनित आकुलता मिटने से तत्काल ही कुछ सुख होता है तथा अधिक सेवन से बहुत सुख होता दिखता है। अतः जिस प्रकार किसी औषधि के सेवन से रोग घटता हुआ भासित हो तो जान लेना चाहिए कि इसके सेवन से रोग का सम्पूर्ण नाश भी होगा, उसी प्रकार यहाँ भी निश्चय करना चाहिए कि सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र के सेवन से सभी दुःखों का नाश होगा। इसलिए इनका सेवन करना युक्त है।

दयादमत्यागसमाधिसन्ततेः पथि प्रयाहि प्रगुणं प्रयत्नवान्।
नयत्यवश्यं वचसामगोचरं विकल्पदूरं परमं किमप्यसौ ॥ 107

हे जीव ! स्व-पर की करुणा करना दया, इंद्रिय-मन को वश करना दम, पर-पदार्थों से राग छोडना त्याग और वीतराग दशारूपी सुख समाधि है - इनकी परम्परारूप मार्ग पर प्रयत्नशील होता हुआ निष्कपट होकर गमन-कर - यही मार्ग तुझे वचन-अगोचर और निर्विकल्प परम पद की प्राप्ति करायेगा।

जिस प्रकार कोई अपने इष्ट स्थान पर जाने के लिए सही रास्ते पर सीधा चला जाए तो वह उस नगर में अवश्य पहुँचेगा; उसी प्रकार जो जीव सम्यग्ज्ञान-सम्यग्चारित्र रूप सच्चे मोक्षमार्ग में गर्भित दया, दम, त्याग आदि में निष्कपट होकर प्रवर्तेगा; वह अवश्य ही मोक्ष

को प्राप्ति करेगा। "मैं साधना तो करूँगा, परंतु यदि सिद्धि की प्राप्ति नहीं हुई तो" - ऐसा भ्रम करके शिथिल मत होना। इस साधन से साध्य की सिद्धि अवश्य ही होती है।

विज्ञाननिहतमोहं कुटीप्रवेशो विशुद्धकायमिव।
त्यागः परिग्रहाणामवश्यमजरामरं कुरुते ॥ 108

जिस प्रकार पवन साधन में कुटी प्रवेश करने से (कुम्भक प्रक्रिया द्वारा वायु रोकने से) शरीर निर्मल होता है; उसी प्रकार जो भेद-विज्ञान द्वारा मोह नष्ट करता है, उसे परिग्रह का त्याग अवश्य ही अजर-अमर कर देता है।

भेद-विज्ञान से मोह का नाश करना ही सम्यग्ज्ञान सहित सम्यग्दर्शन है और बाह्याभ्यन्तर परिग्रह का त्याग करना सम्यग्चारित्र है। वहाँ सम्यग्ज्ञान सहित सम्यग्दर्शन प्राप्त करने वाला जीव यदि सम्यग्चारित्र अंगीकार करे तो उसे साक्षात् मोक्षमार्ग होता है और वह मोक्ष की प्राप्ति अवश्य करता ही करता है, इसमें कोई संदेह नहीं, क्योंकि सभी कारण मिलने पर कार्य का होना टाला नहीं जा सकता है, इसलिए यदि किसी को रत्नत्रय में कोई कमी हो तो उसको मोक्ष प्राप्ति होने में संदेह हो सकता है। मोक्ष के तीनों कारण मिलने पर मोक्ष होता ही है - ऐसा निश्चय करना चाहिए।

अकिंचनोऽहामित्यस्व त्रैलोक्याधिपतिर्भवेः।
योगिगम्यं तव प्रोक्तं रहस्यं परमात्मनः ॥ 110

"मैं आकिञ्चन्य हूँ, मेरा कुछ भी नहीं है" - ऐसी भावना करके तू बैठ जा! इससे तू शीघ्र तीन लोक का स्वामी हो जाएगा। योगिश्वरों द्वारा गम्य परमात्मा बनने का यही रहस्य हमने तुझे कहा है।

अज्ञान के कारण पर-पदार्थों में ममत्व होता है और पर-पदार्थ अपने नहीं होते इसलिए यह जीव हीन अवस्था को प्राप्त हो रहा है। परंतु जब यह जीव ऐसी भावना करता है कि पर द्रव्य मेरा नहीं है, तब इसे परम उदासीनतारूपी चरित्र होता है, जिसके फल से इसे तीन लोक अपना स्वामी माने - ऐसा पद प्राप्त होता है। यह रहस्य योगीश्वर जानते हैं, वही हमने तुझे कहा है। तू भी ऐसी भावना कर - ऐसी शिक्षा हम तुझे देते हैं।

दुर्लभमशुद्धमपसुखमविदितमृतिसमयमल्पपरमायुः।
मानुष्यमिहैव तपो मुक्तिस्तपसैव तत्तपः कार्यम् ॥ 111

यह मनुष्य पर्याय दुर्लभ है, अपवित्र है, सुख रहित है, इसका मरण समय ज्ञान नहीं है, इसमें उत्कृष्ट आयु भी अल्प है। परंतु इस पर्याय में ही तप हो सकता है, और तप से ही मुक्ति होती है मनुष्यपना पाकर तुझे तप करना चाहिए।

आत्मा का हित मोक्ष है। उसकी प्राप्ति तप के बिना नहीं होती, क्योंकि सम्यग्दर्शन-

ज्ञान-चारित्र पूर्वक तप की आराधना से साक्षात् मोक्ष-मार्ग होता है। ऐसा तप मनुष्य पर्याय में ही होता है। कहा भी है -

ज्ञानं यत्र पुरःसरं सहचरी लज्जा तपः संबलं,
चारित्रं शिविका निवेशनभुवः स्वर्गा गुणा रक्षकाः।
पन्थाश्च प्रगुणः शमाम्बुबहुलश्छाया दयाभावना,
यानं तं मुनिमापयेदभिमतं स्थानं विना विप्लवैः ॥ 125

जहाँ ज्ञानरूपी मार्गदर्शक आगे-आगे चलता हो, लज्जारूपी सहचरी हो, तपरूपी संबल हो, चारित्ररूपी जैसा पालक हो, स्वर्ग जैसा विश्राम स्थल हो, गुणरूपी रक्षक हो, जो सीधा हो, जिसमें उपशमरूपी जल का बाहुल्य हो, दयारूपी छाया हो और भावनारूपी गमन हो - ऐसी सामग्री युक्त मार्ग में चलने वाले मुनि निरापदरूप से अभिष्ट स्थान को पहुँच जाते हैं।

विषय विरतिः संगत्यागः कषायविनिग्रहः,
शमयमदमास्तत्त्वाभ्यासस्तपश्चरणोद्यमः।
नियमितमनोवृत्तिर्भक्तिर्जिनेषु दयालुता,
भवति कृतिनः संसाराब्धेस्तटे निकटे सति ॥ 224

विवेकी जीवों को संसार-समुद्र का किनारा निकट आने पर विषयों से विरक्तता, परिग्रह का त्याग, कषायों का निग्रह, शम (शांति अर्थात् रागादि का त्याग) दम (मन और इंद्रियों का निरोध) और यम (जीवन पर्यन्त हिंसादि पापों का त्याग) इनका धारण तत्त्व का अभ्यास, तपश्चरण का उद्यम, मन कि वृत्तियों को निरोध, जिनेन्द्र भक्ति और जीवों की दया इत्यादि सामाग्री प्राप्त होती है।

यमनियमनितान्तः शान्तबाह्यान्तरात्मा,
परिणमितसमाधिः सर्वसत्त्वानुकम्पी।
विहितहिमिताशी क्लेशजालं समूलं,
दहती निहितनिद्रो निश्चिताध्यात्मसारः ॥ 25

यम और नियम योग के मूल है। यम अर्थात् अयोग्य क्रियाओं का आजीवन त्याग और नियम अर्थात् घडी, पल, प्रहर, पक्ष, मास, चतुर्मास आदि की मर्यादा में संवर या त्याग। इनके पालन में साधु सदैव तत्पर रहते हैं। वे महा शांतचित्त वाले होते हैं। उनके भावों में देहादि बाह्य पदार्थों से निवृत्ति हो जाती है। समाधि अर्थात् निर्विकल्प दशारूप परिणमीत होते हैं। सभी जीवों के प्रति दयाभाव रखते हैं। विहित अर्थात् शास्त्रोक्त विधि से योग्य अल्पाहार लेते हैं। निद्राजयी होते हैं। अध्यात्म के सारभूत आत्मस्वभाव का निश्चय करने वाले होते हैं। निरंतर आत्मानुभव में मग्न होते हैं।

समाधिगतसमस्ताः सर्वसावद्यदूराः स्वहितनिहितचित्ताः शान्तसर्वप्रचाराः।
स्वपरसफलजल्याः सर्वसंकल्पमुक्ताः, कथमिह न विकुक्तेर्भाजनं ते विमुक्ताः॥ 226

जो समस्त त्यागने योग्य और ग्रहण करने योग्य वस्तुओं का स्वरूप भलि-भाँति जानते हैं, हिंसादि सभी पापों से दूर हैं, जिनका चित्त आत्मकल्याण के कारणभूत सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में स्थित है, सर्व इंद्रियों के विषय से निवृत्त हुए हैं। जिनके वचन स्व और पर का कल्याण करने वाले हैं और जो समस्त संकल्प-विकल्पों से रहित हैं, वे महापुरुष सर्व प्रपंचों से रहित होते हुए मुक्ति के भाजन (पात्र) क्यो न होंगे? अर्थात् वे निसंदेह शिव सुख के पात्र होंगे।

सुखं दुःखं वा स्यादिह विहिकर्मोदयवशात्,
कुतः प्रीतिस्तापः कुत इतिविकल्पाद्यदि भवेत्।
उदासीनस्तस्य प्रगलति पुराणं न हि नवं,
समास्कन्दत्येष स्फुरति सुविदग्धो मणिरिव॥ 26

सुख या दुःख पुर्वोपार्जित कर्म के उदय से होते हैं। अतः यदि कदाचित सुख मे प्रीति और दुःख मे आताप माने तो नये कर्म अवश्य बँधेंगे; परन्तु जो महापुरूष हर्ष-विषाद नहीं करते अर्थात् "किससे प्रीति करे और किससे आताप माने"- ऐसा विचार कर अत्यन्त उदासीन रहते हैं, उनके पुराने कर्म खिर जाते हैं ओर नए कर्म नहीं बँधते। वे विवेकी महामणि के समान सदैव प्रकाशरूपी ही रहते हैं।

कर्म के उदय में हर्ष-विषाद करने पर नए कर्म बँधते हैं। जो हर्ष-विषाद नहीं करते उन्हें नए कर्म नहीं बाँधते और पूर्व कर्म फल देकर खिर जाते हैं- यह निश्चय है।

अजातोऽनश्वरोऽमूर्तः कर्ता भोक्ता सुखी बुधः।
देहमात्रो मलेर्मुक्तो गत्वोर्ध्वमचलः प्रभुः॥ 266

आत्मा कभी उत्पन्न नहीं होता और कभी नष्ट नहीं होता। उसकी कोई मूर्ती नहीं हैं, अतः वह अमूर्तिक हैं। व्यवहार नय से कर्मो का कर्ता है और निश्चय नय से अपने स्वभाव का कर्ता है। व्यवहार नय से सुख-दुःख का भोक्ता है और निश्चय नय से अपने स्वभाव का भोक्ता है। वह अज्ञान से इन्द्रिय जन्य सुख को सुख मानता है और निश्चय नय से परमानन्दमय और ज्ञान स्वरूपी है। व्यवहार नय से देह मात्र है और निश्चय नय से चेतना मात्र है, तथा कर्ममल से रहित होकर वह लोक के शिखर पर जाकर प्रभु होकर अचल रूप से स्थित हो जाता है।

आत्मा समस्त उपाधियों से रहित केवल ज्ञानानन्दमय है, परन्तु पर को अपना मान कर भ्रान्ति से संसार में भ्रमण करता है। जब यह अपने ज्ञान स्वरूप को जानता है, तब निरूपाधि ज्ञान रूप होकर अविनाशी हो जाता है।

गुरुपदेशमासाद्य ध्यायमानः समाहितैः।
अनन्तशक्तिरात्मायं भुक्तिं मुक्तिं च यच्छति॥ 196
ध्यातोऽर्हत्सिद्धरूपेण चरमांगस्य मुक्तये।
तद्ध्यानोपात्तपुण्यस्य स एवान्यस्य भुक्तये॥ 197

जो गुरु के उपदेश को प्राप्त करके आत्मध्यान को समाहित चित्त से करता है उसे आनन्द शक्ति सम्पन्न यह आत्मा मुक्ति और भुक्ति को प्रदान करता है, जो चरम शरीरी है जब वे स्वयं को अरिहंत-सिद्ध रूप से ध्यान करते हैं तब उनके पुण्य से मोक्ष मिलता है तथा अन्य अचरम शरीर को स्वर्ग सुखादि मिलता है।

होतिं सुहावसव-संवर णिज्जरामर सुहादी विउलाई।
ज्झाण वरस्स फलाइं सुहाणुबंधीणि धम्मस्स॥ 56
जह वा घण संघात खणेण परणाहा विलिज्जति।
ज्झाणप्प वणोवहया तह कम्म घणा विलिज्जति॥ 57

शंका - इस धर्म ध्यान का क्या फल है ?

समाधान - अक्षपक जीवों को देव पर्याय सम्बन्धी विपुल सुख मिलना उसका फल है और गुण श्रेणी में कर्मों की निर्जरा होना भी उसका फल है, तथा क्षपक जीवों के तो असंख्यात गुणश्रेणी रूप से कर्म प्रदेशों की निर्जरा होना और शुभ कर्मों के उत्कृष्ट अनुभाग का होना उसका फल है। अतएव जो धर्म से अनुप्रेरित है वह धर्मध्यान है, यह बात सिद्ध होती है।

उत्कृष्ट धर्म ध्यान के शुभ आस्रव, संवर, निर्जरा और देवों के सुख में शुभानुबन्धी विपुल फल होते हैं। अथवा जैसे मेघपटल तडित होकर क्षण मात्र में विलीन हो जाते हैं वैसे ही ध्यान रूपी पवन से उपहत होकर कर्ममेघ भी विलीन हो जाते हैं। (ध.5 पृ.77)

वासनामात्रमेवैतत्सुखं दुःखं च देहिनां।
तथा ह्युद्वेजयंत्येते भोगा रोगा इवापदि॥ 6

यह जो स्वर्ग में या संसार में इन्द्रिय जनित सुख है वह सुख नहीं है दुःख स्वरूप ही है। यह सुख केवल वासना मात्र है। परमार्थ से उपकार एवं अपकार से रहित देहादि उपेक्षणीय तत्व में यह मेरा उपकारी है ऐसा मान करके इष्ट मानना और यह पदार्थ अनुपकारी है इसलिए अनिष्ट मानना इस प्रकार के विभ्रम से उत्पन्न होने वाले संस्कार को वासना कहते हैं। इस इष्टानिष्ट अनुभव के अनन्तर स्वयं में अभिमान का परिणाम उत्पन्न होता है यह सब वासना मात्र है, स्वाभाविक नहीं है। देह को आत्मा मानना अर्थात् देह में रहने वाला देही अर्थात् आत्मा को देह मानना यह बहिरात्मा अर्थात् मिथ्यात्वपना है। यह इंद्रिय जनित सुख केवल उद्वेग को विक्षोभ को, अशांति को उत्पन्न करता है न कि सुख-

शांति को देता है। जिसको लोक में सुख जनन कहते हैं या प्रतीति करते हैं वह इंद्रिय जनित रमणीय भोग ज्वरादि व्याधि के समान रोग है। यह भोग सुख कठिनाई से दूर होने वाली विपत्ति है। इससे मन दुःखी संतापित हेा जाता है।

रम्यं हर्म्य चन्दनं चंद्रपादा वेणुर्वीणा यौवनस्था युवत्यः।
नैते रम्याक्षुत्पिपासार्दितानां सर्वारम्भस्तंदुलाप्रस्थमूलाः ॥

जो मनुष्य भूख प्यास से पीडित है - दुःखी है - उन्हें सुन्दर महल, चन्दन चन्द्रमा की किरणे, वेणु बीनबाजा और युवती-स्त्रियाँ रमणीय मालूम नहीं होती हैं क्योंकि जीवों के सभी आरम्भ तंदुलप्रस्थ मूल होते हैं - घर में चावल विद्यमान हैं तो ये उपरोक्त सभी बातें सुन्दर प्रतीत होती हैं अन्यथा नहीं। और भी कहा है-

आतपे धृतिमता सह बध्वा यामिनीविरहिणा विहमेन।
सेहिरे न किरण हिमरश्वमेर्दुःखिते मनसि सर्व्वमसह्यम् ॥

जो पक्षी धूप में अपनी प्यारी प्रिया के साथ उडता फिरता था परन्तु उसे धूप का कष्ट मालूम नहीं होता या रात्रि को जब उस पक्षी का अपनी प्राण प्यारी के साथ वियोग हो गया तब उसे चन्द्रमा की शीतल किरणें भी अच्छी नहीं लगती, क्योंकि मन के दुःखित होने पर सभी चीजें असह्य हो जाती हैं। इससे सिद्ध होता है कि इन्द्रिय जनित सुख वासना मात्र है, आत्मा का स्वाभाविक अनाकूल रूप सुख नहीं है, नहीं तो इस प्रकार लोक में सुखी दिखाई देने वाले भाव दुःख के कारण नहीं बनते। इसी प्रकार संसार के लिये भी जान लेना चाहिए।

जिस प्रकार खुजली के रोगी को खुजली खुजाते समय कुछ सुखाभास होता है परन्तु वह सुख वस्तुतः सुख नहीं है। जब खुजली असहनीय हो जाती तब उसको वह खुजालता है और खुजालने के बाद उसमें पीडा होती है और खुजली बढ जाती है। इसी प्रकार मोहकर्म के कारण जीव दुःखी होकर इन्द्रिय जनित सुख को भोगता है और वह जितना-जितना उस सुख को भोगता है उस सम्बन्धी और भी तृष्णवान होकर दुःखी हो जाता है। इतना ही नहीं उस भोगासक्ति से वह और भी पाप बांधकर आगामी दुःख को आमंत्रण देता है कुन्दकुन्द देव ने प्रवचन सार में कहा भी है-

इन्द्रिय सुख को भोगने के कारण

मणुयासुरामरिंदा अहिहुदा इंदियेहिं सहजेहिं।
असहंता तं दुक्खं रमंति विसएसु रम्मेसु ॥ 63

(मणुयासुरामरिंदा) मनुष्य, भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी तथा कल्पवासी देव, मनुष्यों के इन्द्र चक्रवर्ती राजा तथा चार प्रकार के देवों के सर्व इन्द्र **(सहजेहिं)** अपने-अपने शरीर में उत्पन्न हुई अथवा स्वभाव से पैदा हुई **(इंदिएहिं)** इन्द्रियो की चाह के द्वारा **(अहिहुदा)** पीडित या दुःखित होकर **(तं दुकखं असहंता)** उस दुःख की तीव्र

धारा को न सहन करते हुए **(रम्मेसुविषएसु)** सुन्दर मालूम होने वाले इन्द्रियों के विषयों में **(रमंति)** रमण करते हैं।

इसका विस्तार यह है कि जो मनुष्यादिक जीव अमूर्त अतीन्द्रिय ज्ञान तथा सुख के आस्वाद को नहीं अनुभव करते हुए मूर्तिक इंद्रिय जनित ज्ञान तथा सुख के निमित्त पाँचों इन्द्रियों के भोगों में प्रीति करते हैं, उनमें जैसे गरम लोहे का गोला चारों तरफ से पानी को खींच लेता है उसी तरह पुनः विषयों में तीव्र तृष्णा पैदा होती है। उस तृष्णा को न सह सकते हुये वे विषय भोगों का स्वाद लेते हैं इसलिए ऐसा जाना जाता है कि पाँचों इन्द्रियों की तृष्णा रोग के समान है, तथा उसका उपाय विषय भोग करना यह औषधि के समान है। इसलिए संसारी जीवों को वास्तविक सच्चे सुख का लाभ नहीं होता है।

प्रत्येक जीव का स्वाभाविक स्वरूप सुख स्वरूप है इसलिए प्रत्येक जीव सुख चाहता है, परंतु अनादिकालीन परतंत्रता के कारण संसारी जीव सहज आध्यात्मिक सुख को प्राप्त करने में असमर्थ हैं। उस कर्म परतन्त्रता के कारण शारीरिक, मानसिक एवं इन्द्रिय जनित दुःख होते हैं। उन दुःखों से पीडित होकर सुख की इच्छा से मोहित होकर इन्द्रिय जनित सुख का भोग करते हैं। बिना दुःख कोई इंद्रिय जनित सुख को नहीं चाह सकता है। जिस प्रकार प्यासा व्यक्ति पानी को चाहता है, भूखा व्यक्ति भोजन को चाहता है, सर्दी से पीडित व्यक्ति उष्ण वस्तु को चाहता है, रोग से संतप्त व्यक्ति औषधियों को चाहता है, खुजली रोग से पीडित व्यक्ति खुजालता है उसी प्रकार संसार के जीव विभिन्न दुःखों से पीडित होकर उसकी तात्कालिक निवृत्ति के लिए इंद्रिय जनित सुख को चाहते हैं। परंतु जिस प्रकार प्यासादि से रहित व्यक्ति पानी आदि को नहीं चाहता है, उसी प्रकार इंद्रिय जनित दुःखों के बिना, इंद्रिय जनित सुखों को नहीं चाह सकता है। यह क्रम स्वर्ग के देवों से स्पष्ट प्रतिभासित हो जाता है। क्योंकि नीचे-नीचे के स्वर्ग के देव इंद्रिय जनित दुःख से अधिक पीडित होने के कारण अधिक-अधिक भोग सेवन करते हैं। उत्तरोत्तर (ऊपर-ऊपर) के देव इंद्रिय जनित दुःख से कम पीडित होने के कारण इंद्रिय जनित भोग कम सेवन करते हैं। जैसे - सर्वार्थसिद्धि के कुछ विशिष्ट देव प्रविचार (मैथुन) ही नहीं करते हैं, क्योंकि उन्हें वेद कर्म जनित विशेष पीडा का अभाव है। गुणस्थान की अपेक्षा पहले-पहले गुणस्थानों में इंद्रिय जनित पीडा अधिक है और उत्तरोत्तर इंद्रिय जनित पीडा कम होती जाती है। जीव इंद्रिय जनित भोगों को क्यों भोगना चाहता है इसका आगमोक्त अनुभव परक सुंदर वर्णन महाप्राज्ञ पं. आशाधरजी ने किया है।

अनाद्यविद्यादोषोत्थचतुः संज्ञाज्वरातुराः।
शश्वत्स्वज्ञानविमुखा सागरा विषयोन्मुखाः ॥ 2

अनादि कालीन अविद्या रूपी दोष से उत्पन्न कोई चार संज्ञारूपी ज्वर से पीडित, सदा आत्मध्यान से विमुख और विषयों में उन्मुख गृहस्थ होते हैं।

अबाद्यविद्यानुस्यूतां ग्रन्थसंज्ञामपासितुम्।
अपारयन्तः सागराः प्रायो विषयमूर्च्छिताः ॥ 3

अनादि विद्या के साथ बीज और अंकुर की तरह परम्परा से चली आयी परिग्रह संज्ञा को छोडने में असमर्थ और प्रायः विषय सागर में मूर्च्छित सागार (गृहस्थ) होते हैं।

ज्ञानिसङ्गन्तपोध्यानैरध्यसाध्यो रिपुः स्मरः।
देहात्मभेदज्ञानोत्थवैराग्यैणैव साध्यते ॥ 32

आत्मदर्शी ज्ञानी पुरुषों की संगति, तप और ध्यान से भी वश में न आने वाला यह शत्रु कामदेव शरीर और आत्मा के भेद ज्ञान से उत्पन्न हुए वैराग्य से ही वश में आता है।

धन्यास्ते येऽत्यजन् राज्ये भेदज्ञानाय तादृशीम्।
धिङ्गादृशकलत्रैच्छातंत्रगार्हस्थ्य दुःस्थितान् ॥

भरत चक्रवर्ती आदि जिन पुरुषों ने भेदज्ञान के लिए ऐसे विशाल राज्य को त्याग दिया, वे धन्य हैं। जिसे स्त्री की इच्छा ही प्राधान्य है उस गृहस्थाश्रम में दुःखपूर्ण जीवन बिताने वाले हमारे जैसे विषयी लोगों को धिक्कार है। जहाँ तक इंद्रिय सुख है, वहाँ तक दुःख है।

जेसिं विसयेसु रदी तेसिं दुक्खं वियाण सब्भावं।
जदि तं ण हि सब्भावं वावारो णत्थि विसयत्थं ॥ 64

(जेसिं विसयेसु रदी) जिन जीवों की विषय रहित अतीन्द्रीय परमात्मा स्वरूप से विपरीत इन्द्रियों के विषयों में प्रीति होती हैं। **(तेसिं सब्भावं दुक्खं वियाण)** उनको स्वाभाविक दुःख जानो अर्थात् उन बहिर्मुख मिथ्यादृष्टि जीवों को अपने शुद्ध आत्मद्रव्य के अनुभव से उत्पन्न, उपाधि रहित निश्चय सुख से विपरीत स्वभाव से ही दुःख होता है, ऐसा जानो **(जदि तं सब्भावं णहि)** यदि वह दुःख स्वभाव से निश्चय करके न होवे तो **(विसयत्थ वावारो णत्थि)** विषयों के लिए व्यापार न होवे जैसे रोग से पीडित होने वालों के लिए औषधि का सेवन होता है, वैसे ही इन्द्रियों के विषय सेवन के लिए ही व्यापार दिखाई देता है। इस से यह जाना जाता है कि उनके दुःख है, ऐसा अभिप्राय है।

कारण के बिना कार्य नहीं होता है और जहाँ कार्य है वहाँ अवश्य कारण होगा ही। जिस प्रकार जहाँ अग्नि जनित धुआँ है वहाँ अग्नि अवश्य होगी क्योंकि अग्नि के बिना धुआँ होना असम्भव है, इसी प्रकार जहाँ विषय सम्बन्धी राग है, भोग है वहाँ उस विषय सम्बन्धी दुःख अवश्य ही होगा। जिस प्रकार एक व्यक्ति रूचि पूर्वक भोजन कर रहा है तो वह व्यक्ति शारीरिक रूप से या मानसिक रूप से भूखा होगा। जिस प्रकार औषधि सेवन करता है तो वह किसी न किसी रोग से ग्रसित होगा क्योंकि जीवों कि प्रवृत्ति आवश्यकतानुसार ही होती है, अनावश्यक नहीं होती है। जिस प्रकार जिस के लिए धन की आवश्यकता

होती है वह धनोपार्जन करता है परन्तु जिसको धन की आवश्यकता नहीं है वह न धन संचय करता है न उत्पादन करता है - जैसे निस्पृह (दिगम्बर संत)। परंतु अज्ञानी, मोही, रागी जीव उस दुःख को ही सुख मान बैठता है एवं उसमें ही रमण करता है। कहा भी है -

न तदस्तीन्द्रिययार्थेषु यत्क्षेमङ्गरमात्मनः।
तथापि रमतेबालस्तत्रैवाज्ञन भावनात् ॥ 55

तत्वदृष्टि से यदि विचार किया जाय तो ये पाँचों ही इंद्रियों के विषय क्षणभंगुर है, पराधीन है, विषम है, बंध के कारण है, दुःख स्वरूप है और बाधा सहित है - कोई भी इनमें आत्मा के लिए सुखकर नहीं फिर भी यह अज्ञानी जीव उन्हीं से प्रीति करता है, उन्हीं की सम्प्राप्ति में लगा रहता है और रात-दिन उन्हीं का राग अलापता है। यह सब अज्ञान भाव को उत्पन्न करने वाले मिथ्यात्व-संस्कार का ही महात्म्य है।

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिनिर्भरः।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याहि परां गतिम् ॥ 22 गीता पृ. 149

है कौंतेय! इस त्रिविध नरक द्वार से दूर रहने वाला मनुष्य आत्मा के कल्याण का आचरण करता है और इससे परम गति को पाता है।

ये ही संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तपन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥ 22 गीता पृ. 68

विषय जनित भोग अवश्य दुःखों के कारण हैं। हे कौन्तेय! वे आदि और अन्त वाले हैं। बुद्धिमान मनुष्य उन में नहीं फँसता।

अपि संकल्पिताः कामाः संभवन्ति यथा यथा।
तथा तथा मनुष्याणां तृष्णा विश्वं विसर्पति ॥

ज्यों-ज्यों अभिलाषित भोग प्राप्त होते जाते हैं और उनमें सुख की कल्पना की जाती है त्यों-त्यों तृष्णा भी बढती जाती है और उनसे सदा अतृप्ति ही बनी रहती है। कदाचित् यह कहा जाये कि भोगों के यथेष्ट भोग लेने पर मनुष्य की तृष्णा शांत हो जाएगी और तृष्णा-शांति से संतोष हो जाएगा सो यह भी संभव नहीं है, क्योंकि अन्त समय में आसक्ति होने पर भी भोग नहीं छोडे जा सकते। भले ही वे हमें स्वयं छोड दे। पर भोगों की वृद्धि में तृष्णा भी उतनी ही बढती जाती है फिर तृप्ति या संतोष नहीं होता। कहा भी है -

दहनस्तृणाकाष्टसंचयैरपि तृष्यदुदधिर्नदीशतैः।
ननु कामसुखैः पुमानहो बलवत्ता खलु कापि कर्मणः ॥

अग्नि में कितना ही तृण और काष्ठ क्यों न डाला जाए लेकिन तृप्ति नहीं होती, शायद वह तृप्त हो जाए। सैंकडों नदियों से भी समुद्र की तृप्ति नहीं होती यदि कदाचित् उसकी भी तृप्ति हो जाए, परंतु भोगों से मनुष्य कभी तृप्त नहीं हो सकता। कर्म बडा ही

बलवान् है और कहा भी है -

तदात्य सुखसंज्ञेषु भावेष्वज्ञोऽनुरज्यते।

हितमेवानुरूध्यंते प्रपरीक्ष्य परीक्षकः॥

अतएव जो मनुष्य मूढ है - हित-अहित के विवेक से शून्य हैं - वे भोग भोगते समय उन्हें सुखकारी समझ भोगों में अनुराग करते हैं - किंतु जो मनुष्य परीक्षा प्रधानी हैं- हेयोपादेय के विवेक से जिनका चित्त निर्मल है, वे इन दुःखकारी क्षणिक विनाशी भोगों की ओर न झुककर हितकर मार्ग का ही अनुसरण करते हैं।

एहिकं सत्सुखं नाम सर्व वैषयिकं स्मृतम्।

न तत्सुखे सुखाभासं किन्तु दुःखमसंशयम्॥ पंचा. पृ. 333 श्लोक 3.34

सम्यग्दृष्टि विचार करता है कि जो सांसारिक (इस लोक सम्बन्धी) सुख है यह सब पञ्चेन्द्रिय सम्बन्धी विषयों से उत्पन्न होने वाला है। वास्तव में वह सुख नहीं है, किंतु सुख का आभास मात्र है, निश्चय से वह दुःख ही है।

तस्माद्धेयं सुखाभासं दुःखफलं यतः।

हेयं तत्कर्म यद्धेतुस्तस्यानिष्टस्य सर्वतः॥ 239

इसलिए वह सुखाभास छोडने योग्य है। वह स्वयं दुःख स्वरूप है और दुःख रूप फल को देने वाला है। उस सदा अनिष्ट करने वाले वैषयिक सुख का कारण कर्म है, इसलिए इस कर्म का ही नाश करना चाहिए।

तत्सर्व सर्वतः कर्म पौद्गलिकं तदष्टधा।

वैपरीत्यात्फलंतस्य सर्वदुःख विपच्यतः॥ 240

वह सम्पूर्ण पौद्गलिक कर्म सर्वदा आठ प्रकार का है, उसी कर्म का उल्टा विपाक होने से सभी फल दुःख रूप ही होता है।

नैवं यतः सुखं नैतत् तन्सुखं यत्र नाऽसुखम्।

स धर्मो यत्र नाधर्मस्तच्छुमं यत्र माऽशुभम्॥ 244

जिसको मनुष्य सुख समझता है वह सुख नहीं है। वास्तव में सुख वही है जहाँ पर कभी थोडा भी दुःख नहीं है वही धर्म है, जहाँ अधर्म का क्लेश नहीं है और वही शुभ है जहाँ पर अशुभ नहीं है।

इदमस्ति पराधीनं सुखं बाधापुरस्सरम्।

व्युच्छिन्नं बन्धहेतुश्च विषमदुःखमर्थतः॥ 245

यह इंद्रियों से होने वाला सुख पराधीन है, कर्म के परतंत्र है, बाधा पूर्वक है, इसमें अनेक विघ्न आते हैं, बीच-बीच में इसमें दुःख होता है, यह दुःख बंध का कारण है, तथा विषम है। वास्तव में इंद्रियों से होनेवाला सुख-दुःख रूप ही है।

पातञ्जली योग-दर्शन में उपरोक्त (कर्म) सिद्धान्त का वर्णन निम्न प्रकार किया है।

क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः। पृ. 162

शुभ-अशुभ कर्मों के अनुष्ठान से होनेवाले चित्तस्त जो धर्मा-धर्म अथवा पुण्य पापरूप अदृष्ट-विशेष अविद्या-अस्मितादि क्लेशमूलक हैं - अर्थात् कर्माशय का मूल है। अविद्या-अस्मितादि अतः कर्माशय भी क्लेश कहा जाता है और वह दुष्ट जन्म वेदनीय पापरूप अदृष्य विशेष इसी जन्म में पुरुष को सुख-दुःख रूप फल देने वाला होता है और कोई-कोई अगले जन्म में फल देनेवाला होता है।

अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः॥ 3 पृ. 140

अविद्या अस्मिता, राग-द्वेष तथा अभिनिवेश - ये पाँच क्लेश है।

अविद्याक्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदारणाम्॥ 4

प्रसुप्त, तनु विच्छिन्न तथा उदार नामक चार अवस्थावाले, पीछे के सूत्र में बतलाई गई अविद्या के बाद आनेवाले अस्मितादि चार क्लेशों के उत्पत्ति का कारण अविद्या ही है। अतः जैसे अविद्या हेय है, वैसे ही अविद्या-जन्य अस्मितादि भी हेय है।

अनित्याशुचिदुःखात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या॥ 5

अनित्य, अशुचि, दुःख तथा अनात्म वस्तुओं में क्रमशः जो नित्य, शुचि, सुख एवं आत्मख्याति (आत्मबुद्धि) होती है, वह अस्मिता नामक द्वितीय क्लेश है।

दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवाऽस्मिता॥ 6

दृक् शक्तिरूप पुरुष तथा दर्शन शक्तिरूप बुद्धि की जो अभेद न होने पर भी, अभेद जैसी प्रतीति होती है वह अस्मिता नामक द्वितीय क्लेश है।

सुखानुशयी रागः॥ 7

सुख-भोग के अनन्तर चित्त में रहने वाला जो (पुनः उस सुख के भोग का) अभिलाषा है वह राग कहा जाता है।

दुःखानुशयी द्वेषः॥ 8

पहले दुःख का अनुभव किए हुए व्यक्ति में अनुभव किए गए दुःख अथवा दुःख के साधन (शत्रु आदि) के प्रति जो क्रोध पैदा होता है उसे द्वेष कहते हैं।

स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारुढोऽभिनिवेशः॥ 9

पूर्वजन्म में मृत्यु के समय उपस्थित भय के अनुभव से होने वाली वासना के कारण स्वभाव सिद्ध जो विद्वान् के भी चित्त में मूर्खों की तरह जड जमाया हुआ मरण भय है वह अभिनिवेश नामक पाँचवा क्लेश कहा जाता है।

यद्ध्यनं रोद्रमार्त वा, यदैहिकफलार्थिनाम्।

तस्मादेतत्परित्यज्य, धर्म्यं शुक्लमुपास्यताम्॥ 220 तत्वानुशासन

शिष्य प्रश्न करता है कि हे गुरुदेव ! ध्यान से सब कुछ सुलभ है अर्थात् ध्यान के लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं है। इसलिए ध्यान से शरीर का भी उपकार हो अर्थात् शरीर का नाश नहीं हो ऐसा भी विचार करना चाहिए। इस शंका का समाधान करते हुए आचार्य श्री कहते हैं कि-

यह यथार्थ है कि ध्यान से आत्मा का भी कल्याण होता है और शरीर का भी उपकार होता है परंतु इन दोनों की उपलब्धि में महान् अन्तर है। जैसे एक हाथ में दिव्य चिंतामणि है तो एक हाथ में खल का टुकडा है। इन दोनों में से जो विवेकी होते हैं वे खल का टुकडे को छोडकर दिव्य चिंतामणि को ही ग्रहण करते हैं। इसी प्रकार जो विवेकी मुमुक्षु होते हैं वे शरीर एवं लौकिक वस्तु लोभ, तृष्णा, अभिलाषा और आकांक्षा को छोडकर ध्यान के माध्यम से आत्म कल्याण स्वरूप दिव्य चिंतामणि को ही चाहते हैं। कहा भी है -

आर्त और रौद्र ध्यान या संसार संबंधी फल को त्याग करके आध्यात्मिक कल्याण के लिए धर्म ध्यान एवं शुक्ल ध्यान की उपासना करनी चाहिए।

मन को किसी भी विषय में स्थिर करना ध्यान है। परंतु यदि उद्देश्य छोटा है, खोटा है तो उसका फल भी तदनुकूल होगा और महान् है तो उसका फल भी महान् होगा। उद्देश्य के अनुसार ध्यान के चार भेद हो जाते हैं। संसार, शरीर, भोग सम्बंधी जो ध्यान है उसे आर्त एवं रौद्र ध्यान कहते हैं और आत्म कल्याण के लिए जो ध्यान होता है उसे धर्म और शुक्ल ध्यान कहते हैं। आर्त एवं रौद्र ध्यान से संसार बढता है और संसार से दुःख मिलता है। इसलिए इन ध्यानों को छोडकर धर्म एवं शुक्ल ध्यान को ध्याना चाहिए। प्राचीन कहावत है कि चिता से भी भयंकर चिंता है क्योंकि चिता मृत शरीर को जलाती है किंतु चिंता जीवित मनुष्य को जलाती है। परंतु चिंता का यदि उन्नतिकारक रचनात्मक कार्य में विनियोग किया जाता है तब यह चिंता-चिंतामणि के समान बन जाती है। जैसे चिंतामणि रत्न इच्छित फल को देता है, उसी प्रकार सुचिंता अनेक उपलब्धियों को देती है। राग, द्वेष, घृणा आदि से प्रेरित चिंता, चिता के समान है, परंतु राग-द्वेषादि से रहित आत्मचिंतन, आत्मशोधक चिंतन, चिंतामणि के समान है। जैन दर्शनानुसार दुःश्चिंता में सलग्न मन को दुर्ध्यान कहते हैं और सुचिंता में सलग्न मन को सुध्यान कहते हैं। दुर्ध्यान अनेक आपत्तियों को निमत्रण देता है तो सुध्यान अनेक विभूतियों को निमंत्रण देता है। दुर्ध्यान रूप आर्त एवं रौद्र ध्यान नरक, तिर्यञ्च गति का कारण है तो, शुभ ध्यान देवादि उत्तम गति के साथ-साथ परम्परा से मोक्ष के कारण है। शुक्ल ध्यान तो समस्त कर्मबंधनों को तोडने के लिए अमोघ शस्त्र के समान है। हेमचंद्राचार्य ने **ध्यान के अलौकिक प्रभाव** का वर्णन करते हुए योग शास्त्र में कहा है -

योगः सर्वविपद्वल्ली विताने परशुः शितः।
अमूलमन्त्रतन्त्रं च कार्म्मणं निवृत्तिप्रियः ॥ 05

योग सर्व विपत्ति रूप लताओं के समूह को काटने के लिए तिखी धार वाला कुठार है तथा मोक्ष लक्ष्मी को वश करने के लिए यह जडीबुटी, मंत्र और तंत्र से रहित कार्मण (जादु) वशीकरण है।

अश्रान्तमिति पिण्डस्थे कृताभ्यसस्ययोगिनः।
प्रभवन्ति न दुर्विद्यामंत्रमण्डलशक्तयः ॥ 29
शाकिन्यः क्षुद्रयोगिन्यः, पिशाचाः पिशिताशनाः।
त्रस्यानि तत्क्षणादेव, तस्य तेजोऽसहिष्णवः ॥ 27
दुष्टाः करटिनः सिंहाः शरभाः पन्नगा अपि।
जिघांसवोऽपि तिष्ठन्ति, स्तम्भिता इव दूरतः ॥ 28 पृ. 567

इस तरह थके बिना पिंडस्थ ध्यान का अभ्यास करने वाले योगी पुरुष की दुष्ट विद्यायें, उच्चाटन, मारण, स्तंभन, विद्वेषणः, मंत्रमंडल शक्तियाँ आदि कुछ भी हानि नहीं कर सकती हैं। शाकिनियाँ, क्षुद्रयोगिनियाँ, पिशाच और मांसभक्षी दुष्ट व्यक्ति उसके तेज को सहन नहीं कर सकते, वे स्वयं तत्काल ही त्रस्त हो जाते हैं। मारना चाहने वाले दुष्ट हाथी, सिंह, सर्प, शरभ आदि हिंस्त्र जीव भी दूर से स्तंभित हो (ठिठक) कर खडे रहते हैं।

त्रिशुद्ध्या चिन्तयस्तस्य, शतमष्टोत्तरं मुनिः।
भुञ्जानोऽपिलभतैव, चतुर्थतपसः फलम् ॥ 35

मन-वचन और काय की शुद्धि पूर्वक एकाग्रता से एक सौ आठ इस महामंत्र नमस्कार का जप करने वाले मुनि आहार करता हुआ भी एक उपवास का फल प्राप्त करता है।

एवमेव महामन्त्रं समाराध्येह योगिनः।
त्रिलोक्येऽपि महीयन्तेऽधिगताः परमां श्रियम् ॥ 36
कृत्वा पाप सहस्राणि, हत्वा जन्तुशतानि च।
अमुं मन्त्रं समाराध्य, तिर्यञ्चोऽपि दिवंगताः ॥ 37

योगी पुरुष इसी महामंत्र की यहाँ अच्छी तरह आराधना करके श्रेष्ठ आत्मलक्ष्मी के अधिकारी बनकर तीन जगत् के पूजनीय बन जाते हैं। हजारों पाप करके और सैकडों जीवों का हनन करके तिर्यञ्च जैसे जीव भी इस महामंत्र की सम्यक् आराधना करके स्वर्ग में पहुँच गये हैं।

अस्मिन् नितान्त - वैराग्य व्यतिषंगतरंगिते।
जायते देहिनां सौख्यं, स्वसंवेद्यमतीन्द्रियम् ॥ 17 पृ. 590

अत्यन्त वैराग्य भाव से परिपूर्ण धर्मध्यान में जब आत्मा एकाग्र हो जाता है तब जीव को इंद्रियों से अगम्य आत्मिक सुख का अनुभव होता है। कहा है कि - "विषयों में अनासक्ति, आरोग्य, अनिष्ठुरता, कोमलता, करुणा, शुभगंध तथा मूत्र और पुरिष की

अल्पता हो जाती है। शरीर की कांति, मुख की प्रसन्नता, स्वर में सौम्यता इत्यादि विशेषतायें योगी की प्रवृत्ति के प्रारंभिक फल का चिन्ह समझना चाहिए।

जब ध्याता धर्मध्यान के अभ्यास के माध्यम से शुक्ल ध्यान को ध्याता हुआ उत्तोरत्तर अध्यात्मिक सोपानों स्वरूप गुण श्रेणी में आरोहण करता है। तब उसकी ध्यान रूप अग्नि अधिक से अधिक प्रज्ज्वलित होती जाती है। उस ध्यान रूप अग्नि के माध्यम से शरीर-मन एवं आत्मा में भी परिवर्तन होता जाता रहता है। उस ध्यानाग्नि से मानसिक रोग स्वरूप राग-द्वेष, संकल्प-विकल्प आदि रोग जितने-जितने अंश में नष्ट होते जाते हैं उतने-उतने अंश में आत्मा की विशुद्धता बढती है। जिससे उत्तरोत्तर पाप कर्म क्षीण हो जाता है। इससे शरीर में भी एक रासायनिक परिवर्तन होता है। इस जैविक-रासायनिक परिवर्तन से शरीर में दूषित धातु, उपधातु, मल क्षीण होते जाते हैं, जिसके कारण शरीर उत्तरोत्तर शुद्ध से शुद्धतर हो जाता है। शरीर के दूषित मलांश जितने-जितने अंश में नष्ट हो जाते हैं एवं मानसिक, आध्यात्मिक विशुद्धियाँ बढती है, उतने-उतने अंश में शरीराश्रित कृमि, सूक्ष्म जीव, निगोदिया जीव, रोगाणु आदि शरीर से विलय होते जाते हैं। गुण श्रेणी के अनुसार जब भाव की विशुद्धता असंख्यात गुणी बढती है तब शरीर, मन, आत्मा के आश्रित बाह्य अशुद्ध तत्त्व (मल, सप्तधातु, निगोदिया जीव, कर्म आदि) भी असंख्यात गुनित रूप से जीव से पृथक् होते जाते हैं। जब ध्यान की परम सीमा पर ध्याता पहुँच जाता है तब जीव को अनेक प्रकार के दुःख देने वाले चार घातियाँ कर्म सम्पूर्ण रूप से विध्वंस हो जाते हैं। इनके साथ-साथ शरीर स्थित धातु-उपधातु-मल, निगोदिया जीव शरीर से पूर्ण रूप से पृथक् हो जाते हैं। जिससे उस ध्यानी का शरीर शुद्ध स्फटीक के समान हो जाता है। इस अवस्था को जीवनमुक्त केवली-अरिहंत आदि अनेक नामों से अभिहित किया जाता है। श्री हेमचंद्राचार्य योग शास्त्रों में **शुक्ल ध्यान का अलौकिक फल** बताते हुए कहते हैं -

ज्ञनावरणीयं दृष्ट्यावरणीयं च मोहनीयं च।
विलयं प्रयान्ति सहसा सहान्तरायेण कर्माणि ॥ 22 योगशास्त्र पृ.397

शुक्लध्यान के प्रभाव से अंतराय कर्म सहित ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और मोहनीय ये चारों कर्म एक साथ विनष्ट हो जाते हैं।

संप्राप्य केवलज्ञान-दर्शने दुर्लभे ततो योगी ।
जानाति पश्यन्ति तथा लोकलोकं यथावस्थं ॥ 23

घाति कर्मों का क्षय होने पर ध्यानन्तर योगी दुर्लभ केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त करके यथावस्थित रूप से समस्त लोक और अलोक को जानने तथा देखने लगता है।

देवस्तदा स भगवान् सर्वज्ञः सर्वदर्श्यन्तगुणः ।
विदहरत्यवनीवलय्र सुरासुरनरेरगैः प्रणतः ॥ 24

वाग्योत्स्नयाखिवलान्यपि, विबोधयाति भव्यजन्तुकुमुदानि।
उन्मूलयति क्षणतो, मिथ्यात्वं द्रव्य-भावगतम् ॥ 25
तन्नामग्रहमात्राद् अनादि-संसार-संभवं दुखम्।
भव्यात्मनामशेषं परिक्षयं याति सहसैव ॥ 26
अपि कोटीशत संख्याः समुपासितमागताः सुरनराद्याः।
क्षेत्रे योजनमात्रे भान्ति तदाऽस्य प्रभावेणा ॥ 27
त्रिदिवौकसा मनुष्याः तिर्यश्चोऽन्येऽप्यमुष्य बुध्यन्ते।
निजनिजभाषानुगतं, वचन धर्मावबोधकरम् ॥ 28
आयोजनशतमुग्राः रोग शाम्यन्ति तत्प्रभावेण।
उदयिनि शीतमरीचाविव तापरुजः क्षितेः परितः ॥ 29
मारीति दुर्भिक्षाति वृष्ट्यनावृष्टिडामर-वैराणि।
न भवन्त्यस्मिन् विहरति, सहस्ररश्मौ तमांसीव ॥ 30

केवल ज्ञान होने के बाद सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनंत गुणों के निधान देवाधिदेव अरहंत भगवान् अनेक सुरासुर और नागकुमार आदि से वंदनीय होकर पृथ्वी मंडल पर विचरते हैं और विचरते हुए भगवान् अपनी वाणी रूप चंद्र ज्योत्सना (चांदनी) द्वारा भव्यजीव रूपी चंद्रविकासी कमल (कुमुद) को प्रतिबोधित करते हैं और द्रव्य मिथ्यात्व और भाव मिथ्यात्व रूपी अंधकार को क्षणभर में समूलतः नष्ट कर देते हैं। उनका नाम उच्चारण करने मात्र से अनादि काल से संसार में उत्पन्न होने वाले भव्य जीवों के समग्र दुःख सदा के लिए नष्ट हो जाते हैं। तथा उन भगवान् की उपासना के लिए आये हुए शतकोटी देव, मनुष्य और तिर्यंश्च आदि एक योजन मात्र क्षेत्र स्थान में ही समा जाते हैं। उनके धर्म-बोधक वचनों को देख मनुष्य, पशु तथा अन्य जीव अपनी भाषा में समझ लेते हैं। वे ऐसा समझते हैं कि भगवान् हमारी ही भाषा में बोल रहे हैं। भगवान् जिस क्षेत्र में विचरते हैं उस स्थल से चारों ओर सौ-सौ योजन प्रमाण क्षेत्र में उनके प्रभाव से महारोग वैसे ही शांत हो जाते हैं। जैसे सूर्य के उदय होते ही अंधकार नहीं रहता है वैसे ही भगवान् जहाँ विचरते है वहाँ महामारी, दुर्भिक्ष, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, युद्ध, वैर आदि उपद्रव नहीं रहते।

शारीरिक स्वास्थ, चमत्कारपूर्ण रीद्धि-सिद्धि की उपलब्धियाँ वस्तुतः ध्यान का यथार्थ फल नहीं है। किंतु अनुषांगिक फल है। ध्यान का यथार्थ फल-मानसिक शांति, विशुद्ध-कर्मास्रव का निरोध, कर्म की निर्जरा, आध्यात्मिक शक्तियों का प्रगट होना, अवधिज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान की प्राप्ति, केवल ज्ञान की उपलब्धि, संपूर्ण कर्मों का क्षय तथा सिद्धत्व की उपलब्धि है। जब ध्याता कुध्यान को छोडकर सुध्यान से भावित होता हुआ राग-द्वेष से उपरत होकर साम्यावस्था को प्राप्त करता है व निश्चल शुक्ल ध्यान को

ध्याता है। तब उसके ध्यान रूपी अग्नि से घातिया कर्म जब भस्मसात् हो जाते हैं तब अनंत चतुःष्टय को, जीवनमुक्त केवली अर्थात् अरहंत अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं। अंत में संपूर्ण कर्मों को नष्ट करते हैं। तब वे शुद्ध-बुद्ध-निरञ्जन अविनाशी अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं। यह सिद्धावस्था प्राप्त करना ही ध्यान का फल है। सिद्धावस्था में जो अनंत आध्यात्मिक गुणों की उपलब्धि होती है उसका वर्णन ध्यान की अनुपम कृति ज्ञानार्णव में निम्न प्रकार है।

निद्रातन्द्राभयभ्रान्ति रागद्वेषार्तिसंशयैः।
शोकमोह जराजन्म मरणाद्यैश्चः विच्युतः॥ 66
क्षुत्तृट्श्रममदोन्मादमूर्च्छामात्सर्य वर्जितः।
वृद्धिह्रासव्यपेतात्मा कल्पनातीत वैभवः॥ 67
निष्कलः करणातीतो निर्विकल्पो निरञ्जनः।
अनन्तवीर्यतापन्नो नित्यानन्दाभिनन्दितः॥ 68
परमेष्ठी परंज्योतिः परिपूर्णः सनातनः।
संसारसागरोतीर्णः कृतकृत्योचलस्थितिः॥ 69
सुतृप्तः सर्वदैवास्ते देवस्त्रैलोक्यमूर्धनि।
नोपमानं सुखादीनां विद्यते परमेष्ठि नः॥ 70
चरस्थिरार्थसंकीर्णे मृग्यमाणं जगत्रये।
उपमानोप मेयत्वं मन्ये स्वस्यैव स स्वयम्॥ 71

निद्रा, आलस्य, भय, भ्रम, रोग, द्वेष, पीडा, संशय, शोक, मोह, जरा, जन्म और मरण आदि से रहित क्षुधा, तृष्णा, परिश्रम, मद, उन्माद (विषयासक्ति), मूर्च्छा और ईर्ष्याभाव से विहीन वृद्धि-हानि से रहित स्वरूप से संयुक्त अकल्पनीय (अचिंत्य) वैभव से परिपूर्ण, शरीर से रहित, इंद्रियों से अतीत, विकल्पों से निष्क्रांत, कलंक से मुक्त, अनंत वीर्य स्वरूप को प्राप्त, शाश्वतिक आनंद से प्रशासित, परम पद में स्थित, उत्कृष्ट ज्ञान ज्योति से सहित, परिपूर्ण, सनातन, संसार रूप समुद्र के पार को प्राप्त, कृतकृत्य और स्थिति से संयुक्त वह सिद्ध परमात्मा अतिशय संतुष्ट होकर सदा तीन लोक के शिखर पर (सिद्धालय) स्थित रहते हैं। उस सिद्ध परमेष्ठि के अनंत सुखादि गुणों के लिए अस्थिर और स्थिर पदार्थों से परिपूर्ण लोक में यदि किसी उपमान को खोजा जाय तो उपलब्ध नहीं हो सकता है। अर्थात् उनके अनंत ज्ञानादि किसी अन्य के साथ तुलना नहीं की जा सकती है। वह स्वयं ही अपने उपमान और उपमेय स्वरूप को प्राप्त है ऐसा मैं मानता हूँ। सिद्ध परमात्मा के वे गुण उसी के समान हैं; अन्य किसी के भी समान नहीं है।

यद्देवमनुजाः सर्वे सौख्यमक्षार्थ संभवम्।
निर्विशान्ति निराबाधं सर्वाक्षप्रीणनक्षमम्॥ 61

सर्वेणातीतकालेन यच्चा भुक्तं महर्द्धिकम्।
भाविनो यच्च भोक्षयन्ते स्वादिष्टं स्वान्तरञ्जकम्॥ 62
अनन्तगुणितं तस्मादत्यक्षं स्वस्वभावजम्।
एकस्मिन् समये भुङ्क्ते तत्सुखं परमेश्वरः॥ 63 पृ.694

सब देव और मनुष्य बाधा से रहित एवं सभी इंद्रियों को प्रसन्न करने वाले जिस इंद्रिय विषय जनित सुख को वर्तमान में भोग रहे हैं और समस्त अतीत काल में उन्होंने जिस महती ऋद्धि युक्त सुख को भोगा है तथा भविष्य में वे मन को अनुरंजित करने वाले जिस स्वादिष्ट सुख को भोगेगें उसके अनंत गुण अतिन्द्रिय व स्वाभाविक उस सुख को वह सिद्ध परमात्मा एक समय में भोगते हैं।

त्रैलोक्यतिलकीभूतं निःशेषविषयच्युतम्।
निर्द्वन्द नित्यमत्यक्षं स्वादिष्टं स्वस्वभावजम्॥ 77
निरौपम्यमविच्छिन्नं स देवः परमेश्वरः।
तत्रैवास्ते स्थिरीभूतः पिवन् शाश्वत् सुखामृतम्॥ 78

वह सिद्ध परमात्मा तीनों लोकों में श्रेष्ठभूत समस्त विषयों के संबंध से रहित, निराकुल, अविनश्वर इंद्रियों की अपेक्षा से रहित, सुस्वाद,आत्म स्वभाव से उत्पन्न (स्वाधीन) असाधारण और व्यवधान से वर्जित ऐसे सुख स्वरुप अमृत का सदा पान करता हुआ निरन्तर अनन्त सुख का अनुभव करता हुआ वहीं पर स्थिर होकर रहता है उसका फिर संसार में पुनरागमन नहीं होता है।

उपरोक्त सम्पूर्ण वर्णन से पाठकों को ज्ञात होगा कि ध्यान एक अत्यन्त सहज, सरल, अमोघ, अमूल्य औषधि है; जिसके माध्यम से शारीरिक मानसिक के साथ-साथ आध्यात्मिक रोग भी दूर हो जाते हैं। अतः सुखेच्छु के लिए ध्यान का अवलंबन लेना प्रधान एवं प्रथम कर्तव्य हैं। अखिल मानवों को विशेषकर भारतीयों को मेरा आह्वान है कि आप लोग हमारी प्राचीन वैज्ञानिक पद्धति का अवलम्बन लेकर स्वयं स्वस्थ निरोगी होकर स्व-पर, इहलोक-परलोक की उन्नति में अपना महत्वपूर्ण योगदान दें। ध्यान की उपयोगिता का अनुभव तब आ सकता है जब मानव स्वयं ध्यान का अभ्यास करके ध्यान करने के लिये जीवन में कुछ न कुछ समय अवश्य देवें। आज मानव अंधाधुंध सुख शान्तिमय जीवन यापन के लिए भौतिक साधन, वैज्ञानिक-उपकरण, मनोरंजन की सामग्रियों, औषधि की शीशी, अस्पताल आदि का आश्रय लेकर धन, समय के साथ जीवन को भी गँवा देता है परंतु सुख प्राप्त नहीं कर पाता है। जीवन में सुख- शांति, तनावमुक्त जीवन-यापन के लिए ध्यान अपनाना चाहिये। अखिल जीव- जगत् ध्यान का अवलंबन लेकर सुख शांति का अनुभव करें।

परः परस्ततो दुःखमात्मैवात्मा ततः सुखम्।
अत एव महात्मानस्तन्निमित्तं कृतोद्यमाः॥ 45

पर देह धनादि पर ही है। उसे कभी भी आत्मा का, स्वयं का नहीं कर सकते हैं। इसलिये उसमें आत्मा का आरोपण करना दुखों को निमंत्रण देना है। क्योंकि वे परद्रव्य दुःखों के द्वार है, दुःखों के निमित्त है। उसी प्रकार आत्मा, आत्मा का ही है। उसे कभी भी देहादि रूप में परिणमन नहीं कर सकते हैं अथवा आत्मा देहादि का उपादान नहीं है। इसलिये आत्मा से सुख है, दुःख के निमित्त उसके अविषय है। इसके लिये ही तीर्थङ्करादि महात्माओं ने आत्मा के निमित्त तपानुष्ठान रूपी उद्योग किया है।

आचार्य श्री ने इस श्लोक में सुख का आधार तथा उसे प्राप्त करने का संक्षिप्त किन्तु सार गर्भित उपाय बताया है। उन्होंने यह बताया कि दुःख आत्मा का स्वरूप नहीं है तथा सुख दूसरों से प्राप्त नहीं होता है वरन् दुःख पर का स्वभाव है। तथा सुख स्व-स्वभाव है। जो सुख के लिए दूसरों को/अनात्म स्वरूप को अपनाता है वह सुख के परिवर्तन में दुःखों को गले लगाता है इसके विपरीत जो पर संयोग को त्याग करके आत्मा का ही आश्रय लेता है/आलंबन लेता है वह सुख को प्राप्त करता है। इसका रहस्य यह है कि शुद्ध-स्वतंत्र आत्मा का स्वरूप ही अक्षय-अनंत सुख स्वरूप है तथा शरीरादि पौद्गलिक द्रव्य है जिसमें सुख का सर्वथा अभाव है; उसको स्वीकार रूप में जो मोह, राग है वह दुःख के निमित्त है। क्योंकि उसके कारण जो कर्मबंध होता है उससे आत्मा परतंत्र होता है और सुखादि गुण भी दुःख रूप में परिणमन कर लेते हैं। परंतु भेद-विज्ञान तथा भेद-क्रिया रूप वीतराग चारित्र से पर संबंध रूप बंधन कट जाता है तब आत्मा के सुखादि गुण प्रगट हो जाते हैं। इसे ही स्वतंत्रता/निःसंगत्व/स्वाधीन/मोक्ष कहते हैं।

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम्॥ 27 गीता पृ.76

जिसका मन भली-भाँति शांत हुआ है, जिसके विकार शांत हो गये हैं। ऐसा ब्रह्ममय हुआ निष्पाप योगी अवश्य उत्तम सुख प्राप्त करता है।

युञ्जत्रेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते॥ 28

आत्मा के साथ निरंतर अनुसंधान करते हुए पाप रहित हुआ यह योगी सरलता से ब्रह्म प्राप्ति रूप अनंत सुख का अनुभव करता है।

सामग्री विशेष विश्लेशिताखिलावरणमतीन्द्रियमशेषतो मुख्यम्॥ प्र.रत्न मा.

सामाग्री की विशेषता से दूर हो गये हैं समस्त आवरण जिसके ऐसे अतींद्रिय और पूर्णतया विशद ज्ञान को मुख्य प्रत्यक्ष (केवलज्ञान) कहते हैं।

एश्वर्यमप्रतिहतं सहजो विरागस्तृप्तिर्निसर्गजनिता वशितेन्द्रियेषु।
अत्यान्तिकं सुखमनावरणा च शक्तिर्ज्ञानं च सर्वविषयं भवस्तथैवा॥

तथा सन्यासिओं के गुरु अवधूत के भी वचन उसके विषय में इस प्रकार हैं।

"हे भगवन्! आपका ऐश्वर्य अप्रतिहत (अखंड) है। वैराग्य स्वाभाविक है। तृप्ति नैसर्गिक है। इंद्रियों में वशिता है अर्थात् आप जितेंद्रिय हैं। आपका सुख अत्यंतिक अर्थात् चरम सीमा को प्राप्त है। शक्ति आवरण रहित है और सर्व विषयों को साक्षात् करने वाला ज्ञान भी आपका ही है।

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरमृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः। 34 पा.यो.दर्शन

अविद्या, अस्मिता, राग-द्वेष तथा अभिनिवेशरूप क्लशों से शुभाशुभ कृतियों से जन्य पुण्य-पाप रूप कर्मों से, पुण्य-पाप के फल - जाति, आयु तथा भोग प्रतिनिधि सुख-दुःख रूप विपाक से और सुख-दुःखात्मक भोग से जन्य विविध वासनाओं से अस्पृष्ट; जीवरूप अन्य पुरुषों से विशिष्ट, चेतन ईश्वर है।

सत्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च। 49

पुरुष (आत्मा) एवं प्रकृति (कर्म) के भेदज्ञान से सम्पन्न योगी को सम्पूर्ण पदार्थों के अधिष्ठातृत्व का (अर्थात् सम्पूर्ण पदार्थों को नियंत्रित करने के सामर्थ्य का) और समस्त पदार्थों के ज्ञातृत्व का (अर्थात् सम्पूर्ण पदार्थों को ठीक-ठीक जान लेने की शक्ति का) लाभ होता है।

तद्वैराग्यदपि दोषबीजक्षये कैवल्यम्॥ 50

विवेक ख्याति की निष्ठा द्वारा, विवेक ख्यातिजन्य सिद्धिविषयक परम वैराग्य की प्राप्ति हो जाने से पर-वैराग्य जन्य असम्प्रज्ञात समाधि द्वारा, रागादि दोषों के मूल कारण अविद्या के समाप्त हो जाने पर योगी पुरुष को कैवल्य भी प्राप्त हो जाता है।

सत्त्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यम्॥ 55

बुद्धि एवं पुरुष की शुद्धि के समान रूप से हो जाने पर मोक्ष हो जाता है।

जिघच्छापरमारोगा, संखारा परमा दुखा।
एवं ञत्वा यथाभुतं निव्वानं परमं सुखं॥ धम्मपद

भूख सबसे बडा रोग है, संस्कार सबसे बडा दुःख है, इसे यथार्थ रूपसे जानकर निर्वाण सब से बडा सुख है।

अनन्त दर्शन स्वरूपोऽहम्।	-	मैं अनन्त दर्शन स्वरूप हूँ।
अनन्त सुख स्वरूपोऽहम्।	-	मैं अनन्त सुख स्वरूप हूँ।
अनन्तशक्ति स्वरूपोऽहम्।	-	मैं अनन्त शक्ति स्वरूप हूँ।
शुद्धात्मस्वरूपोऽहम्।	-	मैं शुद्ध आत्म स्वरूप हूँ।

वैदिक धर्म में वर्णित आध्यात्मिक-स्वास्थ्य के उपाय

गीता में वर्णित आध्यात्मिक-स्वास्थ्य

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्विकं निर्मलं फलम्।
राजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम्॥ 16

सत्कर्म का फल सात्विक और निर्मल होता है। राजसी कर्म का फल दुःख होता है और तामसी कर्म का फल अज्ञान होता है।

सत्त्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च॥ 17

सत्त्वगुण में से ज्ञान उत्पन्न होता है। रजोगुण में से लोभ और तमोगुण में से असावधानी, मोह और अज्ञान उत्पन्न होता है।

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसः।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः॥ 18

सात्विक मनुष्य ऊँचे चढते हैं, राजसी मध्य में रहते हैं और अंतिमगुण वाले तामसी अधोगति पाते हैं।

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति॥ 19

ज्ञानी जब ऐसा देखता है कि गुणों के सिवा और कोई कर्ता नहीं है और जो गुणों से परे है उसे जानता है तब वह मेरे भाव को पाता है।

गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान्।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते॥ 20

देह के संग से उत्पन्न होने वाले इन तीन गुणों को पार करके देहधारी जन्म-मृत्यु और जरा के दुःख से छूट जाता है और मोक्ष पाता है।

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसञ्ज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्॥ 5

जिसने मान-मोह का त्याग किया है, जिसने आसक्ति से होने वाले दोषों को दूर किया है, जो आत्मा में नित्य निमग्न है, जिसके विषय शांत हो गये हैं, जो सुख-दुःख रूपी द्वन्द्वों से मुक्त है वह ज्ञानी अविनाशी पद को पाता है।

सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ।
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति॥ 36
यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।
तत्सुखं सात्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम्॥ 37

हे भरतर्षभ! अब तीन प्रकार के सुख का वर्णन मुझसे सुन। जिसके अभ्यास से मनुष्य प्रसन्न रहता है, जिससे दुःखका अंत होता है, जो आरंभ में विष समान लगता है, परिणाम में अमृत-जैसा होता है, जो आत्म-ज्ञान की प्रसन्नता में से उत्पन्न होता है, वह सात्विक सुख कहलाता है।

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति॥ 49

जिसने सब कहीं से आसक्ति को खींच लिया है, जिसने कामनाओं को त्याग दिया है, जिसने मन को जीत लिया है, वह संन्यास द्वारा निष्कामता रूपी परम सिद्धि पाता है।

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे।
सामासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा॥ 50

हे कौंतेय! सिद्धि प्राप्त होने पर मनुष्य ब्रह्म को किस प्रकार पाता है, सो मुझ से संक्षेप में सुन। ज्ञान की पराकाष्ठा वही है।

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च॥ 51
विविक्त-सेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः॥ 52
अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥ 53

जिसकी बुद्धि शुद्ध हो गई है, ऐसा योगी दृढता पूर्वक अपने को वश में करके, शब्दादि विषयों का त्यागकर, राग-द्वेष को जीतकर, एकांत सेवन करके, अल्पाहार करके, वाचा, काया और मन को अंकुश में रखकर, ध्यान-योग में नित्यपरायण रहकर, वैराग्य का आश्रय लेकर, अहंकार, बल, दर्प, काम, क्रोध और परिग्रह को त्यागकर, ममता रहित और शांत होकर ब्रह्मभाव को पाने योग्य बनता है।

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥ 54

ब्रह्मभाव को प्राप्त प्रसन्नचित्त मनुष्य न तो शोक करता है, न कुछ चाहता है। भूतमात्र में समभाव रखकर मेरी परमभक्ति को पाता है।

परमानन्द स्वरूपोऽहम्।	-	मैं शुद्धात्मा परम आनन्द स्वरूप हूँ।
सदानन्द स्वरूपोऽहम्।	-	मैं सदा आनन्द स्वरूप हूँ।
चिदानन्द स्वरूपोऽहम्।	-	मैं चिदानन्द स्वरूप हूँ।

महाभारत में वर्णित मनोवैज्ञानिक-आध्यात्मिक चिकित्सा

अज्ञान एवं लोभ से हानियाँ :-

रागो द्वेषस्तथा मोहो हर्षः शोकोभिमानिता।
कामः क्रोधश्च दर्पश्च तन्द्री चालस्यमेव च॥ 06
इच्छा द्वेषस्तथा तापः परवृद्धभुपतापिता।
अज्ञानमेतन्निदिष्टं पापानं चैव याः क्रियाः॥ 07

भीष्मजी ने कहा - राजन्! राग द्वेष, मोह, हर्ष, शोक अभिमान, काम, क्रोध, दर्प, तंद्रा, आलस्य, इच्छा, वैर, ताप, दूसरों की उन्नति देखकर जलना और पापाचार करना इन सबको (अज्ञान का कार्य होने से) अज्ञान बताया गया है।

एतस्य वा प्रवृत्तेश्च पृद्धयादिन्याश्च पृच्छसि।
विस्तारेण महाराज शृणुतच्च विशेषतः॥ 08

महाराज! इस अज्ञान की उत्पत्ति और वृद्धि आदि के विषय में जो प्रश्न कर रहे हो उसके विषय में विशेष विस्तार के साथ किया हुआ मेरा वर्णन सुनो।

उभावेतौ समफलौ समदोषौ च भारत।
अज्ञानं चाति लोभश्चाप्येकं जानीहि पार्थिव॥ 09

भारत! पृथ्विनाथ! अज्ञान और अत्यन्त लोभ इन दोनों को एक समझो, क्योंकि इनके परिणाम और दोष समान ही है।

लोभ प्रभवमज्ञानं वृद्धं भूयः प्रवर्धये।
स्थाने स्थानं क्षये क्षैण्यमुपैति विविधां गतिम्॥ 10

लोभ से अज्ञान और भी बढता है। जब तक लोभ रहता है तब तक अज्ञान भी बना रहता है और जब लोभ का क्षय होता है तब अज्ञान भी क्षीण हो जाता है। अज्ञान और लोभ के कारण ही जीव नाना प्रकार की योनियों में जन्म लेता है।

मूलं लोभस्य मोहो वै कालात्मगतिरेव च।
छिन्ने भिन्ने तथा लोभे कारणं काल एव च॥ 11

मोह ही निःसंदेह लोभ का मूल कारण है। यह काल स्वरूप मोहात्मक अज्ञान ही मनुष्य की बुरी गति का काराण है। लोभ के छिन्न-भिन्न होने में भी काल ही कारण है।

तस्याज्ञानाद्धि लोभो हि लोभादज्ञानमेव च।
सर्वदोषास्तथा लोभात् तस्माल्लोभं विवर्जयेत्॥ 12

मूढ मनुष्य को अज्ञान से लोभ और लोभ से अज्ञान होता है। लोभ से ही सारे दोष पैदा होते हैं। इसलिए लोभ को त्याग देना चाहिए।

संयम से लाभ

धर्मस्य विधयो नेक ये वै प्रोक्ता महर्षिभिः।
स्वं स्वं विज्ञान माश्रित्य दमस्तेषां परायणम्॥ 06

महर्षियों ने अपने-अपने ज्ञान के अनुसार धर्म की एक नहीं अनेक विधियाँ बताई है, परंतु उन सब का आधार दम (मन और इंद्रियों का संयम) ही है।

दमं निःश्रेयसं पाहुर्वृद्धा निश्चित दर्शिनः।
ब्राह्मणस्य विशेषेण दमो धर्मः सनातनः॥ 07

धर्म के सिद्धान्त को जानने वाले बुद्ध पुरुष दम को निःश्रेयस (परम कल्याण) का साधन बताते हैं। विशेषतः ब्राह्मण के लिए तो दम ही सनातन धर्म है।

दमात् तस्य क्रियासिद्धिर्यथावदुपलभ्यते।
दमो दानं तथा यज्ञानधीतं चातिवर्त ते॥ 08

दम से ही उसे अपने शुभ कर्मों की यथावत् सिद्धि प्राप्त होती है। दम उसके लिए दान, यज्ञ और स्वाध्याय से भी बढकर है।

दमस्तेजो वर्धयति पवित्रं च दमः परम्।
विपाप्मा तेजसा युक्तः पुरुषो विन्दते महत्॥ 09

दम तेज की वृद्धि करता है। दम परमपवित्र साधन है, दम से पाप रहित हुआ तेजस्वी पुरुष परम पद को प्राप्त कर लेता है।

दमेन सदृशं धर्मे नान्यं लोकेषु शुश्रुम्।
दमो हि परमो लोके प्रशस्तः सर्वधर्मिणाम्॥ 10

हमने संसार में दम के समान दूसरा कोई धर्म नहीं सुना, जगत् में सभी धर्म वालों के यहाँ दम को उत्कृष्ट बताया गया है। सब ने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

प्रेत्य चात्र मनुष्येन्द्र परमं विन्दते सुखम्।
दमेन हि समायुक्तो महान्तं धर्ममश्नुते॥ 11

नरेंद्र! दम से अर्थात् इंद्रिय और मन के संयम से युक्त पुरुष को महान् धर्म की प्राप्ति होती है। यह इहलोक और परलोक में भी परम सुख पाता है।

सुखं दान्तः प्रस्वपिति सुखं च प्रतिबुध्यते।
सुखं पर्येति लोकाश्च मनश्चस्य प्रसीदति॥ 12

जिसने अपने मन और इंद्रियों का दमन कर लिया है वह सुख से सोता, सुख से जगता और सुख पूर्वक ही लोकों में विचरता है। उसका मन सदा प्रसन्न रहता है।

अदान्तः पुरुषः क्लेशमभीक्ष्णं प्रतिपद्यते।
अनर्थोश्च बहूनन्यान् प्रसृजत्यात्मदोषजान्॥ 13

जिसकी इंद्रियाँ और मन वश में नहीं है वह पुरुष निरन्तर क्लेश उठाता है, साथ ही वह अपने ही दोषों से बहुत से दूसरे-दूसरे अनर्थों की भी सृष्टि कर लेता है।

आश्रमेषु चतुर्ष्वाहुर्दममेवोत्तमं व्रतम्।
तस्य लिङ्गानि वक्ष्यामि येषां समुदयो दमः॥ 14

चारों आश्रमों में दम को ही उत्तम व्रत बताया गया है। अब मैं इंद्रिय दमन एवं मनो निग्रह के उन लक्षणों को बताऊँगा; जिनका उदय होना ही दम कहा गया है।

क्षमा धृतिरहिंसा च समता सत्यमार्जवम्।
इन्द्रियाभिजयो दाक्ष्यं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥ 15
अकार्पण्यमसंरम्भः संतोषः प्रियवादिता।
अविहिंसानसूया चाप्येषां समुदयो दमः॥ 16

क्षमा, धीरता, अहिंसा, समता, सत्यवादिता, सरलता, इंद्रिय विजय, दक्षता, कोमलता, लज्जा, स्थिरता, उदारता, क्रोधहीनता, संतोष, प्रिय वचन बोलने का स्वभाव, किसी भी प्राणी को कष्ट न देना और दूसरों के दोष न देखना इन सद्गुणों का उदय होना ही दम कहलाता है।

गुरुपूजा च कौरव्य दया भूतष्वपैशुनम्।
जनवादं मृषावादं स्तुतिनिन्दाविसर्जनम्॥ 17
कामं क्रोधं च लोभं च दर्पे स्तम्भंविकत्थनम्।
रोषमीर्ष्यावमानं च नैव दान्तो निषेवते॥ 18

जिसने मन और इंद्रियों का दमन कर लिया है, उसमें गुरुजनों के प्रति आदर का भाव, समस्त प्राणियों के प्रति दया और किसी की भी चुगली न खाने की प्रवृत्ति होती है। वह जनापवाद, असत्य भाषण, निंदा-स्तुति की प्रवृत्ति, काम, क्रोध, लोभ, दर्प, जडता, डींग हाकना, रोष, ईर्ष्या और दूसरों का अपमान इन दुर्गुणों का कभी सेवन नहीं करता।

अनिन्दितो ह्यकामात्मा नाल्पष्वर्थनसूचकः।
समुद्रकल्पः स नरो न कथंचन पूर्यते॥ 19

इंद्रिय और मन को वश में रखने वाले पुरुष की कभी निंदा नहीं होती है, उसके मन में कोई कामना नहीं होती, वह छोटी-छोटी वस्तुओं के लिए किसी के सामने हाथ नहीं फैलाता अथवा तुच्छ विषय सुखों की अभिलाषा नहीं रखता, दूसरों के दोष नहीं देखता वह मनुष्य समुद्र के समान अगाध गांभिर्य धारण करता है। जैसे समुद्र अनंत जल राशी पाकर भी भरता नहीं है उसी प्रकार वह भी निरन्तर धर्म संचय से कभी तृप्त नहीं होता।

अहं त्वयि मयि त्वं च मयि ते तेषु चाप्यहम्।
पूर्वसम्बन्धि संयोगं नैतदृ दान्तो निषेवते॥ 20

मैं तुम पर स्नेह रखता हूँ ओर तुम मुझपर, वे मुझ में अनुराग रखते हैं और मैं उनमें। इस प्रकार पहले के सम्बन्धियों के सम्बन्ध का जितेन्द्रिय पुरुष चिंतन नहीं करता।

सर्वा ग्राम्यास्तथाऽऽरण्या याश्च लोके प्रवृत्तयः।
निन्दां चैव प्रशंसां च यो नाश्रयति मुच्यते॥ 21

जगत् में ग्रामीणों और वनवासियों की जो-जो प्रवृत्तियाँ होती हैं उन सबका जो सेवन नहीं करता तथा दूसरों की निंदा और प्रशंसा से भी दूर रहता है। उसकी मुक्ति हो जाती है।

मैत्रोऽय शीलसम्पन्नः प्रसन्नात्माऽऽविच्च यः।
मुक्तस्य विविधैः सङ्गैस्तस्य प्रेत्य फलंमहत्॥ 22

जो सबके प्रति मित्रता का भाव रखने वाला और सुशील है, जिसका मन प्रसन्न है, जो नाना प्रकार की आसक्तियों से मुक्त तथा आत्मज्ञानी है उसे मृत्यु के पश्चात् मोक्ष रूप महान् फल की प्राप्ति होती है।

सुवृत्तः शील सम्पन्नः प्रसन्नात्माऽऽत्मविद्बुधः।
प्राप्येह लोके सत्कारं सुगतिं प्रतिपद्यते॥ 23

जो सदाचारी शील सम्पन्न, प्रसन्नचित्त और आत्मतत्त्व को जानने वाला है वह विद्वान् पुरुष इस लोक में सत्कार पाकर परलोक में परम गति पाता है।

कर्म यच्छुभमेवेह सद्भिराचरितं च यत्।
तदेव ज्ञान युक्तस्य मुनेर्वर्त्म न हीयते॥ 24

इस जगत् में जो केवल शुभ (कल्याण कारी) कर्म है तथा सत्पुरुषों ने जिसका आचरण किया है वही ज्ञानवान् मुनि का मार्ग है। वह स्वभावतः उसका आचरण करता है, उसमें कभी च्युत नहीं होता।

निष्क्रम्य वनमास्थाय ज्ञान युक्तो जितेन्द्रियः।
कालाकाङ्क्षी चरत्येवं ब्रह्मभूयाय कल्पते॥ 25

ज्ञान संपन्न जितेंद्रिय पुरुष घर से निकलकर वन का आश्रय ले वहाँ मृत्यु काल की प्रतीक्षा करता हुआ निर्द्वन्द्व विचरता रहता है। इस प्रकार वह ब्रह्मभाव को प्राप्त होने में समर्थ हो जाता है।

अभयं यस्य भूतेभ्यो भूतानामभयं यतः।
तस्य देहाद् विमुक्तस्य भयं नास्ति कुतश्चन॥ 26

जिसको दूसरे प्राणियों से भय नहीं है तथा जिससे दूसरे प्राणी भी भय नहीं मानते हैं उस देहाभिमान से रहित महात्मा पुरुष को कहीं से भी भय नहीं प्राप्त होता है।

अवाचिनोति कर्माणि न च सम्प्रचिनोति ह।
समः सर्वेषु भूतेषु मैत्रायणगतिश्चरेत्॥ 27

वह उपभोग द्वारा प्रारब्ध कर्मों को क्षीण करता है और कतृत्वाभिमान तथा फलासक्ति से शून्य होने के कारण नुतन कर्मों का संचय नहीं करता है। सभी प्राणियों में समान भाव रखकर सबको मित्र की भाँति अभयदान देता हुआ विचरता है।

शकुनीनामिवाकाशे जले वारिचरस्य च।
यथा गतिर्न दृश्यते तथा तस्य न संशयः ॥ 28

जैसे आकाश में पक्षियों का और जल में जलचर जंतुओं का पदचिन्ह नहीं दिखाई देता उस प्रकार ज्ञानी की गति भी जानने में नहीं आती है इसमें तनिक भी संशय नहीं है।

ग्रहानृत्सृज्य यो राजन् मोक्षमेवाभि पद्यते।
लोकास्तेजोय यास्तस्य कल्पन्ते शाश्वतीः समाः ॥ 29

राजन् ! जो घर-बार को छोडकर मोक्षमार्ग का ही आश्रय लेता है उसे अनंत वर्षों के लिए दिव्य तेजोमय लोक प्राप्त होते हैं।

संन्यस्य सर्व कर्माणि संन्यस्य विधिवत्तपः।
संन्यस्य विविधा विद्याः सर्वे संन्यस्य चैव ह ॥ 30
कामेशुचिरनावृतः प्रसन्नात्माऽऽत्मविच्छुचिः।
प्राप्येह लोके सत्कारं स्वर्गं समाभिपद्यते ॥ 31

जिसका आचार-विचार शुद्ध और अन्तःकरण निर्मल है, जिसकी कामनायें शुद्ध है तथा जो भोगों से पराङ्मुख हो चुका है, वह आत्मज्ञानी पुरुष संपूर्ण कर्मों का तपस्या का तथा नाना प्रकार की विद्याओं का विधिवत् सन्यास (त्याग) करके सर्वत्यागी संन्यासी होकर इहलोक में सम्मानित हो परलोक में अक्षय स्वर्ग (ब्रह्मधाम) को प्राप्त करता है।

यश्च पैतामहं स्थानं ब्रह्मराशि समुद्भवम्।
गुहायां पिहितं नित्यं तद् दमेनाभिगम्यते ॥ 32

ब्रह्मराशी से उत्पन्न हुआ जो पितामह ब्रह्माजी का उत्तम धाम है वह हृदय गुहा में छिपा हुआ है। उसकी प्राप्ति सदा दम (इंद्रिय संयम और मनोनिग्रह) से ही होती है।

ज्ञानारामस्य बुद्धस्य सर्व भूता विरोधिनः।
नावृत्ति भयमस्तीह परलोकभयं कुतः ॥ 33

जिसका किसी भी प्राणी के साथ विरोध नहीं है, जो स्वरूप आत्मा में रमता रहता है, ऐसे ज्ञानी को इस लोक में पुनः जन्म लेने का भय ही नहीं रहता फिर उसे परलोक का भय कैसे हो सकता है।

एकं एव दमे दोषों द्वितीयो नोपपद्यते।
यदेनं क्षमया युक्तमशक्तं मन्यते जनः ॥ 34

दम अर्थात् संयम में एक ही दोष है दूसरा नहीं। वह यह कि क्षमाशील होने के कारण उसे लोग असमर्थ समझने लगते हैं।

एकोऽस्य सुमहाप्राज्ञ दोषः स्यात् सुमाहान् गुणः।
क्षमया विपुला लोकाः सुलभा हि सहिष्णुता ॥ 35

महाप्राज्ञ युधिष्ठिर ! उसका यह दोष ही महान् गुण हो सकता है। क्षमा धारण करने से उसको बहुत से पुण्य लोक सुलभ होते हैं। साथ ही क्षमा से सहिष्णुता भी आ जाती है।

दान्तस्य किमरण्येन तथा दान्तस्य भारत।
यत्रेव निवसेद् दान्तस्तदरण्यं स चाश्रमः ॥ 36

भारत ! संयमी पुरुषों को वन में जाने की क्या आवश्यकता है ? और जो असंयमी है उसको वन में रहने से भी क्या लाभ ? संयमी पुरुष जहाँ रहे वहीं उसके लिए वन और आश्रम है।

सत्य से लाभ :-

सत्यं सत्सु सदा धर्मः सत्यं धर्मः सनातनः।
सत्यमेव नमस्येत सत्यं हि परमा गतिः ॥ 04

सत्पुरुषों में सदा सत्यरूप धर्म का ही पालन हुआ है। सत्य ही सनातन धर्म है, सत्य को ही सदा सिर झुकाना चाहिए, क्योंकि सत्य ही जीव की परम गति है।

सत्यं धर्मस्तपोयोगः सत्यं ब्रह्म सनातनम्।
सत्यं यज्ञः परः प्रोक्तः सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ॥ 05

सत्य ही धर्म, तप और योग है, सत्य ही सनातन ब्रह्म है, सत्य को ही परम यज्ञ कहा गया है तथा सब कुछ सत्य पर ही टिका हुआ है।

सत्यं च समता चैव दमश्चैव न संशयाः।
अमात्सर्यं क्षमा चैव ह्रीस्तितिक्षानसूयता ॥ 08
त्यागो ध्यानमथार्यत्वं धृतिश्च सततं स्थिरा।
अहिंसा चैव राजेन्द्र सत्याकारा त्रयोदश ॥ 09

राजेंद्र ! सत्य, समता, दम, मत्सरता का अभाव, क्षमा, लज्जा, तितिक्षा (सहनशीलता), अनसूया, त्याग, परमात्मा का ध्यान, आर्यता (श्रेष्ठ आचरण), निरन्तर स्थिर रहने वाली धृति (धैर्य) तथा अहिंसा - ये तेरह सत्य के ही स्वरूप है इसमें संशय नहीं है।

सत्यं नामाव्ययं नित्यमविकारि तथैव च।
सर्वधर्मा विरुद्धेन योगेनैतदवाप्यते ॥ 10

नित्य एक रस, अविनाशी और अविकारी होना ही सत्य का लक्षण है। समस्त धर्मों के अनुकूल कर्तव्य पालन रूप योग के द्वारा इस सत्य की प्राप्ति होती है।

आत्मनीष्टे तथा मिष्टे रिपौ च समाता तथा।
इच्छाद्वेषक्षयं प्राप्य काम क्रोध क्षमं तथा॥ 11

अपने प्रिय मित्र में तथा अप्रिय शत्रु में भी समान भाव रखना **'समता'** है। इच्छा (राग) द्वेष काम और क्रोध को मिटा देना ही समता की प्राप्ति का उपाय है।

दमो नान्य स्पृहा नित्यं गाम्भीर्यं धैर्यमेव च।
अभयं रोगशमनं ज्ञनेनैतदवाप्यते॥ 12

किसी दूसरे वस्तु को लेने की इच्छा न करना, सदा गम्भीरता और धीरता रखना, भय को त्याग देना तथा मन के रोगों को शांतकर देना यह **'दम'** मन और इंद्रियों के संयम का लक्षण है। इसकी प्राप्ति ज्ञान से होती है।

अमात्सर्यं बुधाः प्राहुर्दाने धर्म च संयमः।
अवस्थितेन नित्यं च सत्येना मत्सरी भवेत्॥ 13

दान और धर्म करते समय मन पर संयम रखना अर्थात् इस विषय में दूसरों से ईर्ष्या न करना इसे विद्वान् लोग मत्सरता का अभाव कहते हैं, सदा सत्य का पालन करने से ही मनुष्य मत्सरता से रहित हो सकता है।

अक्षमायाः क्षमायाश्च प्रियाणीहा प्रियाणि च।
क्षमते सम्मतः साधुः साह्वाप्नोति च सत्यवाक्॥ 14

जो सहने और न सहने योग्य व्यवहारों तथा प्रिय एवं अप्रिय वचनों को भी समान रूप से सहन कर लेता है, वही सर्व सम्मत क्षमाशील श्रेष्ठ पुरुष है। सत्यवादी पुरुषों को ही उत्तम रीति से क्षमा भाव की प्राप्ति होती है।

कल्याण कुरुते बाढं धीमान् न ग्लायते क्वचित्।
प्रशान्त वाङ्मना नित्यं ह्रीस्तु धर्मादवाप्यते॥ 15

जो बुद्धिमान् पुरुष भली भाँति दूसरों का कल्याण करता है और मन में कभी खेद नहीं मानता, जिसकी मन-वाणी सदा शांत रहती है, वह **लज्जाशील** माना जाता है यह लज्जा नामक गुण धर्म के आचरण से प्राप्त होता है।

धर्मार्थहेतोः क्षमते तितिक्षा क्षान्ति रुच्यते।
लोक संग्रहणार्थं वै सा तु धैर्येण लभ्यते॥ 16

धर्म और अर्थ के लिए मनुष्य जो कष्ट को सहन करता है। उसकी यह सहनशीलता **'तितिक्षा'** कहलाती है। लोगों के सामने आदर्श उपस्थित करने के लिए उसका अवश्य पालन करना चाहिए। तितिक्षा की प्राप्ति धैर्य से होती है। दूसरों के दोष न देखना **'अनसूया'** है।

त्यागः स्नेहस्य यत् त्यागो विषयाणां तथैव च।
रागद्वेष प्रहिणस्य त्यागो भवति नान्यथा॥ 17

विषयों की आसक्ति का जो त्याग है, वही वास्तविक **त्याग** है। राग-द्वेष से रहित होने पर ही त्यागकी सिद्धि होती है, अन्यथा नहीं। परमात्म चिंतन का नाम ही **ध्यान** है।

आर्यता नाम भूतानां यः करोति प्रयत्नतः।
शुभं कर्म निराकोरो वीतरागस्तथैव च॥ 18

जो मनुष्य अपने को प्रकट न करके प्रयत्न पूर्वक प्राणियों की भलाई का काम करता रहता है, उसके उस श्रेष्ठ भाव और आचरण का नाम ही **आर्यता** है। यह आसक्ति के त्याग से प्राप्त होता है।

धृतिर्नाम सुखे दुःखे यथा नाप्नोति विक्रियाम्।
तां भजेत सदा प्राज्ञो य इच्छेद् भूति मात्मनः॥ 19

सुख या दुःख प्राप्त होने पर मन में विकार न होना **'धृति'** है। जो अपनी उन्नति चाहता हो, उस बुद्धिमान् पुरुष को सदा ही धृति का सेवन करना चाहिए।

सर्वथा क्षमिणा भाव्यं तथा सत्यपरेण च।
वीतहर्षभयक्रोधो धृतिमाप्नोति पण्डितः॥ 20

मनुष्य को सदा क्षमाशील होना, सत्य में तत्पर रहना चाहिए। जिसने हर्ष, भय और क्रोध तीनों को त्याग दिया है, उस विद्वान् पुरुष को ही **धैर्य** की प्राप्ति होती है।

अद्रोहः सर्व भूतेषु कर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहश्च दानं च सतां धर्मः सनातनः॥ 21

मन, वाणी और क्रिया द्वारा सभी प्राणियों के साथ कभी द्रोह न करना तथा दया और दान यह श्रेष्ठ पुरुषों का **सनातन धर्म** है।

एते त्रयोदशाकाराः पृथक्ः सत्यैक लक्षणाः।
भजन्ते सत्येमेवेह बृंहयेन्ते च भारत॥ 22

ये पृथक्-पृथक् तेरह रूपों में बताये हुए धर्म एकमात्र सत्य को ही लक्षित कराने वाले हैं। ये सत्य का ही आश्रय लेते और उसी की वृद्धि एवं पुष्टी करते हैं।

नान्तः शक्यो गुणानां च वक्तुं सत्यस्य पार्थिव।
अतः सत्यं प्रसंसन्ति विप्राः सपित्रदेवताः॥ 23

पृथ्वीनाथ ! सत्य के गुणों की सीमा नहीं बतायी जा सकती इसलिए पितर और देवताओं के सहित ब्राह्मण सत्य की प्रशंसा करते हैं।

नास्ति सत्यात् परो धर्मो नानृतात् पातकं परम्।
स्थितिर्हि सत्यं धर्मस्य तस्मात् सत्यं न लोपयेत्॥ 24

सत्य से बढकर कोई धर्म नहीं और झूठ से बढकर कोई पातक नहीं है। सत्य ही धर्म की आधारशिला है, अतः सत्य का लोप न करे।

उपैति सत्याद् दानं हि तथा यज्ञाः सदक्षिणाः।
त्रेताग्निहोत्रं वेदाश्च ये चान्ये धर्म निश्चया॥ 25

दान का, दक्षिणाओं सहित यज्ञ का, त्रिविध अग्नियों में हवन का, वेदों के स्वाध्याय तथा अन्य जो धर्म का निर्णय करने वाले शास्त्र हैं, उनके भी अध्ययन का फल मनुष्य सत्य से प्राप्त कर लेता है।

अश्वमेघ सहस्त्रं च सत्यं च तुलया धृतम्।
अश्वमेघ सहस्त्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते॥ 26

यदि एक ओर एक हजार अश्वमेघ यज्ञों को और दूसरी ओर एक मात्र सत्य को तराजू पर रखा जाय तो एक हजार अश्वमेघ यज्ञों की अपेक्षा सत्य का पलडा भारी होगा।

भावात्मक 13 दोषों को दूर करने के उपाय :-

यतः प्रभवति क्रोधः कामो वा भरतर्षभ।
शोकमोहौ विधित्सा च परासुत्वं तथा मदः॥ 01
लोभो मात्सर्यमीर्ष्या च कुत्सासूया कृपा तथा।
एतत् सर्वे महाप्राज्ञ याथातथ्येन मे वद॥ 02

युधिष्ठिर ने पूछा - भरतश्रेष्ठ ! परम बुद्धिमान पितामह ! क्रोध, काम, शोक, मोह, विधित्सा (शास्त्रविरुद्ध काम करने की इच्छा), परासुता (दूसरों को मारने की इच्छा), मद, लोभ, मात्सर्य, ईर्ष्या, निंदा, दोषदृष्टि और कंजूसी (दैन्यभाव) - ये सब दोष किससे उत्पन्न होते हैं ? यह ठीक-ठीक बताइये।

त्रयोदशैतेऽतिबलाः शत्रवः प्राणिनां स्मृताः।
उपासन्ते महाराज समन्तात् परुषानिह॥ 03

भीष्मजी ने कहाँ - महाराज युधिष्ठिर ! तुम्हारे कहे हुए ये तेरह दोष प्राणियों के अत्यन्त प्रबल शत्रु माने गये हैं, जो यहाँ मनुष्यों को सब ओर से घेरे रहते हैं।

एते प्रमत्तं पुरुषमप्रमत्तास्तुदन्ति च।
वृका इव विलुम्पन्ति दृष्टैव पुरुषं बलात्॥ 04

ये सदा सावधान रहकर प्रमाद में पडे हुए पुरुष को अत्यन्त पीडा देते हैं। मनुष्य को देखते ही भेडियों की तरह बलपूर्वक उस पर टूट पडते हैं।

एभ्यः प्रवर्तते दुःखमेभ्यः पापं प्रवर्तते।
इति मर्त्यो विजानीयात् सततं पुरुषर्षभ॥ 05

नरश्रेष्ठ ! इन्हीं से सबको दुःख प्राप्त होता है, इन्हीं की प्रेरणा से मनुष्य की पाप कर्मों में प्रवृत्ति होती है। प्रत्येक पुरुष को सदा इस बात की जानकारी रखना चाहिए।

एतेषामुदयं स्थानं क्षयं च पृथिवीपते।
हन्त ते कथयिष्यामि क्रोधस्योत्पत्तिमादितः॥ 06

यथातत्त्वं क्षितिपते तदिहैकमनाः शृणु।

पृथ्वीनाथ ! अब मैं यह बता रहा हूँ कि इनकी उत्पत्ति किससे होती है ? ये किस तरह स्थिर रहते हैं ? और कैसे इनका विनाश होता है ? राजन् ! सबसे पहले क्रोध की उत्पत्ति का यथार्थ रूप से वर्णन करता हूँ। तुम यहाँ एकाग्रचित्त होकर इस विषय को सुनो।

लोभात् क्रोधः प्रभवति परदोषैरूदीर्यते।
क्षमया तिष्ठते राजन् क्षमया विनिवर्तते॥ 07

राजन् ! क्रोध लोभ से उत्पन्न होता है, दूसरों के दोष देखने से बढता है, क्षमा करने से थम जाता है और क्षमा से ही निवृत्त हो जाता है।

संकल्पाज्जायते कामः सेव्यमानो विवर्धते॥ 08
यदा प्राज्ञो विरमते तदा सद्यः प्रणश्यति।

काम संकल्प से उत्पन्न होता है। उसका सेवन किया जाय तो बढता है और जब बुद्धिमान् पुरुष उससे विरक्त हो जाता है, तब वह (काम) तत्काल नष्ट हो जाता है।

परासुता क्रोधलोभादभ्यासाच्च प्रवर्तते॥ 09
दयया सर्वभूतानां निर्वेदात् सा निवर्तते।
अवद्यदर्शनादेति तत्त्वज्ञानाच्च धीमताम्॥ 10

क्रोध और लोभ से तथा अभ्यास से परासुता प्रकट होती है। सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति दया से और वैराग्य से वह निवृत्त होती है। परदोष दर्शन से इसकी उत्पत्ति होती है और बुद्धिमानों के तत्त्वज्ञान से वह नष्ट हो जाती है।

अज्ञानप्रभवो मोहः पापाभ्यासात् प्रवर्तते।
यदा प्राज्ञेषु रमते तदा सद्यः प्रणश्यति॥ 11

मोह अज्ञान से उत्पन्न होता है और पाप की आवृत्ति करने से बढता है। जब मनुष्य विद्वानों में अनुराग करता है, तब उसका मोह तत्काल नष्ट हो जाता है।

विरुद्धानीह शास्त्राणि ये पश्यन्ति कुरुद्वह।
विधित्सा जायते तेषां तत्त्वज्ञानान्निवर्तते॥ 12

कुरुश्रेष्ठ ! जो लोग धर्म के विरोधी शास्त्रों का अवलोकन करते हैं, उनके मन अनुचित कर्म करने की इच्छा रूप विधित्सा उत्पन्न होती है। यह तत्त्व ज्ञान से निवृत्त होती है।

प्रीत्या शोकः प्रभवति वियोगात् तस्य देहिनः।
यदा निरर्थकं वेत्ति तदा सद्यः प्रणश्यति॥ 13

जिसे पर प्रेम हो, उस प्राणी के वियोग से शोक प्रकट होता है। परंतु जब मनुष्य यह समझ ले कि शोक व्यर्थ है - उससे कोई लाभ नहीं है तो तुरंत ही उस शोक की शांति हो जाती है।

परासुता क्रोधलोभादभ्यासाच्च प्रवर्तते।
दयथा सर्वभूतानां निर्वेदात् सा निवर्तते॥ 14

क्रोध, लोभ और अभ्यास के कारण परासुता अर्थात् दूसरों को मारने की इच्छा होती है। समस्त प्राणियों के प्रति दया और वैराग्य होने से उसकी निवृत्ति हो जाती है।

सत्यत्यागात् तु मात्सर्यमहितानां च सेवया।
एतत् तु क्षीयते तात साधूनामुपसेवनात्॥ 15

सत्य का त्याग और दुष्टों का साथ करने से मात्सर्य दोष की उत्पत्ति होती है। तात ! श्रेष्ठ पुरुषों की सेवा और संगती करने से उसका नाश हो जाता है।

कुलाज्ज्ञानात् तथैश्वर्यान्मदो भवति देहिनाम्।
एभिरेव तु विज्ञातैः स च सद्यः प्रणश्यति॥ 16

अपने उत्तम कुल, उत्कृष्ट ज्ञान तथा ऐश्वर्य का अभिमान होने से देहाभिमानी मनुष्यों पर मद सवार हो जाता है; परंतु इनके यथार्थ स्वरूप का ज्ञाना हो जाने पर वह मद तत्काल उतर जाता है।

ईर्ष्या कामात् प्रभवति संहर्षाच्चैव जायते।
इतरेषां तु सत्त्वानां प्रज्ञया सा प्रणश्यति॥ 17

मन में कामना होने से तथा दूसरे प्राणियों की हँसी-खुशी देखने से ईर्ष्या की उत्पत्ति होती है तथा विवेकशील बुद्धि के द्वारा उसका नाश होता है।

विभ्रमाल्लोकबाह्यानां द्वेष्यैर्वाक्यैरसम्मतैः।
कुत्सा संजायते राजल्लोकान् प्रेक्ष्याभिशाम्यति॥ 18

राजन् ! समाज से बहिष्कृत हुए नीच मनुष्यों के द्वेषपूर्ण तथा अप्रमाणिक वचनों को सुनकर भ्रम में पड जाने से निंदा करने की आदत होती है; परंतु श्रेष्ठ पुरुषों को देखने से वह शांत हो जाती है।

प्रतिकर्तु न शक्ता ये बलस्थायापकारिणे।
असूया जायते तीव्रा कारूण्याद् विनिवर्तते॥ 19

जो लोग अपनी बुराई करनेवाले बलवान् मनुष्य से बदला लेने में असमर्थ होते हैं, उनके हृदय में तीव्र असूया (दोष दर्शन की प्रवृत्ति) पैदा हाती है; परंतु दयाका भाव जाग्रत होने से उसकी निवृत्ति हो जाती है।

कृपणाना सततं दृष्ट्वा ततः संजायते कृपा।
धर्मनिष्ठां सदावेत्ति तदा शाम्यतिसा कृपा॥ 20

सदा कृपण मनुष्यों को देखने से अपने में भी दैन्यभाव कंजूसी का भाव पैदा होता है; धर्मनिष्ठ पुरुषों के उदार भाव को जान लेने पर वह कंजूसी का भाव नष्ट हो जाता है।

अज्ञानप्रभवो लोभो भूतानां दृश्यते सदा।
अस्थिरत्वं च भोगानां दृष्ट्वा ज्ञात्वा निवर्तते॥ 21

प्राणियों का भोगों के प्रति जो लोभ देखा जाता है, वह अज्ञान के ही कारण है भोगों की क्षण भङ्गुरता को देखने और जानने से उसकी निवृत्ति हो जाती है।

नृशंसता से हानियाँ :-

कण्टकान् कूपमग्निं च वर्जयन्ति यथा नराः।
तथा नृशंसकर्माणं वर्जयन्ति नरा नरम् ॥ 02

जैसे मनुष्य रास्ते में मिले हुए काँटों, कुओं और आग को बचाकर चलते हैं, उसी प्रकार मनुष्य नृशंस कर्म करने वाले पुरुष को भी दूर से ही त्याग देते हैं।

नृशंसो दह्यते नित्यं प्रेत्य चेह च भारत।
तस्मात् त्वं ब्रूहि कौरव्य तस्य धर्मविनिश्चयम्॥ 03

भारत ! कुरुनन्दन ! नृशंस मनुष्य इसलोक और परलोक में भी सदा ही शोक की आग से जलता रहता है; अतः आप मुझे नृशंस मनुष्य और उसके धर्म-कर्म का यथार्थ परिचय दीजिए।

स्पृहा स्याद् गर्हिता चैव विधित्सा चैव कर्मणाम्।
आक्रोष्टा क्रुश्यते चैव वञ्चितो बुद्ध्यते स च॥ 04
दत्तानुकीर्तिर्विषमः क्षुद्रो नैकृतिकः शठः।
असंविभागी मानी च तथा सङ्गी विकत्थनः॥ 05
सर्वातिशङ्की पुरुषो बलीशः कृपणोऽथवा।
वर्ग प्रशंसी सततमाश्रमद्वेषसंकरी ॥ 06
हिंसाविहारः सततमविशेषगुणागुणः।
बह्वलीकोऽमनस्वी च लुब्धोऽत्यर्थं नृशंसकृत्॥ 07

भीष्मजी ने कहा राजन् ! जिसके मन में बडी घृणित इच्छाएँ रहती हैं, जो हिंसा प्रधान कुत्सित कर्मों को आरम्भ करना चाहता है, स्वयं दूसरों की निंदा करता है और दूसरे उसकी निंदा करते हैं, जो अपनेको दैव से वञ्चित समझता और पाप में प्रवृत्त होता है, दिये हुए दान का बारं-बार बखान करता है, जिसके मन में विषमता भरी रहती है, जो नीच कर्म करने वाला, दूसरों की जीविका का नाश करने वाला और शठ है, भोग्य वस्तुओं को दूसरे को दिये बिना ही अकेले भोगता है, जिसके भीतर अभिमान भरा हुआ है, जो विषयों में आसक्त और अपनी प्रशंसा के लिए व्यर्थ ही बढ-चढकर बाते बनाने वाला है, जिसके मन में सबके प्रति संदेह बना रहता है, जो कौए की तरह वञ्चक दृष्टि रखने वाला है, जिसमें कृपणता कुट-कुट कर भरी है, जो अपने ही वर्ग के लोगों की प्रशंसा करता, सदा आश्रमों से द्वेष रखता और वर्ण संकरता फैलाता है, सदा हिंसा के लिए ही जिसका घूमना-फिरना होता है, जो गुणको भी अवगुण समान समझता और बहुत झूठ बोलता है, जिसके मन में उदारता नहीं है और जो

अत्यन्त लोभी है, ऐसा मनुष्य ही नृशंस कर्म करने वाला कहा गया है।

धर्मशीलं गुणोपेतं पापमित्यवगच्छति।
आत्मशील प्रमाणेन न विश्वसिति कस्याचित्॥ 08

वह धर्मात्मा और गुणवान् पुरुष को ही पापी मानता है और अपने स्वभाव को आदर्श मानकर किसी पर विश्वास नहीं करता है।

परेषां यत्र दोषः स्यात् तद् गुह्यं सम्पकाशयेत्।
समानेष्वेव दोषेषु वृत्त्यर्थमुपघातयेत् ॥ 09

जहाँ दूसरों की बदनामी होती हो, वहाँ उनके गुप्त दोषों को भी प्रकट कर देता है और अपने तथा दूसरे के अपराध बराबर होने पर भी वह आजीविका के लिए दूसरे का ही सर्वनाश करता है।

भक्ष्यं पेयमथालेह्यंयच्चान्यत् साधु भोजनम्।
प्रेक्षमाणेषु योऽश्नीयान्नृशंसमिति तं वदेत्॥ 11

जो मनुष्य दूसरों के देखते रहने पर भी उत्तम भक्ष्य, पेय, लेह्य तथा दूसरे-दूसरे भोज्य पदार्थों को अकेला ही खा जाता है, उसको भी नृशंस ही कहना चाहिए।

ब्रह्मणेभ्यः प्रदायाग्रं यः सुहृद्भिः सहाश्नुते।
स प्रेत्य लभते स्वर्गमिह चानन्त्यमश्नुते॥ 12

जो पहले ब्राह्मण को देकर पीछे अपने सुहृदों के साथ स्वयं भोजन करता है, वह इस लोक में अनंत सुख भोगता है और मृत्यु के पश्चात् स्वर्गलोक में जाता है।

आध्यात्मिकता तथा उसके फल :-

इन्द्रियाणि नरे पञ्च षष्ठं तु मन उच्यते।
सप्तमी बुद्धिमेवाहुः क्षेत्रज्ञः पुनरष्टमः॥ 15

मानव शरीर में पांच ज्ञानेन्द्रियाँ और छठा मन बताया जाता है। बुद्धि को सातवी और क्षेत्रज्ञ (आत्मा) को आठवाँ कहते हैं।

इन्द्रियाणि च कर्ता च विचेतव्यानि भागशः।
तमः सत्वं रजश्चैव तेऽपि भावास्तादाश्रयाः॥ 16

पाँच इंद्रियाँ और जीवात्मा इन सबको कार्य विभाग के अनुसार अलग-अलग समझना चाहिए। सत्वगुण, रजोगुण, तमोगुण तथा उनके सात्विक, राजस और तामस भाव जीवात्मा के ही आश्रित है।

चक्षुरालोचनायैव संशयं कुरुते मनः।
बुद्धिरध्यवसानाय साक्षी क्षेत्रज्ञ उच्यते।
तमः सत्वं रजश्चेति कालः कर्म च भारत॥ 17

गुणैर्नेनीयते बुद्धिर्बुद्धिरेवेन्द्रियाणि च।
मनः षष्ठानि सर्वाणि बुद्ध्यभावे कुतो गुणाः॥ 18

नेत्र आदि इंद्रियाँ दर्शन आदि कार्यों के लिए हैं। मन संशय करता है और बुद्धि उस विषय का ठीक-ठीक निश्चय करने के लिए है। क्षेत्रज्ञ (आत्मा) को साक्षी बताया जाता है। भरत नन्दन! सत्व, रज, तम, काल और कर्म इन पांच गुणों द्वारा बुद्धि बार-बार विभिन्न विषयों की और ले जायी जाती है। बुद्धि मन सहित सम्पूर्ण इंद्रियों का संचालन करती है। यदि बुद्धि न हो तो ये गुण-इंद्रिय आदि कैसे कोई कार्य कर सकते हैं।

येन पश्यति तच्चक्षुः श्रुण्वती श्रोत्रमुच्यते।
जिघ्रती भवति घ्राणं रसती रसना रसान्॥ 19
स्पर्शनं स्पर्शती स्पर्शान् बुद्धिर्विक्रियतेऽसकृत्।
यदा प्रार्थयते किञ्चित् तदा भवति सा मनः॥ 20

बुद्धि जिसके द्वारा देखती है, उस इंद्रिय का नाम दृष्टि या नेत्र है। वही अपने वृत्ति विशेष के द्वारा जब सुनने लगती है, तब श्रोत्र कहलाती है। गंध को ग्रहण करते समय वह घ्राण बन जाती है। रसास्वादन करते समय रसना कहलाती है और स्पर्शों का अनुभव करते समय वही स्पर्शेन्द्रिय (त्वचा) नाम धारण करती है। इस प्रकार बुद्धि बार-बार विकृत होती है। जब वह कुछ प्रार्थना (याचना) करती है, तब मन बन जाती है।

अधिष्ठानानि बुद्ध्या हि पृथगेतानि पञ्चधा।
इन्द्रियाणीति तान्या हुस्तेषु दुष्टेषु दुष्यति॥ 21

बुद्धि के ये जो पृथक्-पृथक् पांच अधिष्ठान हैं, इन्हीं को इंद्रिय कहते हैं। इन इंद्रियों के दूषित होने पर बुद्धि भी दूषित हो जाती है।

पुरुषे तिष्ठती बुद्धि स्त्रिषु भावेषु वर्तते।
कदाचिल्लभते प्रीतिं कदाचिदपि शोचति॥ 22

साक्षी आत्मा के आश्रित रहने वाली बुद्धि सात्विक, राजस और तामस तीन भावों में (जो सुख-दुःख और मोह रूप है) स्थित होती है, इसीलिए कभी (सत्वगुण का उद्रेक होने पर) उसे आनंद प्राप्त होता है और कभी (रजोगुण की अधिकता होने पर) वह दुःख शोक का अनुभव करती है।

न सुखेन न दुःखेन कदाचिदपि वर्तते।
सेयं भावात्मिका भावास्त्रीनेतान् परिवर्तते॥ 23

कभी तमोगुण की अधिकता से मोहाच्छन्न होने पर उसका न सुख से संयोग होता है न दुःख से वह निद्रा और आलस्य आदि में मग्न रहता है। इस प्रकार यह भावात्मिकता बुद्धि इन तीनों भावों का अनुसरण करती है।

सरितां सागरो भर्ता यथा वेलामिबोर्मिवान्।
इति भावगता बुद्धिर्भावे मनसि वर्तते॥ 24

जैसे सरिताओं का स्वामी समुद्र उत्ताल तरंगों से युक्त होने पर भी अपनी तट भूमिका उल्लङ्घन नहीं करता है, उसी प्रकार सात्विक आदि भावों से युक्त बुद्धि तीनों गुणों का उल्लङ्घन नहीं करती। भावनामय मन में ही चक्कर लगाती रहती है।

सात्विक गुण के फल :-

प्रवर्तमानं तु रजस्तद्भावेनानु वर्तते ।
प्रहर्षः प्रीतिरानन्दः सुखं शंशान्त चित्तता ॥ 25
कथंचिदुपपद्यन्ते पुरुषे सात्त्विका गुणाः ।

जब रजो गुण की प्रवृत्ति होती है, तब बुद्धि राजसिक भाव का अनुसरण करती है, यदि पुरुष में किसी प्रकार अधिक हर्ष, प्रीति, आनन्द, सुख और चित्त में शांति उपलब्ध हो तो ये सात्विक गुण है।

रजोगुण के फल :-

परिदाहस्तथा शोकः संतापोऽपूर्तिरक्षमा ।
लिङ्गानि रजसस्तानि दृश्यन्ते हेत्व हेतुभिः ॥ 26

जब शरीर या मन में किसी कारण से या अकारण ही दाह, शोक, संताप, अपुर्णता, लोभ, लिप्सा और असहनशीलता के भाव दिखायी देते हों तो उन्हें रजोगुण के चिन्ह समझना चाहिए।

तमोगुण के फल :-

अविद्या रागमोहौ च प्रमादः स्तब्धता भयम् ॥ 27
असमृद्धिस्तथा दैन्यं प्रमोहः स्वप्नतन्द्रिता ।
कथं चिद्रूपवर्तन्ते विविधास्तामसा गुणाः ॥ 28

यदि किसी प्रकार अविद्या, राग, मोह, प्रमाद, स्तब्धता, भय, दरिद्रता, दीनता, प्रमोह (मूर्च्छा), स्वप्न, निद्रा और आलस्य आदि दोष आ घेरते हो तो उन्हें तमोगुण के ही विविध रूप जाने।

तत्रयत् प्रीतिसंयुक्तं काये मनसि वा भवेत् ।
वर्तते सात्विको भाव इत्युपेक्षेत् तत् तथा ॥ 29

ऐसी स्थिति में शरीर अथवा मन के भीतर यदि कोई प्रसन्नता का भाव हो तो वह सात्विक भाव है, ऐसा विचार करना चाहिए।

अथयद् दुःख संयुक्तमप्रीतिकर मात्मनः ।
प्रवृत्तं रज इत्येवतदसंरभ्य चिन्तयेत् ॥ 30

जब अपने लिए अप्रसन्नता का हेतु और दुःखयुक्त भाव अनुभव में आये, तब रजोगुण की प्रवृत्ति हुई है ऐसा अपने मन में विचार करे तथा वैसी किसी कार्य का आरम्भ

न करके उसकी और से अपना ध्यान हटा ले।

अथ यन्मोह संयुक्तं काये मनसि वा भवेत् ।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं तमस्तद्रुप धारयेत् ॥ 31

उसी प्रकार शरीर या मन में जो मोहयुक्त भाव अतर्कित या अविज्ञात रूप से अपस्थित हो गया हो, उसके विषय में यही निश्यय करे कि यह तमोगुण है।

इति बुद्धिगतीः सर्वा व्यख्याता यावतीरिह ।
एतद्बुद्ध्वा भवेद् बुद्धः किमन्यद् बुद्धलक्षणम् ॥ 32

इस प्रकार बुद्धि की जितनी अवस्थाएँ है, उनकी व्याख्या यहाँ कर दी गई। यह सब जानकर मनुष्य ज्ञानी हो जाता है। इसके सिवा ज्ञानी का और क्या लक्षण हो सकता है ?

सत्वक्षेत्रज्ञयोरेतदतं विद्धि सूक्ष्मयोः ।
सृजतेऽत्र गुणानेक एको न सृजते गुणान् ॥ 33

बुद्धि और क्षेत्रज्ञ (आत्मा) ये दोनों सूक्ष्म तत्त्व हैं। इन दोनों में जो अन्तर है, उसे समझो। इनमें से एक अर्थात् बुद्धि तो गुणों की सृष्टि करती है और दूसरा (आत्मा) गुणों की सृष्टि नहीं करता - केवल साक्षी भावसे देखता रहता है।

प्रथग्भूतौ प्रकृत्या तु सम्प्रयुक्तौ च सर्वदा ।
यथामत्सयोऽद्धिरन्यः स्यात् सम्प्रयुक्तो भवेत् तथा ॥ 34

वे दोनों बुद्धि और क्षेत्रज्ञ स्वभावतः एक दूसरे से भिन्न है; परंतु सदा परस्पर मिले हुए से प्रतीत होते हैं। जैसे मछली जल से भिन्न है तो भी उससे सदा संयुक्त रहती है। उसी प्रकार बुद्धि और आत्मा परस्पर भिन्न होते हुए भी अभिन्न रहते हैं।

न गुणा विदूरात्मानं स गुणान् वेद सर्वतः ।
परिद्रष्टा गुणानां तु संस्त्रष्टा मन्यते यथा ॥ 35

सत्व आदि गुण जड होने के कारण आत्मा को नहीं जानते, परंतु आत्मा चेतन है इसलिए गुणों को पूर्णरूप से जानता है। वह गुणों का साक्षी है तथापि मूढ मनुष्य उसे गुणों से संश्लिष्ट या संयुक्त समझते हैं।

आश्रयो नास्ति सत्त्वस्य गुणसर्गेण चेतना ।
सत्त्वमस्य सृजन्त्यन्ये गुणान् वेद कदाचन ॥ 36

बुद्धि जब सत्त्वादि गुणों की सृष्टि करती है, उस समय जीवात्मा उसका आश्रय नहीं होता। अन्य गुणों की रचना बुद्धि ही करती है और उन गुणों को जीव कभी जानता है।

सृजते हि गुणान् सत्वं क्षेत्रज्ञः परिपश्यति ।
सम्प्रयोगस्तयोरेष सत्व क्षेत्रज्ञयोर्ध्रुवः ॥ 37

बुद्धि गुणों को उत्पन्न करती है और आत्मा केवल देखता है। बुद्धि और आत्मा

का यह सम्बन्ध अनादि है।

इन्द्रियैस्तु प्रदीपार्थे क्रियते बुद्धिरन्तरा।
निश्चक्षुर्भिरजानद्भिरिन्द्रियाणि प्रदीपवत्॥ 38

ज्ञान शक्ति रहित न जानने वाली इंद्रियाँ वस्तुओं को प्रकाशित करने के लिए बुद्धि को बीच में करती हैं। इंद्रियाँ तो वस्तु को प्रकट करने में दीपक की भाँति केवल सहायक है।

एवं स्वभावमेवैतत् तद् बुदध्वा विहरेन्तरः।
अशोचन्नप्रहृष्यंश्च स वै विगत मत्सरः॥ 39

इस प्रकार आत्मा असंग एवं निर्लेप है। इस बात को जानकर मनुष्य शोक, हर्ष और द्वेष का परित्याग करके विचरण करे।

स्वभावसिद्धमेवैतद् यदिमान् सृजते गुणान्।
ऊर्णनाभिर्यथा सूत्रं विशेयास्तन्तुवद् गुणाः॥ 40

जैसे मकडी जाला बुनती है, उसी प्रकार बुद्धि गुणों की सृष्टि करती है, यह स्वभाव सिद्ध है। अतएव गुणों को जाले के समान और बुद्धि को मकडी के समान जानना चाहिए।

प्रध्वस्ता न निवर्तन्ते प्रवृत्तिर्नोपलभ्यते।
एवमेके व्यवस्यन्ति निवृत्तिरिति चापरे॥ 41

वे गुण नष्ट होने पर पुनः वापस नहीं आते, क्योंकि फिर उनकी प्रवृत्ति उपलब्ध नहीं होती। एक श्रेणी के विद्वानों का ऐसा ही निश्चय है दूसरी श्रेणी के लोग उन नष्ट हुए गुणों की पुनरावृत्ति भी मानते हैं।

इतीदं हृदय ग्रन्थिं बुद्धि चिन्तामयं दृढम्।
विमुच्य सुखमासीत विशोकश्छिन्न संशयः॥ 42

इस प्रकार बुद्धि की चिंता स्वरूप इस सुदृढ हृदय ग्रंथी को त्याग कर शोक और संशय से रहित हो सुख पूर्वक रहना चाहिए।

ताम्येयुः प्रच्युताः पृथ्वीं मोह पूर्णो नदी नराः।
यथा गाद्यमविद्धांसो बुद्धियोगमयं तथा॥ 43

जल की गहराई को न जानने वाले मनुष्य जैसे नदी के तल प्रदेश में जाकर दुःख का अनुभव करते हैं, उसी प्रकार बुद्धि, योग (ज्ञान) से अनभिज्ञ सभी मनुष्य इस मोह पूर्ण विशाल संसार नदी में पडकर क्लेश भोगते हैं।

नैव ताम्यन्ति विद्वांसः प्लवन्तः पारमम्भसः।
अध्यात्म विदुषो धीरा ज्ञानं तु परमं प्लवः॥ 44

जो तैरने की कला जानते हैं वे तैरकर आगाध जल से पार हो जाते हैं, उन्हें कष्ट

नहीं भोगना पडता। उसी प्रकार अध्यात्म तत्त्व के ज्ञाता धीर पुरुष अनायास संसार सागर को पार कर जाते हैं। उनके लिए परम ज्ञान ही जहाज बन जाता है।

अज्ञानी भय युक्त, ज्ञानी भय मुक्त :-

न भवति विदूषां महद्भयं। यद विदुषां सुमहद्भयं भवेत्।
न हि गतिरधिकास्ति कस्यचित् सकृदुपदर्शयतीह तुल्यताम्॥ 45

अज्ञानियों को जिस संसार से महान् भय बना रहता है उससे ज्ञानियों को वह गुरुतर भय तनिक भी प्राप्त नहीं होता है। ज्ञानी पुरुषों में तो किसी को भी अधिक या न्यून गति नहीं प्राप्त होती, वे सब समान गति के भागी होते हैं। 'संस्कृद्विभाती ह्येष ब्रह्मलोकः' इत्यादि श्रुति यहाँ ज्ञानियों की गति की समानता दिखाती है।

अज्ञानवस्था के दोष ज्ञानी अवस्था में त्याग करता है :-

यत् करोति बहुदोषमेकत मेतस्तच्च दूषयति यत्पुरा कृतम्।
नाप्रियं तदुभयं करोत्यसौ यच्च दूषयतियत् करोतिच॥ 46

अज्ञानावस्था में मनुष्य जो अनेक दोष से युक्त कर्म करता है और वह पहले के जो कर्म कर चुका है उनके लिए शोक करता है, इसके सिवा अज्ञानावस्था में जो वह दूसरे के किये हुए अप्रिय कर्म को दोष रूप में देखता है और रागादि दोष के कारण स्वयं जो दूषित कर्म करता है वह दोनों ही प्रकार का कार्य वह ज्ञान हाने के बाद नहीं करता है।

सापि च स्वात्मनिष्ठत्वात्सुलभा यदि चिन्त्यते।
आत्माधीने सुखे तात, यत्नं किं न करिष्यसि॥

समस्त संसारी जीव अनादिकाल से मोह के कारण अनेक प्रकार के भोगों को प्राप्त करने की कोई न कोई इच्छा किया करते हैं; क्योंकि इच्छा अपने ही आत्मा में उत्पन्न होती है, अतः इच्छा करना कठिन नहीं है, सरल बात है। परंतु सांसारिक विषय भोगों की इच्छा से सब तरह आत्मा में अशांति होती हैं। जिस विषय की इच्छा होती है, उस विषय को पाने के लिए बहुत भारी परिश्रम करना पडता है, यदि परिश्रम करने पर भी वह विषय प्राप्त नहीं होता तो बहुत भारी मानसिक दुःख होता है। यदि वह विषय मिल जाता है तो उसके भोगने से तृप्ति नहीं होती, तृष्णा और बढती जाती है। इस कारण संसारिक इच्छाओं को छोडकर भव्य-जीव को आत्म सुख प्राप्त करने की इच्छा करनी चाहिए। परंतु शुक्ल ध्यान की दशा में वह इच्छा भी त्याग देनी पडती है, या वह इच्छा उस निर्विकल्प ध्यान में स्वयं छूट जाती है। तब अनन्त सुख मिलता है। इस कारण ग्रंथकार बडी मीठी कोमल भाषा में "तात" शब्द द्वारा सम्बोधन करके कहते हैं कि तू स्वाधीन सुख प्राप्त करने का यत्न कर।

अष्टावक्र गीता में वर्णित आध्यात्मिक-स्वास्थ्य

मुक्तिमिच्छसि चेत्तात विषयान् विषवत्यज।
क्षमार्जवदयातोषं सत्यं पियूषवद् भज॥ 02

अष्टावक्र ने कहा है "हे प्रिये ! यदि तू मुक्ति चाहता है तो विषयों को विष के समान छोड दे और क्षमा, आर्जव (सरलता), दया, संतोष और सत्य को अमृत के समान सेवन कर।"

न पृथिवी न जलं नाग्निर्न वायुर्द्यौर्न वा भवान्।
एषां साक्षिणमात्मामं चिद्रूपं विद्धि मुक्तये॥ 03

"तू न पृथ्वी है, न जल है, न अग्नि है, न वायु है, न आकाश है। मुक्ति के लिए अपने को इन सबका साक्षी चैतन्य रूप जान।" (यही आत्म ज्ञान है जो मुक्ति का कारण है।

यदि देहं पृथक्कृत्य चित्ति विश्राम्य तिष्ठसि।
अधुनैव सुखी शान्तः बन्धनमुक्तो भविष्यसि॥ 04

यदि तू देह को अपने से अलग कर और चैतन्य में विश्राम कर स्थित है तो अभी ही सुखी, शांत और बंध मुक्त हो जायेगा।

न त्वं विप्रादिको वर्णो नाश्रमी नाक्षगोचरः।
असङ्गोऽसि निराकारो विश्वसाक्षी सुखी भव॥ 05

"तू ब्राह्मण आदि वर्ण नहीं है और न तू किसी आश्रम वाला है। न आँख आदि इंद्रियों का विषय है ऐसा जानकर सुखी हो।"

धर्माऽधर्मौ सुखं दुःखं मानसानि न ते विभो।
न कर्ताऽसि न भोक्ताऽसि मुक्त एवासि सर्वदा॥ 06

"हे विभो ! (व्यापक) धर्म और अधर्म, सुख और दुःख मन के हैं। तेरे लिए नहीं है। न तू कर्ता है, न भोक्ता है। तू तो सर्वदा मुक्त ही है।"

एको दृष्टाऽसि सर्वस्य मुक्तप्रायोऽसि सर्वदा।
अयमेव हि ते बन्धो दृष्टारं पश्यसीतरम्॥ 07

तू एक सबका दृष्टा है और सदा सचमूच मुक्त है। तेरा बंधन तो यही है कि तू अपने को छोडकर दूसरे को दृष्टा देखता है।

अहं कर्त्तेत्यहंमान महाकृष्णाहि दंशितः।
नाहं कर्त्तेति विश्वासामृतं पीत्वा सुखी भव॥ 08

मैं कर्ता हूँ ऐसे अहंकार रूपी विशाल काले सर्प से दंशित हुआ तू 'मैं कर्ता नहीं हूँ' ऐसे विश्वास रूपी अमृत को पीकर सुखी हो।

एको विशुद्ध बोधव्याऽहमिति निश्चयवह्निना।
प्रज्वाल्याज्ञनगहनं वीतशोकः सुखी भव॥ 09

मैं एक विशुद्ध बोध हूँ ऐसी निश्चय रूपी अग्नि से गहन अज्ञान को जलाकर तू शोक रहित हुआ सुखी हो।

यत्र विश्वमिदं भाति कल्पितं रज्जुसर्पवत्।
आनन्दपरमानन्दः स बोधस्त्वं सुखं चर॥ 10

जहाँ यह विश्व रस्सी में सर्प के समान कल्पित भासता है वही आनंद, परमानंद बोध है। अतः तू सुख पूर्वक विचर।

मुक्ताभिमानी मुक्तो ही बद्धो बद्धाभिमान्यपि।
किंवदन्तीह सत्येयं या मतिः सा गतिर्भवेत्॥ 11

मुक्ति का अभिमानी मुक्त है और बद्ध है का अभिमानी बद्ध है। यहाँ यह किंवदंती सत्य है कि जैसी मति होती है वैसी ही गति होती है।

आत्मा साक्षी विभुः पूर्ण एको मुक्तश्चिदक्रियः।
असङ्गो निस्पृहः शान्तो भ्रमात्संसारवानिव॥ 12

आत्मा साक्षी है, व्यापक है, पूर्ण है, एक है, मुक्त है, चैतन्य स्वरूप है, क्रिया रहित है, असंग है, निस्पृह (इच्छा रहित) है, शांत है, यह भ्रम से संसारी जैसा (बंधन ग्रस्त) भासता है।

कूटस्थं बोधमद्वैतमात्मानं परिभावयः।
आभासोऽहं भ्रमं मुक्त्वा भावं बाह्यमथान्तरम्॥ 13

मैं आभास रूप (अहंकारी जीव) हूँ, ऐसे भ्रम को एवं बाहर-भीतर के भाव को छोडकर तू कुटस्थ (अचल-स्थिर) बोध रूप एवं अद्वैत आत्मा का विचार कर।

देहाभिमानपाशेन चिरं बद्धोऽसि पुत्रक।
बोधोऽहं ज्ञानखड्गेन तन्निष्कृत्य सुखी भव॥ 14

हे पुत्र ! तू बहुत काल से देहाभिमान के पाश से बंधा हुआ है, उसी पाश का 'मैं बोध हूँ', इसे ज्ञान की तलवार से काटकर तू सुखी हो।

निःसंगो निष्क्रियोऽसि त्वं स्वप्रकाशो निरञ्जनः।
अयमेव हि ते बन्धः समाधिमनुतिष्ठसि॥ 15

तू असंग है, क्रिया रहित है, स्वयं प्रकाश है और निरञ्जन (निर्दोष) है। तेरा बंधन यही है कि तू (उसकी प्राप्ति के लिए) समाधी का अनुष्ठान करता है।

त्वया व्याप्तमिदं विश्वं त्वयि प्रोतं यथार्थतः।
शुद्धबुद्धस्वरूपस्त्वं मा गमः क्षुद्रचित्तताम्॥ 16

यह संसार तूझमें व्याप्त है, तुझीमे पिरोया है। यथार्थतः तू चैतन्य स्वरूप है। अतः क्षुद्र चित्त को मत प्राप्त हो।

निरपेक्षो निर्विकारो निर्भरः शीतलाशयः।
अगाधबुद्धिरक्षुब्धो भव चिन्मात्रवासनः ॥ 17

तू निरपेक्ष (अपेक्षा रहित) है, निर्विकार है, स्व निर्भर है, शांति और मुक्ति का स्थान है, अगाध बुद्धि रूप है, क्षोभ शून्य है अतः चैतन्य मात्र में निष्ठा वाला हो।

साकारमनृतं विद्धि निराकारं तु निश्चलम्।
एतत्तत्वोपदेशन न पुनर्भवसम्भवः ॥ 18

साकार को मिथ्या जान, निराकार को निश्चल (स्थिर) जान। इस तत्व के उपदेश से संसार में पुनः उत्पत्ति नहीं होती।

अहो निरञ्जनः शान्तो बोधोऽहं प्रकृतेः परः।
एतावन्तमहं कालं मोहेनैव विडंबितः ॥ 01

राजा जनक को अष्टावक्र का उपदेश सुनते ही आत्म ज्ञान हो गया। वे कहते हैं- "मैं निरंजन (निर्दोष) हूँ, शांत हूँ, बोध हूँ, प्रकृति से परे हूँ आश्चर्य है किंतु मैं इतने काल तक मोह द्वारा ठगा गया हूँ।

अही अहं नमो मह्यं विनाशी यस्य नास्ति मे।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं जगन्नाशऽपि तिष्ठतः ॥ 11

मैं आश्चर्यमय हूँ, मुझको नमस्कार है। ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त जगत् के नाश होने पर भी मेरा नाश नहीं है। (मैं नित्य हूँ)

द्वैतमूलमहो दुःखं नान्यत्तस्यास्ति भेषजम्।
दृश्यमेतन्मृषा सर्वमेकोऽहं चिद्रसोऽमलः ॥ 16

अहो ! दुःख का मूल द्वैत है, उसकी औषधि अन्य कोई नहीं यह सब दृष्य मिथ्या है। मैं एक शुद्ध चैतन्य रस हूँ।

बोधमात्रोऽहमज्ञानदुपाधिः कल्पितो मया।
एवं विमृश्यतो नित्यं निर्विकल्पे स्थितिर्मम ॥ 17

मैं बोध मात्र हूँ किंतु मेरे द्वारा अज्ञान से उपाधि की कल्पना कि गई है। इस प्रकार नित्य विचार करते हुए मैं निर्विकल्प में स्थित हूँ।

अहो मयि स्थितं विश्वं वस्तुतो न मयि स्थितम्।
न मे बन्धोऽस्ति मोक्षो वा भ्रान्तिः शान्ताः निराश्रया ॥ 18

आश्चर्य है ! मुझमें स्थित हुआ विश्व वास्तव में मुझमें स्थित नहीं है, इसलिए न मेरा बंध है, न मोक्ष है। आश्रय रहित होकर मेरी भ्रांति शांत हो गई है।

शरीरं स्वर्गनरकौ बन्धमोक्षौ भयं तथा।
कल्पनामात्रमेवैतत्किमे कार्यं चिदात्मनः ॥ 20

यह शरीर स्वर्ग-नरक, बंध-मोक्ष व भय कल्पना मात्र ही है, उससे मुझ चैतन्य आत्मा का क्या प्रयोजन।

नाहं देहो न मे देहो जीवो नाहमहं ही चित्।
अयमेव हि मे बन्ध असीद्या जीविते स्पृहा ॥ 22

न मैं शरीर हूँ, न मेरा शरीर है, मैं जीव नहीं हूँ निश्चय ही मैं चैतन्य मात्र हूँ। मेरा यही बंध था कि मेरी जीने में इच्छा थी।

अहो भुवनकल्लोलैर्विचित्रैर्दाक् समुत्थितम्।
मय्यनन्तमहाम्भोधौ चित्तवाते समुद्यते ॥ 23

आश्चर्य है कि अनंत समुद्र रूप मुझमें चित्त रूपी हवा के उठने पर शीघ्र ही विचित्र जगत् रूपी तरंगें पैदा होती हैं।

मय्यनन्तमहाम्भोधावाश्चर्यं जीववीचयः।
उद्यन्ति घ्नन्ति खेलन्ति प्रविशन्ति स्वभावतः ॥ 25

आश्चर्य है कि अनंत महासागर रूप मुझमें जीव रूप तरंगें उठती हैं, परस्पर संघर्ष करती हैं, खेलती हैं तथा स्वभाव से ही लय हो जाती हैं।

वासना एव संसार इति सर्वा विमुञ्च ताः।
तत्यागो वासनात्यागात् स्थितिरद्य यथा तथा ॥ 08

वासना ही संसार है इसलिए इन सब (वासनाओं का) का त्याग कर, वासना के त्याग से ही संसार का त्याग है। अब जहाँ चाहे वहाँ रह।

विहाय वैरिणं काममर्थं चानर्थसंकुलम्।
धर्ममप्येतयोर्हेतुं सर्वत्रानदरं कुरु ॥ 01

अष्टावक्र जी आगे कहते हैं - वैर स्वरूप काम को और अनर्थ से भरे अर्थ को त्याग कर और दोनों के कारण रूप धर्म को भी छोड कर तू सब की उपेक्षा कर।

स्वप्नेन्द्रजालवत्पश्य दिनानि त्रीणि पञ्च वा।
मित्रक्षेत्रधनागारदारदायदि सम्पदः ॥ 02

मित्र, खेत, धन, मकान, स्त्री, भाई आदि संपदा को तू स्वप्न और इंद्रजाल के समान देख, जो तीन या पांच दिन ही टिकते हैं।

यत्र यत्र भवेत्तृष्णा संसार विद्धि तत्र वै।
प्राढवैराग्यमाश्रित्य वीततृष्णः सुखी भवः ॥ 03

जहाँ-जहाँ तृष्णा हो वहाँ-वहाँ ही संसार जान। प्रौढ वैराग्य का आश्रय करके वीत तृष्णा होकर सुखी हो।

तृष्णामात्रात्मको बन्धस्तन्नाशो मोक्ष उच्यते।
भवासंसक्तिमात्रेण प्राप्तितुष्टिर्मुहुर्मुहः ॥ 04

तृष्णा मात्र ही आत्मा का बंध है और उसका नाश मोक्ष कहा जाता। संसार मात्र से अनासक्त होने से निरंतर प्राप्ति और तुष्टि होती है।

भावाभावविकारश्च स्वभावादिति निश्चयी।
निर्विकारो गतक्लेशः सुखेनैवोपशाम्यति॥ 01

भाव और अभाव का विकार स्वभाव से होता है ऐसा जो निश्चयपूर्वक जानता है वह निर्विकार और क्लेश रहित पुरुष सुख पूर्वक ही शांति को उपलब्ध होता है।

ईश्वरः सर्वनिर्माता नेहान्य इति निश्चयी।
अन्तर्गलितसर्वाशः शान्तः क्वापि न सज्जते॥ 02

सबको बनाने वाला ईश्वर है, अन्य कोई नहीं ऐसा जो निश्चय पूर्वक जानता है, वह पुरुष शांत है उसकी सब आशायें जड से नष्ट हो गई है। वह कहीं भी आसक्त नहीं होता।

आपदः सम्पदः काले दैवादेवेति निश्चयी।
तृप्तः स्वस्थेन्द्रियो नित्यं न वाञ्छति न शोचति॥ 03

विपत्ति और सम्पत्ति दैव योग से ही समय पर आती है, ऐसा निश्चय वाला पुरुष सदा संतुष्ट, स्वस्थेंद्रिय हुआ न कोई कामना करता है, न शोक करता है।

सुखदुःखे जन्ममृत्यु दैवादेवेति निश्चयी।
साध्यादर्शी निरायासः कुर्वन्नपि न लिप्यते॥ 04

सुख-दुःख, जन्म-मृत्यु दैवयोग से ही होता है ऐसा निश्चयवाला व्यक्ति साध्य कर्मों को देखता हुआ और निरायास (प्रयास रहित) कर्मों को करता हुआ भी उनमें लिप्त नहीं होता।

चिन्ताया जायते दुःखं नान्यथेहेति निश्चयी।
तया हीनः सुखी शान्तः सर्वत्र गलितस्पृहः॥ 05

इस संसार में चिंता से दुःख उत्पन्न होता है अन्यथा नहीं। ऐसा जो निश्चय पूर्वक जानता है वह सुखी और शांत है। सर्वत्र उसकी स्पृहा (इच्छा) गलती है और वह चिंता से मुक्त है।

नाहं देहो न मे देहो बोधोऽहमिति निश्चयी।
कैवल्यमिव संप्राप्तो न स्मरत्यकृतं कृतम्॥ 06

मैं शरीर नहीं हूँ, देह मेरी नहीं है, मैं तो बोध स्वरूप-चैतन्य हूँ ऐसा जो निश्चय पूर्वक जानता है वह पुरुष कैवल्य को प्राप्त होकर किए और अनकिए कर्म का स्मरण नहीं करता है।

आकिञ्चन भवं स्वास्थ्य कौपीनत्वेऽपि दुर्लभम्।
त्यागादाने विहायास्मादहमासे यथासुखम्॥ 01

नहीं है कुछ भी - ऐसे भाव से पैदा हुआ जो स्वास्थ (चित्त की स्थिरता) है वह

कोपीन को धारण करने पर भी दुर्लभ है इसलिए त्याग ग्रहण दोनों को छोडकर मैं सुख पूर्वक स्थित हूँ।

कुत्रापि खेदः कायस्य जिह्वा कुत्रापि खिद्यते खिद्यते।
मनः कुत्रापि तत्यक्त्वा पुरुषार्थे स्थितः सुखम्॥ 02

कहीं तो शरीर का दुःख है, कहीं वाणी दुःखी है, कहीं मन दुःखी होता है इसलिए तीनों को त्यागकर मैं पुरुषार्थ में (आत्मानन्द में) सुख पूर्वक स्थित हूँ।

कृतं किमपि नैव स्यादिति संचिन्त्य तत्वतः।
यदा यत्कर्तुमायाति तत्कृत्वाऽऽसे यथासुखम्॥ 03

किया हुआ कर्म कुछ भी वास्तव में आत्मा कृत नहीं होता। ऐसा यथार्थ विचार कर मैं जब जो कुछ कर्म करने को आ पडता है उसे करके सुख पूर्वक स्थित हूँ।

कर्मनेष्कर्म्यानिर्बंधभावा देहस्थ योगिनः।
संयोगायोगविरहादहमासे यथासुखम्॥ 04

कर्म और निष्कर्म के बंधन से संयुक्त भाव वाले शरीर में आसक्त जो योगी है मैं इस देह के संयोग वियोग से सर्वदा पृथक् होने के कारण सुख पूर्वक स्थित हूँ।

अर्थानर्थौ न मे स्थित्या गत्या वा शयनेन वा।
तिष्ठन् गच्छन् स्वपंस्तस्मादहमासे यथासुखम्॥ 05

मुझको ठहरने से, चलने से या सोने से अर्थ और अनर्थ कुछ भी नहीं है। इस कारण मैं ठहरता हुआ, जाता हुआ और सोता हुआ भी सुख पूर्वक स्थित हूँ।

स्वपतो नास्ति मे हानिः सिद्धिर्यत्नवतो न वा।
नाशोल्लासौ विहायास्मादहमासे यथासुखम्॥ 06

सोते हुए मुझे हानि नहीं है, न यत्न करते हुए मुझे सिद्धि है। इसलिए मैं हानि-लाभ दोनों को छोडकर सुख पूर्वक स्थित हूँ।

सुखादिरूपानियमं भावेष्वालोक्य भूरिशः।
शुभाशुभे विहायास्मादहमासे यथासुखम्॥ 07

इसलिए अनेक परिस्थितियों में सुखादि की अनित्यता को बारम्बार देखकर और शुभ और अशुभ दोनों को छोडकर मैं सुख पूर्वक स्थित हूँ।

यथातथोपदेशे कृतार्थः सत्वबुद्धिमान्।
आजीवमपि जिज्ञासुः परस्तत्र विमुह्यति॥ 01

सत्व बुद्धि वाला पुरुष थोडे से उपदेश से ही कृतार्थ होता है। असत् बुद्धि वाला पुरुष आजीवन जिज्ञासा करके भी उसमें मोह को ही प्राप्त होता है।

मोक्षो विषयवैरस्यं बन्धो वैषयिको रसः।
एतावदेव विज्ञानं यथेच्छसि तथा कुरु॥ 02

विषयों में विरसता मोक्ष है। विषयों में रस बंध है। इतना ही विज्ञान है। तू जैसा चाहे वैसा कर।

वाग्मिप्राज्ञमहोद्योगं जनं मूकजडालसम्।
करोति तत्वबोधोऽयमतस्त्यक्तो बुभुक्षुभिः॥ 03

यह तत्त्वबोध वाचाल, बुद्धिमान् और महाउद्योगी पुरुष को गूंगा, जड और आलसी कर जाता है। इसलिए भोग की अभिलाषा रखने वालो के द्वारा तत्त्वबोध त्यक्त है।

न त्वं देहो न ते देहो भोक्ता कर्ता न वा भवान्।
चिद्रूपोऽसि सदा साक्षी निरपेक्षः सुखं चर॥ 04

तू शरीर नहीं है, न तेरा शरीर है, तू भोक्ता और कर्ता भी नहीं है। तू वो चैतन्य रूप है, नित्य है, साक्षी है, निर्पेक्ष है, तू सुख पूर्वक विचर।

रागद्वेषौ मनोधर्मौ न मनस्ते कदाचन।
निर्विकल्पोऽसि बोधात्मा निर्विकारः सुखं चर॥ 05

राग और द्वेष मन के धर्म है, तू कभी मन नहीं है, तू निर्विकल्प, निर्विकार, बोधस्वरूप आत्मा है, तू सुख पूर्वक विचर।

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
विज्ञाय निरहंकारो निर्ममस्त्वं सुखी भव॥ 06

तू सब भूतों में आत्म को तथा सब भूतों को आत्मा जान कर तू अहंकार रहित और ममता रहित है, तू सुखी हो।

विश्व स्फुरति यत्रेदं तरंगा इव सागरे।
तत्वमेव न संदेहश्चिन्मूर्ते विज्वरो भव॥ 07

जिसमें यह संसार तरङ्गों की भाँति स्फुरित होता है, वह तू ही है। इसमें संदेह नहीं है। हे चैतन्य स्वरूप ! तू ज्वर रहीत हो (संताप रहित हो)।

श्रद्धत्स्व तात श्रद्धस्त्व नात्र मोहं कुरुष्व भोः।
ज्ञानस्वरुपो भगवानात्मा त्वं प्रकृतेः परः॥ 08

हे तात ! श्रद्धाकर-श्रद्धाकर इसमें मोह मत कर, तू ज्ञान स्वरूप, भगवान् स्वरूप आत्मा है तथा प्रकृति से परे है।

गुणैः संवेष्टितो देहास्तिष्ठत्यायाति याति च।
आत्मा न गन्ता नागन्ता किमेनमनुशोचसि॥ 09

गुणों से लिप्त यह शरीर रहता है, आता है और जाता है। किंतु यह आत्मा न जाने वाला है न आने वाला है। इसके लिए क्यों सोच करता है।

देहस्तिष्ठतु कल्पान्तं गच्छत्यद्यैव वा पुनः।
क्व वृद्धिः क्व च वा हानिस्तव चिन्मात्र रूपिणः॥ 10

देह चाहे कल्प के अंत तक रहे, चाहे वह अभी चली जाये। तुम चैतन्य रूप वालों की कहाँ वृद्धि है कहाँ नाश है।

त्वय्यनन्तमहाम्भोधौ विश्ववीचिः स्वभावतः।
उदेतु वास्तमायातु न ते वृद्धिर्न वा क्षतिः॥ 11

तुम अनंत महासमुद्र में विश्वरूप तरङ्ग अपने स्वभाव से उदय और अस्त को प्राप्त होती है। किंतु न तेरी वृद्धि है न नाश है।

तात चिन्मात्ररूपोऽसि न ते भिन्नमिदं जगत्।
अतः कस्य कथं कुत्र हेयोपादेयकल्पना॥ 12

हे तात ! तू चैतन्य रूप है, तेरा यह जगत् तुझसे भिन्न नहीं है। इसलिए हेय और उपादेय की कल्पना किसकी क्यों कर और कहाँ हो सकती है।

एकस्मिन्नव्यये शान्ते चिदाकाशेऽमले त्वयि।
कुतो जन्म कुतः कर्म कुतोहंकार एव च॥ 13

तूझ एक निर्मल, अविनाशी, शांत और चैतन्यरूप आकाश में कहाँ जन्म है, कहाँ कर्म है और कहाँ अहंकार है।

यत्वं पश्यसि तत्रैकस्त्वमेव प्रतिभाससे।
किं पृथग्भासते स्वर्णात्कटकांगदनूपुरम्॥ 14

जिसको तू देखता है उसमें एक तू ही भासता है। क्या कंगना, बाजूबंद और नूपुर सोने से भिन्न भासते हैं।

अयं सोऽहमयं नाहं विभागमिति सन्त्यज।
सर्वमात्मेति निश्चित्य निःसंकल्पः सुखी भव॥ 15

यह मैं हूँ, यह मैं नहीं हूँ , ऐसे विभाग को छोड दे। 'सब आत्मा है' - ऐसा निश्चय करके तू संकल्प रहित हो। सुखी हो।

तवैवाज्ञानतो विश्व त्वमेकः परमार्थतः।
त्वत्तोऽन्यो नास्ति संसारी नासंसारी च कश्चन॥ 16

तेरी ही अज्ञान से विश्व है। परमार्थतः तू एक है, तेरे अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं है। न संसारी और न असंसारी है।

भ्रान्तिमात्रमिदं विश्व न किञ्चिदिति निश्चयी।
निर्वासन स्फूर्तिमात्रो न किञ्चिदिव शाम्यति॥ 17

यह विश्व भ्रान्ति मात्र है और कुछ नहीं है ऐसा निश्चय पूर्वक जानने वाला वासना रहित और चैतन्य मात्र है। वह ऐसी शांति का प्राप्त है मानो कुछ नहीं है।

एक एव भवाम्भोधावासीदस्ति भविष्यति।
न ते बन्धोऽस्ति मोक्षो वा कृतकृत्यः सुखं चर॥ 18

संसारी रुपी समुद्र में तू एक ही था और होगा। तेरा बंध और मोक्ष नहीं है। तू कृत-कृत्य होकर सुखपूर्वक विचर।

मा संकल्पविकल्पाभ्यां चित्तं क्षोभाय चिन्मय।
उपशाम्य सुखं तिष्ठ स्वात्मन्यानन्दविग्रहे ॥ 19

हे चिन्मय! तू चित्त को संकल्प और विकल्पों से क्षोभित मत कर। शांत होकर आनन्द पूरित अपने स्वरूप में सुखपूर्वक स्थित हो।

त्यजैव ध्यानं सर्वत्र मा किञ्चिद्धृदि धारय।
आत्मा त्वमुक्त एवासि किं विमृश्य करिष्यसि ॥ 20

सर्वत्र ही ध्यान को त्याग कर हृदय में कुछ भी धारण मत कर। तू आत्मा मुक्त ही है। तू विमर्श करके क्या करेगा।

वाञ्छा न विश्वविलये न द्वेषस्तस्य च स्थितौ।
यथा जीविकया तस्माद्धन्य आस्ते यथासुखम् ॥ 07

जिसमें विश्व के विलय की इच्छा नहीं है और न उसकी स्थिति के प्रति द्वेष है, वह धन्य पुरुष इसलिए यथाप्राप्य आजीविका से सुखपूर्वक जीता है।

कृतार्थोऽनेन ज्ञानेनेत्येवं गलितधीः कृती।
पश्यञ्छृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्नास्ते यथासुखम् ॥ 08

इस ज्ञान से कृतार्थ अनुभव कर गलित हो गई है बुद्धि जिसकी, ऐसा कृत कार्य पुरुष देखता हुआ, सुनता हुआ, स्पर्श करता हुआ, सूँघता हुआ, खाता हुआ सुखपूर्वक रहता है।

शून्या दृष्टिर्वृथा चेष्टा विफलानीन्द्रियाणि च।
न स्पृहा न विरक्तिर्वा क्षीणसंसारसागरे ॥ 09

जिसका संसार सागर क्षीण हो गया है, ऐसे पुरुष में न तृष्णा है, न विरक्ति है। उसकी दृष्टि शून्य हो गई है, चेष्टा व्यर्थ हो गई है और इंद्रियाँ विफल हो गई है।

न जागर्ति न निद्राति नोन्मीलति न मीलति।
अहो परंदशा क्वापि वर्तते मुक्तचेतसः ॥ 10

वह न जागता है, न मरता है, न पलक खोलता है, न पलक बंद करता है। अहो! मुक्तचेतस् की कैसी परम (उत्कृष्ट) दशा होती है।

सर्वत्र दृश्यते स्वस्थः सर्वत्र विमलाशयः।
समस्तवासनामुक्तो मुक्तः सर्वत्र राजते ॥ 11

मुक्त पुरुष सर्वत्र स्वस्थ, शांत, सर्वत्र विमल आशय वाला दिखाई देता है और सब वासनाओं से रहित सर्वत्र सुशोभित होता है।

पश्यञ्छृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गृह्णन्वदन्व्रजन्।
ईहितानीहितैर्मुक्तो मुक्त एव महाशयः ॥ 12

देखता हुआ, सुनता हुआ, स्पर्श करता हुआ, सूंघता हुआ, खाता हुआ, ग्रहण करता हुआ, बोलता हुआ, चलता हुआ, हित और अहित से मुक्त महाशय - निश्चय ही जीवनमुक्त है।

न निन्दति न च स्तौति न हृष्यति न कुप्यति।
न ददातिगृह्णाति मुक्तः सर्वत्र नीरसः ॥ 13

मुक्त पुरुष सर्वत्र रसरहित है। वह न निन्दा करता है, न स्तुति करता है, न हर्षित होता है, न क्रुद्ध होता है, न देता है-न लेता है।

सानुरागां स्त्रियं दृष्ट्वा मृत्युं वा समुपस्थितम्।
अविह्वलमनाः स्वस्थो मुक्त एव महाशयः ॥ 14

प्रीतियुक्त स्त्री और समीप में उपस्थित मृत्यु को देखकर जो महाशय अविचलमना और स्वस्थ रहता है वह निश्चय ही मुक्त है।

सुखे दुःखे नरे नार्यां संपत्सु च विपत्सु च।
विशेषो नैव धीरस्य सर्वत्र समदर्शिनः ॥ 15

समदर्शी धीर के लिए सुख और दुःख में, नर और नारी में, सम्पत्ति और विपत्ति में कहीं भेद नहीं है।

न हिंसा नैव कारुण्यं नौद्धत्यं न च दीनता।
नाश्चर्यं नैव च क्षोभः क्षीण संसरणे नरे ॥ 16

क्षीण हो गया है संसार जिसका ऐसे मनुष्य में न हिंसा है, न करुणा है, न उदण्डता है, न दीनता, न आश्चर्य है न क्षोभ।

न मुक्तो विषयद्वेष्टा न वा विषयलोलुपः।
असंसक्तामनाः नित्यं प्राप्ताप्राप्तमुमाश्नुते ॥ 17

मुक्त पुरुष न विषयों से द्वेष करने वाला है न विषय लोलुप है। वह सदा आसक्ति रहित मन वाला होकर प्राप्त और अप्राप्त वस्तु का उपभोग करता है।

समाधानासमाधानहिताहितविकल्पनाः।
शून्यचित्तो न जानाति कैवल्यमिव संस्थितः ॥ 18

शून्यचित्त पुरुष समाधान और असमाधान के, हित और अहित के विकल्प को नहीं जानता है। वह तो कैवल्य जैसा स्थित है।

निर्ममो निरहंकारो न किञ्चिदिति निश्चितः।
अन्तर्गलितसर्वाशः कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥ 19

भीतर से गलित हो गई हैं सब आशाएँ जिसकी और जो निश्चयपूर्वक जानता है कि कुछ भी नहीं है - ऐसा ममता रहित, अहंकार शून्य पुरुष कर्म करता हुआ भी उनमें

लिप्त नहीं होता।

मनः प्रकाशसंमोहस्वप्नजाड्यविवर्जितः।
दशां कामपि संप्राप्तो भवेद्गलितमानसः॥ 20

जिसका मन गलित हो गया है और जिसके मन में कर्म, मोह, स्वप्न और जडता सब समाप्त हो गये हैं, वह पुरुष कैसी अनिर्वचनीय अवस्था को प्राप्त होता है।

यस्य बोधोदये तावत्स्वप्नवद्भवति भ्रमः।
तस्मै सुखैकरूपाय नमः शान्ताय तेजसे॥ 01

जिसके बोध के उदय होने पर समस्त भ्रान्ति स्वप्न के समान तिरोहित हो जाती है उस एकमात्र आनन्दरूप, शांत और तेजोमय को नमस्कार है।

अर्जयित्वाऽखिलानर्थान् भोगानाप्नोति पुष्कलान्।
न हि सर्वपरित्यागमन्तरेण सुखी भवेत्॥ 02

सारे धन कमाकर मनुष्य अतिशय भोगों को पाता है। लेकिन सबके त्याग के बिना सुखी नहीं होता।

न दूरं न च संकोचाल्लब्धमेवात्मनः पदम्।
निर्विकल्पं निरायासं निर्विकारं निञ्जनम्॥ 05

यह आत्म पद न तो दूर है न संकोच से ही प्राप्त होता है। यह निर्विकल्प निरायास, निर्विकार और निरंजन है।

व्यामोहमात्रविरतौ स्वरूपादानमात्रतः।
वीतशोक विराजन्ते निरावरणदृष्टयः॥ 06

मोह मात्र से निवृत्त होने पर और अपने स्वरूप के ग्रहण मात्र से वीतशोक ओर निरावरण दृष्टि वाले पुरुष शोभायमान होते हैं।

समस्तं कल्पनामात्रमात्मा मुक्तः सनातनः।
इति विज्ञाय धीरो हि किमभ्यस्यति बालवत्॥ 07

समस्त जगत् कल्पना मात्र है और आत्मा मुक्त और सनातन है। ऐसा जान कर धीर पुरुष बालक के समान क्या चेष्टा करता है।

अयं सोऽहमयं नाहमिति क्षीणा विकल्पनाः।
सर्वमात्मेति निश्चित्य तूष्णीभूतस्य योगिनः॥ 09

सब आत्मा है। ऐसा निश्चय पूर्वक जानकर शांत हुए योगी की ऐसी कल्पनाएँ कि 'वह मैं हूँ' और 'वह मैं नहीं हूँ' क्षीण हो जाती है।

न विक्षेपो न चैकाग्र्यं नातिबोधो न मूढता।
न सुखं न च वा दुःखमुपशान्तस्य योगिनः॥ 10

उपशांत हुए योगी के लिए न विक्षेप है और न एकाग्रता है, न अतिबोध है और न मूढता है, न सुख है, न दुःख है।

स्वराज्ये भैक्ष्यवृतौ च लाभालाभे जने वने।
निर्विकल्पस्वभावस्य न विशेषोऽस्ति योगिनः॥ 11

निर्विकल्प स्वभाव वाले योगी के लिए राज्य और भिक्षावृत्ति में लाभ और हानि में, समाज और वन में फर्क नहीं है।

कृत्यं किमपि न एव न कापि हृदि रञ्जना।
यथा जीवनमेवेह जीवन्मुक्तस्य योगिनः॥ 13

जीवमुक्त योगी के लिए कर्तव्य कर्म कुछ भी नहीं है और न हृदय में कोई अनुराग है। वह संसार में यथाप्राप्त जीवन जीता है।

क्व मोहः क्व च वा विश्व क्व तद्ध्यानं क्व मुक्तता।
सर्वसंकल्पसीमायां विश्रान्तस्य महात्मनः॥ 14

सम्पूर्ण संकल्पों के अन्त होने पर विश्रान्त हुए महात्मा के लिए कहाँ मोह है और कहाँ संसार है, कहाँ वह ध्यान है, कहाँ मुक्ति है।

दृष्टो येनात्मविक्षेपो निरोधं कुरुते त्वसौ।
उदारस्तु न विक्षिप्तः साध्याभावात्करोति किम्॥ 17

जो आत्मा में विक्षेप देखता है वह भला चित्त का निरोध करे लेकिन विक्षेपमुक्त उदार पुरुष साध्य के अभाव में क्या करे।

धीरो लोकविपर्यस्मो वर्तमानोऽपि लोकवत्।
न समाधिं न विक्षेपं न लेपं स्वस्य पश्यति॥ 18

जो संसार की तरह बरतता हुआ भी संसार से भिन्न है, वह धीर पुरुष न अपनी समाधि को, न विक्षेप को और न बंधन को ही देखता है।

भावाभावविहीनो यस्तृप्तो निर्वासनो बुधः।
नैव किञ्चित् कृतं तेन लोकदृष्ट्या विकुर्वता॥ 19

जो ज्ञानी पुरुष तृप्त है, भाव-अभाव से रहित है, वासना-रहित है वह लोक-दृष्टि से कर्म करता हुआ भी कुछ नहीं करता है।

प्रवृतौ वा निवृतौ वा नैव धीरस्य दुर्ग्रहः।
यदा यत्कर्तुमायाति तत्कृत्वा तिष्ठतः सुखम्॥ 20

धीर पुरुष प्रवृत्ति अथवा निवृत्ति में दुराग्रह नहीं रखता। वह जब कभी भी कुछ करने को आ पडता है उसको करके सुख पूर्वक रहता है।

असंसारस्य तु क्वापि न हर्षो न विषादता।
स शीतलमना नित्यं विदेह इव राजते॥ 22

संसार मुक्त पुरुष को न तो कभी हर्ष होता है न विषाद। वह शांतमना सदा विदेह (मुक्त) की भाँति शोभता है।

कुत्रापि न जिहासाऽस्ति आशा वाऽपि न कुत्रचित्।
आत्मारामस्य धीरस्य शीतलच्छातरात्मनः ॥ 23

आत्मा में रमण करने वाले और शीतल तथा निर्मल चित्त वाले धीर पुरुष की न कहीं त्याग की इच्छा है न कहीं ग्रहण की आशा है।

प्रकृत्या शून्याचित्तस्य कुर्वतोऽस्य यदृच्छया।
प्राकृतस्येव धीरस्य न मानो नावमानता ॥ 24

स्वाभाविक रुप से जो शून्यचित्त है और सहज रूप से जो कर्म करता है, उसी धीर पुरुष को सामान्य जन की तरह न मान है और न अपमान है।

कृतं देहेन कर्मेदं न मया शुद्धरूपिणा।
इति चिन्तानुरोधी यः कुर्वन्नपि करोति न ॥ 25

यह कर्म शरीर से किया गया है, मुझ शुद्ध स्वरूप द्वारा नहीं। ऐसी चिंतन का जो अनुगमन करता है वह कर्म करता हुआ भी नहीं करता है।

यस्यान्तः स्यादहंकारो न करोति करोति सः।
निरहंकारधीरेण न किञ्चिदकृतं कृतम् ॥ 29

जिसके अन्तःकरण में अहंकार है वह कर्म नहीं करते हुए भी कर्म करता है और अहंकार रहित धीर पुरुष कर्म करते हुए भी नहीं करता है।

न शांतिं लभते मूढो यतः शमितुमिच्छति।
धीरस्तत्वं विनिश्चित्य सर्वदा शांतमानसः ॥ 39

अज्ञानी जैसे शांत होने की इच्छा करता है वैसे ही शांति को नहीं प्राप्त होता है किंतु धीर पुरुष तत्त्व को जान कर सदैव शांत मन वाला है।

क्वात्मनो दर्शनं तस्य यद्दृष्टमवलम्बते।
धीरास्तं न पश्यन्ति पश्यन्त्यात्मानमव्ययम् ॥ 40

उसको आत्मा का दर्शन कहाँ है जो दृश्य का अवलम्बन करता है ? धीर पुरुष दृश्य को नहीं देखते हैं। वे अविनाशी आत्मा को देखते हैं।

क्व निरोधो विमूढस्य यो निर्बन्धं करोति वै।
स्वरामस्यैव धीरस्य सर्वदाऽसावकृत्रिमः ॥ 41

जो हठपूर्वक चित्त का निरोध करता है उस अज्ञानी को कहाँ चित्त का निरोध है ? स्वयं में रमण करने वाले धीर पुरुष के लिए यह चित्त का निरोध स्वाभाविक है।

शुद्धमद्वयमात्मानं भावयन्ति कुबुद्धयः।
न तु जानन्ति संमोहाद्यावज्जीवमनिर्वृताः ॥ 43

कुबुद्धि पुरुष शुद्ध अद्वैत आत्मा की भावना करते हैं लेकिन मोहवश उसे नहीं जानते हैं इसलिए जीवन भर सुख-रहित रहते हैं।

मुमुक्षुर्बुद्धिरालम्बतन्तरेण न विद्यते।
निरालम्बैव निष्कामा बुद्धिर्मुक्तस्य सर्वदा ॥ 44

मुमुक्षु पुरुष की बुद्धि आलम्बन के बिना नहीं रहती। मुक्त पुरुष की बुद्धि सदा निष्काम और निरालम्ब रहती है।

यदा यत्कर्तुमायाति तदा तत्कुरुते ऋजुः।
शुभं वाप्यशुभं वापि तस्य चेष्टा हि बालवत् ॥ 49

धीर पुरुष जब कुछ शुभ या अशुभ करने को आ पडता है तो उसे सहजता के साथ करता है क्योंकि उसका व्यवहार बालवत् है।

स्वातन्त्र्यात्सुखमप्नोति स्वातन्त्र्याल्लभते परम्।
स्वातन्त्र्यान्निर्वृतिं गच्छेत् स्वातन्त्र्यात्परमं पदम् ॥ 50

धीर पुरुष स्वतंत्रता से सुख को प्राप्त होता है, स्वतंत्रता से परम को प्राप्त होता है, स्वतंत्रता से नित्य सुख को प्राप्त होता है और स्वतंत्रता से परम पद को प्राप्त होता है।

अकर्तृत्वमभोक्तृत्वं स्वात्मानो मन्यते यदा।
तदा क्षीणा भवन्त्येव समस्ताश्चित्तवृत्तयः ॥ 51

जब मनुष्य अपनी आत्मा के अकर्त्तापन और अभोक्तापन को मानता है तब उसकी सम्पूर्ण चित्तवृत्तियों का नाश हो जाता है।

उच्छृङ्खलाप्याकृतिका स्थितिर्धीरस्य राजते।
न तु संस्पृहचित्तस्य शान्तिर्मूढस्य कृत्रिमा ॥ 52

धीर पुरुष की स्वाभाविक उच्छृङ्खल स्थिति भी शोभती है लेकिन स्पृहायुक्त चित्त वाले मूढ की बनावटी शांति भी नहीं शोभती।

श्रोत्रियं देवतां तीर्थमंगनां भूपति प्रियम्।
दृष्ट्वा संपूज्य धीरस्य न कापि हृदि वासना ॥ 54

धीर पुरुष के हृदय में पंडित, देवता और तीर्थ का पूजन करके तथा स्त्री, राजा और प्रियजन को देखकर कोई भी वासना नहीं होती।

अज्ञानी की स्पृहा होती है, वासना होती है जिनकी पूर्ति हेतु वह ज्ञान-प्राप्ति के लिए पंडितों के पास जाता है, धन, यश एवं पुत्र प्राप्ति हेतु देवताओं की पूजा अर्चना करता है, अपने पापों के प्रक्षालन हेतु वह तीर्थों का भ्रमण करता है, उनका पूजन करता है, मंदिरों में जाकर अर्चना, वन्दना करता है, वह स्त्री को देखकर काममोहित होकर उसको प्राप्त करना चाहता है, वह राजा की चाटुकारीता करता है, मंत्रियों के पीछे-पीछे

घूमता है कि कहीं कोई पद मिल जाय, चुनाव टिकिट मिल जाय, वह प्रियजनों को देखकर भी उनसे कुछ प्राप्त करने की आकांक्षा रखता है। अष्टावक्र कहते हैं कि धीर पुरुष ज्ञानी भी इन्हें देखता है किंतु उसमें वासना नहीं होने से वह इनसे कुछ भी प्राप्त करने की इच्छा नहीं रखता। वासना युक्त मन ही विकारी होता है।

अकुर्वन्नपि संक्षोभाद्व्यग्रः सर्वत्र मूढधीः।
कुर्वन्नपि तु कृत्यानि कुशलो हि निराकुलः॥ 58

अज्ञानी कर्मों को नहीं करता हुआ भी सर्वत्र विक्षोभ (संकल्प-विकल्प) के कारण व्याकुल रहता है और ज्ञानी सब कर्मों को करता हुआ भी शांत चित्त वाला ही होता है।

सुखमास्ते सुखं शेते सुखमायाति याति च।
सुखं वक्ति सुखं भुक्ते व्यवहारेऽपि शान्तधीः॥ 59

शांत बुद्धि वाला ज्ञानी व्यवहार में भी सुखपूर्वक बैठता है, सुखपूर्वक आता है और मर जाता है, सुखपूर्वक बोलता है और सुखपूर्वक भोजन करता है।

स्वभावाद्यस्य नैवार्तिर्लोकवद्व्यवहारिणः।
महाह्रदं इवाक्षोभ्यो गतक्लेशः सुशोभते॥ 60

जो ज्ञानी स्वभाव से व्यवहार में भी सामान्यजन की तरह नहीं व्यवहार करता है और महा सरोवर की तरह क्लेशरहित है, वहीं शोभता है।

स जयत्यर्थसंन्यासी पूर्णस्वरसविग्रहः।
अकृत्रिमोऽवच्छिन्ने समाधिर्यस्य वर्तते॥ 67

वही सन्यासी जय को प्राप्त होता है जो पूर्णानन्द स्वरूप है तथा जिसकी सहज समाधि (अकृत्रिम) अनवछिन्न रूप से (निरंतर) विद्यमान रहती है।

भ्रमभूतमिदं सर्वं किञ्चिन्नस्तीति निश्चयी।
अलक्ष्यस्फुरणः शुद्धः स्वभावेनैव शाम्यति॥ 70

यह समस्त भ्रमरूप जगत् प्रपंच कुछ नहीं है, ऐसा निश्चयपूर्वक जानकर अलक्ष्य (आत्मा) की स्फुरण वाला शुद्ध पुरुष स्वभाव से ही शांत होता है।

बुद्धिपर्यन्तसंसारे मायामात्रं विवर्त्तते।
निर्ममो निरहङ्कारो निष्कामः शोभते बुधः॥ 73

बुद्धिपर्यन्त संसार में जहाँ माया ही माया भासती है वहाँ ममता रहित, अहंकार रहित और कामना रहित ज्ञानी ही शोभता है।

मन्दः श्रुत्वापि तद्वस्तु न जहाति विमुढताम्।
निर्विकल्पो बहिर्यत्नादन्तर्विषयलालसः॥ 76

मंद बुद्धि उस तत्त्व को सुनकर भी मूढता को नहीं छोडता है। वह बाह्य प्रयत्न में

निर्विकल्प होकर मन में विषयों की लालसा वाला होता है।

नैव प्रार्थयते लाभं नालाभेनानुशोचित।
धीरस्य शीतलं चित्तममृतेनैव पूरितम्॥ 81

धीर पुरुष का चित्त अमृत से पूरित हुआ शीतल है। इसलिए न वह लाभ के लिए प्रार्थना करता है और न हानि के लिए कभी चिंता करता है।

न शांत स्तौति निष्कामो न दुष्टमपि निन्दति।
समदुःखसुख स्तृप्तः किञ्चित्कृत्यं न पश्यति॥ 82

निष्काम पुरुष (योगी) न तो शांत पुरुष की प्रशंसा करता है, न दुष्ट को देखकर निंदा करता है। वह सुख-दुःख को समान समझता हुआ तृप्त है। उसे करने को कुछ भी नहीं दीखता है।

धीरो न द्वेष्टि संसारमात्मानं न दिदृक्षति।
हर्षामर्षविनिर्मुक्तो न मृतो न च जीवति॥ 83

धीर पुरुष न संसार के प्रति द्वेष करता है और न आत्मा को देखने की इच्छा करता है। हर्ष और शोक से मुक्त वह न मरे हुए जैसा है और न जीवित जैसा।

निःस्नेहः पुत्रदारादौ निष्कामो विषयेषु च।
निश्चिन्तः स्वशरीरेऽपि निराशः शोभते बुधः॥ 84

पुत्र, स्त्री आदि के प्रति स्नेह न रखता हुआ और विषयों में कामनारहित हुआ, अपने शरीर की भी चिंता नहीं करता हुआ ज्ञानी पुरुष सभी आशाओं से मुक्त शोभा देता है।

पततूदेतु वा देहो नास्य चिन्ता महात्मनः।
स्वभावभूमिविश्रान्ति विस्मृताशेषसंसृतेः॥ 86

जो निज स्वभावरूपी भूमि में विश्राम करता है और जिसे संसार विस्मृत हो गया है, उस महात्मा को इस बात की चिंता नहीं है कि देह रहे या जाय।

अकिञ्चनः कामचारो निर्द्वन्द्वश्छिन्नसंशयः।
असक्तः सर्वभावेषु केवलो रमते बुधः॥ 87

अकिञ्चन्य, स्वच्छन्द विचरण करने वाला, द्वन्द्व रहित, संशय रहित, आसक्ति रहित और अकेला बुद्ध पुरुष ही सब भावों में रमण करता है।

निर्ममः शोभते धीरः समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
सुभिन्न हृदय ग्रन्थिर्विनिर्धूतरजस्तमः॥ 88

जो ममता रहित है उसके लिए मिट्टी, पत्थर और सोना समान है। जिसके हृदय की ग्रंथि टूट गई है और जिसका रज, तम धुल गया वह धीर पुरुष ही शोभता है।

सर्वत्रानवधानस्य न किञ्चिद्वासना हृदि।
मुक्तात्मनो वितृप्तस्य तुलना केन जायते॥ 89

जो सर्वत्र व्यवधान से मुक्त उदासीन हैं और जिसके हृदय में कुछ भी वासना नहीं है। ऐसे तृप्त हुए मुक्तात्मा की किसके साथ तुलना हो सकती है।

जानन्नपि न जानाति पश्यन्नपि न पश्यति।
ब्रुवन्नपि न च ब्रुते कोऽन्यो निर्वासनादृते ॥ 90

वासना रहित पुरुष के अतिरिक्त दूसरा कौन है जो जानता हुआ भी नहीं जानता है, देखता हुआ भी नहीं देखता है, बोलता हुआ भी नहीं बोलता है।

भिक्षुर्वा भूपतिर्वापि यो निष्कामः स शोभते।
भावेषु गलिता यस्य शोभानाऽशोभना मतिः ॥ 91

जिसकी सब भावों में शोभन, अशोभन बुद्धि गलित हो गई है और जो निष्काम है, वही शोभायमान है, चाहे वह भिखारी हो या भूपति।

आत्मविश्रान्तितृप्तेन निराशेन गतार्तिना।
अन्तर्यदनुभूयते तत्कथं कस्य कथ्यते ॥ 93

आत्मा में विश्राम कर तृप्त हूए आशारहित और शोक रहित ज्ञानी के अन्तस् में जो अनुभव होता है उसे कैसे और किसको कहा जाय ?

सुप्तोऽपि न सुषुप्तो च स्वप्नेऽपि शयितो न च।
जागरेऽपि न जागर्ति धीरस्तृप्तः पदे पदे ॥ 94

जो सोया हुआ भी सुषुप्त नहीं है और न स्वप्न में भी सोया हुआ है, जाग्रत में भी नहीं जागा हुआ है, वही धीर पुरुष क्षण-क्षण तृप्त है।

न सुखी न च वा दुःखी न विरक्तो न संगवान्।
न मुमुक्षुर्न वा मुक्तो किञ्चिन्न चऽकिञ्चन ॥ 96

ज्ञानी न सुखी है न दुःखी, न विरक्त है न संगयुक्त है, न मुमुक्षु है न मुक्त है, न किञ्चन है (कुछ है) न अकिञ्चन (कुछ नहीं)।

विक्षेपऽपि न विक्षिप्तः समाधौ न समाधिमान्।
जाड्येऽपि न जडो धन्यः पाण्डित्येऽपि न पण्डितः ॥ 97

धन्य पुरुष विक्षेप में भी विक्षिप्त नहीं है। समाधि में भी समाधि वाला नहीं है। जडता में भी जड नहीं है, पांडित्य में भी पंडित नहीं है।

मुक्तो यथास्थितिस्वस्थः कृतकर्त्तव्यनिर्वृतः।
समः सर्वत्र वैतृष्णान्न स्मरत्यकृतं कृतम् ॥ 98

मुक्त पुरुष सब स्थिति में स्वस्थ है, किये हुए और करने योग्य कर्म में तृप्त है, सर्वत्र समान है, तृष्णा के अभाव में किये और अनकिये कर्म को स्मरण नहीं करता है।

न प्रीयते वन्द्यमानो निन्द्यमानो न कुप्यति।
नैवोद्विजति मरणे जीवने नाभिनन्दति ॥ 99

मुक्त पुरुष न स्तुति किए जाने पर प्रसन्न होता है, न निंदित होने पर क्रुद्ध होता है। न मृत्यु में उद्विग्न होता है, न जीवन में हर्षित होता है।

न धावति जनाकीर्णं नारण्यमुपशान्तधीः।
यथा तथा यत्र तत्र सम एवावतिष्ठते ॥ 100

शांत बुद्धिवाला पुरुष न लोगों से भरे नगर की ओर भागता है, न वन की ओर ही। वह सभी स्थिति और सभी स्थान में समभाव से ही स्थित रहता है।

वैशेषिक दर्शन में वर्णित आध्यात्मिक स्वास्थ्य

यतोऽभ्युदयानिःश्रेयससिद्धिस्स धर्मः ॥ 2

जिसने यथार्थ ज्ञान/तत्त्व ज्ञान/सांसारिक सुख तथा मोक्ष की सिद्धि हो वही धर्म है।

तत्त्वज्ञानानिःश्रेयसम् ॥ 4

यथार्थ ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

इन्द्रियदोषात् संस्कारदोषाच्चविद्या ॥ 10

इंद्रिय के दूषित होने से और संस्कार का दूषित होना ही अविद्या/अधर्म है।

तद्दृष्टज्ञानम् ॥ 11

वह अविद्या ही दूषितज्ञान/अज्ञान है।

अदृष्टं विद्या ॥ 12

जो ज्ञान दोष-रहित अर्थात् पवित्र/निर्मल है वही विद्या है।

द्वेष से हानियाँ

मनः शमं न गृहणाति, न पीती सुख मश्नुते।
न निंदा न धृतिं याति, द्वेष शल्ये ह्यदि स्थिते।।

त्याज्य (द्वेष भाव) अंवदान

जब द्वेषरूपी बाण हृदय में चुभ रहा है, तन मन अशान्त रहता है, पारस्परिक प्रेम के सुख का अनुभव नहीं होता और न मानव हो सकता है, और न हि धैर्य धारण कर सकता है। अतः द्वेष भावना को हृदय में नहीं रखना चाहिए।

सांख्यदर्शन में वर्णित आध्यात्मिक स्वास्थ्य

अथ त्रिविधदुःखात्यन्त निवृत्तिरत्यन्त पुरुषार्थः ॥ 1

तीन प्रकार के दुःखों का अत्यन्ताभाव हो जाना प्राणी मात्र का मुख्य उद्देश्य है।

प्रश्नः- तीन प्रकार के कौन से दुःख हैं ?

उत्तरः- आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक।

प्रश्नः- आध्यात्मिक दुःख किसको कहते हैं ?

उत्तरः- जो दुःख शरीरान्तर में उत्पन्न हो, जैसे- ईर्ष्या,द्वेष,लोभ, मोह, क्लेश, रोगादि।

प्रश्नः- आधिभौतिक दुःख किसे कहते हैं ?

उत्तरः- जो अन्य प्राणियों के संसर्ग से उत्पन्न हो, जैसे सर्प के काटने या सिंह से मारे जाने या मनुष्यों के परस्पर युद्ध से जो दुःख उत्पन्न हो,उसे आधिभौतिक कहते हैं।

प्रश्नः- आधिदैविक दुःख किसे कहते हैं ?

उत्तरः- जो दुःख दैवी शक्तियों अर्थात् अग्नि, वायु या जल के न्यूनाधिक्य से उपस्थित हों, उनको आधिदैविक कहते हैं।

प्रश्नः- समय के विचार से दुःख कितने प्रकार के होते हैं ?

उत्तरः- तीन प्रकार के अर्थात् भूत, वर्तमान, अनागत।

प्रश्नः- क्या इन तीनों के लिए पुरूषार्थ करना चाहिए ?

उत्तरः- केवल अनागत के लिए पुरुषार्थ करना योग्य है क्योंकि भूत तो व्यतीत हो जाने के कारण नाश हो ही गया और वर्तमान दूसरे क्षण में भूत हो जाता है अतएव यह दोनों स्वयं नाश हो जाते हैं, केवल अनागत का नाश करना आवश्यकीय है।

प्रश्नः- जो दुःख अभी उत्पन्न नहीं हुआ या जो क्षुधा अभी नहीं लगी उसका नाश किस प्रकार हो सकता है?

उत्तरः-**'' कारणाभावात् कार्याभावः '' (वैशेषिक)**-

अर्थः- कारण के नाश होने से कार्य का नाश हो जाता है, अतएव दुःख के कारण का नाश करना चाहिए, क्योंकि कारण के नाश से अनागत दुःख का नाश हो जाता है। जैसा कि महर्षि पातञ्जली ने लिखा है **''हेयं दुःखमनागतम्''**।

आगामी दुःख 'हेय' अर्थात् त्यागने योग्य है, उसी के दूर करने का प्रयत्न करो।

प्रश्नः- इस सांख्य शास्त्र में किस वस्तु का वर्णन किया गया है ?

उत्तरः- 'हेय' अर्थात् दुःख 'हान' अर्थात् दुःख निवृत्ति। 'हेय हेतु' अर्थात् दुःख के उत्पन्न होने का कारण'हानोपाय' अर्थात् दुःख के नाश करने का उपाय।

प्रश्न :- क्या दुःख अन्न और औषध इत्यादि से दूर नहीं होता ?

उत्तर -दुःख की अत्यंत निवृत्ति किसी प्राकृतिक वस्तु से नहीं हो सकती, जैसा कि लिखा है-

न दृष्टात्तत्सिद्धिर्निवृत्तेरप्यनुवृत्तिदर्शनात् ॥ 2

दृष्ट पदार्थों अर्थात् औषधादि द्वारा दुःख का अत्यन्ताभाव हो जाना सम्भव नहीं, क्योंकि जिस पदार्थ के संयोग से दुःख दूर होता है, उसके वियोग से वही दुःख फिर उपस्थित हो जाता है , जैसे अग्नि के निकट बैठने या कपडे के संसर्ग से शीत दूर होता है और अग्नि या कपडे के अलग होने से फिर वही शीत उपस्थित हो जाता है, अतएव दृष्ट पदार्थ अनागत दुःख की औषध नहीं।

प्रश्नः- क्या दृष्ट पदार्थ दुःख की अत्यन्त निवृत्ति का कारण नहीं?

उत्तरः- नहीं।

प्रश्नः- **प्रात्यहिकक्षुत्प्रतीकारवत्तत्प्रतीकारचेष्टनात् पुरूषार्थत्वम् ॥ 3**

उत्तरः- नित्यप्रति क्षुधा लगती है उसकी निवृत्ति भोजन से हो जाती है। इसी प्रकार और दुःख भी प्राकृतिक वस्तुओं से दूर हो सकते हैं अथात् जैसे औषध से रोग की निवृत्ति हो जाती है अतएव वर्तमान काल के दुःख दृष्ट पदार्थों से दूर हो जाते हैं, इसी को पुरूषार्थ मानना चाहिये।

सर्वसम्भवात् सम्भवेऽपिसत्वासम्भवाद्धेयः प्रमाणकुशलैः ॥ 4

प्रथम तो प्रत्येक दुःख दृष्ट पदार्थों से दूर ही नहीं होता, क्योंकि सर्व वस्तु प्रत्येक देश और काल में प्राप्त नहीं हो सकती यदि मान भी लें कि प्रत्येक आवश्यकीय वस्तुयें सुलभ भी हो तथापि उन पदार्थों से दुःख का अभाव नही हो सकता केवल दुःख का तिरोभाव कुछ काल के लिये हो जायेगा अतएव बुध्दिमान को चाहिये कि दृष्ट पदार्थों से दुःख दूर करने का प्रयत्न न करे , दुःख के मूलोच्छेद करने का प्रयत्न करें, जैसा कि लिखा है-

उत्कर्षादपि मोक्षस्य सर्वोत्कर्षश्रुते : ॥ 5

मोक्ष सुख सब सुखों से परे हैऔर प्रत्येक बुध्दिमान सब से परे (श्रेष्ठ) पदार्थ की ही इच्छा करता है। इस हेतु से दृष्ट पदार्थों को छोडकर मोक्ष के लिए प्रयत्न करें, यही प्राणियों का मुख्य उद्देश्य है।

अविशेषश्चोभयो ॥ 6

यदि मोक्ष को अन्य सुखों के समान माना जावे तो दोनों बातें समान हो जावेंगी, परन्तु क्षणिक सुख को महाकल्प पर्यन्त सुख के समान समझना बडी मूर्खता है।

प्रश्नः- तुम मोक्ष को सब से उत्तम जानते हो और मोक्ष छूटने को कहते हैं, छूटता वही है, जो बन्धन में हो । क्या यह जीव बन्धन में है? यदि-कहो कि बन्धन में है तो वह बन्धन उसका स्वाभाविक गुण है या नैमित्तिक?

उत्तरः- **न स्वभावतो बद्धस्य मोक्षसाधनोपदेश विधिः ॥ 7**

दुःख जीव का स्वाभाविक गुण नहीं क्योंकि जो गुण स्वभाव से होता है वह गुणी से अलग नहीं होता, अतएव दुःख के नाश के कथन से ही प्रतीत होता है, कि दुःख जीव का

स्वाभाविक गुण नहीं है, क्योंकि वह गुणी से अलग हो ही नहीं सकता ।

स्वभावस्यानपायित्वा दननुष्टानलक्षणमप्रामाणयम् ॥ 8

स्वाभाविक गुण के अविनाशी होने से जिन मन्त्रों में दुःख दूर करने का उपदेश किया गया है, वह सब प्रमाण नहीं रहेंगे, अतएव दुःख जीव का स्वाभाविक गुण नहीं ।

नाशक्योपदेश- विधिरूपदिष्टेऽयनुपदेशः ॥ 9

निष्फल कर्म के निमित्त वेद में कभी उपदेश नहीं हो सकता क्योंकि असंभव के लिए उपदेश करना भी न करने के समान है, अतएव दुःख जीव का स्वाभाविक गुण नहीं- किन्तु नैमित्तिक है।

प्रश्नः- शुक्लपटवद्बीजवच्चेत् ॥ 10

अर्थ :- स्वाभाविक गुण का भी नाश हो जाता है, जैसे श्वेत वस्त्र का श्वेत रंग स्वाभाविक गुण है, परंतु वह मैला हो जाने से नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार बीज में अंकुर लाने का स्वाभाविक गुण है, परंतु वह बीज के जला देने से नष्ट हो जाता है, अतएव यह विचार करना ठीक नहीं।

शक्त्युद्भवानुद्भवाभ्यां नाशक्योपदेशः ॥ 11

अर्थः- उपर्युक्त उदाहरण स्वाभाविक गुण के अत्यन्ताभाव का सर्वथा अयुक्त व अप्रामाणिक है, क्योंकि यह तो शक्ति के गुप्त व प्रकट होने का उदाहरण है, क्योंकि यदि रजक के धोने से पुनः वह वस्त्र श्वेत नहीं हो जाता तब यह ठीक होता। इसी प्रकार जला हुआ बीज अनेक औषधियों के मेल से ठीक हो जाता है, अतएव यह कथन ठीक नहीं कि स्वाभाविक गुण का भी नाश हो सकता है।

प्रश्नः- यदि मान लिया जाय कि दुःख जीव का स्वाभाविक गुण नहीं है तो किन कारणों से दुःख उत्पन्न होता है ? मेरी सम्मति में तो सृष्टि काल में दुःख उत्पन्न होता है और सृष्टि के नाश से दुःख हो जाता है। इस हेतु से दुःख का कारण काल है ?

उत्तर :- ना काल योगतो व्यापिनो नित्यस्य सर्वसम्बन्धात् ॥ 12

अर्थ :- दुःख काल के कारण से नहीं हो सकता, क्योंकि काल सर्व व्यापक और नित्य है और उसका सबसे सम्बन्ध है, अतएव काल के हेतु से बंधन और मुक्त हो नहीं सकता। क्योंकि यदि काल ही दुःख का हेतु माना जाय तो सब ही दुःखी होने चाहिए ?

प्रश्न :- तो क्या देश योग से दुःख उत्पन्न होता है ? क्योंकि बहुत से लोग यह कहते हैं कि अटक पार जाने से पाप होता है और उससे दुःख उत्पन्न होता है।

उत्तर :- ना देशयोगतोऽप्यस्मात् ॥ 13

अर्थ :- चुँकि काल के अनुसार देश भी सर्वव्यापक और सबसे संबन्ध रखने वाला तथा नित्य है, इसलिए देशयोग से बंध नहीं हो सकता।

प्रश्न :- तो फिर क्या अवस्था अर्थात् दशाओं के हेतु से दुःख उत्पन्न होता है ? क्योंकि तीन अवस्था अर्थात् जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति या बाल्यावस्था या युवावस्था या वृद्धावस्था इन छः दशाओं में किसके हेतु से दुःख और बंधन होता है ?

उत्तर :- नावस्थातो देह धर्मत्वात् तस्याः ॥ 14

अर्थ :- इन दशाओं से भी दुःख उत्पन्न नहीं हो सकता, क्योंकि बाल, युवा और वृद्धावस्था शरीर के धर्म है, यदि अन्य के धर्म से अन्य का बंधन माना जाय तो सर्वथा अन्याय है, क्योंकि किसी दूसरे बंधन युक्त मनुष्य के धर्म से कोई मुक्त बंधन में पड जायेगा और मुक्त के धर्म से कोई बद्ध मुक्त हो जायेगा।

प्रश्न :- क्या इन अवस्थाओं से जीव का कोई संबंध नहीं ? कोई ये केवल शरीर की है ?

उत्तर :- असंगोऽयं पुरुष इति ॥ 15

अर्थ :-यह जीव सर्वथा असंग है, इसका बाल्य, वृद्ध, युवावस्था से किञ्चित् संबंध नहीं।

प्रश्न :- तो क्या दुःख अर्थात् बंधन के उत्पन्न होने का हेतु कर्म है ?

उत्तर :- न कर्मणऽन्यधर्मत्वादति प्रसक्तेश्च ॥

अर्थ :- वेद विहित या निषिद्ध कर्मों से जीव का बंधन रूपी दुःख उत्पन्न नहीं होता, क्योंकि कर्म करना भी शरीर व चित्त का धर्म है, द्वितीय कर्म शरीर से होगा और शरीर कर्म के फल से होता है, तो अनवस्था दोष उपस्थित हो जायेगा, तीसरे यदि शरीर का कर्म आत्मा के बंधन का हेतु माना जाय तो बंधन में हुए जीव के कर्म से मुक्त जीव का बंधन होना संभव हो सकता है। अतएव कर्म द्वारा बंधन उत्पन्न नहीं होता।

प्रश्न :- तो हम दुःख रूप बंधन भी चित्त को ही मान लेगें उस दशा में चित्त के कर्म द्वारा चित्त को बंधन होने से कोई दोष नहीं रहेगा ?

उत्तर :- विचित्र भोगानुपपत्तिरन्य धर्म्मत्वे ॥ 17

अर्थ :- यदि दुःख भोग रूप बंधन केवल चित्त का धर्म माना जाय तो नाना प्रकार के भोग में संसार प्रवृत्त नहीं रहना चाहिए। क्योंकि जीव को दुःख होने के बिना ही यदि दुःख का अनुभव करता माना जाय तो सारे मनुष्य दुःखी हो जायेगें, क्योंकि जिस प्रकार दुःख का संबंध न होने से जैसे दुःखी प्रतीत होता है ऐसे ही दुःख के ना होने पर सब लोग दुःखी हो सकते हैं। अतएव कोई दुःखी या कोई सुखी किस प्रकार अन्य प्रकार का भोग नहीं हो सकेगा।

प्रश्न :- क्या प्रकृति के संयोग से दुःख होता है ?

उत्तर :- प्रकृति निबन्धनाच्चेन्न तस्या अपि पारतन्त्र्यम् ॥ 18

अर्थ :- यदि बंधन का कारण प्रकृति मानो तो प्रकृति स्वयं ही स्वतंत्र नहीं तो परतंत्र प्रकृति किसी को किस प्रकार बांध सकती है क्योंकि जब तक प्रकृति का संयोग ना हो तब तक वह किसी को बांध ही नहीं सकती और संयोग दूसरे के अधिकार में हैं।

न्याय दर्शन में वर्णित आध्यात्मिक स्वास्थ्य

सुख-दुःख के विभिन्न कारण :-

आत्मशरीरेन्द्रियार्थबुद्धिमनःप्रवृत्तिदोषप्रेत्याभावफल दुःखापवर्गास्तु प्रमेयम् ॥ 9

आत्म, शरीर, इंद्रिय, इंद्रियार्थ बुद्धि, मन, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव, फल, दुःख अपवर्ग- ये 12 प्रमेय प्रमाणों से जानने योग्य है। इनमें आत्मा सभी सुख-दुःख साधनों का दृष्टा है, सभी सुख-दुःखों का भोक्ता है, सभी सुख-दुःख साधनों और सुख-दुःखों को जानता है तथा अनुभव करता है। उस आत्मा का भोगाधिष्ठान शरीर है। इंद्रियाँ भोग के साधन हैं, इंद्रियार्थ भोगने योग्य होते हैं, भोग बुद्धि (साक्षात्कार करने वाली) है, सभी अर्थों को एक साथ उपलब्ध करने में इंद्रियाँ समर्थ नहीं हो सकती अतः मन को पृथक् प्रमेय मानना पडा। वह सभी (बाह्याभ्यन्तर भेद भिन्न) विषयों का ज्ञान साधन है। शरीर इंद्रियाँ, इंद्रियार्थ, बुद्धि, सुख तथा हर्ष, भय, शोकादि वेदनाओं के सम्पादन कारण को प्रवृत्ति कहते हैं। उपर्युक्त प्रवृत्ति कारण को दोष कहते हैं, इसका यह अपूर्व शरीर नहीं है न अनुत्तर शरीर है। पूर्व शरीरों का आदि नहीं है उत्तर शरीरो का अंत मोक्ष है - ऐसा प्रमेय प्रेत्यभाव कहलाता है। साधन (स्रक्चंदनवनिता तथा धूलिताडन, निद्रादि) सहित सुख-दुःखों का उपभोग फल कहलाता है। दुःख यह प्रमेय अनुकूल वेदनीय लक्षणवाले सुख का प्रत्याख्यान मात्र नहीं है, किंतु साधन सहित सुख वाले मुमुक्षु को जन्म से ही दुःखानुसक्त होने से दुःख से छुटकारा न पाये जाने से तथा आध्यात्मिकादि विविध बाधानाओं के लगे रहने से यह दुःख है। ऐसी समाधि भावना का उपदेश किया गया है। मुमुक्षु समाहित चित्त होकर भावना करता है कि **सर्व खल्विंददुःखम्** भावना करते हुए उसको इस दुःख रूपी संसार से ग्लानि होती है, ग्लानि होते हुए वैराग्य हो जाता है। वैराग्य द्वारा वह अपवर्ग (मोक्ष, जन्म-मरण रूपी दुःख से छुटकारा) पा जाता है। जन्म-मरण प्रवाह का उच्छेद तथा सभी दुःखों का आत्यान्तिक नाश ही अपवर्ग कहलाता है।

तदिदं तत्वज्ञानं निःश्रेयसाधिगमार्थं यथाविद्यं मेदितव्यम्। इह त्वध्यात्म-विद्यायामात्मादितत्त्वज्ञानं तत्त्वज्ञानम् निःश्रेयसाधिगमोऽपवर्गप्राप्तिरिति ॥ 1

यह तत्त्वज्ञान और निःश्रेयस प्राप्ति उस-उस विद्या के अनुसार ही समझना चाहिए। इस आन्वीक्षिकी विद्या (न्यायशास्त्र) में जो कि अध्यात्मविद्या भी कहलाती है। आत्मा आदि प्रमेयों का तत्त्वज्ञान ही तत्त्वज्ञान कहलाता है और निःश्रेयस प्राप्ति मोक्षप्राप्ति कहलाती है।

दुःखमजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः ॥ 2

मिथ्याज्ञान नष्ट होता है। मिथ्या ज्ञान नाश से दोष नष्ट होता है। दोषापाय से प्रवृत्ति नहीं होती। प्रवृत्ति न होने से जन्म नहीं होता। जन्म न होने से दुःख नहीं होता तथा

दुःख न होने से अपवर्ग (स्वतःसिद्ध) हो जाता है।

यहाँ आत्मा से अपवर्ग पर्यन्त प्रमेयों में अनेक तरह का मिथ्याज्ञान रहता है जैसे आत्मा नहीं है, ऐसा मिथ्या ज्ञान अनात्म पदार्थों में आत्मा है ऐसा दुःख में सुख, ऐसा अनित्य (देहादि) में नित्य, ऐसा आत्राण (कलत्र-पुत्र, गेहादि) में त्राण ऐसा, ऐसा सभय (धन, पुत्र आदि) निर्भय, ऐसा जुगुप्सित (अस्थि, मांस, शोणित, मल-मूत्रादि से युक्त स्व शरीर-परशरीर) में प्रशस्त, ऐसा हातब्य (जन्मादि संसार) में आप्रहातब्य, ऐसा प्रवृत्ति (पुण्य-पापदि अदृष्ट कर्म) में कर्म नहीं है। कर्म स्वर्ग नरकादि फलप्रद नहीं है, ऐसा दोष (राग-द्वेष-मोह) में यह संसार दोष के कारण नहीं है, ऐसा प्रेत्यभाव (मरकर पुनः जन्म लेना) में ऐसा कोई जंतु (पैदा करने वाला) या जीव (पैदा होने वाला) नहीं है, तो आत्मा नहीं है। जो मरे या मरकर पुनः जन्म ले, ऐसा जन्म में कोई निमित्त (धर्माधर्मादि) नहीं है, मोक्ष भी अनिमित्त (तत्वज्ञान के बिना ही) होता है, इसलिए यह मरना-जीना, आदिमान और अनंत है, यह मरना-जीना स्वभावादि निमित्तक तो है पर कर्म निमित्तिक नहीं है, यह मरना-जीना देह, इंद्रिय, बुद्धि, वेदना (हर्ष, शोक, विषाद) के उच्छेद प्रतिसंधान से रहित (क्षणिक विज्ञान स्वरूप या शून्यरूप) है, ऐसा मोक्ष के विषय में समस्त कार्यों के उपरति निश्चय ही भयजनक होगी। सबसे अलग इस अपवर्ग में सभी मनोरंजक तथा सुखकर बाते लुप्त हो जायेगी तो कौन बुद्धिमान् सर्व सुखोच्छेद रूप मोक्ष को चाहेगा ऐसा (मिथ्याज्ञान) होता है।

इस मिथ्या ज्ञान से अनुकूल विषय में राग तथा प्रतिकूल विषय में द्वेष होता है।

राग-द्वेष का विषय बन जाने से असूया (गुणों में दोषाविष्करण), ईर्ष्या (शत्रु की प्रिय वस्तु की हानि की इच्छा), माया (दंभ), लोभ (अन्याय से परद्रव्य पाने की इच्छा) आदि दोष उत्पन्न होते हैं।

दोषों के वशीभूत होकर शरीर से चेष्टा करता हुआ हिंसा, स्तेय, प्रतिसिद्ध, मैथुन (परदारा गमन) आदि का आचरण करता है। वाणी से चेष्टा करता हुआ अनृत (मिथ्या वचन), परुष (कठोर दुःखद वचन), सूचना (चुगली करना), असम्बद्ध (ऊँटपटांग प्रलाप) आदि का तथा मन से चेष्टा करता हुआ परद्रोह (जिज्ञासा या अपकार), परद्रव्य की इच्छा करना, नास्तिक्य (परलोक नहीं है ऐसी बुद्धि) का आचरण करता है। यह पापात्मक प्रवृत्ति, अधर्म (अशुभ) के लिए होती है।

अब शुभ प्रवृत्ति का वर्णन करते हैं - शरीर से चेष्टा करता हुआ वह मंत्रादि पूर्वक या सामान्यतः दान करता है, परित्राण (निरीह प्राणियों की रक्षा), परिचरण (तीर्थाटन या गुरुसेवा) करता है। वाणी से चेष्टा करता हुआ सत्य (यथार्थ), हित (उपकार), प्रिय (प्रीतिकर) वचन बोलता है। मन से चेष्टा करता हुआ दया (निःस्वार्थ दुःख प्रहाणेच्छा), स्वाध्याय (वेद या पुराण आदि का ध्यान) करता है। अस्पृहा (लोभ त्याग), श्रद्धा (शास्त्र

में दृढ विश्वास) रखता है। यह शुभ प्रवृत्ति धर्म (शुभादृष्ट) के लिए होती है।

इस सूत्र में प्रवृत्ति के साधन धर्म और अधर्म को प्रवृत्ति पद से कह दिया गया है। जैसे - 'अन्नवैप्राणाः' इस श्रुति में प्राणों के साधन अन्न को प्राण कह दिया गया है।

यह प्रवृत्ति कुत्सित या प्रशस्त जन्म का कारण होती है। शरीर, इंद्रिय, बुद्धि - तीनों के निकाय (सजातीय कुलो) से विशिष्ट प्रादुर्भाव को जन्म कहते हैं। जन्म होने पर दुःख होता है। वह दुःख प्रतिकूल वेदनीय (अहितरूप से अनुभवनीय) होता है। उसे बाधना (व्यथा) पीडा, ताप भी कहते हैं। ये मिथ्या ज्ञान से लेकर दुःख-पर्यन्त धर्म अविच्छिन्न रूप से जब प्रवृत्त होते हैं तो इसे ही संसार कहते हैं। और जब तत्वज्ञान से मिथ्याज्ञान नष्ट हो जाता है, तब मिथ्या ज्ञान के न रहने से दोष नष्ट हो जायेगें दोषनाश से प्रवृत्ति नहीं होगी, प्रवृत्ति न होने से जन्म नहीं होगा, जन्म न होने से दुःख नहीं होगा तथा दुःख के न होने पर आत्यन्तिक (ऐकान्तिक) अपवर्ग निःश्रेयस (मोक्ष) हो जाता है।

तत्व ज्ञान का व्याख्यान मिथ्याज्ञान के व्याख्यान से उलटा किया गया है। जैसे - आत्मा के विषय में ''है'' ऐसा, अनात्म पदार्थों में 'अनात्मा' ऐसा। इसी तरह दुःख, अनित्य, अत्राण, सभय, जुगुप्सित तथा हातव्य के बारे में भी विषय के अनुसार समझना चाहिए। प्रवृत्ति के विषय में - कर्म है 'कर्मों का फल है', ऐसा; दोषों के बारे में 'यह संसार दोषों से उत्पन्न है' ऐसा, पुनर्जन्म के बारे में है ऐसा जीव या जन्तु, सत्त्व या आत्मा जो मरकर पुनः जन्म ग्रहण करे ऐसे जन्म की उपरति भी निमित्त कारण वाली है, अतः 'यह मरना-जीना प्रवाहरूप से अनादि होते हुए मोक्ष पर्यन्त है' ऐसा, 'यह मरना-जीना नैमित्तिक होता हुआ प्रवृत्तिनिमित्तिक है' ऐसा 'सात्मक होता हुआ देह, इंद्रिय, बुद्धि वेदना की सन्तति (निरन्तर प्रवाह) से उच्छेद और प्रतिसंधान द्वारा प्रवृत्त होता है' ऐसा, अपवर्ग के विषय में- 'यह सभी से नाता टूटना बहुत ही शांत है, सब तरह से छुटकारा पा जाना अपवर्ग है, इससे बहुत ही कठिन और भयानक पाप विनष्ट हो गये, कौन बुद्धिमान् ऐसे सब दुःखों तथा उनकी अनुभूति से छुटकारा दिलाने वाले अपवर्ग को न चाहेगा ! जैसे जहर मिला हुआ मीठा भोजन नहीं खाया जाता, वैसा ही दुखानुसक्त सुख भी नहीं चाहा जाता।

प्रवृत्तिर्वाग्बुद्धिशरीरारम्भः ॥ 17

वाणी, बुद्धि (मन) शरीर से किये जाने वाले कार्य प्रवृत्ति कहलाते हैं। सूत्र में बुद्धि शब्द से मन अभिप्रेत है 'जिससे जाना जाये' वह बुद्धि (अर्थात् मन) है।

प्रवर्तनालक्षणा दोषाः ॥ 18

प्रवर्तना ही दोष है। प्रवर्तना = प्रवृत्ति के कारण (हेतु) दोष हैं। रागादि दोष ज्ञाता को पुण्य या पाप में प्रवृत्त करते हैं। जहाँ मिथ्याज्ञान होगा वहीं रागादि दोष ज्ञाता को

पुण्य या पाप में प्रवृत्त करते हैं। जहाँ मिथ्याज्ञान होगा वहीं रागादि दोष होगें।

साधारण जनों द्वारा हमेशा ही इन दोषों का अनुभव करते रहने से ये लक्षण बिना बताये भी जाने जा सकते हैं, पुनः इनका पृथक् लक्षण करने की क्या आवश्यकता ? उन कर्मों क कारण ही पुरुष रागी, द्वेषी तथा मूढ होते हैं; रागी पुरुष वही कर्म करता है, जिससे उसे सुख या दुःख मिलता है, इसी तरह द्वेषी तथा मोही पुरुष के विषय में समझना चाहिए; तात्पर्य यह निकला कि द्वेष प्रवृत्ति के कारण (जनक) हैं, यह जनकत्व दिखाने के लिए ऐसा लक्षण किया गया है।

'राग-द्वेष मोह दोष है' - ऐसा कहने पर इनकी गणना मात्र होती है, इनका लक्षण नहीं होता, अतः 'प्रवर्तनालक्षणादोषः' - ऐसा ही सूत्र पढा गया।

पुनरुत्पत्तिः प्रेत्यभावः ॥ 19

पुनः उत्पन्न होना (मरकर जन्म लेना) प्रेत्यभाव है।

उत्पन्न हुए प्राणी का मरकर पुनः उत्पन्न होना प्रेत्यभाव कहलाता है। उत्पन्न का अर्थ है 'सम्बद्ध'। किस से सम्बद्ध ? देह, इंद्रिय, मन, बुद्धि, वेदना से। इस तरह पुनरुत्पत्ति से मतलब है आत्मा का देहादि से सम्बन्ध क्योंकि आत्मा के नित्य होने से उसमें उत्पाद या मरण नहीं होता, अतः 'सम्बन्ध' कहा गया है। 'पुनः' शब्द से अभ्यास (बार-बार होना) से तात्पर्य है। जहाँ कहीं प्राण संयुक्त शरीर में रहते हुए पूर्वोपात्त देहादि को छोडना 'प्रैति' (मर जाता है) कहलाता है, तथा वहाँ से अन्यत्र दूसरे देहादिक का ग्रहण कर (सम्बन्ध जोड) लेता हुआ- 'भवति' (जन्म लेता है)। इन दोनों शब्दों के संयोग से व्युत्पन्न 'प्रेत्यभाव' का अर्थ है - मरकर फिर जन्म लेना।

इस जन्म-मरण की परम्परा का पुनः पुनः होना अनादि है, अपवर्ग जब होगा तभी इसका अन्त होगा - यह इस प्रेत्यभाव के विषय में समझ लेना चाहिए।

प्रवृत्तिदोषजनितोऽर्थः फलम् ॥ 20

प्रवृत्ति तथा दोष से जनित सुख-दुःखरूप अर्थ 'फल' कहलाता है। सुख-दुःख को स्वसम्बन्धितया अनुभव करना ही फल है। देह, इंद्रिय, विषय, बुद्धि की समष्टि में सुख विपाक तथा दुःखविपाक - यों दो प्रकार का कर्म होता है, इसलिए यहाँ देहादिकों के साथ उपर्युक्त लक्षण वाला फल अभिप्रेत है। निष्कृष्टार्थ यह है कि सुख-दुःख संवेदना तथा शरीरादि के साथ सम्बन्ध ये दोनों प्रवृत्ति दोश जनित है, अतः दोनों ही फल कहलाते हैं।

यह उक्त प्रकार का फल पुनः पुनः प्राप्त कर छोड दिया जा सकता है तथा इसे बार-बार छोडकर पुनः प्राप्त करने की इच्छा हो जाती है, इसीलिए इसके हान (त्याग) या उपादान (ग्रहण) की कोई सीमा नहीं है, कोई अन्त नहीं है। यह समस्त संसार इसी हानोपादान-प्रवाह में पडकर सुख-दुःख भोगता रहता है।

बाधनालक्षणं दुःखम् ॥ 21

'बाधना' कहते हैं पीडा अर्थात् ताप को। उसी से अनुस्यूत, उसके बिना न रहने वाला, उसी में ओतप्रोत दुःखपरिणाम के कारण को दुःख कहते हैं। यह सब दुःख से अनुस्यूत है, दुःख के बिना नहीं रह पाता, अतः यह सब कुछ दुःख है।

इस प्रकार प्रमाता 'यह समग्र दृश्यमान जगत् दुःख है' - ऐसा विचार करता हुआ जन्म लेने में दुःख मानता है, दुःख मानकर ग्लानि करता है, ग्लानि मानकर सभी विषयों में वैराग्य धारण करता है, विरक्त होकर 'मोक्ष' पा जाता है।

तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्ग ॥ 22

उस (जन्म रूप) दुःख से सदा के लिए छुटकारा पा जाना 'अपवर्ग' (मोक्ष) कहलाता है।

उस जन्म रूप दुःख से अत्यन्त (पुनरावृत्ति रहित) विमुक्ति (छुटकारा) ही अपवर्ग (मोक्ष) कहलाता है। कैसे ? क्योंकि तब प्राप्त जन्म का त्याग हो जाता है तथा अन्य (आगामी) जन्म का उपादान नहीं हो पाता। इस मोक्षरूप अविनाशि अवस्था को मुक्तितत्वज्ञ विद्वान् 'अपवर्ग' कहते हैं। इस प्रकार के कैवल्य पद में कही किसी से भी भय नहीं है, जरा (जीर्णता, बार्धक्य) नहीं है, यह अमृत्युपद भावरूप अवस्थाविशेष है, ब्रह्म है, नित्य सुख का आधार है।

महत्व की तरह मोक्ष में आत्मा में नित्य सुख अभिव्यक्त होता है, उसके अभिव्यक्त होने से विमुक्त अत्यन्त सुखी होता है - ऐसा कुछ लोग मानते हैं; प्रमाण न होने से उनके इस मन्तव्य को अयुक्त ही समझें; क्योंकि ऐसा कोई प्रत्यक्ष, अनुमान या आगम प्रमाण नहीं है 'जिससे यह सिद्ध किया जा सके कि महत्व (व्यापकता) की तरह आत्मा को मोक्षावस्था में आत्मगत नित्य सुख अभिव्यक्त होता है।

नित्य की अभिव्यक्ति - अर्थात् संवेदन, उस में कोई हेतु बतलाना चाहिए। यतः नित्य की अभिव्यक्ति = संवेदन अर्थात् ज्ञान है, अतः उसमें कोई हेतु दिखाना चाहिए जिससे वह (ज्ञान) उत्पन्न होता हो।

सुख की तरह वह नित्य है - ऐसा कहोगे तो संसारी और मुक्त पुरुष में भेद क्या रह जायेगा ? जैसे मुक्त पुरुष नित्य सुख तथा उसके संवेदन से उत्पन्न है उसी प्रकार संसारी में भी नित्य सुख मानना पडेगा; क्योंकि दोनों ही सुख तथा संवेदन नित्य हैं।

दोनों को नित्य मानने पर, धर्म तथा अधर्म से उत्पन्न सुख दुःख के उपलब्धिकाल में नित्य सुख तथा उसके नित्य ज्ञान का योगपदय (एक काल सम्बद्धत्व) ग्रहण करना पडेगा।

सुख को नित्य तथा उसकी अभिव्यक्ति को अनित्य मानने में कोई हेतु दिखाना पडेगा कि मोक्ष में नित्य सुख की अभिव्यक्ति अनित्य है। ऐसी अभिव्यक्ति जिससे पैदा

होती है, वह कारण बताना चाहिए।

वैसी अभिव्यक्ति में अकेला आत्ममनः संयोग तो निमित्त बन नहीं सकता, अतः उसका कोई निमित्तान्तर मानना पडेगा। वह निमित्तान्तर कौन है ? यह बताना चाहिए।

धर्म ही तदपेक्षित निमित्तान्तर है' - ऐसा मानेंगे तो 'धर्म निमित्तान्तर है' इस में भी कोई हेतु बताना पडेगा, जिससे वह उत्पन्न होता हो।

यदि योगसमाधिज धर्म (धर्ममेघाख्य समाधि) को उसका हेतु मानेंगे तो उस धर्म में कार्य का विरोधी रहने से सर्वक्षय हो जाता है, सर्वक्षय होने से उस सुखाभिव्यक्ति की भी अत्यन्त निवृत्ति हो जायेगी।

'सुख है परंतु धर्मक्षय से उसका संवेदन नहीं हो पाता' - ऐसा मानेगें तो इसमें तथा 'सुख नहीं है' - इसमें कोई अन्तर नहीं।

उत्पत्तिधर्मा होने से वह धर्म क्षीण नहीं होता ऐसा अनुमान भी नहीं कर सकते; अपितु 'उत्पत्तिधर्मा अनित्य होता है' ऐसा विपरीत अनुमान ही होता है। हाँ ऐसा कोई पुरुष हो जिसे संवेदनोपरम कभी न हो पाये वह यदि अनुमान करे कि 'संवेदन हेतु नित्य है' तो बात बन सकती है, परंतु ऐसा पुरुष मिलेगा कहाँ।

अथ-च संवेदन हेतु के नित्य मानने पर मुक्त और संसारी पुरुष में अन्तर नहीं रहेगा- वह हम पहले ही कह आये। जैसे मुक्त पुरुष के सुख तथा सुख संवेदन कारण के नित्य होने से नित्य हैं; क्योंकि वहाँ सुखसंवेदन परम नहीं होता, ऐसी स्थिति में संसारी में सुख तथा सुखसंवेदन भी मानना पडेगा। ऐसा मानने पर धर्म तथा अधर्म से उत्पन्न सुख-दुःख के उपलब्धि-काल में नित्य सुख तथा उसके नित्य संवेदन का योगपदय भी मानना पडेगा।

यदि कहें - 'उस संवेदन में शरीरादि सम्बन्ध प्रतिबन्धहेतु है' ? शरीरादि तो उस सुख के उपभोग के लिए होते हैं, वे प्रतिबन्धक क्यों बनेंगे। 'शरीर उपभोग हेतु नहीं है' - ऐसा अनुमान करना भी सम्भव नहीं है, क्योंकि वह शास्त्रविरुद्ध होगा।

कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि संसारावस्थापन्न मुक्त पुरुष का शरीरादिसम्बन्ध नित्य सुख-संवेदन हेतु का प्रतिबन्धक है, इसलिए संसारी और मुक्त पुरुष के सुखसंवेदन में समानता नहीं है परंतु उसका मत भी समीचीन है' क्योंकि शरीरादि को पहले उपभोग का साधन मानना, फिर उन्हें उसका प्रतिबन्धक मानना ये दो बातें एक साथ कैसे बनेगी। अशरीरी आत्मा को कोई भोग होता है- ऐसा कोई अनुमान भी नहीं है।

(मोक्ष में नित्य सुख अभिव्यक्त होता है - इसमें कोई प्रमाण नहीं है ऐसा भाष्यकार पहले कह चुके हैं; वहाँ वेदान्ती कहता है-) पुरुष की प्रवृत्तियाँ इष्ट सुख प्राप्ति के लिए ही देखी जाती है - ऐसा अनुमान प्रमाण मान लें ? यह भी नहीं मान सकते, क्योंकि उसकी सभी बल्कि उनमें कुछ अनिष्ट की प्रवृत्तियाँ केवल इष्ट प्राप्ति के लिए ही नहीं, बल्कि

उनमें कुछ अनिष्ट की निवृत्ति के लिए भी हुआ करती हैं। यदि यह अनुमान करें कि - 'इष्ट-प्राप्ति के लिए मोक्षोपदेश किया जाता है, मुमुक्षुओं की उस उपदेश में प्रवृत्ति भी देखी जाती है' अतः दोनों ही निरर्थक नहीं है ? तो यह ठीक नहीं क्योंकि अनिष्ट निवृत्ति के लिए मोक्षोपदेश किया जाता है, मुमुक्षुओं की उस उपदेश में प्रवृत्ति भी देखी जाती है यह अनुमान भी किया जा सकता है। इस संसार में ऐसा कोई भी नहीं है जो अनिष्ट से अनुस्यूत न हो। अतः इष्ट भी किसी समय अनिष्ट बन सकता है। उस अनिष्ट की निवृत्ति के लिए प्रवर्तमान पुरुष अपने इष्ट को भी छोड बैठेगा; क्योंकि इष्टानिष्ट के परस्पर संश्लिष्ट होने से अनिष्टांश का त्याग तथा इष्टांश का रक्षण सर्वथा दुःशक्य है।

(इस संसार में क्षणिक सुख को छोडकर बुद्धिपूर्वकारी स्थायी सुख ग्रहण करता है, उनमें स्थायितम सुख ही मोक्ष है' - ऐसा मानेंगे तो यह नय देहादि में भी समान पडेगा; क्योंकि उनके विषय में भी कहा जा सकता है - 'क्षणिक नश्वर देहादि को छोडकर उनसे स्थायीतर किसी अन्य को चाहने की बुद्धिपूर्वकारी की इच्छा होती है। इसलिए स्थायीतम देहेन्द्रियादिरूप ही मोक्ष है' इस आशय से भाष्यकार परिहास करते हैं।) दृष्ट का अतिक्रमण कर उससे अच्छे अदृष्ट सुख की कल्पना को मोक्ष मानने पर देहादि में भी यह बात समान पडेगी। जैसे पुरुष दृष्ट सुख को छोडकर नित्य सुख को चाहता है; इसी तरह देहेन्द्रिय बुद्धि को अनित्य समझकर उन्हें छोडते हुए इससे अच्छी देहेन्द्रिय-बुद्धि की ही 'मोक्ष' के रूप में कल्पना की जा सकती है। इससे वेदान्तियों की 'मुक्त' की एकात्मकल्पना भी सुगम हो सकेगी।

जैसे नित्य देह की कल्पना में 'उपपत्तिविरुद्ध' कहोगे तो तुम्हारे पक्ष में भी यह 'उपपत्तिविरोध' समान है। जैसे प्रमाणविरूद्ध 'देहादि की नित्यता' कल्पना अशक्य है, वैसे ही प्रमाण विरुद्ध 'सुख की नित्यता' कल्पना भी अशक्य होगी।

मुक्त में आत्यान्तिक सुख होता है - ऐसे आगम में आत्यान्तिक सुख का प्रयोग 'संसारिक दुःखाभाव' में होने से कोई विरोध नहीं है। यद्यपि 'मुक्त को आत्यान्तिक सुख मिलता है' - ऐसा आगम उपलब्ध है, परंतु इस आगम में 'सुख' शब्द का प्रयोग आत्यन्तिक दुःखाभाव के लिए किया गया है। प्रायः लोक में भी दुःखाभाव के लिए 'सुख' का प्रयोग होता है। (जैसे - सिर से बोझ उतरने पर किसी अतिरिक्त सुख की उत्पत्ति न होने पर भी भारवाहक कहता है - ओह ! अब आराम मिला।)

नित्य सुख में मुमुक्षु की प्रवृत्ति यदि राग से होती हो तो राग-निवृत्ति न होने से तत्सम्पाद्य मोक्ष की भी अनुपपत्ति ही रहेगी ? इसलिए कहते हैं नित्य सुख राग के क्षीण न होने पर मोक्षप्राप्ति भी न होगी; क्योंकि राग तो बन्धन का हेतु है। मुमुक्षु यदि 'मोक्ष नित्य सुख अभिव्यक्त करता है' - ऐसा राग करके मोक्ष के लिए प्रयत्न करता है, तो वह मोक्ष नहीं पा सकेगा; क्योंकि राग भी तो एक प्रकार का बन्धन है और बन्धन के रहते कोई

'मुक्त' नहीं कहला सकता।

प्रहीण मानने पर भी नित्यसुखराग मोक्ष के विरुद्ध नहीं पडेगा। जब इस मुमुक्षु का नित्यसुखराग क्षीण हो जाता है, तब इसका यह नित्य सुखराग प्रतिकूल नहीं होगा, तब तो उसे मोक्ष का अधिगम हो जाना चाहिए ? यदि ऐसी बात है तो मुक्त को नित्य सुख होता हो, या न होता हो- दोनों ही पक्षों में मोक्षप्राप्ति असन्दिग्ध ही है।

विविधबाधनायोगाद् दुःखमेव जन्मोत्पत्तिः । 55

विविध बाधायुक्त होने से शरीरादि को उत्पत्ति दुःख है।

जन्म अर्थात् जो उत्पन्न हो, जैसे-शरीर, इंद्रिय तथा बुद्धि, संस्थान विशिष्ट शरीरादि का प्रादुर्भाव 'उत्पत्ति' कहलाता है। हीन, मध्यम तथा उत्कृष्ट भेद से दुःख अनेक प्रकार का है। इनमें उत्कृष्ट दुःख नरकवास काल में मिलता है, मध्यम दुःख पशु योनि में तथा हीन (अल्प) दुःख मनुष्य योनि में मिलता हैं। देवयोनि में तथा वीतराग ज्ञानियों में यह दुःखमात्रा अल्पतर होती है। इस प्रकार सभी उत्पत्तिस्थान (योनियों) को दुःखानुषक्त समझते हुए जिज्ञासु की सुख के साधन तथा ज्ञायमान शरीर, इंद्रिय तथा बुद्धि में दुःखबुद्धि बन जाती है। इनमें दुःखबुद्धि बन जाने से समग्र चराचर जगत् को दुःख रूप समझ कर जिज्ञासु उससे विरक्त हो जाता है। इस विराग-भावना का अभ्यास करने से उसकी सार्वत्रिकी तृष्णा विच्छिन्न हो जाती है। तृष्णानाश से वह सभी दुःखों से छुटकारा पा जाता है। वह समझता है कि जैसे विषसम्पृक्त दुग्ध विषवत् कार्य करता है उसी तरह यह दुःखसम्पृक्त सुख भी दुःख ही है, अतः उसकी प्राप्ति के लिए प्रयास नहीं करना; उक्त प्रयास न करने से वह मरणदुःख नहीं पाता।

नः सुखस्याप्यन्तरालनिष्पत्तेः ॥ 56

बीच-बीच में सुख की भी उत्पत्ति होने से यह सुख का प्रत्याख्यान नहीं है।

यह दुःख परिगणन सुख का निषेध नहीं है; क्योंकि इस दुःखप्रवाह में बीच-बीच में सुख की उत्पत्ति होती रहती है। दुःखों के बीच में सुख भी प्रत्येक प्राणी को अनुभूत होता रहता है। इस प्रत्यक्षगम्य सुखानुभव का कोई कैसे प्रत्याख्यान कर सकता है।

बाधनानिवृत्तेर्वेदयतः पर्येषणदोषादप्रतिषेधः ॥ 57

सुखानुभव करते हुए को तृष्णानुवर्तन होने के कारण दुःख निवृत्ति न होने से प्रतिषेध नहीं बनेगा।

दुःखों का वर्णन प्रकरण रहने से यहाँ पर्येषण सुखसम्बन्धी समझना चाहिए। पर्येषण से तात्पर्य है प्रार्थना, अर्थात् विषय को पाने की तृष्णा। इस तृष्णा में दोष यह है कि जब पुरुष किसी सुख का अनुभव करके उसे (पुनः) चाहता है, चाहने पर कभी वह सुख उसे मिल जाता है, कभी नहीं मिलता या कभी मिलकर पुनः नष्ट हो जाता है, या यथेच्छ नहीं मिलता, या उसे बहुत से विघ्न आगे-पीछे घेर लेते हैं। इस तृष्णादोष से उस पुरुष

को नाना प्रकार का मानसिक क्लेश होता है। इस रीति से, सुखानुभव करते हुए भी वह सुख तृष्णा से लिपटा रहता है। यतः दुःख एकान्ततः निवृत्त नहीं होता, अतः बाधा के रहने से दुःख पृथक् पदार्थ माना गया है, सुखाभास नहीं।

कामं कामयमानस्य यदा कामः समृध्यते।
अथैनमपरः कामः क्षिप्रमेव प्रबाधते॥

विषय को जब यह चाहने लगता है तो इसकी यह चाह (तृष्णा) धीरे-धीरे बढती जाती है, अतः यह एक चाह के पूरा होते ही दूसरी चाह (तृष्णा) धीरे-धीरे बढती जाती है, अतः यह एक चाह के पूरा होते ही दूसरी चाह को लेकर परेशान हो उठता है। उदाहरण के रूप में इस बात को ले सकते हैं - 'गौ, अश्व' - आदि साधनों सहित समुद्रपर्यन्त समग्र पृथ्वी को पा ले तो भी यह धनलोलुप संतुष्ट नहीं हो सकता; अतः ऐसी धनकामना में क्या सुख है।

दुःखविकल्पे सुखाभिमानाच्च। 58

दुःख के विविध कल्पों में सुखाभिमान होने से दुःख संज्ञाभावना का उपदेश किया जाता है। साधरणतया पुरुष विषयों में बार-बार सुखानुभव करता हुआ सुख को परम पुरुषार्थ मानता है कि सुख के अतिरिक्त कोई कल्याण नहीं है। अतः सुख प्राप्त होने पर संतुष्ट होता हुआ कृतकृत्य हो जाता है। इस प्रकार मिथ्या सङ्कल्प से सुख तथा तत्साधनभूत विषयों में संरक्त हो जाता है, संरक्त हो वार्द्धक्य, व्याधि, मृत्यु, इष्टवियोग, अनिष्टसंयोग तथा काम्यानुपलब्धि आदि के कारण अनेक प्रकार के दुःख उत्पन्न होते हैं, क्योंकि इन्हीं को वह सुख मान बैठता है। सुख का अङ्ग है दुःख, दुःख बिना पाये सुख नहीं मिल सकता - इस तदर्थता से उस दुःख में 'यह सुख ही है' - ऐसी मिथ्या संज्ञाभावना करके अविवेक से 'जीऊँ, मरुँ, भटकता फिरुँ' इस वासना के कारण वह संसार (जन्म-मरण रूपी प्रवाह) को कभी अतिक्रांत नहीं कर पाता। अतः आचार्यजन इस सुखसंज्ञा की प्रतिपक्षभूत दुःखसंज्ञा की भावना का उपदेश करते हैं। यो, दुःखानुषङ्ग होने से जन्म को दुःख माना गया है, न कि सुख के अभाव से।

यदि ऐसी बात है, तो 'दुःख जन्म है' - इतना ही कह दें, आपके कहने का मतलब 'दुःख ही जन्म है' ऐसा है तो आप सुख का सर्वथा प्रत्याख्यान करना चाह रहे हैं ? यह ठीक नहीं, क्योंकि इस 'एवं' शब्द का जन्म निवृत्ति बतलाना ही प्रयोजन है, कैसे ? स्वयं जन्म दुःख नहीं, किंतु उसमें दुःख की भावना (आरोप) की जाती है, अर्थात् दुःख का जन्म में उपचार है। इसी तरह सुख के विषय में भी समझ लें। जन्म से दुःख होता है न कि दुःख ही जन्म है। यहाँ जन्म निवृत्ति ही इस उपदेश से समझायी जा रही है, सुख का अभाव नहीं सिद्ध किया जा रहा है।

उधर ऋग्वेद का ब्राह्मण भी अपवर्ग का बोधक है। कुछ ऋचाएँ तथा उनके

ब्राह्मण अपवर्ग के बोधक हैं। पहले ऋचाओं को लें। जैसे -वाजसनेयिसंहिता (31.18) में कहा है - कुछ ऋषि पुत्र-पौत्रादि युक्त धन चाहते हुए कर्मों से बंध कर मृत्यु को प्राप्त हुए; तथा दूसरे बुद्धिमान धर्मज्ञ ऋषि उन कर्मों से दूर रहकर अमृतत्व (अपवर्ग) पा गये।

उन्हें कर्म से, न पुत्रपौत्रादिक से, न धन से यह अमृतत्व मिल पाया अपितु केवल त्याग से मिल पाया। यह अमृतत्व अविद्या से दूर गुह्यतम होते हुए भी देदीप्यमान तेजःपुंज है, जिसे जितेन्द्रिय पुरुष ही पा सकते हैं।

तैत्तिरीयारण्यक (3.12.7) में लिखा है - 'मैं इस आदित्यवर्ण (तेजोमय) तम (अविद्या) से दूर महान् पुरुष (आत्मा) को जानता हूँ। इसी को जानकर मनुष्य मृत्यु (जन्म-मरण) को पार कर सकता है। मोक्ष का अन्य कोई उपाय नहीं है।

अब ब्राह्मण के कुछ उदाहरण सुनिये -

छन्दोग्योपनिषद् (2.23.1) का ब्राह्मणवाक्य है - 'ये तीन धर्मस्कन्ध है। यज्ञ अध्ययन तथा दान यह प्रथमस्कन्ध (गृहस्थ), तथा तप द्वितीयस्कंध (वानप्रस्थ) है। तीसरा है - आचार्य कुल में रहकर ब्रह्मचर्य पूर्वक आचार्य की आज्ञा में अपना समय बिताना (ब्रह्मचर्य) ये सभी पुण्यफलप्रद हैं। परंतु ब्रह्मज्ञानी (संन्यासी) अमृतत्व (मोक्ष) को प्राप्त कर लेता है, अतः वह श्रेष्ठ है।'

बृहदारण्यक के ब्राह्मण (4.4.22) में लिखा है - 'इसी संन्यासियों के लोक को चाहते हुए बुद्धिमान् लोग प्रव्रज्या लेते हैं।'

दूसरे स्थान (4.4.5) पर यही कहता है -'ज्ञानी लोग कहते हैं यह प्राणी वासनामय है, जैसी वासना करेगा वैसे इसके संकल्प होंगे, संकल्पों के अनुसार यह कर्म करेगा; जैसा कर्म करेगा वैसा फल मिलेगा।

इस तरह संसार को कर्ममय बताकर प्रसङ्गोपात्त दूसरी बात का भी उपदेश देते हैं- 'यह तो हुई वासना की बात; परंतु जिसको वासना नहीं है वह अकाम पुरुष वासना रहित हो आत्मज्ञान चाहता हुआ पूर्ण संकल्प हो जाता है, उसके प्राण फिर इधर-उधर नहीं भटकते। वह शाश्वत हो जाता है, ब्रह्मरूप हो ब्रह्म में लीन हो जाता है।'

न प्रवृत्तिः प्रतिसन्धानाय हीनक्लेशस्य॥ 64

क्षीण क्लेश ज्ञानी की प्रवृत्ति पुनर्जन्म के लिए प्रतिसंधान नहीं कर पाती। राग-द्वेष-मोह के क्षीण हो जाने पर प्राणी के दैनिक कर्म प्रतिसंधान करने योग्य नहीं होते। एक जन्म निवृत्त होने पर पुनर्जन्म होना 'प्रतिसंधि' कहलाता है। यह पुनर्जन्म विषयजन्य तृष्णा के क्षीण होने पर पूर्व-जन्म के नाश के बाद दूसरा जन्म नहीं होगा, यह अप्रतिसन्धान ही 'अपवर्ग' है।

चाणक्य-नीति में वर्णित आध्यात्मिक-स्वास्थ्य

शान्तितुल्यं तपो नास्ति न संतोषात्परं सुखम्।
न तृष्णया परो व्याधिर्न च धर्मो दया परः॥ 13

शांति के समान कोई तप नहीं है, संतोष से बढकर कोई सुख नहीं है, तृष्णा से बडी कोई व्याधि नहीं है और दया से बडा कोई धर्म नहीं है।

क्रोधो वैवस्वतो राजा तृष्णा वैतरणी नदी।
विद्या कामदुधा धेनुः संतोषं नन्दनंवनम्॥ 14

क्रोध यमराज है, तृष्णा वैतरणी नदी है, विद्या कामधेनु है और संतोष नन्दनवन है।

परोपकरणं येषां जागर्ति हृदये सताम्।
नश्यन्ति विपदस्तेषां सम्पदः स्युः पदे पदे॥ 15

जिन लोगो के हृदय में परोपकार की भावना विद्यमान रहती है उनकी सब विपत्तियाँ दूर हो जाती हैं और पद-पद पर सम्पत्तियाँ मिलती रहती हैं।

सन्तोषामृततृप्तानां यत्सुखं शान्तिरेव च।
न च तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम्॥ 3

संतोष रूप अमृत से तृप्त मनुष्यों को जो सुख और शांति प्राप्त होती है, वह धन के लोभ से इधर-उधर मारे-मारे फिरने वालों को कैसे प्राप्त होगी?

बन्धाय विषयासङ्ग मुक्त्यै निर्विषयं मनः।
मनः एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः॥ 12

विषयों में मन को लगाना ही बन्धन है और विषयों से मन को हटाना मुक्ति है। भाव यह कि मन ही मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष का हेतु है।

देहाभिमानगलिते ज्ञानेन परमात्मनः।
यत्र-यत्र मनो याति तत्र-तत्र समाधयः॥ 13

परमात्म ज्ञान से मुनष्य का जब देहाभिमान गल जाता है तो फिर जहाँ कहीं भी उसका मन जाता है तो उसके लिए सर्वत्र समाधि ही है।

ईप्सितं मनसः सर्वं कस्य सम्पद्यते सुखम्।
दैवायत्तं यतः सर्वं तस्मात् सन्तोषमाश्रयेत्॥ 14

अपने मन के अनुसार सुख किसे मिलता हैं। क्योंकि संसार का सब काम दैव के आधीन है। इसलिए जितना सुख प्राप्त हो जाय, उतने ही में संतुष्ट रहो।

यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो गच्छति मातरम्।
तथा यच्च कृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति॥ 15

जैसे हजारों गौओं में बछडा अपनी ही मां के पास जाता है। उसी तरह प्रत्येक

मनुष्य का कर्म (भाग्य) अपने स्वामी ही के पास जा पहुँचता है।

अनवस्थितकार्यस्य न जने न वने सुखम्।
जनो दहति संसर्गाद्वनं संगविवर्जनात्॥ 16

जिसका कार्य अव्यवस्थित रहता है, उसे न समाज में सुख है, न वन में। समाज में वह संसर्ग से दुःखी रहता है तो वन में संसर्ग त्याग से दुःखी रहेगा।

राज्यमूलमिन्द्रियजयः॥ 4 चा. अर्थ शा.

राज्य का मूल इंद्रिय जय है।

इन्द्रियजयस्य मूलं विनयः॥ 5

इंद्रियों को जीतने का सबसे मुख्य कारण नम्रता है।

विनयस्य मूलं वृद्धोपसेवा॥ 6

वृद्धों की सेवा विनय का मूल है।

वृद्धसेवया विज्ञानम्॥ 7

मनुष्य वृद्धों की सेवा से ही व्यवहार-कुशल होता है और उसे अपने कर्तव्य की पहचान होती है।

विज्ञानेनात्मानं सम्पादयेत्॥ 8

राजाभिलाषी लोग विज्ञान व्यवहार-कुशलता या कर्त्तव्य का परिचय प्राप्त करके अपने आप को योग्य शासक बनाएं।

सम्पादितात्मा जितात्मा भवति॥ 9

जो पुरुष ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न होता है, वह स्वयं को भी जीत सकता है, अर्थात् वही संसार में सफल होता है।

जितात्मा सर्वार्थैः संयुज्येत॥ 10

अपने ऊपर काबू पाने वाला मनुष्य सच्चे अर्थों से सम्पन्न होता है अर्थात् नीति जानने वाले और अपने ऊपर नियंत्रण रखने वाले लोग अपने आप को समस्त सम्पत्तियों से सम्पन्न समझें।

निज निरञ्जन स्वरूपोऽहम्। - मैं निज स्वरूप में रहने वाला समस्त विकारी भावों से रहित निरञ्जन स्वरूप हूँ।
सहज सुखानन्द स्वरूपोऽहम्। - मेरी यह आत्मा सिद्धों के समान केवल आत्मा के स्वभाविक रूप से उत्पन्न होने वाले परम सुख अथवा परम आनन्द मय है।
नित्यानन्द स्वरूपोऽहम्। - मैं सतत्/अविरतरूपेण आनन्द स्वरूप हूँ।

बौद्ध धर्म में वर्णित आध्यात्मिक-स्वास्थ्य

सुसुखं वत ! जीवाम येसं नो नत्थि किञ्चनं।
पीतिभक्खा भविस्साम देवा आभस्सारा यथा ॥ 4 धम्मपद

जिन हम लोगों के पास कुछ नहीं, अहो ! वे हम लोग कितने सुख से जीवन बिता रहे हैं। हम आभास्वर की भाँति प्रीतिभक्ष्य (प्रीति ही भोजन है जिनका) होंगे।

जयं वेरं पसवति दुक्खं सेति पराजितो।
उपसन्तो सुखं सेति हित्वा जयपराजयं ॥ 5 सुखवग्गो

विजय वैर को उत्पन्न करती है, पराजित(पुरुष) दुःख की नींद सोता है, (किन्तु राग आदि दोष जिसके) शान्त है, वह पुरुष जय और पराजय को छोड सुख की नींद सोता है।

नत्थि रागसमो अग्नि नत्थि दोससमो कलि।
नत्थि खन्धसमा दुक्ख ! नत्थि सन्तिपरं सुखं ॥ 6

राग के समान अग्नि नहीं है, द्वेष के समान मल नहीं है, (पञ्च) स्कन्ध के समान दुःख नहीं,(और) निर्वाण से बढकर सुख नहीं।

जिघच्छा परमा रोगा, सङ्खारा परमा दुखा।
एवं ञत्वा यथाभूतं निब्बानं परमं सुखं ॥ 7

भूख सबसे बडा रोग है, संस्कार सबसे बडे दुःख है, इसे यथार्थ (रुप से) जानकर निर्वाण सबसे बडा सुख है।

आरोग्यपरमा लाभा सन्तुट्ठी परमं धनं।
विस्सासपरमा ञाती निब्बानं परमं सुखं ॥ 8

निरोग होना परम लाभ है, सन्तोष परम धन है, विश्वास सबसे बडा बन्धु है, निर्वाण सबसे बडा सुख है।

पविवेकरसं पीत्वा रसं उपसमस्स च।
निद्दरो होति निप्पापो धम्मपीतिरसं पिवं ॥ 9

एकान्त-चिन्तन के रस तथा उपशम (शान्ति) के रस को पीकर (पुरुष) निडर होता है; धर्म के प्रेम-रस का पान करता हुआ पीडा से रहित तथा निष्पाप हो जाता है।

साधु दस्सनमरियानं सन्निवासो सदा सुखो।
अदस्सनेन बालानं निच्चमेव सुखी सिया ॥ 10

आर्यों का दर्शन सुन्दर है, उनके साथ निवास सदा सुखदायक होता है, मूढो के दर्शन होने से मनुष्य सदा दुखी रहता है।

बालसंगतिचारी हि द्वीघमद्धान सोचति।
दुक्खो बालेहि संवासो अमितेनेब सब्बदा।
धीरो च सुखसंवासो ञातीनं व समागमो ॥ 11

मुढों की संगति में रहने वाला दीर्घकाल तक शोक करता है, मूढो का सहवास शत्रु की तरह सदा दुःखदायक होता है। बन्धुओं के समागम की भाँति धीरों का सहवास सुखद होता।

धीरञ्च पञ्ञञ्च बहुसुतं च धोरय्हसीलं वतान्तमरियं।
तं तादिसं सप्पुरिसं सुमेधं भजेथ नक्खत्तपथं व चन्दिमा ॥ 12

वैसे धीर, ज्ञानी, बहुश्रुत, शीलवान्, व्रतसम्पन्न, आर्य तथा बुद्धिमान पुरूष का अनुगमन उसी भाँति करे, जैसे चन्द्रमा नक्षत्र-पथ का।

ये ज्ञानपसुता धीरा नेक्खम्मूपसमे रता।
देवापि तेसं पिहयन्ति सम्बुद्धानं सतीमतम् ॥ 3 बुद्धवग्गो

जो धीर ध्यान में लगे, परम शान्त निर्वाण में रत हैं, उन स्मृतिमान् बुद्धों को देवता भी चाहते हैं।

किच्छो मनुस्सपटिलाभो किच्छ मच्चान जीवितं।
किच्छं सद्धम्मसवणं किच्छो बुद्धानं उप्पादो ॥ 4

मनुष्य का जन्म पाना कठिन है, मनुष्य का जीवित रहना कठिन है, सद्धर्म का श्रवण करना कठिन है और बुद्धों का उत्पन्न होना कठिन है।

सब्बपापस्स अकरणं कुसलस्स उपसम्पदा।
सचित्तपरियोदपनं एतं बुद्धान सासनं ॥ 5

सभी पापों का न करना , पुण्यों का संचय करना, अपने चित्त को परिशुद्ध करना- यह बुद्धों की शिक्षा है।

खन्ती परमं तपो तितिक्खा निब्बानं परमं वदन्ति बुद्धा।
न ही पब्बजितो परूपघाती समणो होति परं विहेठयन्तो ॥ 6 धम्मपद

सहन-शीलता और क्षमा-शीलता परम तप है, बुद्ध लोग निर्वाण को परम (उत्तम) बताते हैं। दूसरों का घात करने वाला और सताने वाला प्रवर्जित श्रमण नहीं होता।

अनूपवादो अनूपघातो पातिमोक्खे च संवरो।
मत्तञ्ञुता च भत्तस्मिं पन्तञ्च सयनासनं।
अधिचित्ते च अयोगो एतं बुद्धान सासनं ॥ 7

निंदा न करना, घात न करना, प्रातिमोक्ष में संयम रखना, भोजन में मात्रा जानना, एकान्तवास, चित्त को योग में लगाना - यह बुद्धों की शिक्षा है।

न कहापणवस्सेन तित्ति कामेसु विज्जति।
अप्पस्सादा दुखा कामा इति विञ्ञाय पंडितो ॥ 8
अपि दिब्बेसु कामेसु रतिं सो नाधिगच्छति।
तण्हक्खरतो होति सम्मासंबुद्धसाबको ॥ 9

यदि कार्षापणों(रूपयों) की वर्षा हो तो भी मनुष्य की कामों (भोगों) से तृप्ति नहीं हो सकती। सभी काम (भोग) अल्प-स्वाद और दुःखद हैं, ऐसा जानकर पण्डित देवलोक के भोगों में भी रति नहीं करता, और सम्यक् सम्बुद्ध का श्रावक तृष्णा को नाश करने में लगता है। मनुष्य भय के मारे पर्वत, वन, आराम (उद्यान), वृक्ष, चैत्य (चौरा) आदि को देवता मान उनकी शरण में जाते हैं, किंतु ये शरण मङ्गलदायक नहीं, ये शरण उत्तम नहीं, क्योंकि इन शरणों में जाकर सब दुःखों से छुटकारा नहीं मिलता।

यो च बुद्धञ्च धम्मञ्च संघञ्च सरणं अतो।
चत्तारि अरियसच्चानि सम्मप्पञ्जायं पस्सति॥ 12
दुक्खं दुक्खसमुप्पादं दुक्खस्स च अतिक्कमं।
अरियञ्चट्ठङ्गिकं मग्गं दुक्खूपसमगामिनं ॥ 13
एतं खो सरणं खेमं एतं सरणमुत्तमं।
एतं सरणमागम्म सब्बदुक्खा पमुच्चति॥ 14

जो बुद्ध, धर्म और संघ की शरण गया है, जिसने चार आर्यसत्यों- दुःख , दुःख की उत्पत्ति, दुःख से मुक्ति और मुक्तिगामी आर्य आष्टाङ्गिक मार्ग को सम्यक् प्रज्ञा से देख लिया है, यहि मंगलदायक शरण है। यहि उत्तम शरण है। इसी शरण को प्राप्त कर (व्यक्ति) सभी दुःखों से मुक्त हो जाता है।

दुल्लभो परिसाजञ्ञो न सो सब्बत्थ जायति।
यत्थ सो जायति धीरो तं कुलं सुखमेधति॥ 15

उत्तम - पुरूष दुर्लभ है, यह सर्वत्र उत्पन्न नहीं होता, यह धीर पुरूष जहाँ उत्पन्न है, उस कुल में सुख की वृद्धि होती है।

सुखो बुद्धानं उप्पादो सुखा सद्धम्मदेसना।
सुखा संघस्स सामग्गी समग्गानं तपो सुखो॥ 16

सुखदायक है बुद्धों का जन्म, सुखदायक है सद्धर्म का उपदेश, संघ में एकता सुखदायक है और सुखदायक है एकता - युक्त ही तप करना ।

अत्तना'व कतं पापं अत्तनां संकिलिस्सति।
अत्तमा अकतं अत्तना'व विसुज्झति।
सुद्धि असुद्धि पच्चत्तं नञ्ञो अञ्ञं विसोधये॥ 9

अपना किया पाप अपने को मलिन करता है। अपना न किया पाप अपने को शुद्ध करता है। शुद्धि और अशुद्धि अपने ही से होती है। दूसरा (आदमी) दूसरे को शुद्ध नहीं कर सकता ।

उत्तिट्ठे नप्पमज्जेय्य धम्मं सुचरितं चरे।
धम्मचारी सुखं सेति अस्मिं लोके परम्हि च॥ 2 लोकवग्गो

उठे, प्रमाद न करे, सुचरित धर्म का आचरण करे। धर्मचारी (पुरूष) इस लोक और परलोक दोनों जगह सुखपूर्वक रहता है।

धम्मं चरे सुचरितं न तं दुच्चरितं चरे ।
धम्मचारी सुखं सेति अस्मि लोक परम्हि च।।3

सुचरित धर्म का आचरण करे , दुराचरण न करे । धर्मचारी इस लोक और परलोक दोनों जगह सुखपूर्वक रहता है।

मनो पुब्बङ्गमा धम्मा मनो सेट्ठा मनोमया ।
मनसा चे पदुट्ठेन भासति वाकरोति वा ।।
ततो नं दुक्खमन्वेति चक्क व वहतो पदं । 1 यमकवग्गो

मन सभी प्रवृत्तियों का अगुआ है, मन उनका प्रधान है, वे मन से ही उत्पन्न होती हैं। यदि कोई दूषित मन से वचन बोलता है या पाप करता है, तो दुःख उसका अनुसरण उसी प्रकार करता है, जिस प्रकार चक्का गाडी खींचनेवाले बैलों के पैर का ।

मनो पुब्बङ्गमा धम्मा मनो सेट्ठा मनोमया ।
मनसा चे पसन्नेन भासति वा करोति वा ।
ततो नं सुखमन्वेति छाया व अनपापिनी ॥ 2 यमकवग्गो

मन सभी प्रवृत्तियों का अगुआ है, मन उसका प्रधान है, वे मन से ही उत्पन्न होती हैं। यदि कोई प्रसन्न (स्वच्छ) मन से वचन बोलता है या काम करता है, तो सुख उसका अनुसरण उसी प्रकार करता है, जिस प्रकार कि कभी साथ नहीं छोडने वाली छाया।

अक्कोच्छि मं अवधि मं अजिनी मं अहासि मे।
ये तं न उपनय्हन्ति वेरं तेसं न सम्मति ॥

उसने मुझे डाँटा, उसने मुझे मारा, उसने मुझे जीत लिया, उसने मेरा लूट लिया- जो ऐसा मन में बनाये रखते हैं, उनका वैर शान्त नहीं होता।

अक्कोच्छि मं अवधि मं अजिनी मं अहासि मे।
ये तं न उपनय्हन्ति वेरं तेसूपसम्मति ॥ 4

उसने मुझे डाँटा, उसने मुझे मारा, उसने मुझेजीत लिया, उसने मेरा लूट लिया - जो ऐसा मन में नहीं बनाये रखते हैं, उनका वैर शान्त हो जाता है।

न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं ।
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो ॥ 5

इस संसार में वैर से वैर कभी शान्त नहीं होते, अ-वैर (मैत्री) से ही शान्त होते हैं-यह सदा का नियम हैं।

योग (ध्यान) से समग्र स्वास्थ्य लाभ

योगश्चित्त वृत्ति निरोधः ॥ 2 पातञ्जल योग दर्शन

चित्तकी वृत्तियों का रोकना योग है।

निर्मल सत्त्वप्रधान चित्तकी जो अङ्गाङ्गीभाव से परिणत वृत्तियाँ हैं उनका निरोध अर्थात् जो बाहर को चित्तकी वृत्तियाँ जाती हैं उन बहिर्मुख वृत्तियों को सांसारिक विषयों से हटाकर उससे उलटा अर्थात् अन्तर्मुख करके अपने कारण चित्त में लीन कर देना योग है। ऐसा निरोध (चित्तकी वृत्तियों का रोकना) सब चित्तकी भूमियों में सब प्राणियों का धर्म है, जो कभी किसी चित्त में प्रकट हो जाता है, प्रायः चित्तों में छिपा हुआ ही रहता है।

चित्तकी पाँच अवस्थाएँ निम्न प्रकार हैं -

1) मूढावस्था :- इस अवस्था में तम प्रधान होता है, रज तथा सत्त्व दबे हुए गौण रूप से रहते हैं। यह अवस्था काम, क्रोध, लोभ और मोह के कारण होती है। जब चित्तकी ऐसी अवस्था होती है, तब मनुष्य की प्रवृत्ति अज्ञान, अधर्म, राग और अनैश्वर्य में होती है। यह अवस्था नीच मनुष्यों की हैं।

2) क्षिप्तावस्था :- इसमें रजो गुण की प्रधानता होती है, तम और सत्त्व दबे हुए गौणरूप से रहते हैं, इनका कारण रागद्वेषादि होते हैं। इस अवस्था में धर्म-अधर्म, राग-विराग, ज्ञान-अज्ञान, ऐश्वर्य और अनैश्वर्य में प्रवृत्ति होती है। अर्थात् जब तमो गुण सत्त्वगुण को दबा लेता है, तब अधर्म अज्ञानादि में और जब सत्त्व तम को दबा लेता है, जब धर्म, ज्ञानादि में प्रवृत्ति होती है। यह अवस्था साधारण सांसारिक मनुष्यों की है।

3) विक्षिप्तावस्था :- इस अवस्था में सत्त्व गुण प्रधान होता है, रज तथा तम दबे हुए गौणरूपसे रहते हैं। यह निष्काम कर्म करने तथा राग-द्वेष, काम-क्रोध, लोभ और मोहादि के छोडने से उत्पन्न होती है। इस अवस्था में, क्योंकि सत्त्व गुण किसी मात्रा में बना रहता है, इस कारण मनुष्य की प्रवृत्ति धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य में होती है। परंतु रजोगुण चित्त को विक्षिप्त करता रहता है। यह अवस्था ऊँचे मनुष्यों तथा जिज्ञासुओं की है। यह तीनों अवस्थाएँ चित्त की अपनी स्वाभाविक नहीं हैं और न योग की हैं, क्योंकि बाहर के विषयों के गुणों से चित्त पर उनका प्रभाव पडता रहता है।

4) एकाग्रावस्था :- जब एक ही विषय में सदृश वृत्तियों का प्रवाह चित्त में निरन्तर बहता रहे, तब उसको एकाग्रता कहते हैं। यह चित्तकी स्वाभाविक अवस्था है, अर्थात् जब चित्त में बाह्य विषयों के रज तथा तम का प्रभाव न रहे, तब वह निर्मल चमकते हुए स्फटिक के सदृश स्वच्छ होता है। उस समय उसमें परमाणुओं से लेकर महत्तत्त्वपर्यन्त ग्राह्य, ग्रहण और ग्रहितृ विषयों का यथार्थ साक्षात् हो सकता है। इसकी अन्तिम स्थिति विवेक ख्याति हैं। एकाग्रता को सम्प्रज्ञात-समाधि भी कहते हैं। इसमें प्रकृति के सर्व कार्यों

(गुणों के परिणामों) का पूर्णतया साक्षात् हो जाता है।

5) निरुद्धावस्था :- जब विवेक-ख्याति द्वारा चित्त और पुरुष का भेद साक्षात्कार हो जाता है तब उस ख्याति से भी वैराग्य (पर-वैराग्य) उदय होता है; क्योंकि विवेक कि ख्याति भी चित्तकी ही एक वृत्ति है। इस वृत्ति के भी निरुद्ध होने पर सर्ववृत्तियों के निरोध होने से चित्तकी निरोधावस्था होती है। इस निरोधवस्था में अन्य सब संस्कारों के तिरोभावपूर्वक पर-वैराग्य के संस्कार मात्र शेष रहते हैं। निरोधावस्था में किसी प्रकार की भी वृत्ति न रहने के कारण कोई पदार्थ भी जानने में नहीं आता, तथा अविद्यादि पाँचों क्लेशसहित कर्माशय रूप जन्मादिकों के बीज नहीं रहते। इसलिए इसको असम्प्रज्ञात तथा निर्बीज समाधि भी कहते हैं।

वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टाक्लिष्टाः ॥ 5

वृत्तियाँ पाँच प्रकार की होती हैं। क्लिष्ट अर्थात् रागद्वेषादि क्लेशोंकी हेतु और अक्लिष्ट अर्थात् राग-द्वेषादि क्लेशों की नाश करने वाली।

प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः ॥ 6

प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति - ये पांच प्रकार की वृत्तियाँ हैं।

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः ॥ 12

अभ्यास और वैराग्य से उन वृत्तियों का निरोध होता है।

चित्तवृत्ति निरूद्ध करने के दो उपाय हैं- अभ्यास और वैराग्य । चित्त का स्वाभाविक बहिर्मुख प्रवाह वैराग्य द्वारा निवृत्त होता है। अभ्यास द्वारा आत्मोन्मुखी आन्तरिक प्रवाह स्थिर हो जाता है।

चित्त एक नदी है, जिसमें वृत्तियों का प्रवाह बहता है।

इसकी दो धाराएँ हैं। एक संसार सागर की ओर, दूसरी कल्याण सागर की ओर बहती है। जिसने पूर्व जन्म में सांसारिक विषयों के भोगार्थ कार्य किये हैं, उसकी वृत्तियों की धारा उन संस्कारों के कारण विषय-मार्ग से बहती हुई संसार-सागर में जा मिलती है और जिसने पूर्व जन्म में कैवल्यार्थ काम किये हैं, उसकी वृत्तियोंकी धारा उन संस्कारों के कारण विवेक-मार्ग में बहती हुई कल्याण-सागर में जा मिलती है। संसारी लोगों की प्रायः पहली धारा तो जन्म से ही खुली होती है, किंतु दूसरी धाराको शास्त्र , गुरू, आचार्य तथा ईश्वरचिन्तन खोलते हैं। पहली धारा को बंद करने के लिये विषयोंके स्रोतपर वैराग्यका बन्ध लगाया जाता है और अभ्यास के बेलचेसे दूसरी धारा का मार्ग गहरा खोदकर वृत्तियों के समस्त प्रवाहको विवेक -स्रोतमें डाल दिया जाता है। तब प्रबल वेगसे वह सारा प्रवाह कल्याणरूपी सागर में जाकर लीन हो जाता है। इस कारण अभ्यास तथा वैराग्य दोनों ही इकट्ठे मिलकर चित्तकी वृत्तियोंके निराधके साधन हैं। जिस प्रकार पक्षी

का आकाशमें उडना दोनों ही पक्षों के अधीन है, न केवल एक पक्षके। इसी प्रकार समस्त वृत्तियोंका निरोध न केवल अभ्याससे ही और न केवल वैराग्य से ही हो सकता है, किन्तु उसके लिये अभ्यास और वैराग्य दोनोंका ही समुच्चय होना आवश्यक है।

तमोगुण की अधिकता से चित्त में लयरूप निद्रा, आलस्य, निरूत्साह आदि मूढावस्थाका दोष उत्पन्न होता है और रजोगुणकी अधिकतासे चिन्तमें चञ्चलतारूप विक्षेप दोष उत्पन्न होता है। अभ्याससे तमोगुण की निवृत्ति होती है और वैराग्य से रजोगुणकी।

सूत्र-2/28 में बतलाये हुए योगके आठ अङ्गोंमेंसे यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, जो पाँच बहिरङ्ग हैं उनकी सिद्धि में अभ्यास -अधिक सहायक होता है और तीन अन्तरङ्ग, धारणा ध्यान और समाधिमें वैराग्य।

तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः ॥ 13

उनमेंसे चित्तकी स्थिति के विषयमें यत्न करना अभ्यास है।

चित्तके वृत्तिरहित होकर शान्त प्रवाहमें बहने को स्थिति कहते हैं। उस स्थिति के प्राप्त करने के लिये वीर्य(पूर्ण सामर्थ्य) और उत्साहपूर्वक यत्न करना अभ्यास कहलाता है।

यम, नियम आदि योगके आठ अङ्गोंका बार-बार अनुष्ठानरूप प्रयत्न अभ्यास का स्वरूप है, और चित्तवृत्तियोंका निरोध होना अभ्यास का प्रयोजन है।

पठन-पाठन, लेखन,पाक, क्रय-विक्रय, सीवन, नृत्य- गायन आदि सर्व कार्य अभ्याससे ही सिद्ध होते हैं। अभ्यासके बलसे रस्सीपर चढे हुए नट तथा सरकस आदि में न केवल मनुष्य किंतु सिंह, अश्व आदि पशु अपनी प्रकृतिके विरूद्ध आश्चर्यजनक कार्य करते हुए देखे जाते हैं। अभ्यास के प्रभावसे अति दुःसाध्य कार्य भी सिद्ध हो सकते हैं। इसलिये जब मुमुक्षु चित्तकी स्थिरताके लिये अभ्यासनिष्ठ होगा, तब वह स्थिरता भी उसको अवश्य प्राप्त होकर चित्त वशीभूत हो जायेगा, क्योंकि अभ्यास के आगे कोई कार्य दुष्कर नहीं है।

स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः ॥ 14

किंतु वह पूर्वोक्त अभ्यास दीर्घ काल पर्यन्त निरन्तर व्यवधान रहित ठीक-ठीक श्रद्धा, वीर्य, भक्तिपूर्वक अनुष्ठान किया हुआ दृढ अवस्था वाला हो जाता है।

विषयाभोग वासनाजन्य व्युत्थान के संस्कार मनुष्य के चित्तमें अनादि जन्म-जन्मान्तरों से पडे चले आ रहे हैं। उनको थोडे-से ही समय में बीज सहित नष्ट कर देना अत्यन्त कठिन है। वे निरोधके संस्कारों को तनिक सी भी असावधानी होने पर दबा सकते हैं। इस कारण अभ्यास को दृढभूमि बनाने के हेतु धैर्य के साथ दीर्घ काल-पर्यन्त लगातार श्रद्धा और उत्साह पूर्वक प्रयत्न करते रहना चाहिए।

दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकार संज्ञा वैराग्यम् ॥ 15

दृष्ट और आनुश्रविक विषयों में जिसको तृष्णा नहीं रही है, उसका वैराग्य वशीकार

नामवाला अर्थात् अपर-वैराग्य है।

विषय दो प्रकारके हैं - दृष्ट और आनुश्रविक। दृष्ट वे हैं जो इस लोकमें दृष्टिगोचर होते हैं, जैसे रुप, रस, गंध, शब्द, स्पर्श, धन, सम्पत्ति, अन्न, खान-पान, स्त्री, राज, ऐश्वर्य इत्यादि। आनुश्रविक वे हैं जो वेद और शास्त्रोंद्वारा सुने गये हैं।

श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम् ॥ 20

दूसरे योगी जो विदेह और प्रकृतिलय नहीं है, उनको श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रज्ञापूर्वक असम्प्रज्ञात-समाधि सिद्ध होती है।

विदेह और प्रकृतिलयों से भिन्न योगीयों की असम्प्रज्ञात समाधि श्रद्धा आदि पूर्वक होती है। श्रद्धा आदि क्रम से उपाय है और असम्प्रज्ञात समाधि उपेय। इसलिए इनका उपायोपेय सम्बन्ध है। योग के विषय में चित्तकी प्रसन्नता श्रद्धा है; उत्साह वीर्य है; जाने हुए विषयका न भूलना स्मृति है; चित्तकी एकाग्रता समाधि है; ज्ञेय का ज्ञान प्रज्ञा है।

श्रद्धा :- जो विदेह और प्रकृतिलयों से भिन्न है, उन्हें जन्म-जन्मान्तरों से योग में नैसर्गिक रूचि नहीं होती है; किंतु उनको पहले शास्त्र और आचार्य के उपदेश सुनकर योगके विषय में विश्वास उत्पन्न होता है। योगकी प्राप्ति के लिए अभिरुचि अथवा उत्कट इच्छाको उत्पन्न करने वाले इस विश्वास का नाम ही श्रद्धा है। यह कल्याणकारीणी श्रद्धा योगीकी रुचि योगमें बढाती है, उसके मन को प्रसन्न रखती है और माता के समान कुमार्ग से बचाती हुई उसकी रक्षा करती है।

वीर्य :- श्रद्धा से वीर्य उत्पन्न होता है। योग साधनाकी तत्परता उत्पन्न करने वाले उत्साह का नाम वीर्य है। श्रद्धा के अनुसार उत्साह और उत्साह के अनुसार साधन में तत्परता होती है।

स्मृति :- उत्साहवाले को पिछली अनुभव की हुई भूमियों में स्मृति उत्पन्न होती है। पिछले जन्मों के अक्लिष्ट कर्मों और ज्ञानके संस्कारों का जाग्रत होना स्मृति है।

समाधि :- पूर्व के अक्लिष्ट कर्म और ज्ञानके संस्कारों के जाग्रत होने से चित्त एकाग्र और स्थिर होने लगता है।

प्रज्ञा :- समाधिस्थ एकाग्र चित्तमें ऋतम्भरा प्रज्ञा (विवेक ज्ञान) उत्पन्न होती है, जिससे वस्तुका यथार्थ स्वरूप ज्ञात होता है। इसके अभ्याससे परवैराग्य और परवैराग्य से असम्प्रज्ञात-समाधि होती है।

ईश्वरप्रणिधानाद्वा ॥ 23

अथवा ईश्वर-प्रणिधानसे शीघ्रतम समाधि-लाभ होता है।

ईश्वर का स्वरूप निरूपण :-

क्लेशकर्मविपाकशयैरपरामृष्टः परुषविशेष ईश्वरः ॥ 24

क्लेश, कर्म, कर्मों के फल और वासनाओं से असम्बद्ध, अन्य परुषों से विशेष

(विभिन्न उत्कृष्ट) चेतन ईश्वर है।

स्वाध्यायाद् योगमासीत् योगात् स्वाध्यायमामनेत्।
स्वाध्याययोगसम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते॥

स्वाध्याय नाम प्रणव-जप और अध्यात्मशास्त्रके विचारका है। प्रणव-जपके पीछे योगाभ्यास करे और योगाभ्यासके पीछे प्रणवका जप करे। स्वाध्याय और योग इन दोनों सम्पत्तियों से परमात्मा प्रकाशित होते हैं।

ईश्वर-प्रणिधान से जिन अन्तरायों का अभाव बतलाया है, उन चित्तको विक्षिप्त करके एकाग्रता को हटाने वाले योग के विघ्नों का स्वरूप अगले सूत्र में निर्देश करते हैं -

व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरति भ्रान्तिदर्शनालब्ध-भूमिकत्वानास्थतत्वनि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः॥ 30

व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद आलस्य, अविरति, भ्रान्ति दर्शन, अलब्ध-भूमिकत्व, अनवस्थितत्व - ये चित्त के नौ विक्षेप (योगके विघ्न) हैं।

व्याधि-धातु, रस और करण को विषमता से उत्पन्न हुए ज्वरादिक व्याधि कहलाते हैं। वात-पित्त-कफ इन तीनों का नाम दोष है। रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र - ये धातु हैं। इनकी इयत्ता (अंदाज) को त्यागकर न्यूनाधिक हो जाना धातुकी विषमता अथवा दोष-प्रकोप कहा जाता है। भुक्त-पीत (खाये-पीये) अन्न-जल के परिपाक दशा को प्राप्त हुए सार का नाम रस है तथा उस भोजनादि का सम्यक् रूपसे (ठीक-ठीक) न पचना रस की विषमता है। करण नेत्रादि इंद्रियों का नाम है। कम देखना, कम सुनना आदि करण की विषमता है।

स्त्यान :- चित्तकी अकर्मण्यता अर्थात् इच्छा होने पर भी किसी कार्य को करने की (योगसाधना के अनुष्ठान की) सामर्थ्य न होना।

संशय :- 'मैं योगसाधन कर सकूँगा कि नहीं कर सकूँगा, करने पर भी योग सिद्ध होगा या नहीं' इन दो कोटियों का विषय करने वाला ज्ञान संशय है।

प्रमाद :- समाधि के साधनों का अनुष्ठान न करना।

आलस्य :- चित्त अथवा शरीर के भारी होन के कारण ध्यान न लगना। शरीर का भारीपन कफ आदि के प्रकोप से और चित्तका भारीपन तमोगुण की अधिकता से होता है।

अविरति :- विषयों में तृष्णा बनी रहना अर्थात् विषयेन्द्रिय-संयोग से चित्त की विषयों में तृष्णा होने से वैराग्य का अभाव।

भ्रान्तिदर्शन :- मिथ्या-ज्ञान (योग के साधनों तथा उनके फल को मिथ्या जानना।)

अलब्धभूमिकत्व :- किसी प्रतिबन्धक-वश समाधि भूमि को न पाना अर्थात् समाधि में न पहुँचना।

अनवस्थितत्व :- समाधि-भूमि को पाकर भी उसमें चित्त का न ठहरना अर्थात् ध्येय का साक्षात् करने से पूर्व ही समाधि का छूट जाना।

उपर्युक्त नौ विघ्न एकाग्रता से हटाने वाले हैं और चित्तकी वृत्तियों के साथ होते हैं, उनके अभाव में नहीं होते। इस कारण चित्त के विक्षेप योग के मल, योग के अन्तराय और योग के प्रतिपक्षी कहलाते हैं।

केवल पूर्वोक्त नौ ही योग के प्रतिबन्धक नहीं है, किंतु उनके वर्तमान होने पर अन्य प्रतिबन्धक भी उपस्थित हो जाते हैं, जिनके स्वरूप का अगले सूत्र में निर्देश करते हैं -

दुःखदौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वासप्रस्वासा विक्षेपसहभुवः॥ 31

दुःख, दौर्मनस्य, अङ्गमेजयत्व, श्वासप्रश्वास- ये विक्षेपों के साथ होने वाले हैं अर्थात् उनके होने से ये पाँच प्रतिबन्धक भी उपस्थित हो जाते हैं।

दुःख :- पीडा जिसकी चोट खाकर उसके नाश करने का यत्न करते हैं, वह आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक भेद से तीन प्रकार का है। उनमें से 1) काम, क्रोध आदिजन्य मानस परिताप और व्याधि आदि जन्य शारीरिक परिताप आध्यात्मिक दुःख कहलाते हैं। आत्मा यहाँ मन तथा शरीर के अर्थ में प्रयोग हुआ है। 2) सिंह, सर्प आदि भूतों से जन्य दुःख आधिभौतिक हैं। भूत यहाँ प्राणियों के अर्थ में प्रयोग हुआ है। 3) विद्युत्पात, अति-वर्षण, अग्नि, अति-वायु आदि दैविक शक्तियों से जन्य दुःख आदिदैविक हैं।

दौर्मनस्य :- इच्छा के पूर्ति न होने पर मन में क्षोभ होना।

अङ्गमेजयत्व :- शरीर के अङ्गों का काँपना।

श्वास :- बिना इच्छा के बाहर के वायुका नासिका द्वारा अंदर आना।

प्रश्वास :- बिना इच्छा के भीतर के वायु का नासिका छिद्रों द्वारा बाहर निकलना। ये विक्षेपों के साथ होने वाले उपविक्षेप अथवा उपविघ्न हैं।

उपर्युक्त विक्षेप और उपविक्षेप विक्षिप्त चित्तवालों को ही होते हैं, एकाग्र चित्तवालों को नहीं होते। इन समाधि के शत्रुओं को अभ्यास-वैराग्य द्वारा निरेध करना चाहिए। उन दोनों में से अभ्यासके विषय को उपसंहार करनेके लिए अगला सूत्र है -

तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः॥ 32

उन पूर्वोक्त विक्षेप तथा उप विक्षेपोंको दूर करने के लिद एक तत्त्व का अभ्यास करना चाहिए अर्थात् किसी अभिमत एक तत्त्व द्वारा चित्तकी स्थिति के लिए यत्न करना चाहिए।

विक्षेप तथा उपविक्षपों को दूर करने के लिए किसी एक अभिमत (इष्ट) तत्त्व में चित्तको बार-बार लगाना चाहिए। अर्थात् किसी अभिमत एक तत्त्वद्वारा चित्तकी स्थितिके लिए यत्न करना चाहिए। इस प्रकार एकाग्रता के उदय होने पर सब विक्षेपोंका नाश हो

जाता है। यह एक साधारण उपाय है। सबसे उत्तम उपाय तो ईश्वर-प्रणिधान है, जिसको सूत्र 29 में बतला दिया गया है।

जब चित्तमें असूया आदि कलुष (मल) होते हैं, तब वह स्थिति को नहीं लाभ कर सकता उनके दूर करने का अगले सूत्र में उपाय बतलाते हैं -

मैत्रिकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादानम् ॥ 33

सुखी, दुःखी, पुण्यात्मा और पापियों के विषय में यथाक्रम मित्रता, दया, हर्ष और उपेक्षाकी भावना के अनुष्ठान से चित्त प्रसन्न और निर्मल होता है।

राग, ईर्ष्या, परअपकार-चिकीर्षा, असूया द्वेष और अमर्ष -संज्ञक राजस-तामस रूप ये छः धर्म चित्त को विक्षिप्त करक कलुषित (मलीन) कर देते हैं। अतः ये छः चित्त के मल कहे जाते हैं।

इन छः प्रकार के मलों के होने से चित्तमें छः प्रकार का कालुष्य (मल) उत्पन्न होता है। जो क्रम से राग-कालुष्य, ईर्ष्या-कालुष्य, परापकार-चिकीर्षा-कालुष्य, असूया-कालुष्य और अमर्ष-कालुष्य कहलाते हैं।

राग-कालुष्य :- स्नेह पूर्वक अनुभव किये हुए सुख के अनन्तर जो यह सुख मुझको सर्वदा ही प्राप्त हो इत्याकारक (ऐसा आकारवाली) जो राजस वृत्ति-विशेष है, वह राग-कालुष्य है; क्योंकि यह राग सर्व सुख-साधन विषयों की प्राप्ति के न होने से चित्तको विक्षिप्त करके कलुषित (मलिन) कर देता है।

ईष्या-कालुष्य :- दूसरों की गुणादि या सम्पत्ति आदि की अधिकता देखकर जो चित्तमें क्षोभ (एक प्रकार की जलन अर्थात् दाह) उत्पन्न होना है, वह ईर्ष्या कालुष्य कहलाता है; क्योंकि यह भी चित्त को विक्षिप्त करके कलुषित कर देता है।

परापकार-चिकीर्षा-कालुष्य :- किसी के अपकार (बुराई करने, दःख पहुँचाने) करने की इच्छा चित्तको विह्वल करके कलुषित कर देती है।

असूया-कालुष्य :- दूसरों के गुणों में दोष आरोप करना असूया पद का अर्थ है। जैसे किसी व्रतशील को दम्भी जानना और आचारवाले को पाखण्डी जानना अर्थात् सदाचारी पर झूठे कलङ्क लगाना असूया-कालुष्य है।

द्वेष कालुष्य :- क्षमा का विरोधी कोप-कालुष्य (द्वेष-कालुष्य) भी चित्त का विक्षिप्त करके कलुषित कर देता है।

अमर्ष कालुष्य :- किसीसे कठोर वचन सुनकर या अन्य किसी प्रकार से अपमानित हाकर जो उसको न सहन करके बदला लेने की चेष्टा है, वह आमर्ष कालुष्य कहलाता है।

इन उपर्युक्त कालुष्यों (मलों) से चित्त मलीन होकर विक्षिप्त हो जाता है और

स्थितिक साधन में प्रवृत्त होने पर भी एकाग्र नहीं हो सकता। अतः इन मलों को निवृत्त करक चित्त को प्रसन्न और एकाग्र करने का सूत्र में निम्न प्रकार उपाय बतलाया गया है -

1) सुखी मनुष्यों को देखकर उनपर मित्रता की भावना करने से राग तथा ईर्ष्या-कालुष्य (मल) की निवृत्ति होती है, अर्थात् ऐसा समझने से कि 'यह सब सुख मेरे मित्र को है तो मुझे भी हैं, तब जैसे अपने राज्य के न होने पर भी अपने पुत्रके राज्यलाभ को अपना जानाकर उस राज्यमें ईर्ष्या तथा राग की निवृत्ति हो जाती है, वैसे ही मित्र के सुख को अपना सुख मानकर उस में राग निवृत्ति हो जायेगी। एवं जब उसके सुख को अपना ही सुख समझेगा तो उसके ऐश्वर्य को देखकर चित्त में जलन न होने से ईर्ष्या भी निवृत्त हो जायेगी।

2) दुःखी जनोपर करुणा अर्थात् दया की भावना करने से घृणा अर्थात् परापकार-चिकीर्ष रूप (दूसरों का अपकार अर्थात् बुराई करने की इच्छा) मलका अभाव होता है।

प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य ॥ 34

अथवा कोष्ठस्थित (कोठोमें रहने वाली) वायुको नासिकापुट द्वारा (प्रयत्न विशेष से) बाहर फेकने और बाहर रोकने दोनों से मन की स्थिति का सम्पादन करे।

कोष्ठ्यस्य वायोर्नासिकापुटाभ्यां प्रयत्नविशेषाद्वामनं प्रच्छर्दनम्,
विधारणं गणायामस्ताभ्यां वा मनसः स्थितिं सम्पादयेत् ॥ व्यास भाष्य

कोष्ठस्थित वायु को विशेष प्रसत्न से बाहर वमन करके (एकदम नासिका के दोनों छिद्रों द्वारा बाहर फेंकने) का प्रच्छर्दन कहते हैं। उस बाहर वमन हुई वायुको वहीं रोक देने को विधारण कहते हैं। प्रच्छर्दन और विधारण दोनों प्राणायामों से मन की स्थिति को सम्पादन करे।

प्राणायाम के तीन भेद है - रेचक - श्वास को नासिका छिद्रों द्वारा बाहर निकालना, पूरक - निसिका छिद्रों द्वारा श्वास को अंदर ले जाना और कुम्भक श्वास को बाहर अथवा अंदर रोक देना। इस सूत्र में केवल दो भेद रेचक और कुम्भक बतलाये हैं। रेचक के लिए यहाँ प्रच्छर्दन शब्द प्रयोग हुआ है और उसकी विधि कोषस्थित वायुको प्रयत्नविशेष से एकदम नासिकापुट द्वारा बाहर फेंकना बतलायी है। यहाँ केवल बाह्य कुम्भक बतलाया गया है और उसके लिए विधारण शब्द प्रयोग हुआ है। यह प्राणायाम कपालभाति से मिलता-जुलता है। यहाँ प्रसंगसे उसकी एक प्रक्रियाएँ लिखी जाती है।

प्रक्रिया नं. 1 :- केवल प्रच्छर्दन - किसी सुखासन से बैठकर मूलबंध और किञ्चित् उड्डीयान बंध लगाकर नाभी को उठाकर कोष्ठस्थित वायु को दोनों नासिका पुट द्वारा वमन की भाँति एकदम बाहर फेंक देना चाहिए। बाहर बिना रोके हुए इसी प्रकार लोहार की धौकनी के सदृश इस प्राणवायुको बाहर फेंकते रहना चाहिए। इसमें केवल रेचक किया जाता है। पूरक स्वयं होता रहता है। यह क्रिया बिना कुम्भक के की जाती है। आरम्भमें इस प्राणायाम को

21 बार अथवा यथासामर्थ्य करना चाहिए। शनैः-शनैः अभ्यास बढावें।

निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः ॥ 47

निर्विचार समाधि की वैशारद्य (प्रवीणता) होने पर अध्यात्म (प्रज्ञा) की निर्मलता होती है।

ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा ॥ 48

अध्यात्म प्रसादके लाभ होने पर जो प्रज्ञा (समाधिजन्य बुद्धि) उत्पन्न होती है, उसका नाम ऋतम्भरा प्रज्ञा (सच्चाई को धारण करने वाली अविद्यादि से रहित बुद्धि) है।

निर्विचार समाधि की विशारदता से जन्य अध्यात्म-प्रसादके होने पर जो समाहित-चित्त योगीकी प्रज्ञा उत्पन्न होती है, उसका नाम ऋतम्भरा-प्रज्ञा है। यह उसका यथार्थ नाम है; क्योंकि 'ऋतु' नाम सत्य का है और 'भरा' के अर्थ धारण करने वाली के हैं। अर्थात् यह प्रज्ञा सत्य की को धारण करने वाली होती है; इसमें भ्रांति, विपर्यय-ज्ञान अर्थात् अविद्यादि का गंध भी नहीं होता।

श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशेषार्थत्वात् ॥ 49

आगम और अनुमान की प्रज्ञा से ऋतम्भरा प्रज्ञाका विषय अलग है, विशेष रूप से अर्थ का साक्षात्कार करने से।

निर्विचार समाधि की विशारदता में होनेवाली ऋतम्भरा प्रज्ञा से ही इन सूक्ष्म पदार्थों के विशेष रूप का साक्षात्कार हो सकता है, अन्य किसी प्रमाण से नहीं। अतएव यह प्रज्ञा विशेष विषयक होने से श्रुत और अनुमान प्रज्ञा से अन्य और उत्कृष्ट है। यही परम प्रत्यक्ष है। यह श्रुत और अनुमानका बीज है, अर्थात् श्रुत और अनुमान इसके आश्रय हैं, न कि यह उनके। वस्तु के इस यथार्थ स्वरूप को ही आगम बतलाता है और इसीका अनुमान किया जाता है। यहाँ ऋतम्भरा प्रज्ञा को प्रसंख्यान अर्थात् विवेक-ख्याति के तुल्य समझना चाहिए।

तज्जः संस्कारोऽन्यसंस्कारप्रतिबन्धी ॥ 50

उस ऋतम्भरा प्रज्ञा से उत्पन्न होने वाला संस्कार अन्य सब व्युत्थान के संस्कारों का बाधक (रोकने वाला) होता है।

तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधिः ॥ 51

पर-वैराग्य द्वारा उस ऋतम्भरा-प्रज्ञाजन्य संस्कार के भी निरोध हो जाने पर पुरातन-नूतन सब संस्कारों के निरोध हो जाने से निर्बीज समाधि होती है।

योग के आठ अङ्ग :-

यमनियमासनप्रणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि ॥ 29

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि ये योग के

आठ अङ्ग है।

ये आठ योगके अङ्ग विवेकख्याति के साधन हैं। उनमें से धारणा, ध्यान, समाधि-साक्षात् सहायक होने से योग के अतंरङ्ग साधन कहलाते हैं। यम-नियम योग के रूकावट हिंसादि वितर्कों को निर्मूल कर के समाधि को सिद्ध करते हैं। अन्य तीन अगले-अगले अङ्ग में उपकारक हैं अर्थात् आसन के जीतने पर प्राणायाम की स्थिरता होती है और प्राणायाम की स्थिरता से प्रत्याहार सिद्ध होता है।

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापिरिग्रहा यमाः ॥ 30

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह ये यम है।

जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रताम् ॥ 31

जाति, देश, काल और समय (संकेत, नियमविशेष) की हदस रहित होने का यह अभिप्राय है कि इनके द्वारा अहिंसा आदि यम संकुचित न किये जाय।

शौचसंतोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥ 32

शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान नियम हैं।

शौच दो प्रकार का है - बाह्य ओर आभ्यन्तर।

बाह्य :- मृत्तिका, जल आदि से पात्र, वस्त्र, स्थान आदि को पवित्र रखना तथा मृत्तिका, जल आदि से शरीर के अङ्गो को शुद्ध रखना, शुद्ध सात्विक नियमित आहार से शरीर को सात्विक, निरोग और स्वस्थ रखना। वास्ती, धौती, नेती आदि तथा औषधि से शरीर शोधन करना - ये बाह्य शौच है।

आभ्यन्तर :- ईर्ष्या, अभिमान, घृणा असूया आदि मलों को मैत्री (1/31) आदि से दूर करना बुरे विचारों को शुद्ध विचारों से हटाना, दुर्व्यवहार को शुद्ध व्यवहार से हटाना मानसिक शौच है। अविद्या आदि क्लेशों के मलों को विवेक-ज्ञान द्वारा दूर करना चित्तका शौच है।

संतोष :- सामर्थ्यानुसार उचित प्रयत्न के पश्चात् जो फल मिले अथवा जिस अवस्थामें रहना हो, उसमें प्रसन्नचित्त बने रहना और सब प्रकार की तृष्णा को छोड देना संतोष है।

तप :- जिस प्रकार अश्वविद्या का कुशल सारथि चञ्चल घोडों को साधता है, इसी प्रकार शरीर, प्राण, इंद्रियों और मन को उचित रीति और अभ्यास से वशीकर करने को तप कहते हैं, जिससे सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, सुख-दुःख, हर्ष-शोक, मान-अपमान आदि सर्व द्वन्द्व अवस्था में बिना विक्षेपके योगमार्ग में प्रवृत्त रहे। शरीर में व्याधि तथा पीडा, इंद्रियों में विकार और चित्त में अप्रसन्नता उत्पन्न करने वाला तामसी तप योगमार्ग में निंदित तथा वर्जित है।

स्वाध्याय :- वेद, उपनिषद आदि और अध्यात्मसम्बन्धी विवेक ज्ञान उत्पन्न करने वाले योग और सांख्य के सत्-शास्त्रों का नियमपूर्वक अध्ययन और ओंकार सहित गायत्री आदि मन्त्रों का जप स्वाध्याय हैं।

ईश्वर प्रणिधान :- ईश्वर की भक्ति विशेष अर्थात् फलसहित सर्व कर्मों को उसको समर्पण करना ईश्वर प्रणिधान है।

बाह्य शौच का विशेष वर्णन :-

1) धौति :- धौति तीन प्रकार की होती हैं। वारिधौति, ब्रह्मदातौन और वासधौति।

वारिधौति :- अर्थात् कुंजर कर्म - खाली पेट लवण-मिश्रित गुनगुना पानी पीकर छाती हिलाकर वमन की तरह निकाल दिया जाता है। इसको गजकरणी भी कहते हैं क्योंकि जैसी हाथी सूँड से जल खींचकर फेंकता है उसी प्रकार इसमें जल को पीकर निकाला जाता है। आरम्भ में पानी का निकालना कठिन होता है। तालु से ऊपर छोटी जिह्वा को सीधे हाथ की दो अंगुलियों से दबाने से पानी निकलने लगता हैं।

ब्रह्मदातौन :- सूतकी बनी हुई बारीक रस्सी के टुकडे को अथवा रबड की ट्यूबको लवणमिश्रित गुनगुने पानी को खाली पेट पीने के पश्चात् बिना दाँत लगाये गले से दूध के घूँट के सदृश निगला जाता है, फिर छाती हिलाकर सारे पानी को वमन के सदृश निकाल दिया जाता है।

वासधौति (वस्त्र धौति) :- धौति लगभग चार अंगुल चौडी लगभग पंद्रह हाथ लम्बी, बारीक मलमल - जैसे कपडे की होती है। खाली पेट पानी अथवा आरम्भ में दूध में भीगी हुई धौति के एक सिरे को अंगुली से हलक में ले जाकर बिना दाँत लगाये शनैः-शनैः दूध के घूँट के सदृश निगला जाता हैं। आरम्भ में निगलना कठिन होता है और उल्टी आती हैं, इसलिए एक घूँट गुनगुने पानी के साथ निगली जाती है। प्रथम दिन एक साथ ही नहीं निगली जा सकती है। शनैः-शनैः अभ्यास बढाया जाता है। सब धौति निगल ने के पश्चात् कुछ अंश मुँहके बाहर रखना पडता है। इसके बाद नौलीको चालने करके धौति तथा सब पीये हुए पानी को वमन सदृश निकाल दिया जाता है। इन क्रियाओं से कफ और पित्त रोग दूर होकर शरीर शुद्ध और हलका हो जाता है, और मन सुगमतासे एकाग्र होने लगता है। इस क्रियाको अत्यन्त सावधानी के साथ करनी चाहिए। धौती को तह करके पानी में भिगोना चाहिए। जितना भाग अंदर ले जाना हो, उसकी चार तह करते जाएँ। इस बातका ध्यान रहे कि अंदर जाकर धौति उलझने न पावें क्योंकि उसके निकालने में दिक्कत होगी। यदि असावधानी से कभी ऐसी स्थिति हों जाय तो तुरंत धौति को वापस खाना शुरु कर दें। 2-3 इंच खाकर पुनः निकालना प्रारंभ करें। इससे अंदर उलझी हुई धौति सुलझ जाएगी। यदि इस प्रकार भी न निकले तो कोई वमन करने वाली औषधि मानफलचूर्ण आदि को पानी में डालकर पी लें। धौति सीखना आरम्भ करते समय पूरी-पूरि धौति न लें, केवल चार-पाँच हाथ का टुकडा लें पानी पीकर न करें। तह की हुई और भीगी हुई धौति के किनारे पर कुछ चीनी लगाकर सीधे हाथ वाले अँगुठे के पास की दो अंगुलियों से उसको हलक के अंदर ले जाएँ। फिर शनैः-शनैः दूध के घूँटके सदृश निगलने का यत्न

करें। मुँह कुछ नीचे की आरे रखे जिससे उल्टी न आवे। जब अंदर ले जाने में रुकावट मालूम हो, तब एक दो घूँट गुनगुना पानी पीते जाएँ। अन्त में एक ग्लास अथवा न्यूनाधिक लवण मिश्रित गुनगुना पानी पीकर धौति को निकाले।

घेरण्ड संहिता में धौतिकर्म के चार निम्न भेद बतलाये हैं -

1) अन्तर्धौति 2) दन्तधौति 3) हृद्धौति और 4) मूल शोधन।

1) अन्तर्धौति - इसके भी चार भेद बतलायें है - क) वातसार ख) वारिसार ग) वन्हिसार और घ) बहिष्कृत।

क) वातसार अन्तर्धौति :- मुखको कौए की चोंच के सदृश करके अर्थात् दोनों होठों को सिकोडकर धीरे-धीरे वायुका पान करे। यहाँ तक कि पेट में वायु पूर्णतया भर जाये फिर वायु को पेट के अंदर चारों ओर संचालित करके धीरे-धीरे नासिका पुट द्वारा निकाल दे। इसे काकी-मुद्रा और काकी-प्राणायाम भी कहते हैं।

फल :- हृदय, कण्ठ और पेट की व्याधियों का दुर होना, शरीर का शुद्ध तथा निर्मल होना, क्षुधा की वृद्धि, मन्दाग्नि का नाश, फेफडों का विकास,कण्ठ में सुरीलापन होना। वीर्य के लिए भी लाभदायक बतलाया गया है।

ख) वारिसार अन्तर्धौति- इसमें मुख द्वारा धीरे- धीरे जल पी कर कण्ठ तक भर लिया जाता है। फिर उदर में चारों ओर संचालित करके गुदामार्ग द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है।

फल :- देह का निर्मल होना,कोष्ठ बद्धता, तथा पेट के आमादि सब रोगों का दूर होना, शरीर का शुद्ध होकर कान्तिमान होना बतलाया गया है।

इस क्रिया को शंख- प्रक्षालन भी कहते हैं। क्योंकि शंख के चक्राकार मार्ग में पानी डालने से घूमता हुआ जल जिस प्रकार बाहर आ जाता है उसी प्रकार मुख से जल पीने पर कुछ समय पश्चात् मल को साथ लेकर अँतडियों को शुद्ध करता हुआ गुदा द्वार से बाहर आ जाता है। यह क्रिया चूँकि बहुत- से रोगों के हटाने और स्वास्थ्य के लिए बहुत लाभदायक है और अनुभूत है, इसलिए इसकी विधी नीचे लिखी जाती है।

एक बाल्टी में नमक मिला हुआ गर्म जल रखना चाहिये। काग- आसन में बैठ कर अर्थात् दोना पाँव के बीच में एक बालिस्त का अन्तर रखकर दोनों हाथों को घुटने पर रखकर दो गिलास जल पी लेवें। पानी पीने के पश्चात् तुरंत ही क्रमशः दायें- बायें से चार बार सर्पासन करें अर्थात् दोनो पंजों को आपस में मिलाकर दानों हथेलियों के बल कमर सवे ऊपरी विभाग को दायें- बायें बारी-बारी से मोडते हुए सर्पासन करें। इसके पश्चात शीघ्र ही ऊर्ध्व हस्तोत्तानासन लगभग चार बार दायें से और चार बार बाये से करें। अर्थात् कमर से ऊपरी विभाग को उत्तान देते हुए दोनों हाथों को सीधा ऊपर किये हुए ऊपर से दोनों हाथों की अँगुलियों को साँटे हुए क्रमशः दायें-बायें मोडें। इसके बाद शीघ्र कटि चक्रासन करें अर्थात्

सीधे खडे होकर दोनों हाथों को सीधा फैलाकर कमर से ऊपरी भाग को क्रमशः दायें- बायें मोडें। इसके बाद शीघ्र ही उदराकर्षासन क्रमशः चार बार दायें व बायें से करें। अर्थात् कागासन में बैठ कर बायें पैर के घुटने को मोड कर दायें पाँव की पिंडली के पास लाते हुए पृथ्वी से कुछ ऊपर ही रखे।साथ ही कमर से ऊपरी भाग को क्रमशः दायें-बायें की ओर मोडे। फिर एक गिलास पानी पीयें और पहिले की भाँति क्रमशः चारों आसन करें। चार से आठ ग्लास पानी पीने के पश्चात् शौच की हाजत मालूम होने लगेगी। शौच के लिए शीघ्र चले जावे। और शौच पर बैठने के समय भी उदराकर्षासन करें। इस प्रकार करने से पहिले मल निकलेगा फिर पतला मल निकलेगा और उसके पश्चात् पीला पानी निकलेगा। शौच से आकर फिर उसी प्रकार जल पीवे और चारों आसन बारी-बारी से करें। फिर शौच की हाजत होगी। यहाँ तक कि केवल पानी ही निकलने लगेगा। फिर पहिले की भाँति पानी पीकर आसन करने के पश्चात् सफेद पानी निकलेगा। अर्थात् जैसा पानी मुख से पी चुके हैं वैसा ही गुदाद्वार से निकलेगा। जब तक सफेद पानी न आने लगे तब तक बार-बार पानी पीकर बारी-बारी से चारों आसन करते रहें।

सफेद पानी निकलने के पश्चात् बिना नमकका सादा गरम पानी दो-तीन गिलास पीकर गजकरणी क्रियाद्वारा निकाल दें । इस क्रियाको करनेके बाद ठंडे पानीसे स्नान नहीं करें। गरम पानीसे बंद कमरेमें हवासे बचाव रखकर स्नान करें । और स्नान के पश्चात् कपडे पहनकर स्नान-घरसे बाहर निकले। अथवा स्नान न करें।

शंख-प्रक्षालनके पश्चात् एक घंटे के भीतर ही भोजन कर लेना चाहिये। बिना लाल मिर्च और खटाई की चावल तथा मूँगकी खिचडी अथवा गेहूँ का दलिया खावें। खाते समय अधिक-से-अधिक एक छटाँक और कम-से-कम आध छटाँक शुद्ध गाय का घी डालें। खिचडी अथवा दलिया बनाते समय अधिक घी न डालें। भोजन करते समय पानी न पीवें। एक घंटेके बाद पी सकते हैं। खिचडी खाने के चार घंटे बाद मुलायम मीठे फल आदि खा सकते हैं।

शंख-प्रक्षालन के बाद अधिक देर तक भूखा नहीं रहना चाहिये। जिस दिन शंख-प्रक्षालन करें उसके बाद 24 घंटे तक दही-दूध न खायें। इस क्रिया के करने के एक दिन-पूर्व कोई रेचक औषधि द्वारा पेटकी सफाई कर लेवे और उस दिन हल्का भोजन लेवे अर्थात् खिचडी या दलिया लेवे तो अच्छा हो। इस क्रियाको रोज न करे आवश्यकता पडनेपर ही करें ।

ग) बह्निसार अन्तर्धौति :- नाभिकी गाँठको मेरूपृष्ठमें सौ बार लगाये, अर्थात् उदरको इस प्रकर बार-बार फुलावे-सिकोडे कि नाभि ग्रन्थि पीठमें लग जाया करे। इससे उदरके समस्त रोग नष्ट होते हैं और जठराग्नि प्रदीप्त होती है। (अनुभूत)

घ) बहिष्कृत अन्तर्धौति :- कौएकी चोचके सदृश मुख बनाकर इतनी मात्रामें वायुको पान करे कि पेट भर जाय, फिर उस वायुको डेढ घंटेतक (अथवा यथाशक्ति) पेटमें धारण किये रहे। तत्पश्चात् गुदामार्गद्वारा बाहर निकाल देना बतलाया गया है।जबतक आधे पहरतक वायुको रोकने का अभ्यास न हो जाय, तबतक इस क्रियाको करनेका यत्न न करे,अन्यथा वायुके कुपित होनेका भय है।

फल- इससे सब नाडियाँ शुद्ध होती हैं। जैसी यह क्रिया कठिन है वैसे ही इसका लाभ अकथ्य तथा अगम्य बतलाया गया है।

2) दन्त-धौति :- यह भी चार प्रकारकी होती है- क) दन्तमूल, ख) जिह्वामूल, ग) कर्णरन्ध्र और घ) कपालरन्ध्र।

क) दन्तमूल धौति :- खैरका रस अथवा अन्य किसी ओषधि-विशेषसे दाँतोंकी जडको अच्छी प्रकार साफ करे।

ख) जिह्वामूल-धौति :- तर्जनी, मध्यमा और अनामिका अंगुलियों को गलेके भीतर डालकर जीभको जडतक बार-बार घिसे। इस प्रकार धीरे-धीरे कफके दोषको बाहर निकाल दे।

ग) कर्णरन्ध्र-धौति :- तर्जनी और अनामिका अंगुलियों के योग से दोनों कानों के छेदों को साफ करे, इससे एक प्रकार का नाद प्रकट होना बतलाया गया है।

घ) कपालरन्ध्र-धौति :- निद्रासे उठने पर, भोजन के अन्तमें और सूर्य के अस्त होने पर सिर के गढे को दाहिने हाथ के अँगूठे द्वारा प्रतिदिन जलसे साफ करे। इससे नाडियाँ स्वच्छ हो जाती हैं और दृष्टि दिव्य होती है।

3) हृद्धौति :- इसके तीन भेद हैं - क) दण्ड-धौति, ख) वमन-धौति और ग) वास-धौति।

क) दण्ड-धौति :- केले के दण्ड, हल्दी के दण्ड, चिकने बेंतके दण्ड अथवा वटवृक्ष की जटा-डाढीको धीरे-धीरे हृदयस्थल में प्रविष्ट कर दे; फिर हृदयके चारों ओर घुमाकर युक्ति पूर्वक बाहर निकाल दे। इससे पित्त, कफ, अकुलाहट आदि विकारी मल बाहर निकल जाते हैं और हृदय के सारे रोग नष्ट हो जाते हैं। इसको भोजन के पूर्व ही करना चाहिए।

नोटः- इसको उपर्युक्त ब्रह्मदातौन समझना चाहिए और उसी विधिके अनुसार करना चाहिए।

ख) वमन-धौति :- भोजन करने के पश्चात् कण्ठतक पानी पीकर भर ले और थोडी देर तक ऊपर की ओर लेकर उस पानी को मुख द्वारा बाहर निकाल दे। पानी कण्ठके अंदर न जाने पावे। इससे कफ-दोश और पित्त-दोष दूर होते हैं।

ग) वास-धौति (वस्त्र धौति) :- लगभग छः अंगुल चौडा और लगभग अठारह हाथका

बारीक वस्त्र किञ्चित् उष्ण (गर्म) जलसे भिगोकर गुरुके बताये हुए क्रमसे अर्थात् पहिले दिन एक हाथ, दूसरे दिन दो हाथ, तीसरे दिन तीन हाथ अथवा इससे न्यूनाधिक युक्तिपूर्वक अंदर ले जाये, फिर धीरे-धीरे ही बाहर निकाल दे। इसको भोजन के पहिले करना चाहिए। इससे गुल्म, ज्वर, प्लीहा, कुष्ठ एवं कफ-पित्त आदि अन्य विकार नष्ट होते हैं। (ज्वर की अवस्था में न करे।)

4) मूलशोधन (गणेश-क्रिया) :- कच्ची मूलीकी जडसे अथवा तर्जनी अँगुली से यत्न पूर्वक सावधानी से बार-बार जलद्वारा गुदामार्ग को साफ करे। इसके पश्चात् घृत या मक्खन उस स्थान पर लगाना अधिक लाभदायक है। इससे उदररोग का काठिन्य दूर होता है। आमजनित एवं अजीर्ण जनित रोग उत्पन्न नहीं होते और शरीरकी पुष्टि और कांतिकी वृद्धि होती है। यह जठराग्नि को प्रदीप्त करती है। इससे सब प्रकार के अर्श-रोग तथा वीर्यदोष भी दूर होते हैं।

अँगुली का गुदाके अंदर बराबर कुछ देर तक घुमाने रहने से अंदरका मल बाहर आता रहता है और आँते साफ होती रहती है। इसका अभ्यास हो जाने पर वस्ति लेने की आवश्यकता कम हो जाती है। अभ्यासीगण इस क्रियासे अवश्य लाभ उठावें।

2) वस्ति - वस्ति मूलाधारके समीप है। इसको साफ करने के कर्म को वस्तिकर्म कहते हैं। एक चिकनी नलीको गुदामें ले जाकर नौलि-कर्मकी सहायतासे गुदामार्ग द्वारा वस्ति में जल चढाया और निकाला जाता है। साधारणतया इस क्रिया का करना कठिन है। इसके स्थान पर एनिमा से काम लिया जा सकता है। इससे आँतों का मल जल के साथ मिलकर पतला हो जाता है और शीघ्रता पूर्वक बाहर निकल जाता है।

जल चढाने के पूर्व सिरिञ्ज (एक शीशेकी पिचकारी जो अंग्रेजी दवाकी दूकानों पर मिल सकती है) द्वारा गुदामें तेल चढाना प्रशस्त है। एनिमाके अभाव में सिरिञ्ज द्वारा ग्लिसरीन चढाने से भी मल तथा आँव के निकालने में वही लाभ हो सकता है। वस्ति में रोगानुसार भिन्न-भिन्न क्वाथादि चढाये जाते हैं, पर साधारण रीति गुनगुने जलमें साबुन और लवण अथवा पोटैशियम परमेंगनेट (कुएमें डालने की दवा) मिलाने की है।

घेरण्ड संहिता में वस्तिका निरुपण इस प्रकार है -

वस्ति के दो भेद हैं - एक जल वस्ति और दूसरी पवन वस्ति (स्थल-वस्ति अथव शुष्क-वस्ति)।

जल वस्ति (क्षालन-कर्म) :- किसी बडे पात्रमें नाभिपर्यन्त जल भरवाकर, अथवा नदी, तालाब आदिमें, जिनका जल शुद्ध हो, उत्कुटासन लगाकर बैठ जाय, गुदामार्ग का आकुञ्चन और प्रसारण करे अर्थात् उसी जलके अंदर उत्कुटासन से बैठा हुआ गुदाको इस प्रकार सिकोडे और फैलावे जैसे अश्वादि मल-त्याग के पश्चात् किया करते हैं। इससे

प्रमेह, कोष्ठकी क्रूरता आदि रोग दूर होते हैं।

पवन वस्ति (स्थल-वस्ति, शुष्क-वस्ति) :- भूमिपर पश्चिमोत्तान होकर लेट जाय; फिर अश्विनिमुद्रा द्वारा धीरे-धीरे वस्तिका चालन करे अथवा गुदामार्ग का आकुञ्चन और प्रसारण करे। इसके अभ्यास से जठराग्नि प्रदीप्त होकर उदरगत आमवात आदि रोगों को नष्ट कर देती है।

3) नेती :- क) नेति कर्म के लिए महीन सूतके दस-पंद्रह तारसे बटी हुयी एक डोरकी आवश्यकता होती है, जिसका एक किनारा नोकदार होता है। नेतिको पानीमें भिगोकर उसके नोकदार सिरेको एक हाथसे नासिका द्वारा गलेमें ले जाकर दूसरे हाथसे पकडा जाता है। तत्पश्चात् एक-दो बार अंदर-बाहर चलाकर मुखसे निकाल दिया जाता है। इसी प्रकार दूसरे नासिका-छिद्रसे। इस क्रियासे मस्तिष्क तथा गलेकी सफाई, नाक, कान, आँख, दाँत के दर्द दूर होते हैं और नेत्रकी ज्योति बढती है। बारीक मलमल के कपडे की भी नेती बनायी जा सकती है।

ख) जलनेति :- क्रमसे दोनों नासिका-छिद्रोंसे जलको पीते हुए मुँहसे अथवा दूसरे नासिकापुटसे निकालेने से होती है।

ग) कपालनेति :- मुँहमें पानी भरकर नासिका-छिद्रोंसे निकालने से होती है।

नोट :- नासिका छिद्रों द्वारा पानी पीने से भी यही लाभ होता है।

4) नौली :- आरम्भ में इस क्रिया को एक साथ करना कठिन है। इसलिए तीन भागों में विभक्त करके इसका प्रयास करने में सुगमता होती है।

पहिला भाग :- सीधा खडा होकर उदरका वायु बाहर निकालना। दोनों हाथोंसे दोनों घुटनों को दबाकर पूरा उड्डीयान करके अर्थात् पेट को बिलकुल पीठसे मिलाकर दोनों नलोंको उभारा जाता है। प्रथम पूरे उड्डीयान का अभ्यास पक्का करना होता है। उसके पश्चात् नल स्वयं बाहर उठने लगते हैं।

दूसरा भाग :- एक-एक नलको बारी-बारी से निकाला और घुमाया जाता है। पहिले नल निकालनेका अभ्यास किया जाता है, उसके पश्चात् घुमानेका। घुटनों को दबानेसे इस ओरका नल निकलने लगता है।

तीसरा भाग :- दोनों नलों को बाहर निकालकर पहिले एक ओरसे फिर दूसरी ओरसे घुमाया जाता है। इस क्रियाको शौच से निवृत्त होकर खाली-पेट करना चाहिए।

फल :- यह क्रिया हठयोगकी छः क्रियाओं में सबसे उत्तम मानी गयी है। इससे गोला, तिल्ली, मन्दाग्नि, आमवात, पेटका कडापन, पेचिश, संग्रहणी आदि पेटके सब रोग दूर होते हैं तथा वात, पित्त, कफ - त्रिदोष एक साथ दूर होते हैं।

5) त्राटक :- किसी सुखासन से बैठकर धातु या पत्थर की बनी हुयी किसी छोटी

चीज अथवा कागज पर काला बिंदु बनाकर अथवा अगरबत्ती जलाकर बिना पलक झपकाये देखते रहना त्राटक है। स्फटीक (बिल्लोर) के यंत्र पर त्राटक करने से किसी प्रकार की हानि नहीं हो सकती। नेत्र की ज्योति बढती है, स्वास्थ्य सुधरता है, मन स्थिर होता है, चित्त शांत और प्रसन्न होता है। यदि किसी इष्ट मंत्र के साथ किया जाय तो उसमें शीघ्र सफलता होती है। रात्री के समय मोमबत्ती अथवा तिलके तेल की बत्ती का प्रकाश स्फटीक पर डालते हुए त्राटक करना अधिक लाभदायक है। यंत्र पर श्वास-प्रश्वासकी गति की भावना करते रहने से पहिले बहिःकल्पिता, तत्पश्चात् निरंतर अभ्यास से बहिःअकल्पिता वृत्ति की सिद्धि प्राप्त हो सकती है। त्राटक के अभ्यास से नेत्र और मस्तिष्क में उष्णता बढ जाती है। इसलिए इस क्रिया के करने वालों को नैति, जलनेति तथा नेत्रों को त्रिफला, हरड अथवा गुलाब के पानी से धोना चाहिए, और नेत्र का व्यायाम अर्थात् शांति पूर्वक दृष्टि को दायें-बायें, ऊपर-नीचे शनैः-शनैः चलाने की क्रिया करनी चाहिए।

कई आचार्यों ने त्राटकके तीन भेद बतलायें हैं -

क) आन्तरत्राटक :- नेत्र बंद करके भ्रुमध्य, हृदय, नाभि आदि आन्तरिक स्थानोंमें चक्षुवृत्तिकी भावना करके देखते रहना आन्तत्राटक है।

ख) मध्यत्राटक :- किसी धातु अथवा पत्थरकी बनी हुई वस्तुपर अथवा काली स्याही से कागज पर लिखे हुए ॐ अथवा बिन्दुपर अथवा नासिकाग्र-भाग अथवा भ्रुमध्य अथवा अन्य किसी समीपवर्ती लक्ष्यपर खुले नेत्रोंसे टकटकी लगाकर देखने रहना मध्य-त्राटक है।

ग) बाह्यत्राटक :- चंद्र, प्रकाशीत नक्षत्र, प्रातःकाल उदय होते हुए सूर्य अथवा अन्य किसी दूरवर्ती लक्ष्यपर दृष्टि स्थिर करने की क्रिया को बाह्यत्राटक कहते हैं।

कपालभाति - घेरण्ड सहिंतामें कपालभाति के तीन भेद दिखलाये हैं - क) वातकर्म कपालभाति, ख) व्युत्कर्म कपालभाति, ग) शीतकर्म कपालभाति।

वातकर्म कपालभाति :- सुखासन से बैठकर दाहिने हाथके अँगुठे से दाहिने नथुनेको किञ्चित् दबाकर बायें नथुने से बलपूर्वक वायुको अंदर खींचे और बिना रोके हुए तुरंत ही अनामिका और कनिष्ठिका अँगुलियों से बाये नथुने का बंद करके दाहिने नथुने से पूरी वायुको निकाल दे; इसी प्रकार दाहिने नथुनेसे वायु खींचकर बायेंसे निकाले। इस प्रकार अत्यन्त शीघ्रतासे क्रमशः रेचक, पूरक प्राणायाम को कपालभाति कहते हैं। आरम्भमें दस बार करे, फिर शनैः-शनैः बढाता जाय। इससे नाडीशोधन सिद्ध होता है। मस्तिष्क और आमाशयकी शुद्धि होकर पाचनशक्ति प्रदीप्त होती है तथा कफजनित रोग दूर होते हैं। इससे नाक, श्वास, नाडी तथा फेफडे शुद्ध होते हैं। श्वासरोग तथा क्षयरोग के लिए लाभदायक है। कुण्डलिनी जाग्रत और मनके स्थिर करने के निमित्त आभ्यास आरम्भ करते समय इस क्रियाका करना प्रशस्त है। कपालभातिको निम्न दो विधियों से भी किया जाता है -

दूसरी विधि :- दोनों नासिका पुटोंसे एक साथ उपर्युक्त रीतिसे वायुको अंदर खींचना और बाहर निकालना।

तीसरी विधि :- दक्षिण नासिकापुट बंद करके वाम नासिकापुटसे उपर्युक्त रीतिसे पूरक-रेचक करना; इसी प्रकारवाम नासिकापुट बंद करके दक्षिण नासिकापुट से उसी संख्या में पुरक- रेचक करना।

समाधिपाद सूत्र 34 में बतलायी हुई कपालभाति से इसप्रकिया में भेद है । इसका नाम नाडीशोधन रखा है ध्यान से पुर्व इस क्रिया को कर लेना चाहिये जिससे मस्तिष्क साफ हो जावे। नाक पोंछने के लिये एक रूमाल पास रखना चाहिये।

(ख) व्युत्कर्म कपालभाति :- नासारन्ध्रोंसे जल पीकर मुख से निकाल दे। इसे भी अनुलोम और विलोम रीति से किया जाता है।

(ग) शीतकर्म कपालभाति :- मुहँ में पानी भरकर नासिकाछिद्रों से निकालना।

जब यम तथा नियमों के पालने में विघ्न उपस्थित हो तो उनको निम्न प्रकार से दूर करना चाहिए -

वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम् ॥ 33

वितर्कोंद्वारा यम और नियमों में बाधा होने पर प्रतिपक्ष का चिंतन करना चाहिए।

वितर्क-विरोधी तर्क अर्थात् यम, नियम आदिके विरोधी अधर्म - हिंसा, असत्य, स्तेय, ब्रह्मचर्य का पालन न करना, परिग्रह, अशौच, असंतोष, तपका अभाव, स्वाध्याय का त्याग और ईश्वर से विमुखता। जब किसी दुर्घटनावश ये वितर्क उत्पन्न हो और मनमें इन योगके विधर्मी अधर्मोंके करने का विचार आये, तब उनके प्रतिपक्षी अर्थात् उन वितर्कों के विरोधी विचारों का चिंतन करके उन वितर्क रूप अधर्मों को मनसे हटाना चाहिए। प्रतिपक्ष विचारों के चिन्तनसे यह अभिप्राय है कि जैसे क्रोध आने पर शांतिका चिंतन करना, हिंसा का विचार उत्पन्न होने पर दयाके भावका चिंतन करना इत्यादि।

वितर्कों के स्वरूप, उनके भेद और उनके फल सहित प्रतिपक्षभावना को बतलाते हैं -

वितर्का हिंसादयः कृतकारितानुमोदिता लोभक्रोधमोहपूर्वका मृदुमध्याधिमात्रा दुःखाज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम् ॥ 34

यम-नियमों के विरोधी हिंसादि वितर्क कहलाते हैं। (वे तीन प्रकार के होते हैं) स्वयं किए हुए, दूसरों से कराये हुए और अनुमोदन किए हुए। उनके कारण लोभ, मोह और क्रोध होते हैं। वे मृदु, मध्य और अधिमात्रावाले होते हैं। ये सब दुःख और अज्ञानरूपी अपरिमित फलोंको देने वाले हैं। इसी प्रकार प्रतिपक्ष की भावना करे।

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सान्निधौ वैरत्यागः ॥ 35

अहिंसा की दृढ स्थिति हो जाने पर उस (अहिंसक योगी) के निकट सब प्राणियों का वेर छूट जाता है।

सत्य प्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् ॥ 36

सत्यमें दृढ स्थिति हो जानेपर क्रिया फल का आश्रय बनती है।

अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपरस्थानम् ॥ 37

अस्तेय की दृढ स्थिति होने पर सब रत्नों की प्राप्ति होती है।

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः ॥ 38

ब्रह्मचर्य विषयक प्रतिष्ठा प्राप्त होने पर वीर्य (सब प्रकार की विशिष्ट शक्ति) का लाभ होता है।

अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः ॥ 39

अपरिग्रह की स्थिरता में जन्म के बारे में साक्षात् होता है।

शौचात्स्वाङ्गजुगुप्सा-परैरसंसर्गः ॥ 40

शौचसे अपने अङ्गों से घृणा और दूसरों से संसर्गका अभाव होता है।

शौच के निरन्तर अभ्याससे योगीका हृदय शुद्ध हो जाता है, उसको मल-मूत्रादि अपवित्र वस्तुओं के भण्डार इस शरीर की अशुद्धियाँ दीखने लगती हैं। इसमें राग और ममत्व छूट जाता है। इसी हेतुसे उसका संसर्ग दूसरों से भी नहीं रहता। वह इस शरीरसे परे सबसे अलग रहते हुए केवली होने का यत्न करता है।

सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च ॥ ४१

चित्तकी शुद्धि, मनकी स्वच्छता, एकाग्रता, इन्द्रियों का जीतना ओर आत्मदर्शनकी योग्यता आभ्यन्तर शौचकी सिद्धिसे प्राप्त होती है।

संतोषदनुत्तमसुखलाभः ॥ 42

संतोष से अनुत्तम सुख प्राप्त होता है।

अनुत्तम सुख - उत्तम-से-उत्तम सुख अर्थात् जिससे बढकर कोई और सुख न हो। संतोष में जब पूरी स्थिरता हो जाती है, तब तृष्णा का नितान्त नाश हो जाता है। तृष्णा रहित होने पर जो प्रसन्नता तथा सुख प्राप्त होता है, उसके एक अंशके समान भी बाह्य सुख नहीं हो सकता।

कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः ॥ 43

तपसे अशुद्धि के क्षयके होने से शरीर और इंद्रियों की शुद्धि होती है।

स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः ॥ 44

स्वाध्याय से इष्ट देवता का साक्षात् होता है।

समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् ॥ 45

समाधि की सिद्धि ईश्वर-प्रणिधान से होती है।

स्थिरसुखमासनम् ॥ 46

जो स्थिर और सुखदायी हो वह आसन है।

प्रयत्नशैथिल्यानन्त्यसमापत्तिभ्याम् ॥ ४७

आसन प्रयत्नकी शिथिलता और आनन्त्यमें समापत्ति द्वारा सिद्ध होता है।

ततो द्वन्द्वानभिघातः ॥ 48

आसन सिद्ध होने पर योगी को गर्मी-सर्दी, भूख-प्यास आदि द्वन्द्व नहीं सताते।

तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः ॥ 49

आसन के स्थिर होन पर श्वास-प्रश्वास की गति का रोकना प्राणायाम है।

बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः ॥ 50

यह प्राणायाम बाह्यवृत्ति, आभ्यन्तर वृत्ति और स्तम्भ वृत्ति (तीन प्रकार का होता है) देश, काल, और संख्यासे देखा हुआ (नापा हुआ) लंबा और हलका होता है।

प्राणायाम का फल :-

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ॥ 52

उससे प्रकाश का आवरण (विवेक-ज्ञान का पर्दा) क्षीण हो जाता है।

विवेक ज्ञानरूपी प्रकाश तम तथा रजोगुण के कारण अविद्यादि क्लेशों के मलोंसे ढका हुआ है। प्राणायाम के अभ्यास से जब यह आवरण क्षीण हो जाता है, तब वह प्रकाश प्रकट होने लगता है।

धारणासु च योग्यता मनसः ॥ 53

और धारणाओं में मनकी योग्यता होती है।

स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ॥ ५४

इंद्रियों का अपने विषयों के साथ सम्बन्ध न होने पर चित्त के स्वरूप का अनुकरण (नकल) जैसा करना प्रत्याहार है।

ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम् ॥ 55

उस प्रत्याहार से इंद्रियों का उत्कृष्ट वशीकार होता है।

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा ॥ 1

चित्तका वृत्तिमात्रसे किसी स्थानविशेषमें बाँधना 'धारणा' कहलाता है।

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ॥ 2

उसमें वृत्तिका एक-सा (**सुख स्वरूपोऽहम्- सुख स्वरूपोऽहम्** आदि) बना रहना ध्यान है।

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ॥ 3

वह ध्यान ही समाधि कहलाता है, जब उसमें केवल ध्येय अर्थमात्रसे भासता है

और उसका (ध्यानका) स्वरूप शून्य-जैसा हो जाता है।

त्रयमेकत्र संयमः ॥ 4

तीनों (धारना, ध्यान, समाधि) का एक विषय में होना संयम कहलाता है।

संयम के अभ्यास का फल :-

तज्जयात्प्रज्ञालोकः ॥ 5

उस (संयम) के जयसे समाधि-प्रज्ञा का प्रकाश होता है।

सर्वार्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयौ चित्तस्य समाधिपरिणामः ॥ 11

चित्त (धर्मी) के सर्वार्थता और एकाग्रता रूप धर्मका (क्रमसे) नाश होना और प्रकट होना चित्तका समाधि-अवस्था में परिणाम है।

समाधि अवस्था में जब विक्षिप्तता बिलकुल दब जाती है, तब चित्त की समाहित अवस्था में एकाग्रता परिणाम बताते हैं -

ततः पुनः शान्तोदितौ तुल्यप्रत्ययौ चित्तस्यैकाग्रतापरिणामः ॥ 12

तब फिर समान वृत्तियों का शांत और उदय होना चित्त का एकाग्रता परिणाम है।

परिणामत्रयसंयमादतीतानागतज्ञानम् ॥ 16

तीनों परिणामों में संयम करने से भूत और भविष्यत का ज्ञान होता है।

शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासात् संकरस्तत्प्रविभागसंयमात् सर्वभूतरुतज्ञानम् ॥ 17

शब्द, अर्थ और ज्ञानके परस्परके अध्याससे अभेद भासना होता है। उनके विभाग में संयम करने से सब प्राणियों के शब्दका ज्ञान होता है।

संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम् ॥ 18

संस्कार के साक्षात् करने से पूर्वजन्म का ज्ञान होता है।

प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम् ॥ 19

दूसरे के चित्तकी वृत्तिके साक्षात् करने से दूसरे के चित्तका ज्ञान होता है।

न च तत् सालम्बनं तस्याविषयीभूतत्वात् ॥ 20

पर वह (दूसरे का चित्त) अपने विषय-सहित साक्षात् नहीं होता; क्योंकि वह (विषय-सहित चित्त) उसका (संयमका) विषय नहीं है।

कायरूपसंयमात् तद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भे चक्षुःप्रकाशा सम्प्रयोगेऽन्तर्धानम् ॥ 21

अपने शरीरके रूपमें संयम करने से रूपकी ग्राह्य-शक्ति रूक जाती है। इससे दूसरे के आँखों के प्रकाशसे योगी के शरीर का संनिकर्ष न होने के कारण योगि के शरीर का अन्तर्धान (छिप जाना) हो जाता है।

सोपक्रमं निरुपक्रमं च कर्म तत्संयमादपरान्तज्ञानमरिष्टेभ्यो वा ॥ 22

कर्म सोपक्रम और निरूपक्रम दो प्रकार के होते हैं। उनमें संयम करने से मृत्युका ज्ञान होता है अथवा अरिष्टों से मृत्यु का ज्ञान होता है।

मैत्र्यादिषु बलानि ॥ 23

मैत्री आदि में संयम करने से मैत्री आदि बल प्राप्त होता है।

पहिले पादके तैंतीसवें सूत्रमें मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा - चार भावनाएँ बतलाई गयी है। इनमें से पहली तीन भावनाओं में साक्षात्-पर्यन्त संयम करने से योगीका क्रमानुसार मैत्री, करुणा, मुदिता बल बढ जाता है। अर्थात् योगी को मैत्री आदि ऐसी उत्कृष्ट हो जाती है कि सब की मित्रता आदि को प्राप्त होता है। जब मैत्री में संयम करता है तो सब प्राणियोंका सुखकारी मित्र बन जाता है। करुणामें संयम करने से दुःखियों के दुःख दूर करने की शक्ति आ जाती है। मुदितामें संयम करने से पक्षपाती नहीं होता। चौथा उपेक्षा अर्थात् उदासीनता अभावात्मक पदार्थ है, इस कारण वह संयम का विषय नहीं बन सकता।

बलेषु हस्तिबलादीनि ॥ 24

हाथी आदिके बलोंमें संयम करने से हाथी आदि के बल प्राप्त होते हैं।

प्रवृत्त्यालोकन्यासात् सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टज्ञानम् ॥ 25

प्रवृत्तिके प्रकाश डालने से सूक्ष्म, व्यवहित और विप्रकृष्ट वस्तुका ज्ञान होता है।

भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् ॥ 26

सूर्य में संयम करने से भुवन का ज्ञान होता है।

चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम् ॥ 27

चंद्रमामें संयम करने से ताराओं के व्यूहका ज्ञान होता है।

ध्रुवे तद्गतिज्ञानम् ॥ 28

ध्रुवमें संयम करनें स ताराओं की गति का ज्ञान होता है।

नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम् ॥ 29

नाभि-चक्रमें संयम करने से शरीर के व्यूहका ज्ञान होता है।

कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः ॥ 30

कण्ठ-कूपमें संयम करने से क्षुधा और पिपासा (भूख-प्यास) की निवृत्ति होती है।

जिह्वा के नीचे सूतके समान एक नस है, उसके नीचे कण्ठ है। उस कण्ठके नीचे जो गढा है उसे कण्ठकूप कहते हैं। उस स्थानमें प्राणादिका स्पर्श होने से पुरुष को भूख-प्यास लगती है। इसलिए इस कण्ठ-कूपमें संयम द्वारा प्राणादि के स्पर्शकी निवृत्ति हो जाने से योगी को भूख-प्यास नहीं लगती है।

कूर्मनाड्यां स्थैर्यम् ॥ 31

कूर्म-नाडीमें संयम करने से स्थिरता होती है।

मूर्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम् ॥ 32

मूर्धाकी ज्योति में संयम करने से सिद्धों का दर्शन होता है।

प्रतिभद्वा सर्वम् ॥ 33

अथवा प्रतिभ-ज्ञानसे योगी सब कुछ जान लेता है।

हृदये चित्तसंवित् ॥ 34

हृदयमें संयम करने से चित्तका ज्ञान होता है।

सत्त्वपुरुषयोत्यन्तासंकीर्णयोः प्रत्ययाविशेषो भोगः परार्थन्यस्वार्थसंयमात् पुरुषज्ञानम् ॥ 35

चित्त और पुरुष जो परस्पर अत्यन्त भिन्न है, इन दोनों की प्रतीतियों का अभेद भोग है। उनमें से परार्थ-प्रतीतिसे भिन्न जो स्वार्थ-प्रतीति है उसमें संयम करने से पुरषका ज्ञान होता है अर्थात् पुरुष-विषयक प्रज्ञा उत्पन्न होती है।

ततः प्रातिभश्रावणवेदनादर्शास्वादवार्ता जायन्ते ॥ 36

उस स्वार्थ-संयमके अभ्यास से प्रातिभ, श्रावण, वेदना, आदर्श, आस्वाद और वार्ता-ज्ञान उत्पन्न होता है।

ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः ॥ 37

वे उपर्युक्त छः सिद्धियाँ समाधि (पुरुष-दर्शन) में विघ्न हैं, व्युत्थानमें सिद्धियाँ है।

पिछले सूत्र में बतलायी हुई छः सिद्धियाँ एकाग्र चित्तवालों को समाधि-प्राप्ति (पुरुष-दर्शन) में विघ्नकारक हैं; क्योंकि उनमें हर्ष, गौरव, आश्चर्यादि करने से समाधि शिथिल होती है, पर व्युत्थान-दशामें विशेष फलदायक होने से सिद्धिरूप होती हैं अर्थात् जैसे जन्मका कँगला अत्यल्प द्रव्यको पाकर ही अपने-आपको कृतार्थ समझने लगता है वैसे ही विक्षिप्त चित्तवालों को ही पुरुष-ज्ञानसे पूर्व होने वाले उपर्युक्त प्रतिभादि छः ऐश्वर्य सिद्धिरूप दीखते हैं।

समाहित चित्तवाला यागी इन प्राप्त ऐश्वर्यों से दोष-दृष्टि द्वारा उपराम होकर इनको समाधिमें रूकावट जानकर उपने अन्तिम लक्ष्य आत्म साक्षात्कार के लिए स्वार्थ-संयमा का निरन्तर प्रमाद-रहित होकर अभ्यास करता रहे।

समानजयाज्ज्वलनम् ॥ 40

जब संयम द्वारा योगी समानवायुको वश में कर लेता है, तब समान प्राणके अधीन जो शारीरिक अग्नि है, उसके उत्तेजित होने से उसका शरीर अग्नि के समान चमकता हुआ दिखायी देता है।

श्रोत्राकाशयोः सम्बन्धयंमाद्दिव्यं श्रोत्रम् ॥ 41

श्रोत्र और आकाश के सम्बन्ध में संयम करने से दिव्य श्रोत्र होता है।

ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः कायसम्पत्तद्धर्मानभिघातश्च ॥ 45

उस पृथ्वी आदि भूत जयसे अणिमा आदि आठ सिद्धियों का प्रादुर्भाव और कायसम्पत् होती है और उन पाँचों भूतों के धर्मोंसे रुकावट नहीं होती।

रूपलावण्यबलवज्रसंहननत्वानि कायसम्पत् ॥ 46

रूप, लावण्य, बल, वज्रकी सी बनावट। कायसम्पत् (शरीर की सम्पदा) कहलाती है।

रूप - मुखकी आकृति का अच्छा और दर्शनीय हो जाना। **लावण्य** - बल का अधिक हो जाना। सारे अङ्गों में कान्तिका हो जाना। **वज्रसंहननत्वानि** - शरीर के प्रत्येक अङ्गका वज्रके सदृश दृढ और पुष्ट हो जाना। यह कायसम्पत् कहलाती है।

ग्रहणस्वरूपास्मितान्वयार्थवत्त्वसंयमादिन्द्रियजयः ॥ 47

ग्रहण, स्वरूप, अस्मिता, अन्वय और अर्थवत्त्वमें संयम करने से इंद्रियजय होता है।

ततो मनोजवित्वं विकरणभावः प्रधानजयश्च ॥ 48

इंद्रियजयसे मनोजवित्व, विकरणभाव और प्रधान का जय होता है।

सत्त्वपुरुषान्यताख्यतिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च ॥ 49

चित्त और पुरुष के भेद जानने वालेको सारे भावों का मालिक होना और सर्वज्ञ होना प्राप्त होता है।

तद्वैराग्यदपि दोषबीजक्षये कैवल्यम् ॥ 50

विवेक-ख्यातिसे भी वैराग्य होने पर दोषों के बीज-क्षय होने पर कैवल्य होता है।

क्षणतत्क्रमयोः संयमद्विवेकजं ज्ञानम् ॥ 52

क्षण और उसके क्रमों में संयम करने से विवेकज-ज्ञान उत्पन्न होता है।

तारकं सर्वविषयं सर्वथाविषयमक्रमं चेति विवेकजं ज्ञानम् ॥ 54

बिना निमित्तके अपनी प्रभासे स्वयं उत्पन्न होने वाला, सबको विषय करने वाला, सब प्रकार से विषय करने वाला, बिना क्रमके एकसाथ ज्ञानको विवेकज-ज्ञान कहते हैं।

सत्त्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यमिति ॥ 55

चित्त और पुरुषकी समान शुद्धि होने पर कैवल्य होता है।

जन्मौषधिमन्त्रतपःसमाधिजाःसिद्धयः ॥ 1

जन्म, औषधि, मन्त्र, तप और समाधिसे उत्पन्न होने वाली सिद्धियाँ हैं।

शरीर इंद्रियों और चित्तमें विलक्षण परिणाम उत्पन्न होने अर्थात् इनकी प्रकृतिमें विलक्षण परिवर्तन होने को सिद्धि कहते हैं। इनके निमित्त पाँच हैं। जन्म, औषधि, मन्त्र, तप और समाधि। इसलिए सिद्धियाँ भी इन निमित्तोंके कारण पाँच प्रकार की हैं।

1) जन्मजा सिद्धि :- वे सिद्धियाँ है जिनकी उत्पत्तिमें केवल जन्म ही निमित्त है। जैसे पक्षियों आदिका आकाश में उडना अथवा कपिल आदि महर्षियों का पूर्व जन्मके पुण्यों के प्रभाव से जन्मसे ही सांसिद्धिक ज्ञानका उत्पन्न होना। ये चित्त जन्मसे ही इस योग्यता को प्राप्त किए हुए होते हैं।

2) औषधिजा-सिद्धि :- पारे आदि रसायनके उपयोग से शरीर में विलक्षण परिणाम उत्पन्न करना। अथवा सोमरसपान तथा अन्य औषधियों द्वारा काया-कल्प करके शरीरको पुनः युवा बना लेना इत्यादि। यह औषधि आदि सेवन द्वारा चित्तमें सात्त्विक परिणामसे होता है।

3) मन्त्रजा-सिद्धि :- जैसे (**स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः।**) स्वाध्याय से इष्ट देवताका मिलना। मन्त्र द्वारा चित्तमें एकाग्रता परिणाम के होने से यह सिद्धि प्राप्त होती है।

4) तपेजा-सिद्धि :- '**कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसाः।**' तपसे अशुद्धिके दूर हो जाने पर शरीर और इंद्रियों की सिद्धि होती है। चित्तमें तपके प्रभावसे यह योग्यता होती है।

5) समाधिजा-सिद्धि :- समाधिसे उत्पन्न होने वाली सिद्धियाँ, जिनका वर्णन पूर्व में तीसरे पादमें सविस्तर है। यह समाधि से उत्पन्न हुआ चित्त ही कैवल्यके उपयोगी है।

निर्माणचित्तान्यस्मितामात्रात् ॥4

चित्तके कारण अस्मितामात्रको लेकर चित्तोंको निर्माण करता है उससे सचित्त होते है।

अर्थात् योगी अस्मितामात्रसे निर्माण-चित्तोंको अपने संकल्प मात्रसे निर्मित करता है। (बनाता है) इन निर्माण-चित्तोंसे योगीके बनाये हुए सब शरीर चित्तसंयुक्त होते हैं।

तत्र ध्यानजमनाशयम् ॥ 6

उन पाँच प्रकारके जन्म, औषधि आदिसे उत्पन्न हुए पाँचों निर्माणसिद्ध-चित्तोंमेंसे समाधि से उत्पन्न होने वाला चित्त वासनाओं से रहित होता है।

जातिदेशकालव्यवहितानामप्यानन्तर्यं स्मृतिसंस्कारयोरेकरूपत्वात् ॥ 9

जाति, देश और कालकृत व्यवधान वाली वासनाओं का भी व्यवधान नहीं होता; क्योंकि स्मृति और संस्कार एकरूप (समानविषयक) होते हैं।

जाति, देश और काल का निकट होना वासनाओं के संस्कारों के प्रकट होने का कारण नहीं होता है; बल्कि उनको प्रकट करने वाला कारण उनका अपना-अपना अभिव्यञ्जक (प्रकट करने वाला) होता है। वह संस्कार चाहे कितने ही पिछले जन्मों के हो और चाहे उनमें कितना ही देश और काल व्यवधान (फासला) हो अभिव्यञ्जक मिलने पर तुरंत प्रकट हो जाते हैं।

हेतुफलाश्रयालम्बनैः संगृहीतत्वादेषामभावे तदभावः ॥ 11

हेतु, फल, आश्रय और आलम्बन से वासनाओं के संगृहित होने से इनके (हेतु, फल, आश्रय और आलम्बन के) अभाव से उन (वासनाओं) का अभाव होता है।

1) वासनाओं का हेतु - अविद्या आदि क्लेश, शुक्ल, कृष्ण तथा दोनों मिश्रित सकाम कर्म है। 2) वासनाओं का फल - जाति, आयु और भोग है। 3) वासनाओं का आश्रय - अधिकारसहित चित्त हैं 4) वासनाओं का आलम्बन - इंद्रियों के विषय है।

यद्यपि वासनाएँ अनादि हैं और अनन्त हैं तथापि वे सब इन्हीं हेतु-फल-आश्रय और आलम्बन के सहारे रहती हैं। इनकी स्थिति में वासनाओं की उत्पत्ति होती है और अभाव में नाश। विवेक-ख्याति द्वारा तत्त्वज्ञान से अविद्या आदि क्लेशों का उनके फल, आश्रय और आलम्बन सहित अभाव हो जाता है, उनके नाश होने पर वासनाओं का भी अभाव हो जाता है।

ततः क्लेशकर्मनिवृत्तिः ॥ 30

उस धर्ममेघ समाधि से क्लेश और कर्मों की निवृत्ति होती है।

उस धर्ममेघ समाधि की प्राप्ति पर अविद्या आदि पाँचों क्लेश और शुक्ल, कृष्ण तथा मिश्रित तीनों प्रकार के कर्म (सकाम कर्म) और उनकी वासनाएँ मूल सहित नाश हो जाती है। इस प्रकार क्लेश और कर्मों के अभाव में योगी जीवनमुक्त होकर विचरता है और शरीर त्यागनेके पश्चात् विदेह मुक्त पदको प्राप्त होता है अर्थात् पुनः जन्म धारण नहीं करता।

पुरुषार्थशुन्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति ॥ 34

पुरुषार्थ से (पूर्वोक्त) शून्य हुए गुणों का अपने कारण में लीन हो जाना कैवल्य है अथवा चिति शक्ति का अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाना कैवल्य है।

कषायैः रञ्जितं चेतस्तत्वं नैवावगाहते।
नीलीरक्तेऽम्बरे रागो, दुराधेयो ही कौकुमः ॥

शुद्ध आत्मा का स्वरूप तभी विचारा जा सकता है जब कि चित्त में कषाय भावों का गहरा मैल न चढा होवे, कषाय मन्द हो, विवेक शक्ति जाग्रत हो। जैसे कुंकुम का लाल रङ्ग सफेद या हल्के रङ्गे हुए कपडे पर चढ सकता है, गहरे नीले रङ्ग से रङ्गे हुए कपडे पर कुंकुम का रङ्ग नहीं चढता। इस कारण सदा अपने कषाय भावों को अच्छे प्रयत्न के साथ दबा करके रखना चाहिए जिससे आत्मा का विवेक कार्य करता रहे।

मन्त्र-स्तोत्र-प्रार्थना - चिकित्सा

-: रोग और सब प्रकार की व्याधि नाशक :-

मा भयात् सर्वतो रक्ष श्रियं वर्धय सर्वदा।
शरीरारोग्यं मे देहि देव देव नमोस्तुते ॥

रोगी अपने हाथ में कोई जल भरा प्रात्र लेकर उस पर दूसरा हाथ ढक कर इस उपरोक्त मंत्र का सात बार पढ कर उस जल को पी लेवे। विश्वासपूर्वक इस प्रकार करने से शरीर आरोग्य हो जायेगा। इसका प्रयोग करते समय यदि कोई औषधि लेते हो तो ले सकते हैं। मगर इस प्रयोग को जब तक शरीर पूर्ण स्वस्थ न हो करते रहें। इससे कष्टसाध्य रोग भी शांत हुए है।

यदि कोई सिद्ध करना चाहे तो 108 माला जपले और नित्यप्रति 31-51 या 108 मंत्र जपते रहें, सिद्ध हो जायेगा। रोगी पर प्रयोग के समय 7 बार पढे और संकल्प करें कि इस रोगी का रोग शीघ्र शांत हो, फिर उसे 7 बार पढा हुआ जल पिलावें। निश्चय ही आराम प्राप्त करेगा।

-: पाप भक्षणी मन्त्र :-

ॐ अर्हन्मुखकमलवासिनी पापात्म क्षंयकरी श्रुतज्ञानज्वाला सहस्र प्रज्वलिते सरस्वती मम पापं हन हन दह दह क्षां क्षीं क्षूं क्षौं क्षः क्षीरवर धवले अमृत संभवे अमृतं स्रावय स्रावय वं वं हूं हूं फट् स्वाहा ॥

अर्थ :- अरहंत परमेष्ठी के मुखकमल में वास करने वाली, पापोंको क्षय करने वाली, सहस्रों श्रुतज्ञान रूपी ज्वालाओं से प्रज्वलित हे सरस्वती देवी ! मेरे पापों को, दुःखों को, अपमृत्यु आदि संकटों को छिन्न छिन्न करके पूर्ण रूप से दहन करके, क्षीर समान श्रेष्ठ, शुभ्र अमृत बनकर मेरे अन्तरङ्ग में अमृत की वर्षा कर दो और मेरे सभी दुःष्कर्मों को भस्म कर दो।

नोट :- उपरोक्त अर्थ की भावना भाते हुए, इस मंत्र को पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुख करके जपना चाहिए। शरीर शुद्धि तो चाहिए परंतु उससे भी ज्यादा भावों की शुद्धि अत्यावश्यक है। इसी प्रकार प्रत्येक मंत्र-स्तोत्र-प्रार्थना में भी करें।

फल :- विद्या प्राप्ति, भाव की निर्मलता, रोग-विपत्ति-अकाल मरण आदि दूर होते हैं।

-: उपसर्गहर पार्श्वनाथ स्तोत्रम् :-

उवसग्गहरं पासं पासं वंदामि कम्मघण मुक्कं।
विसहर विसन्निनासं मंगल कल्लाण आवासं ॥

विसहर फुलिंग मंतं कंठे धारइ जो सया मणुओ।
तस्सगहरोग मारीछुट्ठ जरा जंति उवसामं ॥
चिट्ठउदूरे मंतो तुझपणामोवि बहुफलो होई।
नरतिरिए सुवि जीवा पावंति न दुक्खदरोग ॥
तुहसम्मते लद्धे चिंतामणि कप्पपाय बब्भहिए।
पावंति अविग्घेण जीवा अयरामरं ठाणं ॥
इह संथुओ महायस भतिब्भरनिब्भरेण हियएण।
तादेवदिज्जवोहिं भवे भवे पास जिणचंद ॥

-: चंद्रप्रभ स्तोत्र :-

चन्द्रप्रभु प्रभाधीशं चन्द्रशेखर चन्द्रनम्।
चन्द्र लक्ष्म्याकं चान्द्राकं चन्द्रंबीज नमोस्तु ते ॥
ॐ ह्रीं अर्हं श्री चन्द्रप्रभु श्रीं ह्रीं श्रीं कुरुकुरु स्वाहा।
इष्टसिद्धि महाऋद्धि तुष्टि पुष्टि कुरु मम ॥
द्वादश सहस्र जपतो वांछितार्थ फलप्रदः।
महतं त्रिसंध्यं जपतः सर्वाति व्याधि नाशनम् ॥
सुरासुरेन्द्र सहितः श्री पाण्डव नृपस्तुतः।
श्री चन्द्रप्रभ तीर्थेशश्रियं चन्द्रो ज्वलां कुरु ॥
श्री चन्द्रप्रभु विधेयं स्मर्ता सद्य।
भवाब्धि व्याधि विध्वंसदायिनीमेव रक्षदा ॥

-: वज्रपंजर स्तोत्रम् :-

परमेष्ठी नमस्कारं सारं नवपदात्मकम्।
आत्म रक्षाकरं मंत्र पंजरं सस्मराम्यहम् ॥
ॐ णमो अरहंताणं शिर स्कन्ध शिरसंस्थितम्।
ॐ णमो सिद्धाणं मुखे मुख पटंवरम् ॥
ॐ णमो आइरियाणं अंग रक्षति सायिणीम्।
ॐ णमो उवज्झायाणं आयुधं हस्तयोर्दृढम् ॥
ॐ णमो लोए सव्वसाहूणं मोचके पादयोः शुभे।
एसो पञ्च णमोयारो शिववज्रमयी तले ॥
सव्वपावप्पणासणो शिवज्रो वज्रमयो मही।

मंगलाणं च सव्वेसिं खातिरागादि खातका ।।
स्वाहा पञ्च पदं ज्ञेयं पढमं हवइ मंगलम् ।
वज्रो परिवज्रमयं ज्ञेयं विधानं देहरक्षणे ।।
महाप्रभाव रक्षेयं क्षुद्रोपद्रव नाशिनी ।
परमेष्ठिपदोद्भुत्ता कथितापूर्व सूरिभिः ।।
यश्चैवं कुरुते रक्षा परमेष्ठि पदैः सदा ।
तस्य तस्माद् भयं व्याधिराधिश्चापिकदापि न ।।

-: आनन्दस्तवः :-

देवाधिदेवं जितभावजं तं देवाधिवैरन्वितपादपद्मम् ।
नत्वा जिनेन्द्रं शिवसौख्यसिद्धयै स्तोष्ये पवित्रं कलिकुण्डयंत्रम् ।।
पूजां प्रकुर्वंति नरास्तु भक्त्या यंत्रस्य ये श्रीकलिकुण्डनाम्नः ।
तेषां नराणामिह सर्वविघ्ना नश्यंत्यवश्यं भुवितत्प्रसादात् ।।
चित्तांबुजे ये स्वगुरुपदेशाद्ध्यायंति नित्यं कलिकुंडयंत्रम् ।
सिंहादयो दृष्टमृगास्तु लोके पीडां न कुर्वन्ति नृणां च तेषाम् ।।
युक्तया स्तुवंतः कलिकुंडयंत्रं सर्वोरूदोषाहदुत्तमं तम् ।
मोक्षानघ श्रीवर चारु सौख्यप्राप्तिस्तु तेषां भवतीह सत्यम् ।।
यंत्रस्य चिंता हृदयेऽस्ति यस्या सद्धर्मभक्ता व्रतशीलयुक्ताः ।
वंध्यापि सत्पुत्रवती भवेत्सा लोके क्रमात्स्वर्गसुखं प्रयाति ।।
स्मरन्ति यंत्रस्य विधानतो ये नरा अहिंसादिगुणप्रयुक्ताः ।
ज्वरग्रहण्यादिरुजोऽत्र तेषां प्रयांति नाशं कलिकुंडयंत्रात् ।।
सुरासुरेशैरपि सेव्यमानं समस्तदोषोज्झितबीज जालम् ।
यंत्रं नरा ये कलिकुण्डमेतन्नित्यं भजंत्यत्रभयं तेषाम् ।।
सर्पग्नितोयादि विषादि विघ्ना यांति क्षयं यस्य वरप्रसादम् ।
तच्छ्रीजिनेद्रस्य सरोजजातं नित्यं नमः श्री कलिकुण्डयंत्रम् ।।
त्रिभुवनजनताया सारभूरीप्सितं यद् बुधनुतविद्यानन्दसुरोडितं यः ।
तदिह पठति भव्यः सर्वदा स्तोत्रमेतच्छिवपदमनघं संप्राप्यते देव देवः ।।
प्रोद्यत्सन्मणिनागनायकफणाटोपोल्लसन्मंडपं
सद्भक्त्या नमदिंद्रमौलिमणिभिर्भास्वत्पदांभोरुहम् ।
प्रोन्मीलत्रवनीरक्षदिपटलीशंकासमुत्पादकं
ध्यायेच्छूरी श्रीकलिकुण्डदंडविलसच्चंडोग्रपार्श्वप्रभुम् ।। अर्घ्य

-: श्री जैन रक्षा स्तोत्रम् :-

श्रीजिनं भक्तितो नत्वा त्रैलोक्याह्लादकारकम् ।
जैनरक्षामहं वक्ष्ये देहिनां देहरक्षकम् ।। 01
ॐ ह्रीं आदिश्वरः पातु शिरसि सर्वदा मम ।
ॐ ह्रीं श्री अजितो देवो भालं रक्षतु सर्वदा ।। 02
नेत्रयो रक्षको भूयात् ॐ आं क्रौं सम्भवो जिनाः ।
रक्षेद् घ्राणेन्द्रिये ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ब्लूं अभिनन्दनः ।। 03
सुजिह्वे सुमुखे पातु सुमतिः प्रणवान्वितः ।
कर्णयोः पातु ॐ ह्रीं श्री रक्तः पद्मप्रभः प्रभुः ।। 04
सुपार्श्वः सप्तमः पातु ग्रीवामां ह्रीं श्रियाश्रितः ।
पातु चन्द्रप्रभः श्रीं ह्रीं क्रीं (क्रों) पूर्वस्कन्धयोर्मम ।। 05
सुविधिः शीतलो नाथो रक्षको करपंकजे ।
ॐ क्षां क्षीं क्षूं युतौ कामं चिदानन्दमयौ शुभौ ।। 06
श्रेयांसो वासुपूज्यश्च हृदये सदयं सदा ।
भूयाद् रक्षाकरो वारं वारं श्री प्रणवान्वितः ।। 07
विमलोऽनन्तनाथश्च मायाबीजसमन्वितौ ।
उदरे सुन्दरे शश्वद् रक्षायाः कारकौ मतौ ।। 08
श्री धर्मशान्तिनाथौ च नाभिपंकेरूहे सताम् ।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं हं संयुक्तौ पुनः पातां पुनः पुनः ।। 09
श्री कुन्थु-अरनाथौ तु सुगुरु सुकटीतटे ।
भवेतामवकौ भूरि ॐ ह्रीं क्लीं सहितौ जिनौ ।। 10
मे पातां चारु जंघायां श्री मल्लिमुनिसुव्रतौ ।
ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ततो ह्रः ब्लूं क्लीं श्रीं युक्तौ कृपाकरौ ।। 11
यत्नतो रक्षकौ जानू श्री नमिनेमिनाथकौ ।
राजराजीमतीमुक्तौ प्रणवाक्षरपूर्वकौ ।। 12
श्री पार्श्वेशमहावीरो पातां मां ह्रों सुमानदौ ।
ॐ ह्रीं श्रीं च तथा भूं क्लीं ह्रां ह्रः श्रां श्रः युतौ जिनौ ।। 13
रक्षाकरा यथास्थाने भवन्तु जिननायकाः ।
कर्मक्षयकरा ध्याता भीतानां भयवारकाः ।। 14
जैनरक्षां लिखित्वेमां मस्तके यस्तु धारयेत् ।
रविवद् दीप्यते लोके श्रीमान् विश्वप्रियो भवेत् ।। 15

तस्योग्ररोगवेतालाः शाकिनीभूतराक्षसाः ।
एते दोषा न दृष्यन्ते रक्षकाश्च भवन्त्यमी ।। 16
अग्निसर्पभयोत्पाता भूपालाश्चोर विग्रहाः ।
एते दोषा प्रणयश्यन्ति रक्षकाश्च भवन्त्यमी ।। 17
जैन रक्षामिमां भक्त्या प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।
इच्छितान् लभते कामान् सम्पदश्च पदे पदे ।। 18
श्रावणे शुक्लेऽष्टम्यां प्रारभ्य स्त्रोत्र मुत्तमम् ।
अभिषेकं जिनेन्द्राणां कुर्याच्च दिवसाष्टकम् ।। 19
ब्रह्मचर्य विधातव्यमेकभुक्तं तथैव च ।
शुचिता शुभ्रवस्त्रेण वालंकारेण शोभनम् ।। 20
नरो वापि तथा नारी शुद्ध भावयुतोऽपि सन् ।
दिनं दिनं तथा कुर्यात् जाप्यं सर्वार्थसिद्धये ।। 21
एकायां तु विधातव्यम् उद्यापन महोत्सवम् ।
पूजाविधिसमायुक्तं कर्तव्यं सज्जनैर्जनैः ।। 22

-: सर्वरोग हर मंत्र :-

ॐ णमो आमोसहि पत्ताणं, ॐ णमो खेलोसहि पत्ताणं, ॐ णमो जलोसहि पत्ताणं, ॐ णमो सव्वोसहि पत्ताणं, ॐ णमो स्वाहा।

स्वः स्वं स्वेन स्थितं स्वस्मै स्वस्मात्स्वस्याविनश्वरम् ।
स्वस्मिन् ध्यात्वा लभेत् स्वोत्थमानन्दमामृतं पदम् ।।

यह आत्मा शुद्धोपयोग के रूप में अपने आत्मा को अपने ध्यान द्वारा अपने लिए अपने से (अपनी पूर्ण पर्याय को छोडकर अपने ध्रूव उपादान से) अपने आत्मा से उत्पन्न हुए परम अनिश्वर आनन्दरूपी अमृत को (जन्म मरण-रोग दूर करने वाले अमृत रूप को) अपने आत्मा में ही एकाग्र चित्तवृत्ति लगाकर प्राप्त करें, ऐसी हितकारी प्रेरणा ग्रंथकार करते हैं।

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

जैन ग्रन्थ

1 तिलोय-पण्णत्ति
2 अनगार-धर्मामृत
3 सागार-धर्मामृत
4 मूलाचार
5 अमितगति श्रावकाचार
6 यशस्तिलक चम्पू
7 भगवती आराधना
8 कल्याणकारक
9 आत्मानुशासन
10 ज्ञानार्णव
11 योगसार
12 रत्नकरण्डक श्रावकाचार
13 ध्यान सूत्र
14 स्वरूप सम्बोधन

और भी अनेक दि.श्वे. जैन ग्रन्थ

वैदिक ग्रन्थ

1 योग रत्नाकर
2 मनुस्मृति
3 गीता
4 महाभारत
5 चरक संहिता
6 चाणक्य नीति
7 पतञ्जल योगदर्शन
8 सांख्य दर्शन
9 न्याय दर्शन
10 अष्टावक्रगीता
11 और भी अनेक वैदिक ग्रन्थ

बौद्ध-ग्रन्थ

1) धम्मपद

वैज्ञानिक एवं विविध साहित्य

1 असामान्य-मनोविज्ञान
2 मानव की रोचक बातें
3 स्वेट मार्डन के साहित्य
4 अखण्ड-ज्योति
5 मानसिक-स्वास्थ्य
6 पर्यावरण-शिक्षा

और भी अनेक वैज्ञानिक एवं विविध साहित्य

समाचार-पत्र एवं T. V. चैनल

1 दैनिक-भास्कर
2 राजस्थान-पत्रिका
3 डिस्कवरी
4 नेशनल जियोग्राफि

और भी अन्य शोध-पूर्ण पत्र-पत्रिकायें

आ. कनकनन्दी के ग्रन्थ (प्रस्तुत कृति के कृतिकार)

1 आर्दश विचार-विहार-आहार
2 आध्यात्मिक मनोविज्ञान - इष्टोपदेश
3 सत्यसाम्यसुखामृतम् - प्रवचनसार
4 ध्यान का वैज्ञानिक विश्लेषण
5 स्वतंत्रता के सूत्र - मोक्ष शास्त्र
६ सर्वोदय शिक्षा मनोविज्ञान
7 जैन धर्म एवं विज्ञान
8 कर्म का दार्शनिक एवं वैज्ञानिक विवेचन

आ. कनकनंदी के और भी अनेक साहित्य

'ध्यान योग्य सूत्र'

अध्यात्मसारस्वरूपोहम्। - मेरा आत्मा अध्यात्मसार स्वरूप है।
परमोत्तमस्वरूपोऽहम्। - मेरा आत्मा परम-उत्तम स्वरूप है।
परमस्वाध्यायस्वरूपोऽहम्। - मैं परमस्वाध्याय स्वरूप हूँ।
परमसमाधिस्वरूपोऽहम्। - मैं परमसमाधि स्वरूप हूँ।

परम ज्योति स्वरूपोऽहम्।

मैं परम ज्योति स्वरूप हूँ। अथवा मेरा यह आत्मा परम-ज्योति स्वरूप है।

स्वात्मोपलब्धि स्वरूपोऽहम्।

मैं अपने आत्मा की उपलब्धि स्वरूप हूँ। अर्थात् जिस प्रकार सिद्ध भगवान् को स्व आत्मा की उपलब्धि होने पर जैसा उनका स्वरूप है उसी स्वरूप वाला मैं हूँ।

शुद्धात्मानुभूतिस्वरूपोऽहम्।

मैं अपनी शुद्ध आत्मा से उत्पन्न अपनी शुद्ध आत्मा का अनुभव करने वाला शुद्ध आत्मा की अनुभूति स्वरूप हूँ।

शुद्धात्म संवित्तिस्वरूपोऽहम्।

भगवान् सिद्ध परमेष्ठी जिस प्रकार अपनी शुद्ध आत्मा से उत्पन्न होने वाले केवलज्ञानमय हैं, उसी प्रकार मैं भी शुद्ध केवलज्ञानमय हूँ।

परमकेवलज्ञानोत्पतिकारणस्वरूपोऽहम्।

परम केवलज्ञान की उत्पत्ति का कारण स्वरूप मैं हूँ।

सकलकर्मक्षयकारणस्वरूपोऽहम्।

मेरा आत्मा सम्पूर्ण कर्मों के क्षय के कारण स्वरूप है अथवा मैं सम्पूर्ण कर्मों के क्षय का कारण स्वरूप हूँ। मैं निश्चयनय से परम-अद्वैत स्वरूप हूँ।

पुस्तक प्राप्ति हेतु

प्रत्येक साधु-संघ के लिए केवल एक ही प्रति नि:शुल्क भेट (डाक व्यय देय होने पर), अतिरिक्त प्रति एवं सर्वसाधारण जन के लिए पुस्तक का मूल्य 101/- एवं डाक व्यय-पैकेज खर्च 25/- कुल 126/- रूपये प्राप्त होने पर वी.पी.पी. द्वारा प्रेषित किया जायेगा।

निवेदक :- 1) धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान, बडौत,
2) धर्म दर्शन सेवा संस्थान, उदयपुर

डॉ. बी.एल. सेठी तथा डॉ. विद्यावती सेठी (प्राचार्य संस्कृत महाविद्यालय-गनोडा) को स्वरचित साहित्य प्रदान करते हुए आ. कनकनन्दी, डॉ. सेठी के निर्देशन में नुसरत बानो ने ''आ. कनकनन्दी : सामाजिक एवं दार्शनिक अध्ययन'' विषय में एम.ए. (उत्तरार्द्ध) करके **Ph.D.** करने वाली है तथा आ. कनकनन्दी की रचनाओं में चित्रित वैज्ञानिक धर्मदर्शन एवं मनोविज्ञान का समीक्षात्मक अध्ययन विषय में **Ph.D.** कर रहे हैं अजित प्रकाश जैन (वैज्ञानिक अधिकारी श्री आ. कनकनन्दी) के साहित्य के ऊपर **Ph.D.**करने वाले हैं।

आचार्य श्री कनकनन्दी गुरूदेव को आहारार्थे पडगाहन करते हुए बालक-बालिकायें एवं श्रावक-श्राविकायें, सागवाडा (राज.)

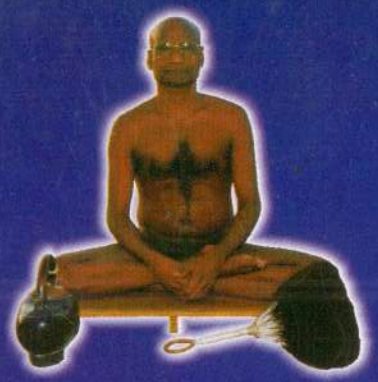

ग्रंथ परिचय

शारीरिक मानसिक आध्यात्मिक स्वास्थ्य के विविध आयाम

इस नवीन शोध पूर्ण कृति में हमने देश-विदेश के प्राचीन एवं आधुनिक विविध चिकित्सा पद्धतियों का समावेश व समन्वय व्यवहारिक/प्रायोगिक जीवन पद्धति, भोजन प्रणाली, वैचारिक धरातल, नैतिक कर्तव्य, मनोवैज्ञानिक चिंतन, आध्यात्मिक सार्वभौमिकता के साथ-साथ आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति सेअभिनव रूप सेअनेकान्तात्मक/सापेक्ष दृष्टिकोण से करने का सनम्र-सत्यग्राही प्रयास किया है। इस अभिनव पद्धति से यह सिद्ध किया गया कि जो आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिए उचित है वह सब मानसिक-शारीरिक स्वास्थ के लिए भी उचित है। अर्थात् आध्यात्मिक स्वास्थ्य के उपाय में शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के उपाय भी अंतर्गत है। इसी प्रकार मानसिक स्वास्थ्य से भी आध्यात्मिक स्वास्थ्य प्रभावित होते हैं। अतः शारीरिक स्वास्थ्य के लिए केवल शारीरिक स्वास्थ्य के उपाय ही पर्याप्त नहीं है। स्वास्थ्य शरीर-मन-आत्मा के लिए योग्य प्राकृतिक वातावरण, निवास, उपकरण, भोजन-पानी, प्राणवायु, औषधि के साथ-साथ या इससे भी अधिक उच्च आदर्श-विचार-व्यवहार, योग, ध्यान, स्वाध्याय, समता, सहिष्णुता, प्रार्थना, परोपकार, अहिंसा, क्षमा आदि की भी आवश्यक ही नहीं अनिवार्यता है - इसे सकारण वैज्ञानिक एवं अनुभवात्मक साक्ष से सिद्ध किया गया है। इस कृति में सामान्य नागरिकों के साथ-साथ विशेषतः साधु-संतों के शारीरिक-मानसिक-आध्यात्मिक स्वास्थ्य को लक्ष में रखकर वर्णन किया है। अखिल जीव-जगत् सम्पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त करके शाश्वतिक सुख को प्राप्त करे ऐसी उदार-पवित्र भावना के साथ -

आचार्य कनकनंदी -